सियारामशरण गुप्त
सृजन और मूल्यांकन

सियारामशरण गुप्त
सृजन और मूल्यांकन

ललित शुक्ल

रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
चाँदनी चौक, दिल्ली-६

गुरुवर

आचार्य विश्वनाथ गौड़

को

सश्रद्ध

निरति निशा में नहीं, दिवा में नहीं विरति है।
सन्तत निरवच्छिन्न, प्रवाहित जीवनगति है।

—सियारामशरण गुप्त

स्व० सियारामशरण गुप्त

प्राक्कथन

सियारामशरण जी मानव-करुणा के कवि हैं। 'मौर्य विजय' से लेकर 'गोपिका' तक, लगता है, एक खोज बराबर चल रही है---भौतिकता में आध्यात्मिकता, अविश्वास में विश्वास, हिंसा में अहिंसा, क्रोध में करुणा और युद्ध में शान्ति की खोज, जो आलोचना की परवाह नहीं करती। इसके मूल में आत्मस्थ व्यक्तित्व के अहंकार के विगलन की वह प्रक्रिया है जो आत्मिक आलोक की किरण-रेखा के समान युग के अन्धकार पर अपनी दीप्ति के चिह्न अंकित कर देती है।

हिन्दी में अभी तक समग्र रूप से सियारामशरणजी के साहित्य पर कम विचार हुआ है। प्रस्तुत कृति इस अभाव की पूर्ति का प्रयास करती है। लेखक ने सियारामशरण जी के सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन मनन करके एक ओर तो नये तथ्यों की खोज की है और दूसरी ओर उपलब्ध तथ्यों का मार्मिक विश्लेषण किया है। इस प्रकार 'सृजन और मूल्यांकन' में सियारामशरण जी के सर्जक कलाकार की लम्बी साधना और उसकी उपलब्धियों का आकलन किया गया है। लेखक ने युगीन परिवेश, वैष्णवता और गाँधी-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में, कवि के जीवनगत सन्दर्भों का आश्रय लेकर उनकी कविता, कहानी, उपन्यास और निबन्धों का विवेचन किया है। सर्वोदय दर्शन की वह भावना जो आज युद्ध और संत्रास के वातावरण में शान्ति एवं कल्याण का सन्देश देती है, सियाराम-

शरण जी के साहित्य की मूल प्रेरणा है। लेखक के विवेचन-सूत्र संक्षेप में इस प्रकार हैं—

- कवि सियारामशरण गुप्त का व्यक्तिगत जीवन
- पारिवारिक, साहित्यिक वातावरण
- युगीन परिस्थितियाँ
- प्रेरणा और प्रभाव (दद्दा, गाँधी और रवीन्द्र आदि)
- करुणाजन्य अनुभूति और कल्पना
- मानवता, अहिंसा, निष्काम कर्म के प्रति कवि का विश्वास

इनके अतिरिक्त सहज शिल्प-कौशल के धनी कवि की कला का विश्लेषण करने के लिये अप्रस्तुत-योजना एवं शब्द-शक्ति-प्रयोग का विस्तार से विवेचन और छन्द के क्षेत्र में सियारामशरण जी की नई उद्भावनाओं का सम्यक् निरूपण किया गया है। १६ मात्रा वाले मुक्त छन्द के आविष्कार का श्रेय सियारामशरण को ही प्राप्त है और उधर 'विषमाक्षरी' का प्रवेश भी हिन्दी कविता में उन्हीं के माध्यम से हुआ है। शोधकर्ता ने संगत-युक्ति-प्रमाण आदि के द्वारा यह सिद्ध किया है, कि उपन्यास, कहानी, नाटक और निबन्ध सभी में सियारामशरण ने अपने काव्य-दर्शन के अनुरूप नवीन रूप-बन्धों की रचना की है। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध में वर्तमान युग के इस एकाकी कवि-कलाकार की साहित्य-साधना का पूरे मनोयोग के साथ आकलन किया गया है। लेखक की दृष्टि तथ्यों पर ही उलझ कर नहीं रह गयी, उन्होंने कवि व्यक्तित्व के जीवन्त सम्पर्कों के माध्यम से कृतियों की व्याख्या करने का सफल प्रयास किया है।

सियाराम-साहित्य के प्रेमियों की संख्या शायद बहुत अधिक नहीं है, पर जो उनके भक्त है वे उनके प्रति अनन्य भाव से समर्पित है। मुझे विश्वास है कि शुद्ध सात्विक रस के ये रसिक डॉ० शुक्ल के ग्रन्थ का स्वागत करेंगे।

हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

नगेन्द्र

अभिमत

स्मरण होता है सन् १९३० में रवीन्द्रनाथ जी का एक संग्रह पढ़ा था जिसमें पद्यबद्ध कुछ कहानियां थीं। कहानियां छोटी और स्मृति को कुछ दिनों तक प्रभावित करने वाली थीं। शायद 'संन्यासी उपगुप्त' कहानी भी उस संग्रह में पढ़ी थी। अभिलाषा हुई कि हिन्दी में भी ऐसी कोई कृति देखने को मिलती। सन् १९३३ में 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखते समय श्री सियारामशरण जी के दो कविता संग्रह मिले 'आर्द्रा' और 'दूर्वादल'। कुछ-कुछ उसी शैली की रचनाएं। सहज, सरल, प्रवाहमयी भाषा तथा मर्म को स्पर्श करने वाले दृश्य। अकृत्रिमता में प्रभाव। एक दिन उन्हीं दिनों काशी में प्रसादजी के साथ ज्ञानवापी के निकट सड़क पर टहलते हुए सियारामशरणजी से भेंट हो गयी। प्रसादजी किसी एक अन्य व्यक्ति के आ मिलने से बात करते हुए उसके साथ चलने लगे और मैं सियारामशरण जी से बातें करते हुए चलने लगा। सत्यनारायण के मन्दिर के सामने से होते हुए बांस-फाटक तक दो बार इधर से उधर। मैंने उनकी रचनाओं के बारे में कुछ कहा। वे कुछ बोल नहीं रहे थे। मैं भीत हुआ, सोचा शायद कुछ कह कर मैंने इन्हें अप्रसन्न कर दिया है। कुछ क्षणों में उन्होंने मेरे कन्धे पर हाथ रखा, उनका गला भरा हुआ था। कहा— मुझे सन्तोष है तुमने मेरी रचना……। आगे वे बोल नहीं सके।

इसके पश्चात् ३५ वर्ष तक मैं न तो उनके दर्शन कर सका और न उनका

कोई ग्रंथ पढ सका। उनके ग्रंथों की आलोचनाएँ कभी-कभी पढ़ने को मिल जाती थी। मैं बहुत चाहता था कि कोई छात्र उनकी सम्पूर्ण कृतियों का अध्ययन करके एक ग्रथ प्रस्तुत करे। चि० ललित शुक्ल अपने अनुसंधान के लिये एक विषय चाहते थे। मैंने सियारामशरण जी का उल्लेख किया। मेरी बात मान ली गयी। शुक्ल जी लगन से काम करने लगे। वे प्राय चिरगाँव जाते रहते थे। इन्ही दिनों सियारामशरण जी का एक पत्र दिल्ली में मिला जिसमे लिखा था—'श्री ललित जी से कहिए जब चाहें घर की तरह चिरगाँव आवे।' चि० ललित जी मुझे प्रायः बताते रहते है कि चिरगाँव में उन्हें कैसा ममत्व कैसी अपनपौ की प्रीति मिलती रही। स्वर्गीय गुप्त बंधुओ के चरणों के अति निकट बैठने के जाने कितने अवसर ललित जी को मिले और उनके मुख से पचासों वर्षो की हिन्दी साहित्य की गतिविधि को सुनने समझने की भूमिका बनी। मैं ललित शुक्ल के इस सौभाग्य के प्रति सदा ईर्षालु रहूँगा।

अभी कुछ ही वर्ष हुए मुझे सियारामशरण जी की सारी कृतियों को पढ़ने का अवसर भी मिल गया। एम० ए० की एक छात्रा ने निबन्ध के लिये विषय चुना—'सियारामशरण की कृतियों पर गाँधीवाद का प्रभाव'। मुझे उसका सहायक बनना पड़ा। कवि की कृतियो को पढने का यह एक सुअवसर मिला। 'झूठ-सच' पढ़ते समय मन मे कुछ विचार आये, एक पत्र चिरगांव लिख दिया। करीब-करीब लौटती डाक से उत्तर मिला जिसके कुछ वाक्य है—

"अपने रोग से जूझते हुए रात कठिनाई से बिता सका था, किन्तु आज प्रात.काल आपका पत्र पाकर सारी पीड़ा कुछ समय के लिये विदा जैसी ही ले गई। ऐसे पत्र भाग्य से ही कभी मिलते है।"

एक पत्र उनका दिल्ली में और मिला था—" 'अमृत पुत्र' की प्रति आपको नही मिली, अमुक से ले लीजिए। पूज्य दद्दा के साथ दिल्ली आऊँगा तो आपसे मिलूँगा।" फिर उनके दर्शन नही हुए। और अब तो किसी को भी उनके दर्शन नही होने है।

चि० ललित शुक्ल को गुप्त बधुओ के सम्पर्क में रहकर कवि को समझने का अवसर मिला है। कवि के व्यक्तित्व, कौटुम्बिक आचार-विचार, आस्था और स्वभाव सबका इनको प्रत्यक्ष ज्ञान है। आते-जाते उनके साहित्य को पढ़ते-समझते इन्हे कवि के प्रति सश्रद्ध ममत्व हो गया था। लेखक ने शुद्ध विश्लेषण की शैली अपनाई है। मिथ्या मोह और पक्षपात को पास फटकने नही दिया है। निष्कर्ष लादे नही है। पाठक को प्रमाण देकर कुछ निष्कर्षो तक पहुँचने में

सहायता पहुंचाई हैं। लेखक ने बड़ी ईमानदारी से अपने प्रिय कर्त्तव्य का निर्वाह किया है। सियारामशरणजी ऐसे सरल स्वभाव के साहित्यकार को जैसा आलोचक मिलना चाहिए था, वैसा ही ललित शुक्ल के रूप में मिला है। मैं अपनी वृद्धता का लाभ उठाते हुए लेखक को इस सुन्दर कृति के लिये आशीर्वाद और बधाई देता हूँ। आशा करता हूँ कि ये इसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में काम करते रहेंगे।

मन में इस बात का दुःख अवश्य है कि स्वर्गीय सियारामशरण जी के जीवन काल में यह ग्रंथ प्रकाशित होकर उनके सामने न आ सका।

२१ मार्च १९६९ कृष्णशंकर शुक्ल

निवेदन

स्व० सियारामशरण गुप्त के साहित्य पर शोध-कार्य करने की प्रेरणा मुझे श्रद्धेय गुरुवर पं० कृष्णशंकर शुक्ल से मिली। उन्होंने इस दिशा में केवल मार्ग-निर्देशन ही नहीं किया वरन् शोध-कार्य के दुरूह पथ पर मुझे चलना भी सिखाया। प्रेरणा और आशीर्वाद की यह भूमिका प्राप्त करके मैं आगे बढ़ता रहा। शुक्लजी का सहज स्नेह मेरी साहित्यिक यात्रा का पाथेय बन गया और उसी के सहारे मैं यहाँ तक आ पाया हूँ। हिन्दी साहित्य में सियारामशरण जी अपनी तकनीक के अकेले कवि थे। उनके साहित्य का पूर्ण विवेचन अभी तक नहीं हुआ था। इसी बात को ध्यान में रखकर मैंने उनके साहित्य पर शोध-कार्य प्रारम्भ किया था। साहित्य की प्रत्येक वीथी से जाने वाले कवि सियारामशरण जी का काव्य अपनी दिशा में एक नया प्रयोग था। युगीन साहित्य में उनकी मौलिकता का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कृति के सृजन-काल में सियारामशरण जी के अग्रज श्रीयुत मैथिलीशरणजी से विषय-वस्तु सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री मुझे मिली है। उनके अनुज श्रीचारुशीलाशरण गुप्त ने समय-समय पर पत्रों द्वारा अनेक पुराने प्रसंगों से अवगत कराया है। सियारामशरण जी के जीवन-काल में मैं उनके निवास स्थान

चिरगाँव गया था। वहां से उनके साहित्य के संबंध में अनेक प्रकार की जानकारी प्राप्त की थी। 'प्रताप' (कानपुर से प्रकाशित) के प्रकाशक ने 'सियारामशरण गुप्त विशेषांक' प्रकाशित किया था जिसकी प्रति मुझे चिरगाँव से मिली। मैंने वही 'लन्दन रायल इन्डिया पाकिस्तान एण्ड सीलोन सोसायटी लंदन' से प्रकाशित सियारामशरण जी के काव्य 'अमृत पुत्र' का अनुवाद 'क्रास वियरर' देखा था। उनके मधुर व्यवहार की छाया में मुझे जो सृजन-सामग्री मिली वह पर्याप्त सहायक सिद्ध हुई। इस भौतिकवादी वातावरण में मुझे चिरगाँव में हृदय-स्पर्शी सदाशयता का सहज रूप दिखायी पड़ा। दैव योग से सियारामशरण जी का प्रथम दर्शन ही अन्तिम बना। वे अब हमारे बीच नहीं रहे। चिरगाँव की विभूतियों का मैं आभारी हूँ जिनकी उदारता और दार्शनिक जीवन्तता मेरी प्रेरणा बनी। इस प्रबन्ध को सियारामशरण जी देख न सके जिसका मुझे हार्दिक दुःख है। अपनी भेंट वार्ता में उन्होने मुझसे पूछा था, 'इस कार्य की प्रेरणा आपको कहाँ से मिली ? मैंने पं० कृष्णशंकर जी का नाम लिया था। इस जानकारी से उन्हें आत्मतोष और सुख मिला था जिसकी दीप्ति उनके मुख मण्डल पर स्पष्ट दिखायी पड़ रही थी।

सृजन-सामग्री प्राप्त करने में श्री दिनकर, डा० हरिवंशराय बच्चन, डा० प्रभाकर माचवे, डा० सुरेशचन्द्र गुप्त आदि विद्वानों के संकेत मेरे सहायक रहे हैं। भाई कृष्णकान्त ने 'गाँधी-मार्ग' की कुछ फाइलें देकर मेरे कार्य में हाथ बँटाया है तथा श्री एस० के० त्रिवेदी ने अंग्रेजी साहित्य से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त करने में योगदान दिया है। लेखन कार्य के लिए अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने में श्री आर० पी० सिंह का नाम मैं कभी नही भूलूँगा। ये सभी मेरे सुहृद है, इसलिए कोई औपचारिकता इस सन्दर्भ में इन्हें नहीरुचेगा। और मैं भी कुछ इसी भूमिका में सोचता हूँ। साधना के सोपान पर बढ़ते हुए सत्परामर्शों के उत्साह वाले संकेतों से मेरे मानस को अनुप्राणित करने वाले साथियों में श्री भर्तृहरि त्रिपाठी, डा० रविदत्त निर्मल तथा डा० अरविन्द पाण्डेय का नाम भुलाया नही जा सकता। प्रेरणा की यह भाव-भूमि बड़े भाग्य से सुलभ होती है।

सृजन-प्रक्रिया में डा० विश्वनाथ गौड़, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, सनातनधर्म कालेज कानपुर का निर्देशन मुझे मिला है। उनसे प्राप्त कृपा और संबल को मैं शब्दो की सीमा में कैसे बाँधू ? उन्होंने मेरी एक-एक पंक्ति को देखा है और

'अन्तर हाथ सहार दै बाहर बाहै चोट' की भाँति मेरी सफलता को सँवारा है। उनकी अनुकंपा पग-पग पर मुझे सन्तोष देकर प्रेरित करती है जिसके फलस्वरूप हिन्दी जगत के सम्मुख यह कृति प्रस्तुत कर सका हूँ।

मान्यवर डा० नगेन्द्र जी ने इस कृति की भूमिका लिखने की कृपा की है। उनकी इस सदाशयता के प्रति अपना विनम्र आभार व्यक्त करता हूँ। चाहता था, कि पूज्यचरण पं० कृष्णशंकर जी अपने अभिमत के रूप में रचना के सम्बन्ध में कुछ कहें। उन्होंने मेरी इच्छा का ध्यान रख कर आशीर्वाद देते हुए मेरा उत्साहवर्द्धन किया है। उनके स्नेह का संबल ही मेरा पाथेय है। पूज्य शुक्ल जी के प्रणम्य व्यक्तित्व की प्रतिभा और उदारता मेरे लिए प्रेरणादायिनी है।

शोध-प्रबन्ध की मूल पाण्डुलिपि में प्रकाशन की सुविधा के लिए कुछ परिवर्तन कर दिया गया है। इस बात की ओर विशेष ध्यान रखा गया है, कि कवि सियारामशरण जी की मौन साधना के प्रत्येक रूप का परिचय और वैशिष्ट्य की जानकारी प्राप्त हो सके। आशा है कवि के सर्जक व्यक्तित्त्व और उनकी सर्जना को समझने में मेरा प्रयास साहित्य के अध्येताओं के लिये सहायक होगा।

अन्त में मैं रणजीत प्रिन्टर्स एन्ड पब्लिशर्स प्रकाशक तथा डिलाइट प्रेस के स्वामी श्री एन० एम० सक्सेना के प्रति आभार व्यक्त करता हूं। इन्हीं के प्रयास के आधार पर प्रकाशन-कार्य सफल हो सका है।

विश्वास है जिस उद्देश्य को लेकर यह प्रबंध लिखा गया है इससे उसकी पूर्ति होगी। ऐसा संभव होने पर अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

नेवादा, साँगीपुर
प्रतापगढ़ (अवध)

ललित शुक्ल
श्रावणी, २०२१ वि०

सियारामशरण गुप्त
सृजन और मूल्यांकन

जीवन-प्रसंग

जन्म एवं बाल्यस्मृति

स्व० सियारामशरण गुप्त का जन्म भाद्र पूर्णिमा सं० १९५२ को चिरगाँव (झाँसी) में हुआ था। यह स्थान अपनी कई विशेषताओं के कारण केवल झाँसी जिले में ही नहीं अपितु सारे उत्तर प्रदेश में प्रसिद्ध है। सियारामशरण जी राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के अनुज थे। श्री रामचरण गुप्त के पाँच पुत्रों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं :— स्व० महारामदास जी, श्री रामकिशोर गुप्त, स्व० मैथिलीशरण गुप्त, स्व० सियारामशरण गुप्त तथा श्री चारुशीलाशरण गुप्त। स्व० महारामदास जी के पुत्र का नाम श्री रघुवीर-शरण है। वंश-वृक्ष की यह डाल फूल-फल रही है। रामकिशोर जी के पुत्र श्री निवास जी है। इनके दो पुत्र हैं :—श्री कंठ जी तथा श्री रंग जी। श्री मैथिलीशरण जी गुप्त के पुत्र का नाम श्री उर्मिलाचरण है। स्व० सियाराम शरण की कोई संतान जीवित नहीं रही। उनकी पत्नी का देहान्त बहुत पहले हो गया था। श्री सुमित्रानन्दन जी श्री चारुशीलाशरण जी के पुत्र हैं। पाँचों भाइयों में केवल सियारामशरण जी की सन्तानें जीवित नहीं रही और सभी परिवार भूरे-पूरे है।

सियारामशरण जी का परिवार 'गहोई' नाम की वैश्य शाखा के अन्तर्गत आता है। 'गहोई' गृहपति का अपभ्रंश है—ऐसा सियारामशरण जी का मत है। 'गहोई' वैश्यों का प्रदेश बुन्देलखण्ड है। परिवार के कुछ लोग प्रारम्भिक अवस्था में जैन धर्म से प्रभावित होकर जैनी हो गये थे। खजुराहो के प्रसिद्ध

मन्दिर का निर्माण गहोइयों ने कराया था[1] । ये 'कनकने' उपनाम से प्रख्यात थे । टीकमगढ के पास पपौरा नामक स्थान पर पत्थर की एक मूर्ति है जिसका निर्माण इन्ही 'गहोई' जैनियों ने कराया था । उस मूर्ति में 'गहोई' लिखा भी है तथा शिल्पी का नाम भी खुदा हुआ है । ज्ञातव्य है कि यहाँ के जैनी दिगम्बर सम्प्रदाय के हैं । श्वेताम्बर यहाँ बहुत कम हैं । स्व० सियारामशरण जी वैष्णवता के उपासक थे ।

कवि सियारामशरण की स्कूली शिक्षा अपर प्रायमरी तक थी । उन्होंने घर पर ही संस्कृत, बँगला, गुजराती तथा अंग्रेजी सीखी, कहीं गये नहीं । अंग्रेजी का अध्ययन करने में उनकी रुचि विशेष थी । एक बार टेनीसन की एक कविता का अनुवाद भी उन्होंने किया था । प्रारंभ से ही सियारामशरण जी की रुझान कविता की ओर थी । आपने कहीं पढ़ा था कि एक बार पोप के बचपन में कविता करने के अपराध में उसके पिता ने उसको बहुत पीटा था । मारते समय रो-रोकर पोप ने जो बातें कही वे भी काव्यमय थीं । सियारामशरण जी लिखते हैं :—

"यदि कभी वैसा प्रसंग आता तो मैं समझता हूँ आँसू तो मेरी आँखों से बहुत निकलते, किन्तु कविता की एक पंक्ति भी निकलना मुश्किल था ।"[2]

छुटपन में सियारामशरण जी के पैर में एक फोड़ा हुआ था । शल्यक्रिया वाले दिन फोड़ा अपने आप फूट गया । श्री मैथिलीशरण जी ने इस प्रसंग में लिखा है :—

"इतनी पीव निकली कि मानों उनका सारा शरीर ही निचुड़ गया । सम्भव है उसी के कारण उनकी बाढ़ मारी गयी हो । ऊँचाई में वे मेरी अपेक्षा बहुत छोटे रह गये ।"[3]

प्रारम्भ में सियारामशरण जी के कोमल हृदय पर इस पीड़ा का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा । बालक सियारामशरण एक नटखट खिलाड़ी बन कर कभी क्रीड़ा-स्थल पर खेलने नहीं गये । उनके बचपन में चपलता नहीं थी । छुटपन से ही उनमें एक प्रकार का संकोच पाया जाता था जो आगे चलकर उनकी रचनाओं में भी उतरा है । एक बार मिट्टी के बने हुए पोले हाथी के अन्दर चीटी डालकर सियारामशरण जी सोचने लगे, यदि चीटी की आत्मा निकल कर

---

१. यह बात स्व० सियारामशरण जी ने लेखक के प्रति लिखे गये एक पत्र में लिखी थी तथा श्री मैथिलीशरण जी ने एक भेंट में बतायी थी ।

२. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८३ ।

३. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पष्ठ ४ ।

हाथी के पेट में चली जाये तो हाथी जीवित हो उठे । वे लिखते हैं :—

"अपने इस नये आविष्कार से मेरा बाल-हृदय एक साथ उछल उठा कि जब यह छोटा सा हाथी अपनी छोटी सी सूँड़ हिलाता हुआ इस आँगन में डोलने-फिरने लगेगा तब सब कहीं कैसी धूम मच जायेगी। कितना बड़ा कौतुक होगा वह !"[४]

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ है जिनमें सियारामशरण जी का बालपन कल्पना-लोक में प्रारंभ से ही विचरण करता हुआ दिखायी देता है । वे प्रतिभा को पागलपन में देखते थे । एक बार वे किसी छपी हुई कविता के नीचे मैथिलीशरण गुप्त का नाम छपा देखकर बहुत प्रसन्न हुए । 'शरण गुप्त' सियाराम के नाम में भी तो लगा हुआ है । यह सोचने में कितनी स्वाभाविकता है । सियारामशरण जी ने लिखा है :—

"यदि कुछ दे-दिलाकर भी मेरी कविता उस समय किसी पत्र में छप सकती तो अपने लिए इसमें मुझे कोई हिचक न होती ।"[५]

यह बालकवि के मन की कितनी सहज बात है । केवल अपना नाम छपा हुआ देखने के लिए ही नहीं, देखकर प्रसन्न होने के लिए भी पता नहीं कितने बच्चे दूसरों से रचनाएँ लेकर अपने नाम से छपवाते है । जब कभी सियाराम जी का बालसाथी 'छिमाधर' कहता कि 'जाके हिरदय है छिमा ताके हिरदय आप' में मेरा नाम आता है तो सियारामशरण जी यह कहने से नहीं चूकते थे कि 'सियाराम मय सब जग जानी' । रामायण की महिमा अपार है । उनका नाम अपार महिमा वाले ग्रंथ में छप गया है । यह सुनकर 'छिमाधर' चुप हो जाता ।

कभी-कभी वे पाठशाला न जाकर, एकान्त में रचना करते थे । कुछ तुक मिला कर और कुछ सोच-विचार कर नीचे लिख दिया जाता 'सियाराम-कृत'। स्वरचित कविता को भैया (श्री मैथिलीशरण गुप्त) से ठीक करवाने में सियारामशरण जी का बालकवि संकोच करता था । इस काम के लिए उन्होंने अजमेरी जी को चुन रखा था । घर के कामकाज में मुख्य रूप से दो बातें सियारामशरण जी को खूब याद थीं :—

१—पान लगाने में कत्थे-चूने का अनुपात ।

२—मुंशी अजमेरी की 'मर्जी' के अनुकूल शर्बत बनाना ।

अपने परिवार में सियारामशरण जी की कवि-रूप में प्रसिद्धि की एक

---

४. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६१ ।
५. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६५ ।

रोचक कहानी है। एक बार इनकी सेवा-भावना से द्वितीय अग्रज 'नन्ना' (श्री रामकिशोर जी गुप्त) प्रसन्न हुए और कहा :—

"ऐसा वैसा नहीं, सियाराम कवि भी है।"[६]

इस बात पर 'भैया' और अजमेरी जी दोनों ने आश्चर्य प्रकट किया। सियाराम की पेशी हुई। अपनी कविता लाने का आदेश मिला। कविता देखकर 'भैया' प्रसन्न नहीं देख पड़े, अप्रसन्न भी नहीं हुए। त्रुटियाँ खोजी गयी। सियाराम जी ने सोचा :—

"यह हिसाब-किताब यहाँ भी आ पहुँचा।"[७]

'भैया' ने कविता को काट-छाँट करके नवीन संस्करण का रूप दे दिया। सियाराम ने सोचा—'इसमें अपना क्या है ?' सचमुच अपना कुछ नहीं था। जिन तुकों का अन्वेषण करके सियारामशरण जी के बालकवि ने अपने को कवि समझा था, वे तुकें भी यहाँ नहीं रहीं। वे लिखते हैं :—

"सब मिलाकर मैंने अनुभव किया प्रारम्भ बहुत कुछ ठीक नहीं रहा।"[८]

काव्य-रचना के प्रारम्भिक समय में सियाराम जी डाँट खा चुके थे। कविता की ओर इनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति देखकर घरवाले कहा करते थे, कि घर में सभी कवि ही हो जायेंगे कि कोई हिसाब-किताब भी देखेगा। हिसाब-किताब में सियारामशरण जी की अभिरुचि और कोई आकर्षण नहीं था।

वेश-भूषा एवं रुचि

जिन्होंने सियारामशरण जी को समीप से देखा है, उन्हें उनको पहचानने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। देखने में सियारामशरण जी दुबले-पतले थे। रंग गेहुँआ था। ऊपर से शरीर की सुघराई में भले ही रूखापन हो पर अन्दर से वे निर्मल, स्वच्छ, स्नेहयुक्त, आर्द्र एवं अतिथि को भुज भर भेंटने के लिए आकुल दिखायी पड़ते थे। कुछ समय के लिए बड़ी-बड़ी मूँछें भी रखी थी, किन्तु महात्मा गांधी की मृत्यु के पश्चात् उनसे भी साथ छूटा। बचपन में मोतियों के झुमके पहनने का आनन्द भी उठाया था जिसकी साँकलें कानों पर चढी रहती थी। पैरों में चाँदी के कड़े, तोड़े, हाथों में सोने के कड़े, पोहँचियाँ और गले में गोप-गुंज एवं कठे आदि समय-समय पर पहना करते थे। सिर पर मंडील भी बाँधा जाता था। परिवार में अँगरखे और सुथने भी पहने जाते थे।

६. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६८।
७. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६८।
८. झूठ सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७०।

सियारामशरण जी ने समय-समय पर इन वस्त्राभूषणों को पहनने का आस्वादन किया है।

सियारामशरण जी चप्पलें बड़ी सादी पहनते थे। कम अर्ज वाली खादी की धोती, आधी बाँहों वाला सलूका, ऊपर से कुरता और टोपी, यही उनकी पोशाक थी। बाद में सदरी भी पहनने लगे थे। श्री हरगोविन्द जी लिखते हैं—

"रेशम के या अन्य प्रकार के चटकीले रंगों वाले परिधान में इन आँखों ने उन्हें कभी नहीं देखा।"[९]

स्वयं सूत कातने में उन्हें असुविधा होती थी। रुई के कण उन्हें परेशान करते थे। श्वास-रोग के कारण यह काम अधिक असुविधाजनक था। श्रीमती महादेवी वर्मा लिखती हैं :—

"वे शुद्ध खादीधारी हैं। वस्त्रों का वजन कहीं क्षीण शरीर से अधिक न हो जाय, इसी भय से मानो उन्होंने कम वस्त्रों की व्यवस्था की है। औरों की पाँच गज लम्बी और कम से कम बयालीस इंच चौड़ी धोती, इनके लिए तीन गजी छत्तीस इंची हो जाती है। अतः इनके चरण-स्पर्श का अधिकार उसके लिए दुर्लभ ही रहता है। शहराती कुरते से ग्रामीण मिर्जई की अस्थायी संधि केवल बाहर जाते समय होती है और चप्पल तो असली चमरौधे की सहोदराएँ जान पड़ती हैं। इस वेश-भूषा के साथ जब वे थैला और छड़ी लेकर आविर्भूत होते हैं तब उनके साहित्य के विद्यार्थियों के सामने समस्या उठ खड़ी होती है, कि वे इन्हें लेखक मानें या अपने मानस में इनके साहित्य से बनी कल्पना-मूर्ति को। सत्य तो यह है, कि यदि कोई इन्हें इनके साहित्य का स्रष्टा न स्वीकार करे तो इनके पास अपना दावा प्रमाणित करने के लिए बाहरी कोई प्रमाण नहीं।"[१०]

कवियों की वेश-भूषा पर सियारामशरण जी ने स्वयं विचार किया है। उनके किसी मित्र की एक समस्या थी—'अमुक कवि गड़रिए-जैसी पोशाक क्यों पहनते हैं?' यह बात किसी राजपदाधिकारी की थी। इस सम्बन्ध में चुटीली और व्यंग्य शैली में विचार करते हुए सियारामशरण जी ने लिखा है—"क्या करूँ? बात मन में बैठती तो है। कवि बनने का ही इसका (गड़रिए का) यह रंग प्रतीत होता है। ऐसा है तब आसानी से मैं स्वयं वह गड़रिया बन सकता हूँ। इस परिवर्तन से मैं घाटे में न रहूँगा और न इसमें मेरे लिए लज्जा और संकोच की बात है।"[११] सारांश में यह कहा जा सकता है कि सियारामशरणजी

---

९. प्रताप : सियारामशरण विशेषांक, १९५२ ई०, पृष्ठ ९८।

१०. पथ के साथी : महादेवी वर्मा, पृष्ठ ८९।

११. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १९९।

में अपनी वेश-भूषा के प्रति कोई सतर्कता नहीं थी। इन पंक्तियों को लिखते समय अपने सामने रखे हुए सुकवि सियारामशरण जी के चित्र[१२] को निहारता हूँ तो वे अपने कुरते-सदरी में मुस्कराते हुए दिखाई पड़ते हैं। सिर की गांधी टोपी भारतीयता का दावा कर रही है। बाएँ हाथ का बैग और धूप का चश्मा उनको एकान्ततः प्राचीनता-पोषक कहने वालों को संकेत कर रहा है। गले में पड़ी कंठी वैष्णवता की प्रतीक है। नवीन और प्राचीन की यह गंगा-जमुनी भी कवि को रुचती थी।

वस्त्रों के समान ही खाद्य-सामग्री में भी वे सादगी चाहते थे। सादे भोजन के पश्चात् गुप्त जी चाय पीते थे। प्रातराश में बासी पूरी और फिर दो-एक कप चाय लेना ही उनका नित्य-क्रम था। वे रोटी, दाल, शाक, सिवई, चावल आदि अधिक पसन्द करते थे। धूम्रपान करते थे, किन्तु नाक के द्वारा। एक छोटी-सी डिबिया में दवा डालकर सुलगाया और वास लिया। एक बार मैंने पूछा था कि यह क्या है? उत्तर मिला—'अमेरिकन औषधि है, श्वास रोग के लिए ऐसा करना पड़ता है।'

सियारामशरण जी साहित्य-सृजन को ही अपना मुख्य ध्येय मानते थे। इसी कारण अपने अवितथ प्रयत्नों के फलस्वरूप रोग से जूझते हुए आजीवन वे अपनी लेखनी चलाते रहे। यहाँ तक कि किसी काम से चिरगांव छोड़कर बाहर जाना उनके हेतु जटिल समस्या थी। घर में खेले जाने वाले खेलों में भी वे रुचि नही लेते थे, जबकि मैथिलीशरण जी अकेले ही ताश खेल लेते थे। सियारामशरण जी की बेतवा के तट पर कुटी बनाने की योजना भी पूरी नहीं हो पायी। आपने एक बार पं० जवाहरलाल नेहरू से अपनी मनचाही बात कही थी। वस्तुतः गुप्त जी कुछ युवकों को लेकर संस्था चलाना चाहते थे जिसके द्वारा आदर्श शिक्षा का प्रचार हो। इस प्रकार की योजना की बात सुनकर नेहरू जी केवल मुस्कराकर ही रह गए थे, किसी प्रकार का सक्रिय प्रोत्साहन नहीं दिया। ऐसे कार्यों के लिए भारत को गांधी-ऐसे कर्मयोगियों की आवश्यकता बनी रहेगी।

पारिवारिक जीवन

कवि का पारिवारिक जीवन अत्यन्त कष्टमय रहा। आठ वर्ष की छोटी आयु में ही कवि का विवाह हुआ था। वे दाम्पत्य-जीवन का सुखोपभोग अधिक

---

१२. यह चित्र धर्मयुग के सह-संपादक श्री नन्दन जी ने ९-५-६३ को लेखक के लिए भेजा था।

दिनों तक नहीं कर सके। एक-एक करके कई बच्चों[१३] एवं पत्नी का निधन कवि अपने पथराये नेत्रों से देखता रहा। कवि की पत्नी अपनी मृत्यु से अनेक वर्ष पहले अपने माता-पिता के साथ तीर्थयात्रा करती हुई एक सरोवर में स्नान करती हुई डूबने लगी थीं। सरोवर से निकाले जाने पर उनकी अवस्था चिन्त्य थी। उपचार द्वारा दशा कुछ सुधरी ; परन्तु फेफड़ों का मर्माघात जीवन के अन्तिम क्षणों तक कष्ट देता रहा। सन् १६२२ के जाड़े की रात में बातचीत करते-करते वे स्वर्गलोक सिधारीं। यह घटना पुरुषोत्तम (सियारामशरण जी का पुत्र) की मृत्यु के पाँच-छः वर्ष बाद की है। कवि की अन्तिम सन्तान उर्मिला नाम की बेटी थी। बचपन में ही उसकी आँखें नहीं रही। कुल मिलाकर चार वर्ष की ही आयु उसे मिली थी। सियारामशरण जी के अनुज श्री चारुशीला-शरण जी ने मुझे लिखा था कि "उर्मिला अपनी नानी के पास ही रहती थी। एक दिन भैया (सियारामशरण) अचानक वहाँ पहुँचे। उनके पहुँचने पर बेटी अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसी दिन वह चल बसी। भैया को उसका दुःख हुआ था।"[१४]

उर्मिला के जन्म के पहले सियारामशरण जी के यथाक्रम चार पुत्र हुए। प्रथम तो यमज उत्पन्न होकर उसी समय चल बसे। दूसरा डेढ़-दो साल की आयु में, और पुरुषोत्तम तीन वर्ष की आयु में दिवंगत हुआ। जीवन के इस कठोर परीक्षा-काल में भी आशा का तार नहीं टूटा। निराशा की रजनी समा-श्वास की रजत-किरण को अपने अंक में समेट नहीं सकी। समय-समय पर 'विषाद'[१५] के कवि को 'पाथेय'[१६] मिलता रहा। जीवन का विषाद अन्तर्मुखी हो गया और जब बहिर्मुखी हुआ तो कविता के रूप में। व्यक्ति का विषाद लोक का आनन्द बन बैठा। यह विरोध भी कम स्पृहणीय नहीं है।

परिवार में श्री चारुशीलाशरण जी को छोड़ कर सबसे छोटे होने के कारण सियारामशरण जी में सेवा-भाव का आ जाना स्वाभाविक था। ऐसी सेवा जो लक्ष्मण के समान अनुज सियारामशरण को अपने में रत किये रही। पत्नी के दिवंगत होने पर आयु के अनुसार सियारामशरण जी अन्य विवाह कर सकते थे, किन्तु उन्होंने एक-पत्नीव्रती रहना ही श्रेयस्कर समझा। यह भी

---

१३. मैथिलीशरण गुप्त लिखित 'उच्छ्वास' पुस्तक की "नक्षत्र-निपात" तथा "मेरे आंगन का एक फूल" रचनाएँ सियारामशरण के पुत्रों से सम्बन्धित हैं।

१४. दिनांक १०-१-१९६४ को लेखक के लिए लिखा गया पत्र।

१५. कवि की कृति सं० १९८६ में प्रकाशित।

१६. कवि की कृति सं० १९९१ में प्रकाशित।

उनके लिए गौरव की बात है। इस कार्य मे कुछ तो श्वास रोग बाधक रहा और बहुत कुछ कवि का संयम ही साधक बना। महादेवी जी लिखती है :—

"मैंने तो विषाद की पक्तियाँ पढ कर यही माना है कि अपनी बाल-संगिनी पत्नी को उन्होने अपने हृदय का समस्त स्नेह ऐसी निष्ठा के साथ समर्पित किया था कि उसे लौटा लेना दोनों लेने-देने वाले का अपमान बन जाता।"[१७]

इन परिस्थितियों मे कवि को जो वेदना मिली उसे वह चुपचाप पी गया। इतना ही नही वह श्वास रोग मे निरन्तर सघर्ष करके भी साहित्य साधना करता रहा। यह तपस्या भी कितनी कठिन हे। एक बार श्री शैवाल सत्यार्थी ने सियारामशरण जी से पूछा था—"साहित्य के अतिरिक्त आपके और शौक क्या हे ?" उत्तर मिला—"इसके अतिरिक्त तो बीमार रहना और आराम से दवाएँ खाना।"[१८] इनके श्वास रोग का उपचार किशोरलाल मश्रूवाला की सहायता से वम्बई मे भी हुआ था। मश्रूवाला ने इन्हे स्वयं बुलवाया था। यह बात कदाचित् सन् १९५० की है। उन्होने अस्पताल मे कवि सियारामशरण का उपचार एक पारिवारिक प्राणी की तरह करवाया था। किसी प्रकार की असुविधा नही होने पायी थी। अस्पताल के सभी लोग जानते थे, कि आप विशेष व्यक्ति है, इसलिए परिचर्या ठीक से होनी चाहिए। कवि की बीमारी ने उसका साथ नही छोडा। अपने जीवन के अंतिम क्षण तक वे रोग से जूझते रहे।

प्रेरणा और प्रभाव

कवि के व्यक्तित्व और साधना पर जिन विभूतियो का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा वे इस प्रकार है : 'भैया' (श्री मैथिलीशरण गुप्त), अजमेरी जी, श्री रायकृष्णदास, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बापू और विनोवा। 'भैया' के प्रति उनकी विनीत भावना देखते ही बनती थी। राम-लक्ष्मण की यह जोड़ी साहित्य की अयोध्या का आदर्श थी। प्रारम्भ मे 'धनुर्धर' नाम से कुछ कविताएँ लिखी थी। नाम 'सियारामशरण' लक्ष्मण के व्यक्तित्व की ओर सकेत करता है। अग्रज होने के नाते मैथिलीशरण जी की छाप उनकी साहित्य साधना पर पड सकती थी, किन्तु कही भी सियारामशरण जी की मौलिकता क्षीण नही दिखाई देती। अग्रज

१७. पथ के साथी : महादेवी वर्मा, पृष्ठ ९२।
१८. सरस्वती, मई १९६३ ई०।

के प्रति श्रद्धालु और विनयावनत होना और बात है तथा साहित्य-पथ पर अपने ढंग से चलना और बात है। इसीलिए साहित्य के राजमार्ग पर चलते हुए दोनों पहचाने जा सकते हैं। चालें स्पष्ट, भिन्न और अपनी-अपनी हैं। अग्रज और अनुज का आदर्श चिरगाँव में दिखायी पड़ता था। हर व्यक्ति वहाँ से एक ऐसी अमिट छाप लेकर लौटता था जिसको समय का पानी कभी धो नहीं सकता।

कविताओं के संशोधन में सियारामशरण जी को तीन व्यक्तियों से विशेष रूप से सहायता मिलती रही—मैथिलीशरण जी, अजमेरी जी तथा श्री रायकृष्णदास जी। मैथिलीशरण जी से अधिक संशोधन तो अजमेरी जी ने किया। सियारामशरण जी 'भैया' के पास सीधे न जाकर अजमेरी जी के माध्यम से जाते थे। इसमें उनकी शालीनता और विनम्रता ही झलकती है। मैथिलीशरण जी भी अनुज को बहुत चाहते थे। 'साकेत' पूरा करने के पहले एक बार मैथिलीशरण जी बीमार हुए थे। रोग की विषम स्थिति में भी उन्हें 'सियाराम' और 'साकेत' ही याद थे।[१९]

अजमेरी जी गुप्त परिवार में इतने घुलमिल गये थे, कि परिवार की चर्चा बिना उनके अधूरी लगती है। जब सियारामशरण जी का बचपन था तब अजमेरी जी युवक थे। नौसिखिये कवि को उन्होंने छन्द-गणना बतायी। अशुद्धियों की ओर भी संकेत किया। आवश्यकता पड़ने पर डाँट भी लगायी। सियारामशरण जी लिखते हैं—"उनकी डाँट भी दूसरे के पीटने के बराबर थी।"[२०] अजमेरी जी शुद्धता और स्वच्छता के पक्षपाती थे। यदि किसी बड़े कवि ने किसी शब्द का अशुद्ध प्रयोग किया है, तो भी वह अशुद्ध है, चाहे अशुद्धि बहुत छोटी हो और कवि बहुत बड़ा हो। मजे की बात तो यह है, कि कभी-कभी संशोधन करते-करते रचना उन्ही की लगने लगती थी। मैथिलीशरण जी ऐसा करने से रोकते थे पर संशोधन-स्थल पर कलम न चलाना वे काहिली मानते थे। एक बार 'वीर बालक' नाम की सियारामशरण की रचना को आचार्य पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी मैथिलीशरण जी के नाम से 'सरस्वती' में देना चाहते थे। मैथिलीशरण जी ने अनुचित समझ कर रोक दिया था। वस्तुतः बाहर पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली कविताएँ अजमेरी जी ही अपने हाथ से लिखकर भेजते थे।

मुंशी जी कविता भी अच्छी करते थे साथ ही संगीत का भी उन्हें शौक

---

१९. प्रताप : सियारामशरण विशेषांक सन् १९५२ ई०, पृष्ठ ४८।
२०. झूठ सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८२।

था। सियारामशरण जी के कवि को मुंशी जी से बहुत कुछ संबल मिला था। उनकी इच्छा थी, कि मुंशी जी अपनी जीवनी लिखें, पर ऐसा संभव न हो सका कुछेक काव्य-पुस्तकें ही वे लिख सके। यह काम भी सियारामशरण जी के बहुत कहने पर हुआ था। अजमेरी जी गोष्ठियों के शौकीन थे। वे प्रसाद जी की गोष्ठियों में भी भाग ले चुके थे। अपने अंतिम समय में भी सियारामशरण जी से लिखने की बात पूछते रहे। कवि सियारामशरण की प्रेरणा के एक स्रोत अजमेरी जी भी थे। श्री रायकृष्णदास भी समय-समय पर अपने सत्परामर्शों द्वारा कवि को उत्साहित करते रहे।

काव्य-सृजन की दृष्टि से सियारामशरण जी रवीन्द्र, गांधी और विनोबा के अधिक समीप हैं। श्री मैथिलीशरण जी ने लिखा है कि, "शीघ्र ही वे गुरुदेव की रचनाओं के संपर्क में आ गये और उनसे प्रभावित होकर उन्होंने अपना मार्ग निर्धारित कर लिया।"[२१] रवीन्द्र की काव्य-कला से सियारामशरण जी प्रभावित थे। एक बार गुरुदेव के यहाँ से इनका बुलावा आया था। ये जा नहीं पाये थे। इसका दुःख इन्हें जीवन भर रहा। गुरुदेव की जन्मशती के अवसर पर सियारामशरण जी ने लिखा था :

उसी भूमि पर जन्मशती के प्रिय अवसर पर
उतरो हे गुरुदेव पुनः अवलोको आकर,
शती पूर्व का यह वसंत है वही तुम्हारा
वहे कर्म की वही तुम्हारी अविरत धारा।[२२]

अपनी वर्धा यात्रा में सियारामशरण जी गांधी जी के सम्पर्क में विशेष रूप में आये। उनकी समन्वय-भावना, सत्य और अहिंसा, करुणा, वेदना-निग्रह, सहिष्णुता, स्वाभिमान आदि विशेषताएँ सियारामशरण जी में भी पायी जाती है। कहीं-कहीं तो स्पष्टतः गांधी जी का दर्शन उनकी कविताओं में झाँकता दिखायी पड़ता है। एक बार गांधी जी और 'वा' चिरगाँव भी पधारे थे। श्री महादेव देसाई के आमन्त्रण पर भाई चारुशीलाशरण के साथ सियारामशरण जी वर्धा गये थे। उन्हीं दिनों 'रज कण' कविता लिखी थी। उन दिनों बापू का मौन व्रत था। इसीलिए तो लिखा भी था :—

"अटल मौन साधन में है तू हे हिमगिरि हे अडिग अडोल,
मैं निश्चय करके आया था सुन लूँगा तेरे दो बोल।"[२३]

---

२१. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ८।
२२. आजकल, मई १९६१ ई०: रवीन्द्रनाथ ठाकुर विशेषांक।
२३. आजकल, दिसम्बर १९६१ ई०।

'बापू' काव्य की रचना वर्धा से लौटने पर की गयी थी। वर्धा की यात्रा सन् १९३४ ई० में हुई थी। बापू के निकट की एक रोचक घटना है। सियारामशरण जी ने लिखा है, कि 'उन्ही दिनों रामनवमी के अवसर पर मेरी वैश्य वृत्ति जागी।' सियारामशरण जी बापू का हस्ताक्षर चाहते थे। श्री महादेव देसाई ने बताया, कि 'इस दिन बापू पाँच रुपये में अपना हस्ताक्षर देते है।' यह जानकर सियारामशरण जी ने कहा था :—

'बापू आप अपने भाषणों में परिहास में कहा करते है—कि मैं बनियाँ हूँ। और बात यह है कि सचमुच का बनियाँ मैं भी हूँ। मैं कुछ दिये बिना ही आपका आशीर्वाद चाहता हूँ।"[२४] उन दिनो गांधी जी हिन्दुस्तानी के पक्ष में थे और हिन्दी की हर बात को हिन्दुस्तानी कहते थे। वर्धा से लौटते समय बापू को सियारामशरण जी ने प्रणाम किया और पास ही बैठी बालिका 'नन्दिनी' से कहा, "बेटी! अब बापू तेरा नाम 'खुशहाली' रखने जा रहे हैं।" यह बात सुन कर बापू हँस पड़े थे।

सन् १९४७ ई० के जाड़ों में सियारामशरण जी काशी गये थे। एक दिन श्री आनन्दकृष्ण के साथ चाय पी रहे थे। सहसा समाचार मिला कि गांधी जी स्वर्ग सिधार गये, नहीं, किसी ने उनकी हत्या कर दी। सियारामशरण जी यह शोक-समाचार पाकर विह्वल हो उठे। राय श्री आनन्दकृष्ण लिखते है— "सियारामशरण जी की आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। और वे सहसा तखत पर लेट गये। उनके पेट में भयंकर पीडा होने लगी जिससे वे मछली की भाँति तड़पने लगे। जब बहुत प्रयत्न से उन्होने अपने आपको सम्हाला तब प्राय: आठ बज चुके थे।"[२५]

ध्यान रहे कि यह समाचार ६ बजे मिला था। अपनी अस्वस्थ अवस्था मे भी उन्होंने इलाहाबाद जाकर गांधी की 'भस्मी' की अंतिम यात्रा शोकाकुल नयनो से देखी थी। सियारामशरण जी अपनी धुन के पक्के थे। पत्र-व्यवहार द्वारा प्रयत्नशील रहे, कि वह स्थान जहाँ गांधी जी का स्वर्गारोहण हुआ था सार्वजनिक बना दिया जाय किन्तु कोई फल नही निकला। घनश्यामदास बिड़ला ने अपने पत्रों को प्रकाशित करने की अनुमति तक नही दी। श्री मैथिलीशरण जी ने लिखा है, कि अपनी 'अंजलि और अर्घ्य' नाम की रचना मे बापू की निधन भूमि के विषय में भी मैंने दो पंक्तियाँ लिखी थी। मैं समझता था इससे सियाराम को

२४. 'आजकल', दिसम्बर, १९६१ ई०।
२५. प्रताप, सन १९५२ ई० : सियारामशरण अंक।

सतोष होगा, परन्तु उन्होंने उस पद्य को न रखने के लिए कहा ।"[२६]

बगाल मे गाधी जी के प्रति किए गए दुर्व्यवहार का प्रायश्चित्त करने के लिए सियारामशरण जी ने सुभापचन्द्र बोस से कहा था। एक बार नेताजी सुभाप-चन्द्र बोस उत्तरप्रदेश का भ्रमण करते हुए चिरगाँव गये थे। कवि ने स्वागत-भापण मे यह बात कही थी। उनकी इस जोरदार माँग की चर्चा पर्याप्त समय तक चलती रही। ये सारी घटनाएँ सकेत करती है, कि सियारामशरण जी गाधी जी के सिद्धान्तो को मानते थे। राप्ट्रपिता के व्यक्तित्व मे कवि और उसकी कविता दोनो प्रभावित हैं।

गाधी जी के पश्चात् यदि किसी ने सियारामशरण जी को प्रभावित किया है तो वह विनोवा ने। विनोवा जी के साथ भी सियारामशरण जी ने पर्याप्त समय विताया। विनोवा जी स्वय चिरगाँव गये थे। जिस समय तेलगाना मे सामान्य जन-जीवन कठिनाई मे था, उस समय विनोवा जी शान्तिसेना के सिपाही के रूप मे वही घूम रहे थे। सियारामशरण जी ने गीता का समश्लोकी अनुवाद उनके पास भूमिका लिखने के लिए भेजा था। 'गीता-सवाद' के प्रथम सस्करण के लिए कुछ सुझाव भी विनोवा जी ने दिये थे जिसे कवि ने शिरसा स्वीकार किया था। भूमिका मे विनोवा जी ने लिखा था—"सियारामशरण जी जैसे भक्त-जन किसी तरह का दावा किए विना केवल चित्त-शुद्धि के हेतु ऐसे प्रयत्न किया करते हे, और उस प्रयत्न से उसी तरह का उपयोग अगर दूसरे चंद भाइयो को हुआ तो अपनी अपेक्षा से बहुत अधिक हो गया, ऐसा मानते है।"[२७]

सियारामशरण जी द्वारा किया गया 'स्थित प्रज्ञ' नामक अनुवाद विनोवा जी के रामधुन प्रोग्राम मे स्थान पा गया हे। एक बार विनोवा जी के इच्छा प्रकट करने पर सियारामशरण जी 'ईशावास्य' का पद्यानुवाद लेकर मथुरा मे उनकी सेवा मे उपस्थित हुए थे। प्रार्थना मे इस अनुवाद का अश भी मिलाया गया। सियारामशरण जी विनोवा जी के साथ पर्याप्त समय तक रहे, और इन्होंने उनके साथ पर्यटन किया। अव तो अपनी रचनाओ के माध्यम से सायं-प्रातः संत को कवि-मत याद आता होगा।

भूदान-यज्ञ के प्रति भी सियारामशरण जी की निष्ठा थी। कुछ कविताएँ भी कदाचित् इस विपय पर लिखी गयी हे। हो सकता है ये रचनाएँ फुटकल ही पत्रिकाओ मे छपी हो ; क्योकि वे कवि के कविता-सग्रहो मे नही है। विनोवा जी के दर्शन का पर्याप्त प्रभाव सियारामशरण पर पडा है। उनकी रचनाएँ

---

२६. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १३।

२७—गीता-सम्वाद : अनुवादक—सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १३।

बताती है, कि गांधी और विनोवा की 'फिलासफी' को मनसा, वाचा, कर्मणा कवि ने स्वीकार किया था।

राजनीति के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता की लड़ाई मे जूझने वाले यशस्वी जन-सेवी श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के शहीद होने पर कवि का भाव-प्रवण हृदय विचलित हो उठा था। इस प्रकार के कांड की वे कभी आशा न करते थे। कवि के जिस मानस ने पत्थर बनकर सब कुछ सहा उसने शान्त भाव से स्वीकार किया—'यही दुनिया है, यहाँ यही होता है।' 'आत्मोत्सर्ग' कृति विद्यार्थी जी के बलिदान से ही सबंधित है। वे सियारामशरण को कोई कथा-वस्तु देकर एक काव्य लिखवाना चाहते थे, पर संयोग-वश ऐसा न हो सका। सन् १९४२ के अगस्त-आन्दोलन से कुछ पहले 'नेशनल हेरल्ड' (लखनऊ का अंग्रेजी दैनिक) से १२००० रुपये की जमानत माँगी गयी थी। अपनी एक कविता के साथ सियारामशरण जी ने एक चेक भेज पर अपनी राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया था।[२८]

अध्ययन और चिन्तन

सियारामशरण जी को कुल मिला कर अपर प्रायमरी तक शिक्षा मिली थी, यह बात हम पीछे कह आए है। वे परिश्रमपूर्वक स्वतः पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि करते रहते थे। देहात मे कोई अध्यापक भी तो उपलब्ध नही हो सकता था। श्री चारुशीलाशरण जी लिखते है—"कोश ही उनका शिक्षक समझिए।"[२९] कवि ने स्वयं अपने बारे मे कहा है—

"जब मैं पढता था उस समय गाँव में मिडिल स्कूल खुला नही था, इस-लिए यदि मुझे उसका प्रमाण-पत्र मिल नही सका है, तो इसके लिए मुझे दोष नहीं दिया जा सकता। जितना ज्ञान मुझे मिल सका उसी को अपना आधार मान कर एक दिन मैंने अपने हाथ मे लेखनी ली थी।"[३०] उनका सस्कृत, बँगला, गुजराती तथा अंग्रेजी का अध्ययन तो इतना पर्याप्त था, कि वे इन भाषाओं की रचनाओं का आनन्द आसानी से ले सकते थे। कवि ने उर्दू सीखने का प्रयास भी गांधी जी के कहने पर किया; किन्तु किन्ही कारणों से यह संभव न हो सका। श्री मैथिलीशरण जी इस सम्बन्ध में लिखते है—"वस्तुतः उर्दू की चुलबुलाहट उनके स्वभाव से मेल नही खाती। जो लोग अच्छी हिन्दी लिखने

२८. नवजीवन : ३० सितम्बर १९६३ ई०।

२९. मेरे लिये १०-१-६४ को लिखे गये पत्र में।

३०. त्रिपथगा, पृष्ठ ६४ : श्रद्धांजलि अंक ११, १९६३ ई०।

के लिए उर्दू का जानना अनिवार्य बताते हैं, उनकी दृष्टि में वे दयनीय हैं।"[३१]
वे हिन्दी के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। यदि एक ओर सियाराम-
शरण जी ने रवीन्द्र और कालिदास का अध्ययन किया है तो दूसरी ओर पाश्चा-
त्य विचारक फ्रायड का अध्ययन भी उन्होंने किया है। ईसा के सम्बन्ध में भी
जानकारी उन्होंने प्राप्त की थी। ईसा के दर्शन से प्रभावित होकर भी कवि ने
'अमृत-पुत्र' की रचना की है। उनका अध्ययन और चिन्तन लोक-कल्याण की
पृष्ठ-भूमि पर हुआ है। हर नवीन विचार का स्वागत उन्होंने अवश्य किया;
परन्तु वे जगत् का मंगल कभी नहीं भूले। उनके मौलिक चिन्तन का परिणाम
यह निकला कि जो साहित्य उन्होंने रचा उसके प्रायः प्रत्येक चरण मौलिक हैं।

उपलब्धि और प्रसिद्धि

सियारामशरण जी की प्रारम्भिक कविताओं का प्रकाशन 'प्रभा', 'माधुरी', 'सरस्वती', 'अवन्तिका', 'प्रताप' आदि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। स्वतन्त्र चेता और स्वाभिमानी होने के कारण अपनी रचनाओं के प्रकाशन के लिये वे किसीके मुखापेक्षी नहीं बने, एक बार किसी सम्पादक ने 'धन्यवाद' सहित सियारामशरण जी के लेख को लौटा दिया, और अयोग्यता की कोई टिप्पणी भी उसमें नहीं लगायी। 'धन्यवाद' के विषय में वे लिखते हैं— "आधुनिक सभ्यता की यह बहुत बड़ी देन है। अच्छे में और बुरे में, खोटे में और खरे में, कहीं भी यह बेखटके चलाया जा सकता है।"[३२] स्वान्तः सुखाय रचना करने के कारण कवि ने उपलब्धियों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उनकी हर क्षेत्र की सादगी का भी इसमें हाथ है। सियारामशरण जी अपनी रचना को चाहते हैं और चाहे कोई न चाहे। वह उनकी आत्म विज्ञप्ति है। कवि को किसी समय 'वीणा' में प्रकाशित 'जातीयता' कविता पर 'खन्ना पुरस्कार' मिला था।

अपने सिद्धान्तों के प्रति सियारामशरण जी पक्के थे। उनकी अनेक जीवन-घटनाएँ ऐसी हैं जिनमें वे संघर्ष करते हुए दिखायी देते हैं। कोई उनकी रचना नहीं छापता है, न छापे, कोई उनकी कविता नहीं पसन्द करता, न करे। उनका काम तो साहित्य-सृजन है। छापना या पसन्द करना तो सम्पादक और पाठक के मन की बात है। 'कवि श्री' के संयोजन में एक बार उन्होंने बच्चनजी से उनकी कविता के चयन का अधिकार माँगा था। वे मधुस्नात पंक्तियाँ नहीं रखना चाहते थे। बच्चनजी ऐसा न कर सके; क्योंकि बिना मधुशाला के

---

३१. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ९।
३२. झूठ सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १६९।

कवि बच्चन का वास्तविक रूप सामने नहीं आता। सियारामशरण जी 'कवि श्री' में बच्चनजी का नाम न दे पाये। बच्चनजी लिखते है, कि "अब मुझे पछतावा है कि अपनी कविताओं के सम्बन्ध में उनकी रुचि जानने का अवसर मैंने खो दिया।"[33]

कवि-सम्मेलनों में सियारामशरण जी कम जाते थे। श्वास रोग के कारण उन्हें कविता पढ़ने में कष्ट होता था। एक बार कानपुर में प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का एक समारोह आयोजित किया गया था। उसमें आचार्य नरेन्द्रदेव, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि गये थे। श्री मैथिलीशरण गुप्त के साथ सियारामशरण जी ने भी समारोह में भाग लिया था। 'सरस्वती' परिवार की ओर से 'सरस्वती' की हीरक जयन्ती के अवसर पर लेखकों और कवियों का सम्मान किया गया था। समारोह की अध्यक्षता मैथिलीशरण जी कर रहे थे। सियारामशरण जी अग्रज के हाथों से उपहार लेकर उनके चरणों में लोट-पोट हो गये। यह अवसर कितना सुखद रहा होगा। सारी जन-मण्डली भ्रातृ-प्रेम के इस आदर्श से चकित हो उठी थी। मार्च सन् १६२० में कवि की 'विश्वास' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई थी। इसमें कवि 'उसकी' सहायता पाकर विपद्-सिन्धु से तरना चाहता है। उसी वर्ष के सितम्बर अंक में 'तिलक-वियोग' कविता छपी थी। एक समय इस कविता की प्रसिद्धि भी कम न थी। 'प्रभा' के अप्रैल १६२१ वाले अंक मे 'कृष्णा' नाम का गीतिनाट्य छपा था। यह गीतिनाट्य मई-जून तक बराबर निकलता रहा। 'प्रभा' मई १६२२ में 'लेखनी' कविता प्रकाशित हुई जो उनके प्रसिद्ध संग्रह 'दूर्वादल' में संकलित है। वहाँ कवि हृदय की कालिमा को दूर करने के लिए नवीन संयोजन कर रहा है। इसी पत्रिका में सन् १६२३ के फरवरी और नवम्बर मास में 'बिजली की एक चमक' तथा 'शरद् पूर्णिमा' रचनाएँ क्रमशः छपी थी। इन रचनाओं से प्रतीत होता है, कि कवि वह नवीन मार्ग खोज रहा है जो अपना हो।

नवम्बर सन् १६२४ को 'प्रभा' में प्रकाशित होने वाली कविता 'बाढ़' का ढर्रा अत्यन्त मौलिक और नवीन है। यह कविता उसी वर्ष यमुनाजी में आयी हुई भीषण बाढ़ पर लिखी गयी थी। इसमें 'विषमाक्षरी' छंद का प्रयोग है। छंदों के क्षेत्र में यह प्रयोग नवीन है। उसी वर्ष दिसम्बर मास में 'प्रभा' में जो कविता प्रकाशित हुई थी उसका शीर्षक था 'वीणा'। इस रचना में

---

३३. त्रिपथगा : श्रद्धांजलि अंक, अगस्त १६६३ ई०।

छायावादी तकनीक के लक्षण स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। कवि की कल्पना किसी अचिन्त्य दिशा मे जाती हुई जान पड़ती है, जिनका ओर-छोर नहीं है। कवि को आश्चर्य है कि वीणा मे मनभाया स्वर आया कहाँ से।[३४] अप्रैल सन् १६२४ की 'माधुरी' मे उनकी रचना 'तुलसीदास' प्रकाशित हुई थी जिसमें महाकवि के प्रति नये कवि की आस्था स्पष्ट झलकती है।

सन् १६३५ के अप्रैल मास की 'सुधा' में गुप्त जी ने एक लेख लिखा था। शीर्षक था—'कविता का नामकरण'। इस लेख में गद्य-पद्य का अच्छा निरूपण किया गया है। सन् १६२० की 'शारदा' (जबलपुर से प्रकाशित) में भी सियारामशरण जी की रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं[३५] जिनमें 'गृह-प्रदीप' मुख्य है जो, अप्रैल मास में छपी थी। ज्ञातव्य है कि 'छायावाद' पर एक महत्वपूर्ण लेखमाला 'शारदा' पत्रिका के कई अंकों में श्री मुकुटधर पाण्डेय ने चलायी थी। इन लेखों में छायावाद के पक्ष में बातें कही गयी थीं। उसी समय सियारामशरण जी की भी कुछ रचनाएँ छायावाद के ढंग की तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में छपी थीं और आलोचना-प्रत्यालोचना भी हुई थी। इस सम्बन्ध में स्वयं सियारामशरण जी ने 'विशाल भारत' का नाम मुझसे लिया था। उनकी ख्यातनाम रचना 'गुरुदेव' श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जन्मशती के अवसर पर मई सन् १६६१ में 'आजकल' में आयी थी। उस रचना में गुरुदेव के प्रति सियारामशरण जी की श्रद्धा मूर्तिमान हो उठी है। सन् १६६१ के ही दिसम्बर मास मे 'बापू से लेन-देन' नामक एक संस्मरण निकला था। उस संस्मरण से यह स्पष्ट है कि सियारामशरण जी गांधी जी के सन्निकट थे। उनके अन्तर्बाह्य दोनों बापूमय थे।

इसके पहले सियारामशरण जी की प्रसिद्ध पुस्तक 'अमृत-पुत्र' का अंश मात्र 'सामरी' नाम से 'आजकल' में आया था। यह बात अक्टूबर सन् १६५६ की है। दिसम्बर सन् १६५७ में अपने उपन्यास 'नारी'[३६] पर एक लेख सियारामशरण जी ने लिखा था जो इसी तिथि में 'आजकल' में प्रकाशित हुआ था। लेखक ने 'नारी' के कथा-सूत्र से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बातें अपने लेख में बतायी है। जनवरी सन् १६५४ में 'अवन्तिका' में 'छायावाद' पर एक 'परिसंवाद' आया था जिसमें सियारामशरण जी ने रवीन्द्रनाथ टैगोर को छायावाद का प्रथम प्रवर्तक माना है।

---

३४. हे वीणे बता कहाँ पाया,
इस दारु खंड में मन भाया। —प्रभा, दिसम्बर १६२४ ई०।

३५. शारदा—१६२० ई०, अप्रैल-जुलाई, अगस्त तथा नवम्बर।

३६. यह कृति नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है।

पहले हम कह चुके हैं, कि सियारामशरण जी का श्वासरोग उनके साहित्य-सृजन में बाधक था। इतने पर भी वे लिखते जाते थे। आश्वस्त रहकर ही वे ऐसा कर पाये। चीन के दुर्व्यवहार से खीजकर उन्होंने एक कविता लिखी थी। 'आजकल' १९६३ के मार्च वाले अंक में 'ऊँचा है भारत का भाल' नाम से उसका प्रकाशन हुआ था। जीवन के अन्तिम दिनों में 'जय गोपाल' नाम की रचना 'गांधी-मार्ग' के लिए भेजी थी, जो जुलाई १९६३ में प्रकाशित हुई थी। 'गोपिका' कृति का आभास 'धर्मयुग' में प्रकाशित होने के लिए भेजा गया था। संयोगवश कवि अपनी प्रकाशित रचना न देख सका। कवि के महाप्रयाण के बाद रविवार, अप्रैल १९६३ के 'धर्मयुग' में 'गोपिका' का आभास बड़ी सजधज से प्रकाशित हुआ था। अपने देश की रीति यही रही है, कि व्यक्ति के चले जाने के बाद उसकी पूजा होती है और कभी-कभी हम सब लोग इसमें भी चूक जाते है।

कुल मिलाकर सियारामशरण जी ने पन्द्रह काव्य-कृतियाँ हिन्दी को दीं। उन्होंने तीन उपन्यास, एक कहानी-संग्रह, एक नाटक, एक गीतिनाट्य, एक निबन्ध-संग्रह तथा तीन अनुवाद की पुस्तकों की रचना की। इस प्रकार कुल पचीस कृतियों का सृजन उनके द्वारा हुआ। छिटपुट पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली कविताएँ उनके संग्रहों में आ गयी है, परन्तु अन्तिम दिनों की रचनाएँ अभी भी पत्र-पत्रिकाओं में हैं। पुस्तकों में उनका संकलन नही हो सका है।

जीवन-दर्शन

गुप्त जी गाँधी-दर्शन से प्रभावित थे; किन्तु कायरता के घोर विरोधी थे। वे कहते हैं—

'कायर बनकर कहीं पीठ पर घाव कदापि नहीं लेंगे।'[३७]

विनम्रता का ऐसा रूप अन्यत्र दुर्लभ है, जैसा सियारामशरण जी के कवि में पाया जाता है। डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त को वे लिखते हैं—"यहाँ 'मै' के स्थान पर मैंने 'हम' लिख दिया है। बड़े बन बैठने की यह बात आप सहज ही पकड़ लेंगे। और इसके लिए मुझे क्षमा भी करें।"[३८] एक यही पत्र नहीं है, डॉ० हरिवंशराय बच्चन, श्री कृष्णानन्द गुप्त, डॉ० प्रभाकर माचवे, पं० कृष्णशंकर

---

३७. आजकल, मार्च १९६३ ई० : 'ऊँचा है भारत का भाल'।

३८. रसवन्ती, जुलाई १९६३ ई०।
ये पत्र साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', 'रसवन्ती', 'त्रिपथगा' आदि पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं।

शुक्ल,[३६] श्री विष्णु प्रभाकर प्रभृति विद्वानों और लेखकों को लिखे गये पत्रों से उनकी विनीत भावना का रूप दिखायी पड़ता है। जीवन मे थकना उन्होंने कभी नही जाना। नियम-सयम तो उनके जीवनाधार थे। संतोष कवि के व्यक्तित्व का शृंगार था और सादगी विभूति। करुणा, दया, क्षमा, ममता आदि भावो से जीवन की हर दृश्यावली पूर्ण है तथा भ्रातृ-प्रेम आदर्श है।

विसर्जन

सियारामशरण जी का अधिकाश जीवन रोग-ग्रसित रहा। सन् १९६३ के मार्च मास की बात है, वे दिल्ली गये थे। अस्वस्थ तो थे ही दशा कुछ गम्भीर हो गयी। नयी दिल्ली (करोल बाग) के गगाराम अस्पताल मे उनकी चिकित्सा प्रारम्भ हुई। कवि के अन्तिम दिन समीप आ गए थे। गांधी का अनन्य साधक अब उनके पास जाना चाहता था। अस्पताल मे २७ मार्च को उन्होने डॉ० नगेन्द्र को याद किया। 'श्रीराम' और 'दद्दा' कठिनता से कह पाते थे। दशा अत्यन्त शोचनीय हो चली थी। डॉ० सावित्री सिन्हा लिखती हैं—"डाक्टर अन्तिम क्षण तक आशावान थे।"[४०] जिस मृत्यु ने हमसे सूर और तुलसी को छीना, जिस मृत्यु ने भारतेन्दु और प्रसाद आदि को छीन कर हिन्दी की गोद सूनी की उससे कैसे रहा जाता। २९ मार्च सन् १९६३ को प्रातः सियारामशरण जी ने इस संसार से विदा ली। यह तिथि संवत् २०२० के चैत्र शुक्ल की चतुर्थी थी। डॉ० नगेन्द्र ने अपनी श्रद्धांजलि मे लिखा था—"कवि सियारामशरण गुप्त की मृत्यु का आघात अनेक दृष्टियों से असह्य है। हिन्दी की एक अपूर्व प्रतिभा विलीन हो गयी। गाधी-दर्शन का निश्छल व्याख्याता आज के युद्ध-भीत ससार को छोड गया और हम स्वजनो के बापू हमसे विलग हो गए।"[४१] अनेक विद्वानो ने अपनी श्रद्धाजलियाँ उस साहित्य-स्रष्टा के प्रति अर्पित की। पत्र-पत्रिकाओ ने सवेदनाएँ छापी। अपने जीवन के अन्तिम समय मे बीस हजार रुपये की लिखा-पढ़ी हिन्दी के एक पुरस्कार के लिए वे कर गये थे, जो श्री मैथिलीशरण जी के नाम पर होगा। बीस-बीस हजार की लिखा-पढी अपने तीन भतीजो के नाम करा गये थे। ये बाते उनके दिवंगत हो जाने के बाद मुझे श्री मैथिलीशरण जी से ज्ञात हुई थी। इससे उनका पारिवारिक स्नेह और 'दद्दा' के प्रति पूज्य भावना ही व्यक्त होती

---

३९. श्री शुक्ल जी को लिखा गया पत्र प्रस्तुत प्रबन्ध के परिशिष्ट में उद्धृत है।
४०. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान,' १४ अप्रैल १९६३ ई०।
४१. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान,' २१ अप्रैल १९६३ ई०।

है। सियारामशरण जी अपने ढंग के अकेले कवि थे। उनकी अन्तिम रचना का एक अंश कितना मार्मिक है—

"शरण हूँ मैं दे रहे उद्घोष तुम
तो वही उद्घोष फिर से सुन सकूँ
'छोड़कर सब धर्म आ मेरी शरण,
सर्व पाप विमुक्त कर दूँगा तुझे।'
कह सकूँ सुन कर प्रशंसित—हे हरे;
'जो कहा तुमने करूँगा मैं वही।"[४२]

श्री मद्भगवतगीता की आस्था की भूमिका में कही गयी ये पंक्तियाँ कवि की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का परिचय देती हैं। प्रकारान्तर से कवि उसी प्रभु की शरण जाने की कामना कर रहा है जो उसे सभी पापों से मुक्त कर देगा। विश्वास का यह आधार कितना सबल और दृढ़ है। इससे कवि की मनोभूमि का पता चलता है।

४२. गांधी-मार्ग, जुलाई १९६३ ई० : 'जय गोपाल' नामक अन्तिम रचना से।

कृतियों का परिचय

(कालक्रमानुसार)

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अपने अन्तराल में कई विशेषताएँ लिए है। जागरण काल से लेकर द्विवेदी-काल तक साहित्य की धारा में अनेक मोड़ आये हैं। इन विभिन्न साहित्यिक गतिविधियों के पीछे कवियों की काव्य-शैली की अनेक दिशाएँ काम करती रही हैं। युग-परिवर्तन के नये प्रकाश में मौलिक उद्भावनाओं के साथ-साथ पश्चिमी साहित्य का प्रभाव भी जाने-अनजाने हिन्दी साहित्य पर पड़ता रहा है। श्री सियारामशरण जी की प्रतिभा अपनी मौलिकता के आधार पर विभिन्न शैलियों का निर्माण करती हुई आगे बढ़ती रही है। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक तथा निबन्धों के सृजन के साथ-साथ कई संस्कृत एवं पालि भाषा की पुस्तकों के अनुवाद भी हिन्दी में किये हैं।

अब इस बात पर विचार करना है, कि इन कृतियों की रचना की विषय-वस्तु क्या है? और इन रचनाओं में कवि का क्या उद्देश्य रहा है? विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं तथा समसामयिक वातावरण के प्रभाव के कारण सियारामशरण जी साहित्य की यात्रा का पथ बदलते रहे हैं। कभी तो उन्होंने कविता करने के लिए इतिहास के पन्ने पलटे हैं और कभी सामने की दृश्यावली से अनुभूति प्राप्त करके काव्य-रचना की है। यहाँ उनकी प्रत्येक रचना का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

मौर्य-विजय

कवि की अतीत के प्रति आस्था और प्रेम प्रदर्शित करने वाली प्रथम कृति है। इसका प्रथम प्रकाशन संवत् १९७१ वि० में हुआ था। पुस्तक तीन सर्गों में विभक्त है। सिल्यूकस के भारत पर आक्रमण का विषय पाठक को भूतकाल के उस संसार में पहुँचा देता है, जहाँ की प्रत्येक गाथा सुन कर आश्चर्य और कुतूहल से हम आह्लादित होते हैं। रचना की भूमिका श्री सियारामशरण गुप्त जी के अग्रज कविवर मैथिलीशरण जी द्वारा लिखी गयी है। अतीत के गौरव की ओर भूमिका में भी संकेत किया गया है :—

"यह कहने की आवश्यकता ही नहीं, कि प्राचीन भारत का इतिवृत्त बहुत कुछ अप्राप्त और लुप्त किंवा नष्ट-भ्रष्ट होने पर भी अवशिष्ट जो कुछ मिलता है वह हमारे लिए विशेष गौरव की वस्तु है। उसकी बातों और घटनाओं के आधार पर अनेक प्रकार के अपार उन्नत साहित्य की सृष्टि की जा सकती है।

प्रस्तुत पद्य पुस्तक भी एक ऐसी ही महत्वमयी प्राचीन ऐतिहासिक घटना के ऊपर लिखी गयी है और इसके लिखने का कारण लेखक का अपने देश के प्रति प्रेम और आदर-भाव प्रदर्शित करना है।"[1]

सिकन्दर, सिल्यूकस तथा चन्द्रगुप्त का परिचय देने के लिए पुस्तक के मुख-पृष्ठ पर भारत-भारती से उद्धरण प्रस्तुत हैं :—

"जिसके समक्ष न एक भी विजयी सिकंदर की चली,
वह चन्द्रगुप्त महीप था कैसा अपूर्व महाबली।
जिससे कि सिल्यूकस समर में हार तो था ले गया,
कांधार आदिक देश देकर निज सुता था दे गया।"[2]

कवि 'हम कौन थे' ? "क्या हो गये हे" ? के प्रति जागरूक है। भूत और वर्तमान के आधार पर भविष्य की सुदृढ़ नींव का निर्माण किया जा सकता है। अतीत के गान हमारी शिराओं और धमनियों मे नवीन रक्त का संचार करते हैं, ऐसा कवि का विश्वास है।

रचना के आरम्भ में 'मंगलाचरण' रूप में छः पंक्तियाँ रखी गयी है :—

भक्तजनों के हृदय-कमल विकसित करने को
अनुपम धर्मालोक भुवन भर में भरने को

---

१. मौर्य-विजय—सियारामशरण गुप्त। (भूमिका)

२. भारत-भारती—श्री मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ ५०

जिन प्रभु ने अवतार स्वयं ही धारण करके
मारे निशिचर-वृन्द भार भूतल का हरके,
वे रावणारि रघुवंश रवि, विश्वेश्वर कल्याणमय,
दें इस जीवन संग्राम में हमें अभय करके विजय।[3]

मौर्य-विजय काव्य में छप्पय छन्दों का प्रयोग किया गया है। इनमें द्विवेदी-युग की परम्परा का सम्यक् निर्वाह हुआ है। द्वितीय सर्ग का प्रारम्भ प्रकृति चित्रण से होता है। शयन के पश्चात् सम्राट चन्द्रगुप्त उठते हैं। युद्ध की तैयारी होने लगती है। रणवाद्य सुन कर सैनिकगण गाने लगते हैं :—

हम सैनिक हैं हमें जगत में किसका डर है ?
रणक्षेत्र ही सदा हमारा प्यारा घर है।[4]

कथावस्तु को आगे बढ़ाने में युद्ध का कार्यक्रम तथा इतिवृत्तात्मकता सहायक हुई है। छप्पय छन्दों में ओज का रूप कुछ दबा हुआ परिलक्षित होता है। एथेना के प्रसंग में सौन्दर्य वर्णन की भी कुछ पंक्तियाँ मिल जाती हैं। चन्द्रगुप्त के शौर्य-वर्णन में कवि ने अपनी तल्लीनता का परिचय दिया है। भारत की प्राचीन संस्कृति को कवि आदि संस्कृति मानता है। उसके विचार से :—

साक्षी है इतिहास हमीं पहले जागे हैं
जागृत सब हो रहे हमारे ही आगे हैं।[5]

इस प्रसंग में प्रसाद जी के विचार भी द्रष्टव्य हैं :—

जगे हम लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक,
व्योम तमपुंज हुआ तब नाश, सकल संसृति हो उठी अशोक।[6]

श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने लिखा है :—

संसार में जो कुछ जहाँ फैला विकास प्रकाश है
इस जाति की ही ज्योति का उसमें प्रधानाभास है।[7]

श्री आर० एन० सूर्यनारायण जी ने भारत की धार्मिक महत्ता पर

---

३. मौर्य-विजय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५
४. मौर्य-विजय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १४
५. मौर्य-विजय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३१
६. स्कन्दगुप्त : जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ १५०
७. भारत-भारती : श्री मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ २५

प्रकाश डालते हुए लिखा है, कि भारतीय धर्म-पद्धति से सारा संसार प्रभावित था। भारत सभी देशों का धर्म-गुरु था :—

"That there are many temples and shrines to Shri Ram Krishna constructed (not with political or ruling bias but love and respect) in Sanfrancisco and other parts of America and Europe is a clear indication to prove that Brahman Dharm, the Universal Religion has been earnestly embraced already all the world over."[८]

सम्राट चन्द्रगुप्त और एथेना का परिणयोत्सव हमारा ध्यान दो संस्कृतियों के मिलाप की ओर आकर्षित करता है। सचमुच मौर्य्य-विजय में यदि एक ओर प्राचीन कथानक है तो दूसरी ओर शौर्य का वर्णन है। एक ओर स्वदेशानुराग है, तो दूसरी ओर दो संस्कृतियों का मिलाप है। शृंगार और वीर का युगपत् प्रवाह अच्छा बन पड़ा है। हाँ जो कुछ शैथिल्य दिखाई पड़ता है उसके लिए छप्पय छंद और इतिवृत्तात्मकता दोनों समान रूप से उत्तरदायी है।

अनाथ

भारतीय ग्राम्य जीवन का जीता-जागता चित्रण करने में सियारामशरण जी पटु हैं। श्रम की कुंडलिनी पर जागने वाले दीन-हीन भारतीय कृषकों और अन्य ग्रामीणों के दुख की राम कहानी द्रौपदी का चीर बन जाती है। 'अनाथ' कवि की एक ऐसी रचना है जिसके भाव हृदय को सीधे स्पर्श करते हैं। इस कृति में ग्राम्य जीवन के चित्रण में जिन कुरीतियों और अत्याचारों की ओर संकेत किया गया है वे इस प्रकार है :—

गरीबी और ग्रामीणों की दयनीय दशा।
ऋणग्रस्तता।
अधिकारियों का ग्रामीणों के प्रति क्रूर व्यवहार।
जमींदारों के अत्याचार।
कतिपय निजी दुर्बलताएँ।
बेगार और शोषण।

'अनाथ' की कथावस्तु में मोहन एक साधारण कृषक है। वह किसी प्रकार अपना भरण-पोषण कर लेता है। यमुना मोहन की धर्मपत्नी है। मोहन का पुत्र मुरलीधर मरणासन्न है। अपने पुत्र के सामने पिता किस प्रकार मन मारे बैठा हुआ है—

८. यूनिवर्सल रेलिजन : श्री आर० एन० सूर्यनारायण एम० ए०, पृष्ठ ११५

मोहन भी है वहीं मौन बैठा मन मारे।
भीख माँगने जाय आज वह किसके द्वारे ?
है कोई भी नहीं उसे ऋण देने वाला—
महाजनों ने छार-खार उसको कर डाला।[९]

ऐसी शोचनीय परिस्थिति में यमुना के नयन अविरल अश्रुधारा प्रवाहित करने लगते है। माता का रोना देखकर बच्चे भी रोने लगते हैं। जठरानल की ज्वाला को शान्त करने के लिए दीन-हीन मोहन अपना लोटा गिरवी रखने जाता है। दैव-योग से मार्ग में लौटते असय 'चून' मिल जाता है। उसे वह पोटली में सहेज कर यत्नपूर्वक रख लेता है। चून-प्राप्ति की प्रसन्नता मुसकान बन कर उसके ओठों पर खिल उठती है। मोहन कल्पना-लोक में विचरण करता हुआ अपनी सन्तति को प्रसन्न मुद्रा में देखने लगता है, किन्तु 'चून' (आटा) पर ध्यान जाते ही उसकी आकाशचारी मनोहर कल्पनाएँ वास्तविकता की धरती पर आ जाती हैं। आटा इतना नहीं है कि सभी की पेट-पूजा हो सके। इसी स्थल पर कवि ने कहानी को मोड़ा है। एक चौकीदार पीछे से आकर आवाज लगाता है – 'मोहन' ! इतना ही नहीं वह गाली बकते हुए 'बेगार' का निमंत्रण भी देता है। मोहन के अनुनय करने पर, कि 'मुरलीधर मर रहा है', चौकीदार लात लगाने की धमकी देता है। एक धक्का लगने से पोटली का चून धरती पर बिखर जाता है और मोहन गिरता-गिरता बचता है। ठोकरें लगाकर गालियों का प्रसाद देता हुआ चौकीदार बेगार करवाने के लिए मोहन को थाने ले जाता है। एकाध बार प्रतिशोध की भावना मोहन के हृदय को विचलित कर देती है, पर दुर्बलता उसे कुछ करने नहीं देती। कवि ने थाने की तुलना कैदखाने से करते हुए लिखा है कि वहाँ गालियाँ नही मिलती और थाने के कर्मचारियों की ठोकरें नहीं मिलतीं।

थाने में मोहन के निर्बल करों में पंखे की डोर पकड़ा दी जाती है। कान्सटेबल मोहन को धूप में बिठा कर बिना मौत मारता है।

दारोगा जी भोजन कर रहे है। उनका कुत्ता भर पेट भोजन पाकर अधिक गर्मी के कारण व्याकुल-वदन होकर हाँफ रहा है। इसी भूमिका में सिपाही पीछे से मोहन को बेंत से मारकर कहता है—

बदमाश कहीं का, जरा नहीं डरता है।
बेहया जोर से हवा नहीं करता है।[१०]

---

९. अनाथ : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६
१०. अनाथ : सियारामशरण गप्त, पृष्ठ १७

मोहन के हृदय में शोक, करुणा, भय, विस्मय, पश्चात्ताप आदि भाव एक साथ जगते है, फिर भी उसके हाथ अपने आप गति में तीव्रता भर देते है। नीचे 'उत्तप्त धरती और ऊपर उद्दंड वायु के प्रबल झकोरे। उस दिन प्रकृति भी मोहन के प्रतिकूल थी।

संध्या के आने के साथ मोहन के जाने की बारी आयी। उधर अवकाश मिला, इधर मुख से 'राम-राम' स्वतः उच्चरित हुआ। अशुभ की आशंका हृदय में सँजोए मोहन घर की ओर चल पडता है। घर पर बच्चे तड़प रहे है। मुँह से केवल 'आह' निकल पाती है। ज्वर के अत्यन्त प्रकोप के कारण मुरलीधर प्रलाप करने लगता है। माँ को बुरा-भला कहने लगता हे। माँ अपनी छाती पर वज्र रख कर दीनता की साकारता को सजल नयनों से निहारती हुई अपने भाग्य की रेखाएँ देख रही थी। इतने में काबुलीवाला अपने दाम अदा करवाने के लिए यमुना से मोहन का पता पूछता है। मदोन्मत्त काबुलीवाला यमुना का हाथ पकड़ लेता है। कवि की लेखनी आगे का वृत्त लिखने में सहम जाती है :—

> और लिखने को अगला वृत्त।
> किस तरह हों हम हाय प्रवृत्त।[11]

मोहन कारागार से मुक्त होने में प्रसन्न भी है, दुखी भी है। वह सोचता है—'कैसे बच्चों का दारुण दुख देख सकूँगा?' पता नही कौन सा अज्ञात आकर्षण उसे घर की ओर हठात् खीच लेता है? उसे इस बात का विशेष दु.ख है कि उसके स्वदेशी बन्धु ही उसे कष्ट दे रहे है। उसका जीवन नारकीय हो चला है। वह अब अपनी तुलना पशु से करने लगा है। दुर्भाग्य की प्रेरणा उसे अकस्मात् मालगुजार के महल के सामने खडा कर देती है। सिपाही पूछता है—"मोहन! आजकल लल्ला के विवाह की तैयारियाँ हो रही है। बेगार करने क्यों नही आते हो?" मोहन सिपाही के प्रस्ताव का विरोध कड़े शब्दों में करता है। सिपाही मोहन को हठपूर्वक दरबार में ले जाता है। श्रीमान माल-गुजार सहित सारे दरबारी गणिका के नृत्य से जीवन-साफल्य का सपना साकार कर रहे है। सिपाही अनुकूल अवसर न पाकर मोहन को बाहर बिठा देता है। इसी बीच एक व्यक्ति सहसा आकर मोहन से कहता है—"यमुना पता नही कहाँ गयी? मुरलीधर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर चुका है। मृत शरीर के पास छोटा बच्चा रो रहा है।"

---

११. अनाथ : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २६

दुख से जर्जर हृदय को लेकर मोहन दौड़ पड़ता है। एक ठोकर लगती है। चोट खाकर गिरते ही प्राणपखेरू उड़ जाते हैं। इसी कथानक के ढांचे में काव्य-रचना की गयी है। इस काव्य में कल्पना कम इतिवृत्तात्मकता अधिक है, जो कवि के युग की विशेषता है। चित्रमय भाषा की सादगी पाठक के मन को आकर्षित करती है। सम्पूर्ण रचना चार भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में २३ छन्द, द्वितीय में ३४, तृतीय में ३१ तथा चतुर्थ में २५ छन्द हैं। सियाराम-शरण जी की रचनाओं में इस कृति का विशिष्ट स्थान है।

आर्द्रा

यह काव्य-संग्रह सं० १९८४ में प्रकाशित हुआ था। कृति का नामकरण कदाचित् उस 'आर्द्रा' से सम्बन्धित है, जो 'खादी की चादर' नामक रचना में अभागिनी अबला के रूप मे चित्रित की गयी है। 'हूक', 'प्रयाणोन्मुखी', 'डाकू', 'नृशंस', 'एक फूल की चाह', 'अग्नि परीक्षा', 'चोर', 'डाक्टर', 'अबोध', 'वंचित', 'खादी की चादर', 'अब न करूँगी ऐसा' तथा 'बन्दी' शीर्षकों को मिला कर १३ कविताएँ हैं। ये समस्त रचनाएँ माघ कृष्ण ५, सम्वत् १९८२ से प्रबो-धिनी संवत् १९८४ तक की है। हिन्दू समाज और राष्ट्र के करुणार्द्र चित्र ही 'आर्द्रा' के आधार हैं। कवि ने भूमिका का संयोजन नही किया है। कविताओं में गार्हस्थ्य और सामाजिक जीवन की झाँकी पग-पग पर हमे मिलती है। समाज की कुप्रथाएँ जो मानव के लिए अभिशाप बन गयी है, वे जीवन की राह में स्वाभाविक गतिरोध उत्पन्न करती हैं। आडम्बर और अन्याय, रूढ़ि और कुप्र-थाएँ मनुष्य को कितना पीछे ले जाती है। 'एक फूल की चाह' में अस्पृश्य जाति के प्रति सवर्णो का अत्याचार हृदय की करुणा को विगलित कर देता है। देवी के प्रसाद की इच्छुक बच्ची राख बन जाती है पर उसका पिता मंदिर से प्रसाद-पुष्प नही ला पाता—

उसे देखने मरघट को ही,
गया दौड़ता हुआ वहाँ
मेरे परिचित बन्धु प्रथम ही
फूँक चुके थे उसे वहाँ
बुझी पड़ी थी चिता वहाँ पर
छाती धधक उठी मेरी
हाय ! फूल सी कोमल बच्ची।
हुई राख की थी ढेरी ॥[१२]

१२. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६३

'डाक्टर' शीर्षक में एक डूबती हुई युवती का वर्णन है। विषय-वस्तु में आश्चर्य और कौतूहल तब उत्पन्न होता है, जब युवती को बचाने वाला डाक्टर से उपचार करने के लिए प्रार्थना करता है और डाक्टर के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। अन्त में नौकर बताता है, कि मालकिन डूब गयीं—

"डूब मालकिन गयीं, नाव से सहसा गिरकर।
वज्रपात सा हुआ अचानक ही डाक्टर पर॥
निर्दयता से पीट उठे विक्षिप्त हृदय वे।
दौड़ पड़े फिर नदी ओर को उसी समय वे॥"[१३]

'अग्नि परीक्षा' कविता में 'सलिल परीक्षा' का संयोजन भी पाठक के मन को आकर्षित करता है। इस प्रसंग पर विचार करते हुए श्री विद्याभूषण अग्रवाल लिखते हैं—

'अग्नि परीक्षा' में हिन्दू-मुस्लिम दंगों की भूमिका पर सुभद्रा नाम की हिन्दू नारी के सतीत्व के ओजमय दर्शन होते है, जिसने सीता की भाँति सलिल परीक्षा देकर अपने प्राण त्याग दिये।'[१४] स्थायी मानवीय भावनाओं का रूप 'प्रयाणोन्मुखी' में मुखरित हुआ है। श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी के विचार से—

"पुस्तक खोली और 'प्रयाणोन्मुखी' पर दृष्टि पड़ी। पढ़ना प्रारम्भ किया। पढ़ते-पढ़ते जब उसके अन्तर पर आया तब तक 'आर्द्रा' मेरे पाषाण हृदय को आर्द्र बना कर अपना नाम सार्थक सिद्ध कर चुकी थी।"[१५] प्रयाणोन्मुखी की अन्तिम पंक्तियों में अन्तिम नमस्कार का दृश्य मार्मिक है—

किसलिए ये आज इतने वैद्यजन
पड़ गया अवसन्न जब सब तन-बदन?
अब सभी के सामने ही छोड़ लाज,
रो रहे हो किसलिए हे नाथ, आज?
चल चुकी हूँ, कोटि-कोटि प्रणाम है,
रुँध गया है कंठ पूर्ण विराम है।[१६]

कहना न होगा कि इन रचनाओं में गद्यात्मकता का समावेश अधिक है।

---

१३. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८९
१४. सियारामशरण गुप्त : स० डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ ३६
१५. प्रताप : ४ सितम्बर, सन् १९५२ (सियारामशरण गुप्त विशेषांक)
१६. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १८

शैली में प्रवाह पाया जाता है। एक-एक रचना के अन्तर्गत कोई-न-कोई कहानी अवश्य है। 'प्रयाणोन्मुखी', 'खादी की चादर', 'एक फूल की चाह' आदि रचनाएँ सुन्दर बन पड़ी हैं।

विषाद

सं० १९८६ में प्रकाशित यह एक ऐसी रचना है जिसमें कवि के हृदय की कालिन्दी उमड़ी है। सारा संसार सूना-सूना लगता है; क्योंकि उसकी वाटिका वीरान हो चुकी है। सारे आकर्षण अनचीन्हे से प्रतीत हो रहे हैं। करुण भाव-भूमि में कविता सजीव हो उठी है। सम्पूर्ण पुस्तक में १५ कविताएँ हैं। इन कविताओं के शीर्षक पृथक्-पृथक् है। प्रतीत होता है कि कवि ने विषाद का प्रणयन पत्नी की मृत्यु के पश्चात् किया है। रचना का नाम 'विषाद' भावात्मक है। इसके परिपार्श्व में एक न भूलने वाली घटना की स्मृति अंकित है।

कवि ने भूमिका रूप में कुछ भी नहीं लिखा है। प्रथम कविता 'जहाँ है अक्षय स्वर झंकार' तथा अन्तिम 'विदा' नाम से लिखी गयी है। छंदों का कोई नियमित क्रम नहीं है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

वे जाने, न जाने किस द्वार से
कौन से प्रकार से
मेरे गृहकक्ष में
दुस्तर तिमिर दुर्ग-दुर्गम विपक्ष में
प्रभामयी
एकाएक कोमल किरण एक आ गयी ॥[१७]

इन पंक्तियों में लय है छन्द विधान नहीं। 'जहाँ है अक्षय स्वर झंकार' रचना समारम्भ करने के प्रथम वन्दना के रूप में रखी गयी है जो कवि के भक्ति-भाव की ओर संकेत करती है। उदाहरण-स्वरूप कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है :—

भारती का मन्दिर सुमहान
गूँजता जहाँ गुणीजन गान
लौट आ, न जा वहाँ रे दीन
अकिंचन औ उपहार विहीन
करूँ क्या, लौट चलूँ निरुपाय
कहाँ पाऊँ अवलम्बन हाय।[१८]

---

१७. विषाद : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ११
१८. विषाद : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५

कवि की पूजा का थाल रिक्त है । वह अपने हृदय के भूचाल को नहीं सम्हाल पा रहा है । एक अन्य लेखक के अनुसार "कवि अपनी वैयक्तिक वेदना का साधारणीकरण करना चाहता है । उसके लिए वह प्राण-पण से प्रयत्नशील है । अपनी वेदना की स्वीकृति भी वह नहीं करना चाहता" ।[१९] चिर-विरह वेदना वाली कवि की यह कृति अमर है । 'एको रसः करुण एव' की भूमिका में हम यह कह सकते है कि विषाद की रचना कवि की अन्यतम उपलब्धि है । यह पाठकों को प्रभावित करती है । साथ ही सियारामशरण जी के कवि को पहचानने में सरलता होती है ।

दूर्वादल

यह पुस्तक सं० १९७२ से लेकर सं० १९८१ तक की रचनाओं का संकलन है । 'मौर्य-विजय' से चल कर 'दूर्वादल' तक आते-आते शैली का परिमार्जन और परिष्करण होता गया है । संग्रह में कुल ३५ कविताएँ है, जिनमें मंगलाचरण सम्बन्धी 'तुच्छ धूलि से बनी हुई' कविता भी सम्मिलित है । कवि की यह कृति भी प्रसिद्धि-प्राप्त मानी जाती है : —

उनकी (सियारामशरण गुप्त) कविताओं के ये संग्रह प्रसिद्ध है :— दूर्वादल, विषाद, आर्द्रा, पाथेय, मृण्मयी ।[२०] दूर्वादल का प्रकाशन संवत् १९८९ में हुआ था ।

यद्यपि सम्पूर्ण रचना में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जागरण की ध्वनि विद्यमान है, फिर भी कुछ कविताएँ ऐसी है जिनका सम्बन्ध कवि के व्यक्तिगत जीवन से है । 'विनय' शीर्षक कविता में कवि ईश्वर को छोड़ कर और किसी की सहायता नही चाहता है । सं० १९७२ के वैशाख मास की कृष्णा अष्टमी को कवि ने 'विश्वास' नाम की कविता लिखी थी, जिसमें उसे भव-सिन्धु के पार हो जाने का विश्वास है :—

पाकर उसकी सहायता
सत्वर बिना प्रयास
विपद सिंधु हम तर जावेंगे
हैं हमको विश्वास ।[२१]

कवि अपने आराध्य के सम्मुख श्रद्धानत है, इसलिये प्रत्येक भाव को उधर ही मोड़ने का प्रयास परिलक्षित होता है । फूल भी यदि अभागा है तो इसमें दयामय का ही हाथ है ।

१९. सियारामशरण गुप्त : संपादक, डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ ३८
२०. हिन्दी-साहित्य का इतिहास : आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ७२१
२१. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १०

'घट', 'वीणा', 'पथ', 'कण' शीर्षक कविताओं में नवजागरण (Renaissance) छायावाद तथा रहस्यवाद आदि काव्यधाराओं का बिम्ब दृष्टिगोचर होता है। दूर्वादल की कुछ कविताओं में श्री विद्याभूषण अग्रवाल ने सम्बोधन शैली (Ode) का अनुकरण भी माना है—

"कई कविताओं में सम्बोधन शैली का अनुकरण किया गया है। × × × कवि इस समय अपने चारों ओर होने वाली काव्य-प्रगति से पूर्णरूपेण परिचित था। उसे सहानुभूति से ग्रहण कर अपनी प्रतिभा के सहारे हिन्दी कविता को एक नयी दिशा और नये विषय प्रदान करने में संलग्न था।"[२२]

इस संग्रह की कुछ रचनाएँ अत्यन्त लघु आकार में हैं और कुछ पर्याप्त बड़ी हैं। 'सुअवसर', 'निर्विवेक', 'असमय' तथा 'अनौचित्य' आदि रचनाएँ केवल चार-चार पंक्तियों में ही सीमित हैं। 'वर्ष-प्रयाण', 'बाढ़', 'पथ' आदि रचनाएँ बड़े कलेवर में हैं। काव्य-सौष्ठव के दृष्टिकोण से ये कविताएँ हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं।

रचनाओं की छंद-प्रणाली द्विवेदी-युग की है, पर कवि ने कुछ कविताओं में – छन्द-विधान के क्षेत्र में अपनी मौलिकता का भी परिचय दिया है :—

कल-कल मंजु ध्वनि होती जहाँ
करके चमर तीर-वासी द्रुम
कोमल कुसुम
शुचि तुम पै चढ़ाते हैं—
मानो पुष्प शैया-सी बिछाते हैं—
लेने को विराम वहाँ तुम रुक जाते क्या ?
या कि किसी सेतु की सवारी सम पाते क्या ?[२३]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है, कि दूर्वादल में भक्ति की भागीरथी के साथ जागरण की यमुना भी है। रचनाएँ छन्द युक्त हुए भी मुक्त हैं। आकार-प्रकार में लघुता तथा गुरुता का मेल है। जहाँ तुलसीदास कविता के विषय हैं वहीं 'अभागा फूल' भी कवि-हृदय को द्रवीभूत करता है। जाने वाले वर्ष के लिए 'वर्ष प्रयाण' कविता का सृजन यह इंगित करता है, कि कवि को अपने गतवर्ष के प्रति अनुराग है।

आत्मोत्सर्ग

भारत की स्वतन्त्रता के लिए जिन महापुरुषों ने अपने प्राणों की बाजी

२२. सियारामशरण गुप्त : सं०, डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ३७
२३. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६५

लगायी थी उनमें अमर शहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी का नाम प्रमुख है। 'आत्मोत्सर्ग' की रचना विद्यार्थी जी के महाप्रयाण के पश्चात् हुई और संवत् १९८८ में प्रकाशित हुआ। कवि और विद्यार्थी जी के पारस्परिक सम्बन्ध की कहानी इस प्रकार है —

एक बार विद्यार्थी जी विरचित 'हमारी आत्मोत्सर्गता' नामक पुस्तक की हस्तलिपि श्री मैथिलीशरण जी के पास भेजी गयी थी। इसी प्रसग में श्री सियारामशरण गुप्त और विद्यार्थी जी का परिचय हुआ। विद्यार्थी जी ने इन्हे राजस्थान का कोई कथानक बता कर काव्य लिखने के लिए प्रेरणा प्रदान की। वे एक ऐसा ग्रन्थ चाहते थे जिसमें हिन्दुओ और मुसलमानों का ऐक्य प्रदर्शित किया जाय। पर्याप्त समय व्यतीत होने पर कवि के हृदय से कथानक उतर सा गया। उसने स्वयं लिखा है :—

"उसके बाद आँखो मे आँसू और हृदय मे विषाद लेकर जब मुझे फिर साहित्य की राजसभा में उपस्थित होने के लिए दैव या दुर्दैव ने बाध्य किया तब तक उस कथानक की बात मेरे मन से बिल्कुल उतर गयी थी। पूज्य विद्यार्थी जी के संसर्ग का सौभाग्य भी बीसियों बार प्राप्त हुआ पर उस विषय की चर्चा फिर कभी नही हुई।"[२४]

एक दिन अचानक कानपुर के साम्प्रदायिक दंगे में विद्यार्थी जी के लापता होने का समाचार मिला। इसी समाचार से अभिभूत लेखनी उस व्यथा की कथा लिखने चल पड़ी जिसको कवि-हृदय सम्हाल न पाया था। हिन्दी के 'धनी-धोरी' इस रचना को जैसा कहे पर विद्यार्थी जी के भक्त इसको अपनाएँगे, ऐसा कवि का विश्वास है। विवरण सम्बन्धी त्रुटियों की ओर कवि का विशेष ध्यान नही रहा है :

"इस कविता में विवरण सम्बन्धी त्रुटियाँ खोज निकालना कठिन न होगा। परन्तु मैंने इस बात की परवाह न की। मेरे लिखने का जो उद्देश्य है सम्भवतः उसे कविता ने अपने भीतर छिपा नही लिया है।"[२५]

कवि ने विद्यार्थी जी के प्रति अपने हृदय के उद्‌गारों को व्यक्त किया है। रचना के प्रारम्भ में बापू (गाँधीजी) द्वारा कहे गये कुछ वाक्य सकलित है, जो विद्यार्थी जी से सम्बन्धित है। विद्यार्थी जी के शहीद होने पर गाँधीजी ने लिखा था :—

"वह मरे नही, आज वह तब से कही अधिक सच्चे रूप में जीवित है। जब

---

२४. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, 'निवेदन', पृष्ठ ११

२५. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ११

तक हमने उन्हें भौतिक शरीर में जीवित देखा तब तक हमने उन्हें न पहचाना।"[२६]

इसमें केवल बापू के विचार ही नहीं वरन् श्री मैथिलीशरण गुप्त की भी एक कविता प्रारम्भ में रखी गयी है। गुप्त जी की इस कविता में स्वाभाविकता कम और बौद्धिकता की मात्रा अधिक है; पर सम्पूर्ण कविता से लगता है, कि श्री गणेशशंकर जी के निधन से कवि को हार्दिक दुःख है। 'उसकी तुक' यदि कोई है तो उसका देश है :—

निर्धनता का गर्वी था तू,
विघ्न विजेता गुणी गणेश।
जिस पर तू बलिदान हुआ है,
तेरी तुक है तेरा देश॥[२७]

आत्मोत्सर्ग इतिवृत्तात्मकता से मुक्त नहीं हो पाया है। सम्पूर्ण रचना तीन खंडों में विभाजित है। हिन्दू और मुसलमान को एक ही डाल के दो फूल मानते हुए कवि ने उस एक निर्माता की ओर संकेत किया है जिसने अखिल विश्व की रचना की है। किस प्रकार एक वीर सेनानी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए हँसते-हँसते अपने प्राण विसर्जित कर देता है? किस प्रकार देशवासी जातीयता के पंक में सन कर वास्तविकता को नहीं पहचान पाते हैं? इन बातों का चित्रण आत्मोत्सर्ग में मिलता है। कानपुर का तत्कालीन विषाक्त वातावरण तथा विद्यार्थी जी के बलिदान के दृश्य पाठकों के सम्मुख मूर्तिमान हो उठते हैं। भाषा सरल तथा सुबोध है। रचना का अन्तिम अंश वेदना से परिपूर्ण है। बलिदान की दृश्यावली सामने आते ही मन को एक ठेस लगती है। लगता है जैसे अपना कुछ खो सा गया है। कवि अपनी एक कामना के साथ रचना को समाप्त करता है :—

निखिल विश्व में परिव्याप्त हो
मति वह सर्वहिता तेरी
घर-घर ज्ञान-प्रदीप जला दे
मरणोदीप्त चिता तेरी।[२८]

पाथेय

'पाथेय' में कुल ४८ कविताएँ संग्रहीत हैं। आश्विन कृष्णा ५ संवत् १९८५ से

२६. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४
२७. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७
२८. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, अंतिम पृष्ठ।

लेकर पौष पूर्णिमा १९९० तक की रचनाओं को एकत्र कर 'पाथेय' बना दिया गया है। पाथेय की समस्त रचनाओं में एक नवीन आशा है, नवीन विश्वास है। पत्नी के स्वर्गवास हो जाने पर कवि के सम्मुख 'विषाद' साकार हो उठा था, और कुछ समय पश्चात् आशा और जीवन के संबल के रूप में 'पाथेय' का निर्माण हुआ था। इस सन्दर्भ में श्री विद्याभूषण अग्रवाल ने लिखा है :—

"समस्त पुस्तक में यात्रा के प्रतीक बिखरे पड़े हैं। 'नूतन' यात्री ने इस पाथेय का संबल ग्रहण किया है।"[२९]

कवि ने इस पुस्तक का समर्पण इस प्रकार किया है :—

मिला प्रथम तुझसे ही जग में
मुझे बड़े का श्रेय
ले भाई, तेरा ही है यह
अग्रज का पाथेय।[३०]

अपने अनुज श्री चारुशीलाशरण को यह रचना समर्पित करने से कवि की स्नेहमयी भ्रातृभावना के सहज दर्शन होते हैं। कवि के अनुज के सम्बन्ध में श्री हरगोविन्द जी ने लिखा है :—

"गुप्त बन्धुओं में सबसे छोटे हैं श्री चारुशीलाशरण। 'हल्के कक्का' विशुद्ध गांधीवादी, निश्छल, शान्त और निःस्पृह, चरखा, खादी और सर्वोदय की दूसरी सामयिक प्रवृत्तियों के लिए किसी भी समय उत्सुक। सेवा के किसी भी काम के लिए आलस्य नहीं, झिझक और संकोच नहीं, अपने अग्रज बापू भैया अर्थात् सियारामशरण गुप्त के ऐसे भक्त कि लक्ष्मण की भाँति अपना सारा निजस्व उसमें निहित कर उनके अनुयायी, उनकी इंगिति के इच्छुक।"[३१]

'पाथेय' की कतिपय कविताओं ने प्रसिद्धि का मुकुट अवश्य पहना है पर कुछ कविता के प्राण-तत्व से दूर हैं। उनमें सहज अनुभूति नहीं बोलती। शब्दों का कौतुक स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि कुछ कविताएँ अत्यन्त साधारण बन पड़ी हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है —

मोल इनका है बड़ा यों ही नहीं दूँगा मैं,
दिन भर घूमा फिरा हूँ मैं जब
पाया कठिनाई से इन्हें है तब
कौड़ी कम पूरे एक पैसे से न लूँगा मैं।[३२]

---

२९. सियारामशरण गुप्त : संपादक—डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ४१
३०. पाथेय : पृष्ठ ३
३१. प्रताप : ४ सितम्बर १९५२, सियारामशरण विशेषांक।
३२. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५७

इन पवितयों में केवल वर्णन है। किसी वात को छन्द मुक्त प्रणाली में कहा गया है। भावों में वह प्रवाह नहीं है, जो पाठक के मन को विशेष रूप से आकर्षित करे। इस प्रकार की अन्य साधारण वातों पर भी कवि की लेखनी उठी है।

'वंधु' और 'शान्ति लक्ष्मी' में एक कुतूहल और जिज्ञासा अवश्य है पर रसात्मकता की मात्रा कम है। वाग्विदग्धता के साथ रस का मेल हो तो कहना ही क्या, पर कोरा शब्द-जाल तो प्रदर्शन मात्र रह जाता है। 'पाथेय' का कवि अधिक स्वच्छन्द और सजग है। स्वच्छन्द काव्य-परम्परा के अन्तर्गत जिस रहस्यवादी धारा का पुट छिटपुट मिलता है उसकी एक अनुपम झाँकी 'पाथेय' में भी इस प्रकार है :—

मेरे प्राण
जो कुछ भी है चारों ओर,
जिसका न ओर छोर
हो गये उसी में हैं विलीयमान।
मेरा आज
आज चिरकाल में रहा विराज
मेरे अरे ओ अनन्त
मुझको वता दे, कहाँ अन्तर्हित,
तेरा अन्त।[३३]

कवि ने 'पाथेय' में यह स्वीकार किया है कि 'मुझ में नवजीवन आ गया है, आ गया है, आ गया है'।[३४] इस प्रकार की आत्माभिव्यक्ति युग की पुकार थी फिर कवि उससे क्यों न प्रभावित हो ?

'पाथेय' की 'प्रणाम' कविता मे विनम्रता और शालीनता है। उत्सुकता, ललक, पुलक, नव्यता और मातृप्रेम का जीता-जागता उदाहरण यहाँ मिलता है। माता से विदा लेने के पश्चात् कवि 'उन्मुक्त' दिखायी पड़ता है। उसका 'यन्त्रयान' 'यथास्थान' चलता जाता है। अव वह इस वात को प्रकट करता है,

---

३३. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३२

३४. अहा अचानक प्रवल वेग से
मुझमें नवजीवन आया
आया हाँ आया आया
पाथेय, पृष्ठ ६५

कि वह भी यात्री है। 'गौरवगिरि' से 'पूजन' की नियमावली की माँग करता हुआ कवि 'अविराम' चलता रहता है। अनेक झंझावातों और प्रतिकूल प्रकृति-वातावरण के होने पर भी कवि 'दुर्वार' की ओर संकेत करता है। इसी पथ पर चलने वाले राही को 'आह्लाद मिलता है। रोम-रोम पुलकित हो उठता है। दूर देश में जाने वाला पथिक अपने अन्य मिलने वाले साथियों से 'आदान-प्रदान' की बात चलाता है; क्योंकि वस्तुओं की दुर्लभता प्रत्येक देश में पायी जाती है। पथ के अंधकार में उसे जागृत होने का भान होता रहता है। वह परदेशी जो है। सघन 'प्रतिकूला' 'तमिस्रा' में भी उसे अपने पथ का 'बोध' हो जाता है।

उच्चता की प्यास बुझाने के लिए कवि पथ के 'कूप' से परस्पर बातें करता है। यात्री को अपने यात्रा-पथ पर कोयल की 'क्षणिक' कूक सुनायी पड़ती है। 'बीच में' यात्री गिरिवर को 'हेम-चूड़ा' पर अपना लक्ष्य साध लेता है। वहीं 'रत्न की आभा' के दर्शन होते हैं। एक ग्राम्य बालक से भेंट हो जाती है। परस्पर बातचीत में 'दोनों ओर' हर्ष का समुद्र हिलोरें लेने लगता है। हर्ष की इसी भूमिका में यात्री को पवन 'चोर' मिल जाता है। इस घटना से उसे 'पुलकप्राप्ति' होती है। 'सीपी को एक बूँद की प्यास है', यात्री जानता है।

लक्ष्य पर पहुँचने के पहले ही पथिक को 'नवजीवन' प्राप्त होता है; पर राहु की कृपा से अमावस का भी आभास मिल जाता है। फलस्वरूप 'तिमिरपर्व' की झांकी सामने आती है। प्रकृति के प्रतिकूल आभासित होने वाले तत्त्व अनुकूल बन जाते है। मार्ग में 'मार्ग-बंधु' से भी भेंट हो जाती है। 'कुहू' से नेत्रोन्मीलन का संदेश मिलता है। पथिक अपनी घड़ी का 'एक क्षण' निहारता है। उसे 'शान्तिलक्ष्मी' याद आ जाती है, तभी वह अपना समाधान खोजने का प्रयास करता है। अपने को 'अमर' जानता हुआ अपनी सोद्देश्य 'आकांक्षा' प्रकट करता है। दीपक की स्नेह-रीति यात्री को प्रभावित करती है। इतने में ही वायु के तीव्र झोंके से यात्री का दीप निर्वाण प्राप्त करता है। 'तिमिरालोक' उसकी आँखों के सामने नाचने लगता है। 'असफल' में विजय का आभास मिलता है। 'विप्लव की झाड़ू वाले मोहन' का शुभागमन होता है। पावस के राजदूत बैशाख को 'आह्वान' सुनायी पड़ता है। श्रावण में पत्रहीन जवासे को देख कर यात्री के हृदय में कसक उठती है; किन्तु इसी के बाद ही वह 'शंखनाद' करता है तथा उसका भ्रान्तिमोचन हो जाता है। 'वीरवन्दना' के स्वर झंकृत हो उठते हैं; किन्तु यात्री को 'दयनीय' की दशा याद आ जाती है। वह 'अक्षत-दान' से निहाल हो जाता है। अन्त मे विदा के समय कहता है :—

चिन्ता की क्या बात सखे यदि
मैं हूँ पूरा वर्ष
लौट पड़ूँगा क्षण ही में मैं
ले नूतन का हर्ष।[३५]

पाथेय की कुछ रचनाएँ हिन्दी जगत में पर्याप्त प्रसिद्धि का अर्जन कर चुकी है। रचना-क्रम के आधार पर रचनाओं में भाव और भाषा की प्राञ्जलता आती गयी है। पाथेय की विषय-वस्तु के कोई-कोई अंश इतने अधिक सामान्य है, कि कवि उन्हें छोड़ भी सकता था।

मृण्मयी

जब अपनी अगणित दीपावलियों से आकाश इस धरती को प्रकाशित करने मे असमर्थ रहा तब माटी का मानव अपने लघु दीपों से अपना अन्तर्वाह्य प्रकाशित करने चल पड़ा। सचमुच वह धरती का है इसलिए उसे धरती प्यारी है। धरती के गीत प्यारे है। 'मृण्मयी' वस्तुत: धरती के गीतों का संग्रह है। लघुकथाओं को कवि अपनी सात्विक और सहज शैली मे कविता का रूप देता गया है। कृति का प्रारम्भ इस प्रकार है :—

हे मंगलमयि ! तेरे कर में
पुण्य पुरातन नव नव है।
चिर भविष्य अनुगामी होकर
मना रहा हर्षोत्सव है।

× × ×

भव्य भारती का उद्बोधन
तेरे जलद मन्द्ररव में।
कूक उठे चातक पिक केकी
तेरी गिरा उदारा से।[३६]

प्रस्तुत रचना का शीर्षक है 'सावन की तीज के प्रति'। दूर-दूर तक फैली हुई 'शस्यावलि' को देखकर कवि का भावुक हृदय झूम उठता है। उसे प्रतीत होता है कि यह दृश्यावली वसुधा का 'पुलकोद्भव' है।

---

३५. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३६

३६. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, प्रारम्भ।

'सावन की तीज के प्रति' के पश्चात् कुल ११ कविताओं का संग्रह मृण्मयी में किया गया है। 'रजकण', 'लाभालाभ', 'मंजुघोष', 'नाम की प्यास', 'छल', 'ग्वालिनें', 'सम्मिलित', 'अमृत', 'पुनरपि', 'भोला', 'खिलौना' आदि अन्य रचनाओं के नाम है। कतिपय रचनाएँ आकार-प्रकार में लघु हैं पर अधिकांश बड़ी हैं। कथात्मक आधार होने के कारण ताना-बाना बढ़ गया है। 'रजकण' रचना अपने नाम को सार्थक करती है। 'लाभालाभ' का कलेवर बड़ा हो गया है। इसी प्रकार 'सम्मिलित' कविता छोटी है और 'मंजुघोष' पर्याप्त लम्बी।

छन्द विधान में कवि स्वच्छन्द है। सहज प्रवहमान शैली के जिन छन्दों का प्रयोग हुआ है उनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं: —

अचल मौन साधन में है तू
हे गिरीश हे अडिग अडोल।
मैं निश्चय करके आया था
सुन लूँगा तेरे दो बोल।[३७]

× × ×

विभव की कनक सुरा से मत्त
नगरश्रेष्ठी नरवाहन दत्त
भूलकर धनव्यय का परिणाम
सूक्ष्म कौशल का पृथुल प्रमाण
एक गृह बनवाते थे नव्य।[३८]

× × ×

कलह प्रेत की मूर्ति अरे ओ मानव भोले
धरती के इस प्रेम-तीर्थ में पावन होले।[३९]

× × ×

---

३७. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, 'रजकण'
३८. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, 'लाभालाभ'
३९. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, 'सम्मिलित'

उस दिन नींद बड़ी देर तक आँखों में
आयी नहीं रात में प्रथम बार भोला को
ऊपर था नील नभ ज्योत्स्ना में नहाया सा
दृष्टि का विराम स्थल, नीचे ग्रामवन में
सोई हुई वायु के हिंडोरे पर सुख से
नीरवता चारों ओर श्रुति सुखकारी थी ।[४०]

मृण्मयी' मे शृंगार, शान्त, करुण, अद्भुत आदि रसों का परिपाक हुआ है । वाक्चातुर्य तो कवि की अपनी विशेषता है । अलंकारों में उपमा, अनुप्रास, विरोध, श्लेप आदि की संयोजना है । ये उपक्रम यत्नज नही अपितु स्वभावज है । इसीलिए स्वाभाविकता कवि का साथ नही छोड़ती । भाषा में जहाँ एक ओर संस्कृत के शुद्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग है वही ग्राम्य-भाषा और बोली के शब्द भी आये हैं । एक बात इसी प्रसंग में और कह देनी है कि कवि ने कुतूहल उत्पन्न करने का प्रयास किया है ।

'लाभालाभ' कविता के अन्तर्गत श्रेष्ठी नरवाहनदत्त एक नवीन भवन का निर्माण कराते है । अपने नवनिर्मित भवन के शयनकक्ष में श्रेष्ठि-दम्पती शयनार्थ जाते है । रात्रि के पिछले पहर मे भवन से आवाज आती है—

'देख, मैं गिरता हूँ दृग खोल !'

नवनिर्मित भवन के ये बोल शान्त वातावरण में विषाद घोल देते है, किन्तु विषाद का निवारण इस बात से होता है, कि राजा उसे खरीद लेता है । शिल्पियों के नैपुण्य और रचना-चातुर्य के साथ श्रेष्ठी का कलात्मक संलाप नृप को बाध्य कर देता है, कि वह भवन को खरीद ले । अन्त में भवन धराशायी होकर कंचन मे परिवर्तित हो जाता है । यही कुतूहल का स्थल है । श्रेष्ठि-प्रिया पुनः स्वर्ण ध्वंसावशेषों को माँगने का प्रस्ताव करती है, कि कही ध्वंसावशेष पुन. मृत्तिका-पिंड न बन जाय ।

'ग्वालिने' शीर्षक में वैष्णवता की पावन गंगा में स्नात कवि-हृदय सौंदर्य-वीथी मे घूम रहा है । यह भी मन की मौज है । 'अमृत' में वही 'सागर मंथन' का प्राचीन कथानक आता है पर नयी सजधज के साथ । 'सम्मिलित' में पृथ्वी और प्रकृति के मातृत्व रूप की ओर संकेत है ।

---

४०. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, 'भोला'

मृणमयी की रचनाओं का दर्शन है—'मिट्टी कंचन है और कंचन मिट्टी' अन्तिम रचना में राजकुमार सोने के खिलौने को फेंक कर मिट्टी का खिलौना चाहता है। इसी प्रकार भोला एक रुपये से सन्तुष्ट है।

बापू

सत्य-अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी से केवल भारत-भूमि ही नहीं अपितु अखिल विश्व परिचित है। साहित्य के क्षेत्र में भी बापू (गांधीजी) का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। किसी कवि ने सत्य और अहिंसा पर कविता लिखी, किसी ने बापू पर। किसी ने बापू को बुद्धि से अपनाया किसी ने हृदय से। किसी ने बापू को अपनी लेखनी में उतारा किसी ने अपने जीवन में। सियारामशरण जी ने बापू को बुद्धि, हृदय, लेखनी और जीवन सभी क्षेत्रों में उतारा है। वैसे तो आराध्य के सम्मुख आराधक कुछ बोल नहीं पाता है पर गांधीवाद को मन-प्राण से अपनाने वाले साधक ने अपनी श्रद्धा के कुसुमों का चयन करके स्तवक रूप में रख छोड़ा है। वस्तुतः यही साकार श्रद्धा है जो जनता के सम्मुख बापू' (रचना) बन कर आयी है।

'बापू' रचना का आकार-प्रकार लघु है। सं० १९९४ में दीपावली से लेकर वसंतपंचमी तक के समय में यह कृति तैयार हुई थी। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है 'बापू' में गांधीजी के दार्शनिक महत्त्व का वर्णन किया गया है। समाज की हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ मानव-जीवन में किस प्रकार अमंगल का विष घोल रही हैं। मानवता के लहलहाते उद्यान में बारूद के पौधे किस प्रकार रोपे जा रहे हैं, कवि को ज्ञात है। हिंसा के हथियार मनुष्य के लिए घातक सिद्ध हुए हैं। उसे चाहिए अहिंसा के औजार, स्वभाव से शिल्पी मनुष्य जिससे कुछ कर सके। इन विषम परिस्थितियों के बीच गांधीजी आशा की किरण लेकर आये जिससे मानव-हृदय का केवल अंधकार ही नहीं भागा, अपितु उसे आगे बढ़कर उन्नति की सीमा चूमने का बल भी मिला।

ग्रंथ की भूमिका के रूप में श्री महादेव देसाई लिखित कुछ पंक्तियाँ हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि लेखक ने बापू (गांधीजी) को अत्यन्त समीप से देखा है—

"मैं हिन्दी का पंडित क्या अभ्यासी भी नहीं हूँ। मुझे आपके काव्य की भूमिका लिखने का कोई अधिकार नहीं है। मैं तो बापू के असंख्य भक्तों में से एक हूँ और राम-यश सुन कर जैसे हर एक भक्त उल्लसित होते हैं, वैसा मैं

भी आपके काव्य पढ़ कर उल्लसित होता हूँ ।"[४१]

'बापू' पुस्तक का विषय ही ऐसा है, जिसके प्रति सहज जिज्ञासा स्वाभाविक है। भाषा छन्द और काव्य-गुणों से विभूषित कविता सहृदयों के गले का हार बन जाती है। वस्तुतः गांधीजी ने पीड़ित मानवता को जो 'अभयदान' दिया था समय की चित्रपटी पर वह सदैव अंकित रहेगा। ग्रंथ के भूमिका-लेखक ने 'कवि' की पंक्तियों का भाव उद्धृत करते हुए कहा है —

"आपकी 'गगरी' का पानी पीकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आप ठीक कहते हैं बापू एक बड़ा विराट् तीर्थ है। उस तीर्थ के विपुल सलिल से जिसकी जितनी शक्ति हो उतना ही ले सकता है।"[४२] यह गगरी पूर्ण रूप से भरी है। तृप्ति-पिपासा का रूप कवि के शब्दों में देखिए —

> गहरी नहीं जा सकी तब भी
> तृप्ति पिपासा हरी हरी
> तेरे तीर्थ सलिल से हे प्रभु
> मेरी गगरी भरी भरी ।[४३]

पुस्तक के प्रारम्भ में राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त रचित कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की गयी है जो, आषाढ़ कृष्ण १२ सं० १९९२ को यरवदा मंदिर को भेजे गये पत्र से ली गयी है—

> तुम तो प्राण दे चुके बापू
> स्वयं उन्हें साधारण जान
> कृपया कभी न करना अब फिर
> अपने दिये हुए का दान
> उन्हें न्यास सा रखना आगे ।[४४]

कवि ने पुस्तक का आरम्भ वन्दना से किया है। वह भी ऐसी वन्दना जहाँ कर्म और वाणी का मिलाप हो अथवा श्रम और सरस्वती का संगम हो। श्रम में ईश्वरता का आभास पाने वाले संत ने सचमुच ऐसा ही संगम संसार के समक्ष प्रस्तुत किया था —

---

४१. बापू : सियारामशरण गुप्त, भूमिका (श्री महादेव देसाई लिखित)
४२. बापू : सियारामशरण गुप्त, भूमिका, पृष्ठ ५
४३. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७९
४४. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३

वाणी के मन्दिर में आकर
कर्म स्वयं झंकृत है आज
गिरा अर्थ से अर्थ गिरा से
सादर समलंकृत है आज।[४५]

उपरिलिखित पंक्तियां चैत्र शुक्ल त्रयोदशी सं० १९९२ को मगनवाड़ी, वर्धा में रची गयी थी। वर्धा में गांधीजी का प्रसिद्ध आश्रम है। गोस्वामी तुलसीदास की भी मान्यता तो यही है—

गिरा अर्थ जल वीचि सम
कहियत भिन्न न भिन्न।[४६]

इसी संदर्भ में श्यामनारायण पाण्डेय ने तो सर्वत्र ईश्वरता के दर्शन किये है—

शब्द में है अर्थ बनकर
अर्थ में है शब्द बनकर
जा रहे युग कल्प उनमें
जा रहा है अब्द बनकर।[४७]

नगरी के एक भाग में उत्सुक जन-समूह उस महापुरुष की बाट जोह रहा था जिसने दलितों के आँसू पोंछे थे, जिसने प्यास का उत्तर शीतल जल से दिया था तथा निराशा की मरुभूमि पर आशा के लहलहे पौधे रोपे थे। जिस प्रकार अंध तमपुंज छिन्न-भिन्न करके सूर्य की अम्लान किरण प्रकाश बिखेरती हुई वसुन्धरा को चूमने लगती है वैसे ही बापू के रूप-दर्शन में सारी जनता को शुद्ध श्रद्धा की सफलता प्राप्त होती है। यही पुस्तक की विषय-वस्तु है।

मध्य की कविताओं में उस अंधकार का वर्णन है, जो जनमानस पर सदियों से आच्छादित है। साथ ही भविष्य की शताब्दियाँ अपने अनावृत वातायन से सत्य और अहिंसा के ताने-बाने द्वारा मानवता सँवारने वाले शिल्पी के प्रति जिज्ञासु है। कवि महात्माजी की विशिष्ट ज्ञानगरिमा पर विमुग्ध है। प्रकृति परिवर्तन की निशा में अंगड़ाइयाँ लेती है। उत्तुंग महीधर धरती की गोद में

---

४५. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६
४६. रामचरितमानस : गोस्वामी तुलसीदास, बालकांड, दोहा १८
४७ जौहर : श्यामनारायण पाण्डेय, पृष्ठ २

छिप कर सागर का रूप धारण कर लेते हैं। कुसुम वन-प्रान्तर में क्षार के ढूह दृष्टिगोचर होते हैं। दिनकर का तप्त गोलाकार शशि बन जाता है, पर गांधीजी का दृढ निश्चय परिवर्तन का प्रभाव नहीं मानता।

कवि क्रूर कारागार की यातनाओं की स्मृति में दुःख प्रकट करता है। वन्दिनी स्वतन्त्रता की पुकार गांधीजी को सुनायी पड़ती है। परिस्थिति यह है, कि 'सत्य की तरलता' शुष्क धरित्री में अवलुंठित है जिसके कारण गांधीजी तुच्छ स्वार्थ को तिलांजलि देकर नूतन महाभिनिष्क्रमण हेतु सिद्धार्थ बन कर निकल पड़े थे।

इधर समाज नाश के कगार पर खड़ा है। भौतिकता उसे पीसे डाल रही है। मनुष्य की दुर्बलताएँ उसकी उन्नति में बाधा पहुँचाती हैं। इन सारी समस्याओं का समाधान है—प्रेम। कवि की दृष्टि में—

प्रेम है स्वयं ही क्षेम
प्रेम की ही अन्त में विजय है
प्रेमरत्न नित्य ही ज्योतिर्मय है
फैला दो उसी का मृदु दीप्ति हास
हिंसा के तमिस्र का स्वयं हो ह्रास।[४८]

इस कृति का अमर सन्देश है—आशा और विश्वास, जिसके सहारे कठिनाइयों का सामना किया जा सकता है।

कवि का छंद-विधान भी नवीनता लिये है। रचना में विभिन्न प्रकार के छंद प्रयुक्त हैं। भाषा और भाव के दृष्टिकोण से रचनाएँ उच्चकोटि की हैं। विषय-चयन शब्द-माधुर्य, वचन भंगिमा, भाव-प्रवणता, कल्पनाशीलता आदि विशेषताओं के लिए पाठक को निराश नहीं होना पड़ता। यदि महात्मा गांधीजी के तीर्थ-सलिल से कवि की गगरी भर गयी है तो कवि की भाव-गंगा से सहृदय पाठकों की गगरी कैसे रिक्त बनी रहेगी? श्री विद्याभूषण अग्रवाल के मत में—

"इस पुस्तक में शैली प्रखर है, शब्द-चयन सिद्ध करता है कि श्री सियाराम-शरण गुप्त जी हिन्दी काव्य-क्षेत्र में एक सिद्धहस्त शब्द-शिल्पी हैं। नवीन छंदों

---

४८ बापू : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४३

के सुन्दर प्रयोग किये गये हैं जो विचारात्मक तथा मननशील काव्य के रूप से उपयुक्त हैं।"४९

दैनिकी

दैनिकी प्रतिदिन की घटित घटनाओं का पद्यबद्ध संग्रह है। इसी से इसका नाम दैनिकी है। भारतीय इतिहास की धारा का मार्ग साफ-सुथरा और सीधा नहीं है। यह अपने अंक में पता नहीं कितने निर्माण और विनाश की कहानी समेटे है। सन् १९४२ के आस-पास विश्व-युद्ध की जो ज्वालाएँ जली थीं उनकी आंच से भारत भी प्रभावित हुआ था। जीवन के प्रत्येक पग कष्ट की धरती पर पड़ते थे। सारा समाज अपनी असमर्थता से पीड़ित था। ऐसी स्थिति में वह कहाँ जाता और क्या करता ?

दैनिक जीवन की व्यथाओं को कवि ने अपनी सहज शैली में अंकित किया है। उसे अपने ऊपर विश्वास है—

"जनरुचि को आज के संग्राम की विकट परिस्थिति ने सस्ती और साधारण वस्तुओं की ओर भी उन्मुख कर दिया है। दैनिकी का रचनाकाल यही है। इसी कारण इसके अपना लिये जाने की आशा रचयिता को है। दम घोंट देने वाले जिस वातावरण में आज-कल रहना पड़ रहा है, उसमें उठी हुई भावनाओं का आलेखन उसने इसमें किया है। उससे कवित्व-कला संभव भी न थी।"५०

इतना ही नहीं कवि काव्यानंद का क्षेत्र अपने तक सीमित नहीं रखता अपितु उसकी सीमा पाठक तक मानता है। पाठक दैनिकी की कविताओं का रस ले पायेंगे, यह उनकी सहृदयता की परख है।

जिन विषयों पर दैनिकी की कविताएँ रची गयी हैं उनमें कुछ तो साधारण हैं और कुछ विशिष्ट। वस्तुतः कविता के लिए संसार के विविध विषय नहीं उपयुक्त होते, पर इन विभिन्न विषयों के लौह को यदि कवि का हृदय पारस कंचन कर दे तो हानि ही क्या है ? दैनिकी में 'दो पैसे' से लेकर 'नव-पथ' तक की रचनाएँ संग्रहीत हैं। 'जागरण-प्रसंग', 'निवेदन', 'विस्मरण', 'मजूर', 'स्वाश्रयी', 'नवनिर्माण', 'सजगद्वन्द्व', 'उन्मुख', 'सोमवती', 'स्मरण', 'बिरजू', 'स्वप्नभंग', 'मनुज', 'प्रस्तरजात' तथा शृंखलित आदि रचनाएँ अच्छी बन पड़ी हैं। विषय-वस्तु और रूप-विधान दोनों उत्तम कोटि के हैं। वाग्विदग्धता और

---

४९. सियारामशरण गुप्त : संपादक, डा० नगेन्द्र, पृ० ४७
५०. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० २

वचन-भगिमा प्राय सर्वत्र पायी जाती है। कवि की लेखनी का क्षेत्र केवल कल्पना-लोक ही नही है, अपितु धरती के वे खडहर भी है, जो अपने अन्तस्तल निर्माण और विनाश की अमर गाथा छिपाये है। विषय-वस्तु की विविधता, शैली का सहजपन, भाषा की चारुता देखकर श्री विद्याभूषण अग्रवाल लिखते है—

"दैनिक जीवन के कष्टो की गाथा गाकर अनेक कवियो ने नीरस कविताओं के सहारे अपने को 'प्रगतिशील' कोटि मे रखकर 'आत्मसंतोष' लाभ किया है। उस दृष्टि से गुप्त जी दैनिकी मे प्रगतिशील काव्य-क्षेत्र के अन्तर्गत गिने जा सकते है।"[५१]

दैनिकी की कुछ घटनाएँ अतीत के साथ है। कुछ के ऊपर वर्तमान की छाप है। कुछ के साथ भविष्य की उज्ज्वल कामना है। पर इन सभी में वर्तमान का चीत्कार और आह अधिक सुनायी पडती है—

उन छिन्नांगों की चिल्लाहट रह रह कर अप्रतिहत,
करती होंगी वहाँ पवन की छाती में क्षत शत शत
नहीं प्रभावित यहाँ तनिक भी उनकी उस तड़पन से,
जड़ विकलांग हमारे मन हैं श्रवण और लोचन से।[५२]

दैनिक समाचारपत्र मे यह समाचार पढ कर कि एक सहस्र व्यक्ति हताहत हुए है, कवि का मन कचोट उठता है और उसकी लेखनी विचलित हो उठती है नूतन गान की वेदना से। 'दो पैसे' की साधारण बात को दरिद्र के प्रसग में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बना दिया गया है। जीवन की चिरंतनता को 'दुर्लभ' शीर्षक मे आँका गया है। 'अभय' को जगाने का उद्‌बोधन जागरण-प्रसंग के अन्तर्गत देखा जा सकता है—

नव-जागरण-प्रसंग —
जाग तू उज्ज्वल अभय अभंग !
रुक्ष रसा के अंतस्तल से
ला भर भर कर रस के कलसे
अचला के सिर चल चंचल हे !
सुमन-सुहाग सुरंग
जाग तू उज्ज्वल अभय अभंग।[५३]

---

५१. सियारामशरण गुप्त : स० डा० नगेन्द्र, पृ० ४६
५२. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, 'विकलांग' शीर्षक
५३. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० १२

प्रकृति के कुछ छिटपुट वर्णन दैनिकी में मिलते हैं। इनको संश्लिष्ट तो नहीं कहा जा सकता है पर कल्पना सुन्दर है। शब्द-चयन ऐसा है कि भावों का उत्कर्ष हृदय को प्रभावित करता है—

उतरीं भू पर नम्र मुखी ये जल-धाराएँ छर छर
उभर पड़ी ऊपर हरियाली पुलक भार से थर-थर।
विस्तृत अतुल असीम गगन है,
अंकुर का उड़ने का मन है
पंख रहित उसका यह तन है
चल में अचल निरन्तर।[५४]

इसी प्रकार 'सोमवती' अमावस्या के नाम और गुण के विरोध पर चुटकी लेता हुआ कवि कहता है :—

सोमवती में सोम-किरण तक मिली न कहीं गगन में,
वह तमसा वह तिमिर पूर्णिमा की घन घनावरण में।
तब भी जाग उठी ज्यों जी में किसी पुलक की बाती,
यह रजनी इस अलख पंथ में चलती कब से आती।[५५]

कतिपय कविताएँ ऐसी है जिनमें रस-परिपाक पूर्णरूपेण हुआ है। कुछ रचनाओं में भविष्य की आशा और आस्था निहित है, कुछ वर्तमान जटिल जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करती हैं। 'मजूर' कविता में निर्धूम अनल में काम करने वाले मजदूर का वर्णन है, जो अविकम्प विष के घूँट पिया करता है। 'अंडमान' में मधुर व्यंग्य है जो रचना को उत्तम बना देता है। 'लघु' में तारे की लघुता में छिपी प्रकाश की गुरुता का संकेत है। 'खनक' शीर्षक में उद्बोधन और प्रेरणा की एक झाँकी दृष्टव्य है :—

है खनक किये जा कूप खनन,
तू यहाँ बीच में ही न हार।
यह नहीं कुदाली झनन-झनन,
पत्थर पर गाती है मल्हार।[५६]

अन्त में हम कह सकते है कि दैनिकी में प्रतिदिन की घटनाओं की एक झाँकी है, जो कवि की अपनी होते हुए भी सब की है।

---

५४. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६६
५५. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६८
५६. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३६

नोआखाली में

इस कृति की रचना के समय कवि का स्वास्थ्य ठीक नही था। नोआखाली का रक्तपात भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है। मानवता की मूर्ति को रक्त से स्नान कराने वाला मानव अपनी सीमा पार कर चुका था। इतिहास इस दुर्दिन को देखकर काँप उठा था। नबी पाक के अनुयायियों ने अपना सत्पथ छोड़ा था। राम के वन्दों को हिंसा याद आई थी। इस्लाम धर्मावलंबियों ने यह बात भुला दी थी कि जिस देश की धरती पर उसके नीर-क्षीर से उनका लालन-पालन हुआ है, उसके साथ उनका भी सम्बंध है। देश के प्रति अपना कर्तव्य न समझने वाले मुसलमानों ने बुद्धि से काम नहीं लिया। हिन्दुओं के सामने उनका आदर्श नही रहा। एक ने कहा 'तुम्हारी चोटी काट लेंगे।' दूसरे ने कहा 'हम तुम्हारी दाढ़ी छाँट देंगे।'

जिस समय नोआखाली की यह दशा थी, उस समय वहाँ जाने में कवि असमर्थ था। यात्रा संभव न थी, पर हृदय नोआखाली में विचरण कर रहा था। इसी समय डा० सम्पूर्णानन्द का एक भाषण प्रसारित हुआ था। उसी से प्रेरणा पाकर कवि ने नोआखाली की गाथा गायी है। पुस्तक का नामकरण नोआखाली स्थान के नाम पर हुआ है। सम्पूर्ण रचना हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देती है। पुस्तक के प्रारम्भ में कवि के अग्रज श्री मैथिलीशरण गुप्त की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में एकता की ओर संकेत है :—

> एक हमारे पूर्व पुरुष हैं,
> एक भूमि-नभ, एक निवास।
> एक अन्न-जल से निज जीवन,
> एक पवन में श्वासोच्छ्वास।
> सत्य और आस्तेय आदि का,
> रखते हैं हम सम विश्वास।
> छिन्न कहाँ स्वर-ताल हमारे,
> भिन्न कहाँ अध्यात्म विकास।[५७]

रचना का प्रारम्भ 'अखंडित' शीर्षक से होता है। अन्त में 'एक हमारा देश' नामक रचना है, जो हमें एकता का सन्देश देती है 'नोआखाली में' ग्यारह रचनाएँ है। इन्ही में 'ग्यारह दोहे' नाम की भी एक रचना है। इस कविता

---

५७. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६

को 'नोआखाली' के साथ संलग्न करने के सम्बन्ध में कवि का विचार है—

"इन कविताओं में उसे सम्मिलित करने का कारण है। नोआखाली में जो भयंकर पीड़ा हुई है, उसे देश के सर्वांग ने अनुभव किया है। इससे 'एक हमारा देश' का पवित्र भाव फिर से पुष्ट होकर प्रमाणित होता है। अतएव इस अवसर पर उसकी पुनरुक्ति असंगत नहीं।"[५८]

ये उद्देश्यपूर्ण रचनाएँ अच्छी बन पड़ी हैं। विषय को स्पष्ट करने में कवि की भाषा की सरलता भी सहायता देती है। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की भावना कवि को 'गांधीवाद' के लोक में पहुँचा देती है, जहाँ सत्य है, अहिंसा है, मानवता की उपासना है। इस ऐक्य का पर्यवसान सर्वात्मवाद में हो जाता है, जो कवि का अभीष्ट है। सहनशीलता की भावना हमें सौहार्द और भ्रातृत्व की भावना का संदेश देती है :—

> **तुम हमको हम भी तुम्हें, सहन करें सप्रेम**
> **दोनों की इस जीत में, दोनों का है क्षेम।**[५९]

पूरी रचना में प्रेम और भ्रातृ-भावना की ओर संकेत है। काव्य के दृष्टिकोण से कहीं-कहीं कोरा शब्दजाल सामने आ जाता है। कथात्मकता के ढाँचे में 'रमजान' रचना वर्णनात्मक हो गयी है।

नकुल

जिस प्रकार काव्य की उपेक्षिता उर्मिला और यशोधरा का यशोगान गाया मैथिलीशरण जी ने उसी प्रकार नकुल की पात्रता का वैशिष्ट्य अपने 'नकुल' नामक काव्य में सियारामशरणजी ने अंकित किया है। यह एक खंड-काव्य है। गुप्तबंधुओं का प्रिय ग्रंथ महाभारत इस कथा का आदि स्रोत है। जहाँ कहीं कवि को आवश्यकता पड़ी है, 'यथास्मै रोचते विश्वं तथैव परिवर्तते'[६०] के आधार पर विषयवस्तु में काँट-छाँट भी की गयी है। कथावस्तु महाभारत के वनपर्व का एक अंश मात्र है।

द्वैत वन में रहते समय कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, माद्री कुमार नकुल, सहदेव इन सभी शत्रुसंतापी संयम-नियमपरायण धर्मात्मा पाण्डवों

---

५८. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६
५९. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १४
६०. अपारे काव्यसंसारेकविरेकः प्रजापति। यथास्मै रोचते विश्वं तथैव परिवर्तते॥
काव्यप्रकाश : झलकीकर टीका, पृष्ठ २

ने एक दिन एक ब्राह्मण के लिए पराक्रम करते हुए महान क्लेश उठाया; परन्तु उसका भावी परिणाम सुखमय ही हुआ। इसी वृत्तान्त के आधार पर कथा आगे बढ़ती है।[६१]

ब्राह्मण की अरणि (जिन लकड़ियों को रगड़ कर यज्ञ की अग्नि तैयार की जाती है) मथनिका अपने सीगों मे उलझा कर एक हरिण भागा। ब्राह्मण ने पाण्डवो से सहायता के लिए कहा। ब्राह्मण की सहायता के निमित्त पाण्डव निकल पड़े। पर्याप्त दूरी समाप्त करने के पश्चात् पाँचो भाइयों को प्यास लगी। थोड़ी दूर पर एक तालाव था। वहाँ से पानी लाने के लिए सबसे छोटा पाण्डव गया। तूणीर में पानी भरते समय आकाशवाणी हुई—'रुको पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो अन्यथा तुम बच नही सकते।' इस वाणी को सुनकर कनिष्ठ पाण्डव ने कोई ध्यान न दिया। फलत. वह मृत्यु का ग्रास बना। सभी के इसी प्रकार मूर्च्छित होने के पश्चात् युधिष्ठिर आये। अपने चारों भाइयों को अचेत देखकर विचार करने लगे, 'कही दुर्योधन ने तालाव के जल को विषाक्त न करवा दिया हो।' सरोवर के अन्दर एक सरोवर-पक्षी दिखाई पड़ा। वही पूर्व-वाणी युधिष्ठिर को भी सुनाई पड़ी। अदृश्य प्रश्नकर्ता ने कुछ प्रश्न किये। युधिष्ठिर ने अत्यन्त निपुणता के साथ प्रश्नों का उत्तर दिया। प्रश्न करने वाले ने युधिष्ठिर से कहा, 'मैं तुम्हारे एक भाई को जीवित कर सकता हूँ। तुम्हारे वताये गए किस व्यक्ति को जीवित करूँ।' युधिष्ठिर ने कहा, 'यदि तुम प्रसन्न हो तो नकुल को जीवित कर दो।' प्रश्न हुआ, 'ऐसा क्यो ?' युधिष्ठिर ने कहा—'धर्मानुसार मेरी दोनों माताओं को पुत्रवती रहना चाहिए। एक माता का पुत्र मैं स्वय जीवित हूँ और दूसरी माता (माद्री) का पुत्र नकुल और जीवित हो।' धर्मप्राण युधिष्ठिर के इस वचन से प्रसन्न हो उस अज्ञात सत्ता ने सभी भाइयों को जीवन प्रदान किया। प्रश्न करने वाली छाया स्वयं धर्म था। वही हरिण के रूप मे भागा था तथा उसी ने यक्ष के रूप मे युधिष्ठिर की धार्मिक परीक्षा ली थी।

यह तो महाभारत की कथा का सक्षिप्त रूप है। कवि ने अपनी पुस्तक में कुछ परिवर्तन आवश्यकतानुसार किये है। परिवर्तन-संकेत ग्रंथ के प्रारंभ मे ही दिया गया है।

'नकुल का आधार वनपर्व (महाभारत) है। रचयिता ने मूल वस्तु का

---

६१. महाभारत—वनपर्व : पृष्ठ १८२१, गीताप्रेस गोरखपुर।

उपयोग स्वतन्त्रता से किया है। ऐसा उसने इस मान्यता से किया है, कि देश-काल और अपनी रुचि के अनुसार पैतृक धर्म का उपयोग करने की छूट सन्तति को है। उत्तराधिकार के साथ यह छूट देकर प्रत्येक पिता ने प्रत्येक पुत्र के प्रति अपना आश्वास ही प्रकट किया है। और यही कारण है कि इस रचना में अपनी भावना और कल्पनानुसार चलने में कवि को संकोच नहीं हुआ।"[६२]

कवि ने कथा-परिचय में समय, स्थान, पात्र आदि का निर्देशन भली-भाँति किया है। महाभारत की मूलकथा में अपनी कल्पना द्वारा कवि ने जो हेर-फेर किया है, उसके अनुसार कथावस्तु इस प्रकार है :—

जिस वन में पाण्डव और द्रौपदी निवास करते थे, उसी में इन्ही के समीप एक तपस्वी ब्राह्मण रहता था। उसकी अरणि पेड़ पर टँगी हुई थी। एक हरिण आया और वृक्ष से अपना शरीर खुजलाने लगा। इस संघर्षण में अरणि उसके सीगों में ऐसी उलझी कि सुलझ न पायी। हरिण भागा तो अरणि के उलझने से उसे चोट लगी। तपस्वी ब्राह्मण यज्ञ की अरणि चले जाने से व्यग्र हुआ। वह पाण्डवों की कुटी पर गया। अकेले युधिष्ठिर मिले। और भाई द्रौपदी को लेकर 'अमृतह्रद' नामक सरोवर की शोभा देखने चले गये थे; क्योंकि आज वनवास का अन्तिम दिन था। यह सरोवर अमृताचल के ऊपर स्थित था। प्रातःकाल द्रौपदी के स्नान करने जाते समय वज्रसेन नामक व्यक्ति ने बताया कि अमृतह्रद पर रहने वाला एक दानव मनुष्य को कष्ट दिया करता है। पाण्डवों ने दानवों का नाश कर दिया था। अब यह कौन दानव है जो लोगों को कष्ट दिया करता है? जिज्ञासा के कारण पाण्डव उस सरोवर के लिए चल चुके थे। उधर ब्राह्मण की सहायता के लिए युधिष्ठिर भी हरिण के पीछे चल पड़े। चलते-चलते पानी की खोज में एक सरोवर के पास जा निकले। वहाँ अलकापुरी से निर्वासित एक यक्ष (मणिभद्र) ने युधिष्ठिर को सूचित किया कि दुर्योधन के व्यक्तियों ने सरोवर के जल को विषाक्त कर दिया है। उसने इन्द्रपुरी में अर्जुन के दर्शन की बात बतायी और यह भी बताया कि वह अर्जुन का भक्त भी है। साथ ही हस्तिनापुर के प्रति आदर की भावना प्रकट की। हरिण के सम्बन्ध में यक्ष ने सूचना दी कि वह आश्रम का ही है। यक्ष को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि हस्तिनापुर के लोग ऐसा गर्हित कार्य करते है। इसके पश्चात् उसने आश्रम-

---

६२. नकुल : सियारामशरण गुप्त, भूमिका, पृष्ठ ३

वासी मृग की वात बतायी और कहा कि 'अरणि और मथनिका' सुरक्षित है। यक्ष स्वयं अरणि-मथनिका लौटाने के लिए ब्राह्मण के पास गया तो उसे ज्ञात हुआ कि अभी वार्त्तालाप करने वाले सज्जन युधिष्ठिर ही थे। मणिभद्र को यह समाचार मिला कि द्रौपदी के साथ चारों भाई भी अमृतह्रद देखने गए हैं। बहुत कुछ सम्भव है, कि दुर्योधन के पक्ष वालों ने सरोवर के जल को विषाक्त कर दिया हो। यह सोचकर यक्ष शीघ्रतापूर्वक अमृतह्रद की ओर जाता है। उधर दुर्योधन के एक गण ने एक व्यक्ति की सहायता से सारे सरोवर को विषमय बना दिया था। वज्रसेन के रूप में इसी वज्रबाहु ने द्रौपदी के हृदय में सरोवर देखने की उत्कट इच्छा उत्पन्न की थी। विषमय सरोवर का जल पीकर चारों पाण्डव मृतप्राय होकर भूमि पर गिर पड़े। अपनी कुवृत्तियों का फल भोगकर दोनों गण भी परस्पर कट मरे। उनके द्वन्द्व-युद्ध से एक प्रकार की ध्वनि सुनकर युधिष्ठिर आगे बढ़कर अमृतानल पर गये। दोनों को मरा हुआ पाकर उन्होंने सारी बातें यथावत् समझ ली तथा अमृतह्रद की ओर जाकर अपने भाइयों को मरा पाया। जब युधिष्ठिर इस कारुणिक दृश्य का अवलोकन कर रहे थे, उसी समय यक्ष भी वहाँ पहुँचा। उसके पास अमृत की एक बूँद थी। वह केवल एक को जीवित कर सकती थी। युधिष्ठिर ने कहा पहले नकुल को जीवन प्राप्त होना चाहिए। यक्ष आश्चर्यचकित हुआ। युधिष्ठिर ने बात स्पष्ट कर दी। वह अमृत की बूँद अक्षय थी। उसी से सभी पाण्डव जीवित हुए।

'नकुल' काव्य भाव और भाषा दोनों दृष्टिकोणों से सम्पन्न है। इस काव्य की विशेषता यही है कि यक्ष के पूछने पर युधिष्ठिर नकुल को जीवन-दान की प्राथमिकता देते हैं। सम्पूर्ण ग्रथ पाँच खंडों के विभक्त है। इन खंडों के कोई नाम नहीं हैं। पूरी रचना में कथा-सूत्र का स्वाभाविक प्रवाह पाया जाता है। छन्द-विधान भी एक ही प्रकार का है। ग्रंथ के प्रारम्भ करने में कवि ने कहानी का आधार लिया है। बीच-बीच में आवश्यकतानुसार प्राकृतिक और मनोवैज्ञानिक चित्रण भी आते गये है।

जयहिन्द

१५ अगस्त १९४७ को प्रकाशित यह रचना कलेवर में अति लघु है। स्वतन्त्रता की जिस प्रेरणा ने कवि के मानस में उमंग की लहरें उठायी थी उसी ने उन लहरों को 'जयहिन्द' में परिणत कर दिया था। स्वदेश का यशोगान ही पुस्तक का प्रारम्भ है : —

जय जय भारतवर्ष हमारे,
जय जय हिन्द हमारे हिन्द।
विश्व सरोवर के सौरभमय
प्रिय अरविन्द हमारे हिन्द।[६३]

स्वाधीन देश के प्रति अपने उद्गार प्रकट करते हुए कवि ने 'वापू', 'राष्ट्रीय पताका' तथा 'जनता' के प्रति भी अपने विचार व्यक्त किये है। भाषा प्राञ्जल और भाव मार्मिक है। प्रवाहपूर्ण शैली मे छदो का रूप निखर उठा है। पूरी पुस्तक मे दो प्रकार के छदो का प्रयोग किया गया है। एक का उदाहरण पहले दिया चुका है तथा दूसरा इस प्रकार है—

वे जो दूर खेतो में
मिट्टी घास फूस ही है जिनके निकेतों में।
गिन सकते है खुली जिनकी पसलियाँ
और वह पुतली जो घरों में घिरे
यंत्र के ही अंग निरे
हो गये है काठ की पुतलियाँ।
जागृत सभी के सब जान गये,
निज का स्वरूप पहचान गये।[६४]

'जयहिन्द' मे किसी विशेष कथावस्तु का आश्रय नही लिया गया है। १५ अगस्त १९४७ को भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के अवसर पर हृदय के प्रकट उद्गार ही 'जयहिन्द' है। इसी बात का आधार लेकर देश को सबोधित करते हुए कवि ने अपने विचार व्यक्त किए है।

अमृतपुत्र (प्रभु ईसा)

हिन्दी कविता के क्षेत्र मे यह प्रयास सभवत: प्रथम और मौलिक है। यद्यपि यह रचना ईसा के सबध मे है, पर कवि का विश्वास है, कि समान रूप से यह सबके हेतु प्रिय सिद्ध होगी। आचार्य विनोवा भावे एक वार मलावार और केरल की पदयात्रा कर रहे थे। उस समय वहाँ के गिरजाघरो ने अपने सम्मिलित पत्रक मे कहा था · "विनोवा के कार्य मे ईसा मसीह की ही शिक्षा प्रकट

६३. जयहिन्द : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३
६४. जयहिन्द : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ११

हुई है।" ईसु के चरित्र की जानकारी हेतु कवि तत्संबंधित रचनाएँ ढूँढ़ता रहा। एक दीर्घकाल के परिश्रम के उपरान्त उसका अनुभव इस प्रकार है—

"प्रयत्न किया गया है, कि ब्योरे आदि सम्बन्धी कहीं कोई त्रुटि न रह जाय। इसी उद्देश्य से रचयिता ने अनेक मसीही सज्जनों से और अपने साहित्यिक बंधुओं से भी जानना चाहा, कि ईसु के चरित्र को किसी ने कवितावद्ध किया हो तो कृपया सूचना दें। आश्चर्य है कि अंग्रेज कवियों ने उल्लेख रूप में यह प्रयत्न प्रायः किया ही नहीं।"[६५]

प्रकाशन के विषय में केवल इतना कहना है, कि यह रचना संवत् २०१६ में प्रकाशित हुई है। इसका प्रणयन छः वर्ष पहले हो चुका था, किन्तु परिस्थिति-वश प्रकाशन नहीं हो पाया था। अमृतपुत्र की प्रतिलिपि कृतिकार ने पद्मावत के अंग्रेजी अनुवादक श्री ए० जी० शिरेफ (अवकाशप्राप्त आई० सी० एस०) के पास सम्मति हेतु भेजी थी। उस सम्मति के सम्बन्ध में भेजा गया उत्तर ज्यों-का-त्यों पुस्तक के साथ संलग्न है। उत्तर की प्रारम्भिक पंक्तियाँ हैं—

"अमृतपुत्र नामक अपनी सुन्दर कविता कृति छपने के पहले ही भेज कर बड़ी कृपा की। इसमें मुझे कोई भी दोष न मिला और देने के लिए संशोधन का कोई सुझाव भी मेरे पास नहीं है।"[६६]

ईसा के चरित्र के वर्णन की जो पद्धति कवि ने अपनायी है, उसी पद्धति में एक परिश्रमी जर्मन ने कुछ प्रयास किया है।[६७] पर शिरेफ साहब का कहना है कि 'वह रचना पढ़ी जाती है' कहा नहीं जा सकता।[६८] सर एडविन आर्नल्ड भारतीय शिक्षा-सेवा के सदस्य थे। उनकी प्रसिद्धि 'बुद्धचरित' के सफल अनुवाद 'लाइट ऑफ एशिया' के प्रसंग में है। एक पुस्तक खीष्ट के जीवन पर उन्होंने लिखी थी और नाम रखा था : 'दि लाइट आव दि वर्ल्ड'। यह पुस्तक अधिक प्रसिद्धि नहीं प्राप्त कर सकी। श्री ए० जी० शिरेफ ने सियारामशरण जी की रचना का मेल ब्राउनिंग की एक कविता से सिद्ध किया है।[६९] इस कविता में एक अरब चिकित्सक अपनी चिकित्सा के कुछ अनुभव बतलाता है।

---

६५. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, प्रस्तावना, पृष्ठ ५
६६. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १४
६७. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १४
६८. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १४
६९. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १४

एक बार उसे एक व्यक्ति मिला, जो कहता था, कि मुझे एक यहूदी चिकित्सक ने कब्र से उठा लिया। वह किसी दंगे में मारा गया था। वह यहूदी स्वयं खीष्ट ही थे। रक्त-मांस की देह धारण कर संसार में अवतरित हुए थे। यहाँ तक तो वे बातें हुईं जो 'अमृतपुत्र' से मेल खाती है। अब देख लिया जाय कि कथावस्तु की किस चित्रपटी पर रचना के कमनीय चित्र उरेहे गये है।

कथा-प्रसंग कवि ने पुस्तक के आरम्भ में दिया है। उसी का संक्षेप यहाँ दिया जाता है। अरब के सीरिया नामक प्रान्त के एक भाग का नाम है पेले-स्टाइन अथवा पेलेस्टिना। अनुमानतः दो हजार वर्ष पूर्व यह भाग रोमन साम्राज्य का एक अंग था। यहाँ यहूदी बसा करते थे। येरुशलेम इनका धार्मिक तीर्थ था। विक्रम सम्वत् के प्रारम्भ में समय का झोंका इस जाति की जड़ को हिला गया। यहाँ का राजा रोमन प्रतिनिधियों का दास था और प्रजा के प्रति अत्याचार करता था।

फैरिसी और सैड्यूसी नाम के दो धार्मिक सम्प्रदायों में फैरिसी अधिक कर्मकांडी थे। उनका धर्म कर्मकांड और जातिभेद की सुरक्षा तक सीमित था। सैड्यूसी वर्ग सुधारक था। सांसारिक उन्नति की चिन्ता में इस वर्ग वाले रूढ़ियों को तिलांजलि दे चुके थे। जाति-भेद की शृंखला भी उनके लिए भग्न हो चुकी थी।

जिस समय ईसु का जन्म हुआ उस समय यहूदियो का राजा हेरोद नाम का क्रूर व्यक्ति था। रोम के सम्राट् को वह इसलिए प्रसन्न रखता था, कि मनमाने ढंग से प्रजा को कष्ट दे सके। इसने पुजारियों को प्रसन्न करने के लिए येरशलेम में एक भव्य और नवीन मन्दिर का निर्माण करवाया था। यहूदियों का वह दल जो सामाजिक स्वतन्त्रता पर विश्वास करता था, देश का शत्रु माना जाता था। इन्ही परिस्थितियों में योहान और ईसु नामक दो महापुरुष उत्पन्न हुए।

योहान अपने शिष्यों पर जल छिड़क कर उन्हें दीक्षित करता था। सरलता, पवित्रता और स्पष्ट वाणी से प्रभावित होकर अधिकांशतः लोगों ने योहान की शिष्यता ग्रहण की थी। 'योहान' का विश्वास धर्मराज्य पर था। इस बात के लिए उसने भविष्यवाणी भी की थी, कि भविष्य में धर्मराज्य की स्थापना होने वाली है। जनता के विश्वासी हृदय पर 'योहान' ने पैगम्बर के रूप में अमिट छाप छोड़ी थी। यह उसका व्यक्तित्व था जिसका अभिनन्दन जनता करती थी।

ईसाई धर्म में पैगम्बर और ख्रीष्ट के पृथक्-पृथक् अर्थ होते हैं। पैगम्बर का तात्पर्य ईश्वर का पैगाम लाने वाला तथा ख्रीष्ट का अर्थ अभिषिक्त होना होता है।[७०] हिब्रू भाषा में इसके लिए 'मसीहा' शब्द आता है। इस समय राज्यासन पर आसीन द्वितीय हेरोद नामक व्यक्ति अपने भाई की विधवा के साथ विवाह कर चुका था। योहान का हृदय यह दृश्य देख कर विचलित हो उठा। इस कार्य की निन्दा करने के अभियोग में सम्राज्ञी ने योहान को कारागार में डलवा दिया। एक बार हेरोद ने अपनी लड़की के नृत्य पर प्रसन्न होकर उससे पुरस्कार माँगने के लिए कहा। अपनी माता से प्रेरणा पाकर उसने योहान का शिर माँगा। इस प्रकार इस ईश्वरीय ज्योति का अन्त हुआ।

जिस प्रकार ज्योतिषियों ने कंस से बतलाया था कि तेरा शत्रु जन्म ले चुका है उसी प्रकार हेरोद को भी बताया गया था कि बेथलेहम में उसका शत्रु ईसु के रूप में अवतार ग्रहण कर चुका है। हेरोद ने कंस के ही समान उस गाँव के दो वर्ष से कम अवस्था वाले बच्चों को मरवा डाला था। ईसु के माता-पिता ईसु को लेकर नेज़ेरथ भाग गये थे। योहान के जन्म के लगभग छः मास बाद ईसु का जन्म हुआ था। ३० वर्ष की अवस्था में ईसु ने योहान से दीक्षा ली थी। ऐसा कहा जाता है कि ४० दिन तक पहाड़ पर तपस्या करने से उन्हें अनेक प्रकार की सिद्धियाँ मिली थीं और धर्मतत्त्व से भी परिचय प्राप्त हुआ था। परिणामस्वरूप जनता उनका उपदेश सुनने के लिए अधिक मात्रा में आने लगी थी।

ईसु की शिक्षाओं के फलस्वरूप यहूदियों की निराश रजनी में आशा की किरण फूटी। दलबन्दी और भेदभाव की शृंखला जर्जर होकर टूट चली। जनता का मानस आनन्द की लहरों से मचल उठा। ईसु की तीखी फटकार और निर्मम आलोचना शास्त्र-पंथियों हेतु क्षत में क्षार का काम करने लगी। अन्ततः ईसु को सूली पर लटकना पड़ा। अमृतपुत्र में दो व्यक्तियों द्वारा ईसु के प्राण-रक्षा के लिए किये गये संघर्ष का वर्णन है। 'सामरी' और 'क्रूसधर' नाम से सम्पूर्ण पुस्तक दो भागों में विभक्त है। सामरी की कहानी कवि के ही शब्दों में इस प्रकार है—

"सामरी नाम से लिखी गयी पहली कविता समारा प्रान्त से संबंधित है। यह प्रान्त यहूदियों की दृष्टि में इतना अपवित्र था कि उन्हें गैलिली (स्थान

---

७०. श्री किशोरलाल मशरूवाला के अनुसार (अमृतपुत्र की भूमिका)

विशेप) जाना होना तो समारा होकर जाने की अपेक्षा समुद्र के मार्ग से अथवा चक्कर काट कर दूसरे भूभाग से होकर जाते थे। यहूदियो मे राजा और पुजारियो का विरोध देख कर ईसु ने गैलिली जाना उचित समझा था। स्थलविशेप के प्रति उनके मन मे घृणा न थी। अत. उनकी यात्रा समारा से ही होकर हुई।"[७१]

कहानी इस प्रकार आगे बढती है कि ईसु गाँव के बाहर कुएँ पर बैठे थे। ईसु के शिष्य आहार हेतु गाँव गये थे। इसी बीच एक स्त्री आयी जिससे ईसु ने पीने के लिए जल माँगा। उसको आश्चर्य हुआ कि उच्च कुल वाले मेरा छुआ जल किस प्रकार पी लेगे। इस 'स्त्री' का नाम न मिलने के कारण कवि ने इसे 'सामरी' कहा है।

पुस्तक का दूसरा भाग जिसको 'क्रूसधर' नाम से सम्बोधित किया गया है सायमन नामक एक व्यक्ति की अपनी एक कहानी है। सायमन अपनी यात्रा पर था। उसी मार्ग से वधिक क्रूस पर चढाने के हेतु ईसु को ले जा रहे थे। वधिको ने सायमन को क्रूस ढोने के लिए बाध्य किया था। ईसु का 'क्रूसारोहण' सायमन के ही मुख से वर्णित है।

यहाँ तक तो हुई कथावस्तु की बात। अब देखना है कि इस कृति मे किन वर्णन प्रणालियों का सहारा कवि ने लिया है। पुस्तक के आरम्भ मे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की कतिपय पक्तियाँ उद्धृत है—

अपना ऐसा रक्त-मांस सब
और गात्र था ईसा का
पर जो अपना परम पिता है
पिता मात्र था ईसा का।[७२]

मंगलाचरण के अन्तर्गत कवि ने कामना प्रकट की है, कि वह वन-वन मे बिखरी राम-महिमा के प्रति नत मस्तक होने मे सक्षम हो सके—

राम वन वन में तुम्हारा संचरण
हो जहाँ जिस रूप में नत हो सकूँ।
शूल वह जो भव विभव पातक हरण,
स्वरित करके कंठ में टुक ढो सकूँ।[७३]

---

७१. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, कथा-प्रसग, पृष्ठ १२
७२. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १७
७३. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २०

कहना न होगा कि अमृतपुत्र की रचना दो बातों को लेकर हुई है -

१—समारा प्रान्त की उस स्त्री (सामरी) की बात जो कि अपनी निकृष्टता के निर्मोक से अपने को आवृत्त समझ बैठी थी। उसके हाथ का जल ईसु ने पान किया।

२—ईसु को क्रूसारोहण हेतु ले जाते हुए प्रहरियों ने 'सायमन' नामक व्यक्ति से बेगार ली थी। आगे की सम्पूर्ण कथा का वर्णन (ईसु का क्रूसारोहण) सायमन ने स्वयं किया है।

मुक्त छंद की स्वतः प्रवाहित धारा का सहारा लेकर कवि आगे बढ़ता गया है। जहाँ कहीं आवश्यकता पड़ी है प्रकृति-वर्णन भी किया गया है। इससे काव्य-धारा की छवि में चारुता आयी है। 'सामरी' के प्रसंग में एक स्थल दृष्टव्य है—

अनतिदूर भविष्य के सुवसन्त की
सुचिर सुषमा श्री विभा निज में भरे
अमृत घन की यह नई रिमझिम हुई
घूर कांदे से पटी ही भूमि पर
और अमृता वह गिरा जग की प्रथम
अधम मेरे ये श्रवण ही सुन सके
निखर कर यह धन्य मैं यह धन्य हूँ।[७४]

एक बात इसी प्रसंग में और कहनी है कि अमृतपुत्र का अनुवाद अंग्रेजी में श्री ए० जी० शिरेफ ने किया है—'दि क्रॉस बियरर।' यह पुस्तक 'लन्दन रायल इंडिया पाकिस्तान एण्ड सीलोन सोसायटी' से प्रकाशित हुई है। सियारामशरण जी ने इस प्रबन्ध के लेखक को बताया था कि प्रसिद्ध विद्वान डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने अनुवाद की प्रशंसा की है। अनुवादक ने अनुवाद की भूमिका में लिखा है—

"I have been in touch throughout the author who has accepted my version as accurate. He tells me indeed that his knowledge of English is very limited but he has had the help of friends who are learned in both languages."[७५]

---

७४. अमृतपुत्र : सामरी खंड, पृष्ठ ३४
७५. The Cross-bearer (Translator's note)

इन सब कठिनाइयों और सत्प्रयासों को देख कर यह कहा जा सकता है कि कवि की यह कृति हिन्दी के लिए एक अनुपम देन है। यद्यपि कवि ईसाई नहीं है, पर रचना में उसने अपनी श्रद्धा और धार्मिक औदार्य का पूर्ण परिचय दिया है।

गोपिका

'गोपिका' कवि की अन्तिम और मृत्यूत्तरजात काव्य-कृति है। इस पुस्तक की रचना में बारह वर्ष का समय लगा है।[७६] 'गोपिका' में प्रकाशित अपने एक पत्र में सियारामशरण जी ने लिखा है कि ग्रंथ का एक-चौथाई रेलयात्रा में कहीं खो गया था।[७७] बाद में कवि ने परिश्रमपूर्वक पुस्तक का उद्धार किया था। इस कार्य से उन्हें सन्तोष मिला था। कवि के जीवनकाल में पुस्तक का प्रकाशन नहीं हो सका। रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में सियारामशरण जी ने लिखा है—

"बीज रूप में आकर गोपिका धीरे-धीरे मेरे मन में अंकुरित हुई और दीर्घकाल तक वह वहाँ धीरे-धीरे ही पल्लवित होती जा रही। बीज की सप्राणता तो इसमें अनिवार्य है पर उसके चारों ओर प्रकाश और अन्धकार के साथ अवकाश की ऐसी भंडार-भूमि न होती तो उसके द्वारा अपने आप यह निर्माण सम्भव न हुआ होता। लगता है, इसका निर्माण नहीं स्वयं प्रस्फुटन हुआ है।"[७८]

इसी संदर्भ में कवि ने 'गोपिका' को अपने अग्रज श्री मैथिलीशरण गुप्त के आशीर्वाद का सुफल माना है, क्योंकि वही कवि का सम्बल रहा है। 'गोपिका' की समाप्ति सावन तीज, सम्वत् २०१९ (३ अगस्त, १९६२, दिन के ग्यारह बजे) को हुई थी। संयोगवश श्री मैथिलीशरण गुप्त की जन्म-तिथि भी उसी दिन पड़ती थी। इससे सियारामशरण जी को परम सन्तोष हुआ था। वे निम्न-लिखित स्वरचित पंक्ति को कभी नहीं भूले —

'धन्य हुआ, मेरी लघुता में तेरी गुरुता भरी-भरी।'

कृति के प्रारम्भ में कवि ने जो कथा-सूत्र दिया है उसका संक्षेप इस प्रकार है —

---

७६. श्री सियारामशरण गुप्त द्वारा श्री मैथिलीशरण गुप्त को लिखे गये पत्र से १५ अगस्त १९६२ को चिरगाँव (झाँसी) से दिल्ली के लिये लिखा गया यह पत्र 'गोपिका' में प्रकाशित है।

७७. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३

७८. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४

कृष्ण गोकुल से द्वारावती जा चुके हैं। ब्रज में इन्दुमती नाम की गोपी की बडी चर्चा है। गोकुल से मथुरा जाते समय श्याम इन्दीवर सरसी के पास कुछ क्षणों के लिये रुके थे। इन्दुमती की यह सरसी गोकुल की सीमा पर थी। गोपियों को सरसी के समीप आनन्द मिलता है, इसलिए वहाँ जाकर वे अपना हृत्ताप मिटाना चाहती हैं। इन्दुमती श्याम की खोज में निर्जन कानन में भटक रही है। वृन्द-वाटिका मे स्नान-मार्जन के पश्चात् वह गौरी-पूजन के लिए इन्दीवर और पुंडरीक चुनती है। इन नील और श्वेत कमलों का चयन साभिप्राय हो रहा है। इसी वर्ण का वर पाने की साध इन्दुमती के मन में है। अपने छोटे भाई आमोद से इन्दुमती को कृष्ण का पता चलता है।

एक दूसरे दिन श्याम और इन्दुमती का मिलन होता है। श्याम इन्दुमती से कहते हैं—

'सतत प्रमोद मयि, प्रेम मयि, दासी नहीं, तू सुचिर संगिनी है और चिर सहचर सखा हूँ मैं।'[७६]

इसके बाद श्याम और इंदु का व्रज-विहार होता है। कुछ समय पश्चात् श्याम व्रज से चले जाते है। इन्दु ध्यानावस्थित होकर एक कहानी सुनती है। प्रतीत होता है कि भगवान् विष्णु अपनी शेष शय्या पर लेटे हुए कह रहे हैं—अपनी रक्षा के लिए एक बार तुमने रुक्मिणी के मुख से पुकारा था। वैसी ही पुकार फिर आ रही है। बात यह थी कि रुक्मिणी के ज्येष्ठ भ्राता रुक्मी के साथ दुर्जय नामक भूपाल ने शिक्षा पायी थी। सहाध्यायी होने के नाते रुक्मिणी का परिचय उसे प्राप्त था। ज्योतिषियों ने बताया था कि रुक्मिणी लक्ष्मी का अवतार है। इसी लोभ से दुर्जय रुक्मिणी के साथ विवाह करना चाहता था। संयोगवश दुर्जय वृन्द-वाटिका की ओर से निकला और इन्दुमती को रुक्मिणी समझ बैठा। वन में भटकते-भटकते ताप से व्याकुल होकर दुर्जय श्याम-सखा भद्र को बताता है कि वह उस प्रान्त में अपनी एक राजधानी बनायेगा जो कृष्ण की द्वारावती से टक्कर लेने वाली होगी।

इन्दु की सखी को व्रज पर आने वाले दुर्दिन का आभास मिल जाता है। व्रज के ऊपर दस्युओं का आतंक छाया हुआ है, सखी को इन्दु की चिन्ता है। इसी बीच मंजु नामक गोपी पता नही कहाँ चली जाती है? 'दुर्जय', 'शूर' नाम के गोप की सहायता से दस्युओं का एक दल एकत्र करता है। 'शूर' को एक बार

७६. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५८

उसके पिता ने 'क्रूर' कह कर पुकारा था । तब से वह क्रूर नाम से ही प्रसिद्ध है । एक दिन दुर्जय क्रूर के यहाँ से लौट रहा था । मार्ग मे उसे पता चला कि कुछ लोग एक नारी को लूटने का प्रयास कर रहे है । यह नारी 'निम्बा' नाम की नर्तकी थी ।

इधर आमोद नाम के व्यक्ति ने नव गोपों का संगठन किया है । आमोद के साथ ही रुचिरा नाम की एक गोपी भी है । एक हंस समाचार देता है कि उस नारी को सताने वाले नव गोप ही है । रुचिरा कृष्ण का ध्यान करती है । वन के कुएँ की जगत पर संध्या समय भद्रसखा की भेट एक यात्री से होती है । यह यात्री द्वारावती से कोई सन्देश लेकर युधिष्ठिर के यहाँ जा रहा था । भद्र को उसी यात्री ने बताया कि रुक्मिणी ने मथुरा निवास मे एक इन्दीवर सरसी बनवाकर उसका नाम 'इन्दुमती' रखा है । 'मंजुला' के द्वारावती जाने का समाचार भी उसी यात्री से मिलता है । आमोद स्वयं वृन्द-वाटिका की रक्षा करने की बात सोचता है । नव गोपों ने भद्र सखा को वृन्द-वाटिका मे नही आने दिया । प्रवाद है कि वे 'निम्बा' के मोह मे पड गये है ।

कुरुक्षेत्र के यात्रा-पर्व के समीप निम्बा भद्र से मिलती है । एक बार कृष्ण निम्बा की छोटी झोपड़ी मे छिप गये थे । वहाँ से एक ही दिन के पश्चात् वे मथुरा चले गये थे । तभी से इन्दु उस झोपडी को चाहती है । वह फिर श्याम से मिल नही पायी । निम्बा और क्रूर के प्रणय-सम्बन्ध का पता प्राय सभी को था । आमोद को कही से सूचना मिल गयी कि भद्र सखा निम्बा के साथ प्रणय सम्बन्ध स्थापित किए है तथा गोकुल के शत्रुओ का साथ देने जा रहे है । आमोद ने इन्दु और माधव के सम्बन्ध की चर्चा इधर-उधर सुनी है ।

मंजुला ने पुरुष के वेष मे द्वारावती में प्रवेश किया । रुक्मिणी ने मंजुला का आदर-सत्कार किया । उसने कृष्ण से भी भेंट की किन्तु व्रज की रक्षा की कोई बात नही की ।

दुर्जय एक नवीन स्नातक को नव गोपो की खबर लाने का चर बनाता है । भद्र निम्बा के साथ क्रूर के पिता धीर के यहाँ पहुँचता है । धीर उसका पुराना मित्र है । शूर की पत्नी स्वस्ति ने सपत्नी समझ कर भी निम्बा का स्वागत किया ।

एक अँधेरी रात में इन्दु पिछली बाते याद करती है । मंजुला ने द्वारावती के समाचार से इन्दु को अवगत करा दिया था । इन्दु अपने मन मे सोचती है—

मंजुला नन्दन कानन वाले पारिजात के नीचे बैठ आयी है। ब्रज को इस प्रकार का पारिजात नहीं चाहिए। इन्दु को याद आती है पुरानी घटना, कि एक बार माधव उसे गोवर्धन पर्वत की सर्वोच्च चोटी पर अँधेरी रात में ले गये थे। वहाँ दिन मे जाना और चढना भी कठिन है।

दूसरे दिन प्रात काल भद्र सखा लौटकर बताते है कि मंजुला ने अपने न आने का समाचार भेजा है। 'पारिजात-प्रसंग' में उसने सुना था कि सत्यभामा ने कृष्ण के साथ पारिजात भी देवर्षि की सेवा मे दे दिया है। इसी बात से प्रसन्न होकर मंजुला और निम्बा ने कृष्ण को अपना सब कुछ अर्पित कर दिया है। कथासूत्र के अनुसार . —

'इन्दु को निम्बा के छप्पर का मोह था और इस प्रकार अब वह इन्दु का भी हो गया है।'[८०]

स्नातक बन्धु के आने पर भद्र ने उसे बताया कि दस्युओं ने धीर को यातना और प्रतारणा से कष्ट पहुँचाया है। स्वस्ति भी पता नहीं कहाँ है? इन्दु क्रोधित होकर अपनी वृन्द-वाटिका कृष्ण को समर्पित करती है और स्वस्ति को खोजने निकल पड़ती है। इन्दु के चले जाने पर वातावरण सूना-सूना लग रहा है। आमोद तभी से कुछ खोये से बैठे है। उन्हें वातावरण भयावह लग रहा है। यह बात हंस ने कही थी।

एक दिन अचानक सारे व्रज में आनन्द छा जाता है। नारियाँ प्रमुदित होकर विचरण करने लगती है। लगता है कृष्ण ने ब्रज में प्रवेश किया है। आमोद को इस बात का पता लगता है। उसके हृदय में कोई उत्साह नही है, क्योंकि इन्दु जीजी के लिए वह व्यग्र है। आवेश में आमोद के मुख से निकल पड़ता है—'मै उनकी प्रजा नही हूँ। क्यों मैं उनके लिए उठूँ'?[८१] श्रीकृष्ण का पदार्पण होता है। गौरी-पूजन के हेतु वे सरसी से इन्दीवर लेते है। आमोद एक विराट् अनुभूति के साथ श्रीकृष्ण के सामने प्रणत होता है। श्रीकृष्ण आशीर्वाद देते हैं। यही कथा का अन्त हो जाता है।

'गोपिका' की रचना का आधार मधुर प्रेम है। इसी प्रेम से भक्ति-भावना सुदृढ होती है। कवि ने शृंगार रस का विषय चुनकर आद्योपान्त उसका सम्यक् निर्वाह किया है। सत्यभामा, रुक्मिणी, इन्दु और निम्बा सभी अपने प्रियतम से

---

८०. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १३
८१. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १४

सन्तुष्ट हैं। 'गोपिका' में कवि की सामंजस्य दृष्टि और समर्पण भावना साकार हो उठी है। इस प्रसंग में डा० सावित्री सिन्हा लिखती हैं :—

"सियारामशरण जी ने यह काव्य आधुनिकीकरण के उद्देश्य से नही, एक अत्यन्त प्राचीन भारतीय भाव-परम्परा की पुनः प्रतिष्ठा और परिष्करण की दृष्टि से लिखा है—जिसके मूल में है पूर्ण समर्पण, अहं का विगलन और सामजस्य दृष्टि जो समस्त विश्व के साथ अपनत्व स्थापित करके चलती है।'[८२] कृष्ण-काव्य का जो रूप उत्तर मध्यकाल में पाया जाता है, वह रसिकता और शृंगारिकता में भरा हुआ है। सियारामशरण जी ने विपय-वस्तु के रूप में परिष्कार किया है। उनके शृंगार-वर्णन में भी एक प्रकार की स्वच्छता और सौम्यभाव है। यही उनके स्वभाव के अनुकूल भी पड़ता है। 'गोपिका' का एक प्रसंग है :—

'मानती थी, प्रखरा हूँ, वह मैं नवमुग्धा हुई। ज्ञात न था यह रूप। नभ के सुनील परिधान में उषा-सी प्रकटित थी। देखा दृग है वड़े-वड़े किसी मृगी के से। कान्ति है कनक की वदन में। ज्योतिस्सर के शैवाल कच है। यूथिका का चक्र-गुच्छ जूड़े पर, कंचुकी के ऊपर है मुक्ताहार।'[८३]

यहाँ मंजु के सौन्दर्य का वर्णन है। कवि द्वारा प्रस्तुत विभावन व्यापार से शृंगार रस की निष्पत्ति अवश्य हुई है, किन्तु प्रतीत होता है कि कवि के संयम और मर्यादा ने लेखनी को स्वच्छन्द विचरण नही करने दिया। यदि इसे भी एक मार्ग मान लिया जाय तो हम कह सकते है, कि कृष्ण और गोपी सम्वन्धी काव्य-परम्परा को सियारामशरण जी ने अपनी 'गोपिका' मे एक नया मोड़ दिया है। यहाँ विलास-भावना का उन्मेप नही अपितु सात्विकता की आदर्श झाँकी है। यद्यपि 'गोपिका' में नटनागर श्याम की मनमानी, अनेक शृंगारिक चेप्टाओं और विलास-प्रक्रियाओं का वर्णन नहीं है, किन्तु फिर भी अनेक प्रसंगों के विम्व ग्रहण की अद्‌भुत क्षमता काव्य को उत्कृष्ट वना देती है। निशाभिसारिका सद्यःस्नाता, दिवाभिसारिका तथा वासकसज्जा आदि नायिकाओं के जो चित्र इसमें खीचे गये है वे जन सामान्य के विलास की सामग्री नही है, अपितु उसी एक श्याम के मिलन के लिए उनकी सज्जा की गयी हे। हम इसे प्रेमिकाओं की एकनायकता कहेंगे। स्वकीया परकीया के भेदों को मिटाकर

---

८२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ३० जून १९६३
८३. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृ० १४६

'गोपिका' के माधव ने सभी को अपने दर्शन का लाभ दिया है। कवि ने अनेकता को एकता में बदला है। आत्म-विश्वास की धरती पर पलने वाली इन्दु को दुःख इस बात का है कि श्याम उससे बताकर क्यों नहीं गये ? अनुराग का यह रूप भी श्लाघ्य है।

'गोपिका' में प्रेम के अलौकिक रूप की झलक भी हमें मिलती है। कृष्ण के आदर्श से दस्युओं का अभिभूत हो जाना और अपना मार्ग बदलना आज के बुद्धिवादी मानव को आश्चर्यचकित कर सकता है, किन्तु परिस्थिति विपरीत होने से किसी आदर्श की महिमा नष्ट नहीं होती है।

कुल मिलाकर १७ खंडों में 'गोपिका' का संयोजन किया गया है। प्रबंध-कल्पना में कवि की कुशल लेखनी ने अपनी पटुता का परिचय दिया है। कथा-प्रसंग संवादों से आगे बढ़ता गया है। इन संवादों से पात्रों के चरित्रों का भी पता चलता है। संवादों की भाषा सहज, सरल शब्द-शक्तियों से युक्त तथा प्रसंगानुकूल है।

'गोपिका' की लोकभावना उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। कृष्ण के रसिक चरित्र को सियारामशरण जी ने लोकमंगल की ओर उन्मुख किया है। इस वर्तमान युग की एक आवश्यकता की पूर्ति 'गोपिका' द्वारा हुई है। क्रूर और स्वार्थी प्रवृत्तियों पर प्रेम की विजय दिखाकर कवि ने युग को एक मार्ग दिखाया है। वर्तमान काल के अनेक प्रतीक 'गोपिका' में बिखरे पड़े हैं। कवि ने समष्टि के मंगल की कामना की है। यह मंगल कामना जगत्व्यापिनी है किसी व्यक्ति-विशेष की धरोहर नहीं। श्रीकृष्ण के अंतिम वचनों के साथ इस प्रसंग को समाप्त करता हूँ :—

> स्वस्थ रखना है तुम्हें सर्व को निखिल को।
> रहना तुम्हें है यहीं श्री सुरभि पथ पर।
> संचय के साथ-साथ त्याग का उपार्जन करो सप्रेम।
> निस्संताप जूझना है पक्ष प्रतिपक्ष के समस्त दुर्जयों से।
> सभी क्रूरों से विजय समग्र पाओ — तब तक।[८४]

---

८४. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृ० २३०, २३१

उपन्यास

गोद

हिन्दी साहित्य मे ग्राम जीवन को चित्रित करने वाले उपन्यास कम है। इस क्षेत्र में प्रेमचन्द जी उपन्यासकार के रूप में अधिक ख्यातनाम हुए। उनके वाद कुछ लेखकों ने प्रयास किया किन्तु वह वात न आ सकी।

ग्राम-जीवन की झाँकी सियारामशरण जी के उपन्यासों मे भी हमें मिलती है। 'गोद' का प्रथम प्रकाशन सं० १९८९ में हुआ था। लेखक ने प्रारम्भिक पंक्तियों में अपना विश्वास प्रकट किया है। विश्वास के प्रसग मे चौसर के खेल की व्याख्या की गयी है। लेखक का साहित्यिक जीवन भी चौसर का खेल है। लगता है लेखक उपन्यास-कला के मन्दिर मे प्रवेश करते हुए सकोच का अनुभव कर रहा है। पर इसकी उसे चिन्ता भी नही :—

......"परन्तु मुझे कोई सकोच नही है। साहित्यिक जगत के अपरिचित और अज्ञात पथ पर चलते हुए भी मुझे कोई सकोच नही है। जहाँ किसी जगह भटक जाने की आशंका होगी, वही खिलाने वाले का पुण्य सकेत मुझे उचित मार्ग दिखाकर मेरी सारी कठिनाई को दूर कर देगा।"[८५]

'गोद' उपन्यास अपनी गोद में एक ग्रामीण गृहस्थ की कहानी लिये है। दयाराम के छोटे भाई शोभाराम का विवाह विधवा कौशल्या की पुत्री किशोरी से निश्चित हो जाता है। किशोरी अपनी माँ के साथ प्रयाग के मेले मे जाती है। वहाँ वह अपनी माँ से बिछुड जाती है। पर्याप्त छानवीन के पश्चात् सेवा-समिति के स्वयंसेवकों द्वारा किशोरी अपनी माँ के पास पहुँचा दी जाती है।

केवल इसी घटना के आधार पर समाज की आँखों ने हठात् किशोरी को पापमय देखा था। समाज को व्यक्ति-विशेष के चरित्र पर आशका और पाप के चिह्न शीघ्र दिखायी पड़ते है। समाज वेचारा क्या जाने कि वह व्यक्ति भी उसी की एक कड़ी है। दयाराम की इच्छा का आधार लेकर विवाह की ग्रथि वाँधी नही गयी। शोभाराम के परिवार वाले पृथ्वीपुर के जमीदार के यहाँ सम्बन्ध वनाने की वात सोचते है।

इधर शोभाराम अपनी भाभी को माँ के समान मानता है और भाभी भी उसे पुत्रवत् मानती है। नवीन विवाह सम्बन्ध की वात किशोरी के मन पर चोट करती है। वह रोगग्रसित होती है। शोभाराम उसे देखने जाता है।

---

८५. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६ (भूमिका)

प्रेम के पता नही कितने प्रसूनों की पराग-धारा ने शोभाराम और किशोरी के हृदयों को सुवासित किया पर दयाराम की चोरी-चोरी। इस स्थल पर हमें शोभाराम के हृदय की विशालता के दर्शन होते है। हां, भ्रातृ-भावना पर धक्का अवश्य लगता है। इसी बीच रामचन्द्र नामक एक ग्रामीण व्यक्ति ने शोभाराम को बहकाकर दयाराम के ऊपर न्यायालय में अभियोग चलवा दिया। इस बात को जानकर दयाराम को जो मर्माघात हुआ उसे वे भूल न सके। अन्त में रामचन्द्र की करतूतों का पता सबको लग जाता है और शोभाराम अपनी भूल पर पश्चात्ताप प्रकट करता है। उधर लेखक अपनी निम्न पंक्तियों के साथ ग्रंथ की समाप्ति करता है :—

"दयाराम ने शोभाराम को छाती से चिपकाते हुए कहा—कुछ हर्ज नही, तू तो लड़का है, भूल तो मुझ से भी हो गयी। मुझसे बचकर तू सीधा अपनी भौजी के पास जा रहा था परन्तु उनकी गोद तो बहू ने आकर भर दी, मेरी खाली थी सो तू भर दे।"

'आँसुओं की दोनों धाराएँ एक मे मिलकर एक दूसरे संगम तीर्थ के जल से दयाराम की गोद सजल कर उठी।'[८६]

'गोद' में भ्रातृ-भावना, सामाजिक जटिलता, ग्राम की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति और धन-लिप्सा आदि का उद्घाटन किया गया है। कथावस्तु को आकर्षक बनाने में लेखक की भाषा, लाक्षणिक प्रयोग, सहज स्वाभाविकता, प्राकृतिक चित्रावली तथा शैली आदि तत्त्वों ने पूर्णरूपेण साथ दिया है। भाव-क्षेत्र का कवि घटनाओं के संसार में भी सफलता प्राप्त कर सका है, यह उसकी लेखनी का नैपुण्य है। श्रीविद्याभूषण अग्रवाल ने कवि और लेखक के इस संगम पर लिखा है :—

"कवि केवल भावनाओं का चित्रण करता है। उपन्यासकार को भावना और घटना दोनों का सुन्दर मिश्रण करना होता है। सियारामशरण में यह क्षमता है और यही कारण है कि कवि होते हुए भी वह एक सफल उपन्यासकार भी हो सके।"[८७]

गुप्त जी की कला में अधिक चतुरता कथावस्तु के संयोजन में दिखायी पड़ती है। कही भी शिथिलता और गतिरोध नही पाया जाता। गोद का कथानक निर्बाध गति से अपने गन्तव्य की ओर बढ़ता जाता है। इससे पाठक को समय ही नही मिलता, कि वह कुछ अन्य बात सोच सके। लेखक की भाँति उसके पात्र भी सहज, विनम्र और पारिवारिक जीवन के प्रति आस्था रखने

---

८६. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १४३

८७. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ५७

वाले हैं। यही कारण है कि लेखक के व्यक्तित्व की छाप पात्रों पर दिखायी पड़ती है।

'गोद' में पात्रों की संख्या अधिक नहीं है। कुल लगभग सात पात्र हैं। कुछ अपनी महत्ता का परिचय देते हैं और कुछ अपनी क्षुद्रता प्रकट करते हैं। शोभाराम का भाई के पास पुन: जाकर क्षमा-हेतु पृष्ठभूमि तैयार करना तथा मुखिया रामचन्द्र का धोखे से मुकदमा दायर करवाना अपना अलग-अलग महत्त्व रखते हैं। गुप्त जी के विचार से कोई मनुष्य जन्म से महान नहीं होता। कभी-कभी उसके छोटे काम भी उसे महान बना देते हैं। 'गोद' की प्रस्तुति के प्रति लेखक कितना आस्थावान है —

"यदि मैं अपने लक्ष्य पर न पहुँच सकूँ तो चित्त में कोई ग्लानि न होगी। इसलिए आज के दिन का यह उत्सव मैं बिना किसी संकोच के, आनंद सम्पन्न कर रहा हूँ।"[८८]

अंतिम आकांक्षा

यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। रामलाल एक साधारण नौकर है। अपनी मृत्यु के समय तक उसमें अपने स्वामी के प्रति पायी जाने वाली श्रद्धा जागृत रहती है। रामलाल का सारा जीवन उपन्यास की कथावस्तु है। कथावस्तु की पूर्व संयोजना का कोई विशेप ध्यान प्रतीत नही होता है। लगता है जैसे-जैसे रामलाल के जीवन के पग आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे उपन्यास का कलेवर भी बड़ा होता जाता है। श्री विद्याभूषण अग्रवाल ने 'अन्तिम आकांक्षा' के अन्तर्गत रवि बाबू की 'काबुलीवाला' कहानी के भावों को देखने का प्रयास किया है :—

"यह गुप्त जी का दूसरा उपन्यास है जो कभी-कभी पाठक को रवीन्द्र की कहानी 'काबुलीवाला' का स्मरण करा देता है। काबुलीवाला जिस प्रकार मिनी के प्रति वात्सल्यपूर्ण था उसी प्रकार इस उपन्यास का नायक रामलाल अपने स्वामी की पुत्री के प्रति श्रद्धालु है।"[८९]

एक बार डा० भगवानदास ने इस उपत्यास के बारे में लिखा था कि यह उपन्यास उन्हें 'नारी' से भी ज्यादा अच्छा लगा है। कारण उन्होंने बताया था : "विचारों की विविधता" और "कथा का विस्तार।"[९०]

---

८८. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६ (भूमिका)
८९ सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ५८
९०. अंतिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, अंतिम फ्लैप

प्रस्तुत उपन्यास में रामलाल (रमला) नामक नौकर की कहानी लेखक स्वयं कहता है। लेखक को जहाँ कहीं समय मिलता है यहाँ वह समाज के सम्वन्ध में दो-चार व्यंग्य अवश्य कर देता है। सारे उपन्यास में वचन-वक्रता के अनेक वाक्य विखरे हैं। रामलाल के परिचय में लेखक लिखता है —

"एक वालक मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। अवस्था में वह मुझ से वड़ा न था, पर अपनी स्वस्थ देह के कारण वह पहली ही वार मुझे अपने से वड़ा मालूम हुआ। मुझे अपनी ओर देखते देख कर अपरिचय के किसी संकोच के विना उसने कहा--परसादी भैया सौदा-पत्ता लेने वाजार गये हैं। क्या काम है, मैं कर दूँगा।"[६१]

पुस्तक का प्रारम्भ नाटकीय ढंग से किया गया है। इस प्रकार के प्रारम्भ के कुतूहल की सृष्टि होती है, जो उपन्यास की एक विशेषता है। एक दिन दस-वारह साल के लड़के को अपने यहाँ काम करते देख मालिक की लम्वी साँस निकल पड़ी। लेखक लिखता है, कि "इस साँस का कारण वताने के लिए मुझे वहुत पीछे लौटना पड़ेगा।"[६२] अन्तिम आकांक्षा में—जनतांत्रिक भावनाओं का पोषण हुआ है। दलित वर्ग के एक दीन-हीन व्यक्ति को उपन्यास का नायक चुन कर सियारामशरण जी ने अपनी सहृदयता का अच्छा परिचय दिया है।

पहले कहा जा चुका है कि रामलाल के ही आसपास पूरे उपन्यास की कथावस्तु दिखायी पड़ती है। रामलाल अपने स्वामी का विश्वसनीय सेवक है। अपने स्वामी की सेवा के लिए वह अपने प्राणों को भी संकट में डाल सकता है। उसके सिर पर अपमानों का वोझ है और उसके आसपास सेवा का हरा-भरा वातावरण है जहाँ उसे कर्म की छाया में शान्ति मिलती है। एक वार सहसा उसके स्वामी के घर पर रात में डाकुओं का आक्रमण हो जाता है। रामलाल सजग है। वह प्राणपण से अपने स्वामी की सहायता करता है। लेखक ने रामलाल की जिस सजगता का चित्रण किया है वह धन्य है। रामलाल की वन्दूक से एक यज्ञोपवीतधारी डाकू की हत्या हो जाती है। इसी अपराध का आधार लेकर वारात वाले कहते हैं, कि जिस घर में रामलाल-सा हत्यारा रहता है उस घर में हम भोजन नहीं करेंगे। रामलाल अपने स्वामी की मर्यादा सुरक्षित रखना चाहता है। अपनी 'मुन्नी' के हाथ में दो रुपये देकर जब वह विदा लेता

---

६१. अंतिम आकांचा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६
६२. अंतिम आकांचा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५

है उस समय कुछ ही लोग रामलाल के साथ सहानुभूति दिखा पाते हैं। उपन्यास का अन्तिमांश वहाँ और भी अधिक कारुणिक हो जाता है जहाँ रामलाल को न्यूमोनिया हो जाता है और वह अपने रोग के साथ कारागार में डाल दिया जाता है। अपनी अंतिम आकांक्षा रामलाल निम्न शब्दों में प्रकट करता है—

"भैया भगवान से प्रार्थना है कि अपने ही गाँव में मैं झट से फिर जन्म लूँ, दूसरे जन्म में मैं तुम्हारी ही चाकरी में पहुँचूँ। तुमने मेरे लिए जो कुछ किया है उससे मैं उरिन नहीं हो सकता।"[६३]

प्रो० देवराज उपाध्याय ने गुप्त जी के तीनों उपन्यासों से तीन उद्धरण छाँटे हैं और बताया है कि यदि ये वाक्य उपन्यास से निकाल दिये जायँ······तब इनको पढ़ा जाय—"मैं जरा हल्के मूड में होऊँ तो यह कहूँ कि गुप्त जी के उपन्यास ऋण ये वाक्य = शून्य।"[६४]

अपने सम्बन्धियों से दूर उस कारागार में जहाँ उसके हृदय की कोमल भावनाएँ और स्वामी की भक्ति वन्दिनी थी रामलाल की आत्मा ने शरीर का साथ छोड़ा। उसकी मृत्यु से लेखक की लेखनी विकल हो उठी—

"न तो समाज का दंड वह पूरा-पूरा भोग सका और न कारागार का ही। तो क्या इसीलिए वह अंतिम आकांक्षा प्रकट की थी।"[६५] यही 'अंतिम आकांक्षा' का सामान्य परिचय है।

उपन्यास-कला के आधार पर 'अंतिम आकांक्षा' पर आगे विचार किया जायगा।

नारी

गुप्त जी की यह कृति अत्यन्त लोकप्रिय और ख्यातिप्राप्त है। रचना का समर्पण मुंशी अजमेरी जी की पुण्य स्मृति में किया गया है। यह उपन्यास अपने अन्तर में भारतीय नारी की वह कहानी लिये है जिसमें उसका त्याग, सहनशीलता, प्रेम और वात्सल्य का संगम समाहित है। ध्यान रहे कि यदि भारत का प्रतिनिधित्व भारत के ग्राम करते हैं तो वहाँ की नारियाँ भी समाज के

---

६३. अंतिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १६७
६४. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १०१
६५. अंतिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १६८

मध्य अपना विशिष्ट स्थान रखती है। चाहे वह 'गोदान' की धनियाँ हो, अथवा 'नारी' की जमुना। 'नारी' उपन्यास की कथा का प्रारम्भ गाँव से होता है। बीच मे नगर का वर्णन भी आता है, किन्तु अनियन्त्रित कोलाहल से पूर्ण नगर में लेखक का मन नही रमता। फलत: फिर वही ग्राम उसका यात्रा-पथ बन जाता है जहाँ से कथावस्तु प्रारम्भ होती है।

डाकिए की आवाज सुन कर जमना के मन के किसी निगूढ आनन्द की बुझी वत्ती उसके रोम-रोम में जाग उठती है —

"उसका एक हाथ पानी के घड़े पर और दूसरा गोबर के ऊपर जहाँ का तहाँ रुक गया। किसी विशिष्ट पाहुने के आगमन में उसके शरीर का समस्त क्रिया-व्यापार जैसे क्षण भर के लिए अनध्याय मनाने बैठ गया हो।"[६६]

जमनाबाई का पति वृन्दावन कलकत्ते चला गया है। उसकी दरिद्रता ने उसे ऐसा करने के लिए बाध्य किया। वृन्दावन का पुत्र हल्ली अभी छोटा है। यदि वृन्दावन अपनी प्यारी जमना को अकेली छोड गया है तो दे गया है वह निधि, जिसे देखकर जमना जीती है। जमना पति-वियोग से दुखित होती हुई भी वात्सल्य से सुखी है पर्याप्त समय तक दूर देश के परदेशी का कोई समाचार नही आया। जमना अपने प्रिय पुत्र हल्ली का मुँह देख कर जीती रहती है जो उसके दाम्पत्य प्रणय का प्रतीक है। उधर कलकत्ते मे वृन्दावन को किसी मिल मे काम मिल जाता है। यह बात पत्र द्वारा जमना को ज्ञात होती है। वृन्दावन का वृद्ध पिता अपने प्रिय पुत्र को देखने के लिए व्याकुल है। जमना ने अपने वृद्ध ससुर की सेवा मे कोई कसर उठा न रखी थी। पुत्र-वियोग मे वृन्दावन का पिता भी परलोकगामी हुआ।

हल्ली मदरसे जाने लगा। इतना ही नही उसके बस्ते की गड्डी भी बड़ी हो गई। इस बडी गड्डी से विद्या की प्राप्ति चाहे न हो पर जमना को यह देख कर विश्वास हो जाता था कि उसे विद्या आती है। जमना के लिए ससार मे अनेक प्रलोभन थे पर उसे अपने पति की स्मृति बहुत सताती है। ससुर की बात वह कभी नही भुला पाती—

"वे मुझे असीस गये है—मेरा पुण्य मुझे सुखी रखे।"[६७]

---

६६. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५

६७. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १८

हल्ली के साथ जमना के महाजन का लड़का हीरालाल भी पढ़ता है। कभी-कभी दोनों की खटपट हो जाती है। एक दिन हल्ली जमना से कलकत्ते से सूचीपत्र मँगाने की बात इसलिए कहता है कि कलकत्ते का नाम सुन मां प्रसन्न होगी। अपनी यह भी इच्छा हल्ली प्रकट करता है कि वह बड़ा होकर कलकत्ते जायेगा। स्वप्न की दुनिया मे दिखाई पड़ने वाली चित्रावली का दृश्य अत्यन्त मार्मिक है जो सोती हुई जमना के मन की चित्रपटी पर चमक जाता है—

"जमना चली जा रही है, बराबर चली जा रही है। उसके पैर दुखने लगे है फिर भी बीच में वह रुक नही सकती। गाड़ी के पीछे रस्सी से बँधी किसी की हाल की कटी शाखा की तरह वह अपने आप आगे घिसटती चली जा रही है। इधर-उधर की झाड़ी में उलझ कर कब उसका वस्त्र फटता है, कब शरीर में खरोंच लगती है, इसका विचार करने की शक्ति उसमें नही।"[६८]

एक दिन जमना रामायण खरीदने के लिए हल्ली को दो रुपये देती है। अपने खेतों के बीच जहाँ-जहाँ जमना पति के साथ परिश्रम करती थी, वे स्थल उसे अचानक याद आ जाते है। एक दिन उस आम के बिरवे को देख उसकी स्मृतियाँ सजग हो उठी जिनको उसके पति ने रोपा था। यह आम का बिरवा दाम्पत्य प्रणय का प्रतीक है। दोनों ने मिल कर इसे लगाया था। इसी बीच 'अजीत' नामक व्यक्ति से जमना का लगाव हो जाता है। यह लगाव समाज से गुप्त था।

जमना को दृढ़ विश्वास है कि उसका पति लौटेगा पर अजीत उसके ऐकान्तिक और नीरस जीवन में रस का संचार कर देता है। हाँ, यहाँ जमना और अजीत के सम्बन्ध में विचारकों के दो मत है—

१ – कुछ विचारक जमना के प्रेम को ऐन्द्रिक मानते हैं। उनका कहना है कि जमना अपनी सहज प्रस्फुटित वासनात्मक भावनाओं की तृप्ति चाहती है।

२—अन्य कोटि के समालोचकों के विचार से जमना एक निर्दोष पति-परायण पत्नी है। अपने पति के प्रति आस्था रखते हुए उसके लौटने की मधुर आशा का साम्राज्य हृदय में बसाये वह अजीत से अपना सम्बन्ध स्थापित करती है। अजीत का साथ उसे पति को पाने में सहायता करेगा।

---

६८. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २३

इस प्रसंग में निम्न पंक्तियाँ उपयुक्त प्रतीत होती है—

"कुछ लेखकों ने जमना के अजीत के प्रति आकर्षण को ऐन्द्रिक माना है। इसमें वे जमुना का नितान्त पतन देखते हैं, किन्तु ऐसा निर्णय देना असहानुभूति-पूर्ण तो है ही, अनुचित भी है। अजीत को स्वीकार करने में जमना का पतन नहीं नारी मात्र का उत्थान है।"[९९]

इस प्रकार हम देखते है कि जमुना अजीत के प्रति आकर्षित होकर भी अपने पति और पुत्र का तिरस्कार नहीं करती। अजीत जमना के लिए वृन्दावन की खोज में तत्पर है। उसमें अपनी दुर्बलताएँ भी हो सकती हैं, पर वृन्दावन को खोज लाने का प्रयास उसकी सारी दुर्बलताओं पर पानी फेर देता है।

मोतीलाल और उसके पुत्र हीरालाल के कुचक्रों के परिणामस्वरूप आया हुआ वृन्दावन जमना से नहीं मिल पाता। जमना की भूमि और कुएँ की रजिस्ट्री मोतीलाल के नाम हो जाती है। वे गाँव के सेठ है। वृन्दावन आकर अपनी सम्पत्ति सेठ के नाम लिखा देता है, जिसमें भूमि, कुआँ तथा रुपयों के लिए रुक्का सब कुछ है। जमना को यह दुर्घटना पीड़ा देती है। हल्ली ज्वर से पीड़ित होता है। वह हल्ली को विश्वास दिलाती है कि तेरे बप्पा ही रहेंगे तू चाहे जहाँ रह। इस जगत के अँधियारे में हल्ली का हाथ पकड़ कर बढ़ने वाली जमना समाज की सहानुभूति बटोर लेती है।

यही है 'नारी' की कथावस्तु जिसके ढाँचे में उपन्यास की रचना की गयी है। अपनी सहज बोधगम्य शैली सरल भाषा एवं कथन-चातुर्य के आधार पर उपन्यासकार की लेखनी ने रचना-कौशल का अच्छा परिचय दिया है। प्रो० देवराज उपाध्याय के अनुसार—

"जीवन को सहज भाव से स्वीकार करने वाले, कहीं भी निषेध नहीं, भारी से भारी विरोध को भी अपनी सहजता से हल देने वाले। यह सहज भाव उपन्यास में देखना हो और आप मुझ से कहें कि हिन्दी का कोई उपन्यास तो मैं सियारामशरण जी के उपन्यास की ओर संकेत करूँगा, प्रेमचन्द की ओर नहीं, जैनेन्द्र की ओर भी नहीं।"[१००]

अन्य उपन्यासकारों की कृतियों की कोटि में रख कर सियारामशरण जी के उपन्यासों पर आगे विचार किया जायेगा। यहाँ केवल इतना ही पर्याप्त होगा।

---

९९. सियारामशरण गुप्त : संपादक डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ६०
१००. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १०६

कहानी

मानुषी

कथा-साहित्य के अन्तर्गत जिस प्रकार सियारामशरण जी के उपन्यास अपनी विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध है, उसी प्रकार उनकी कहानियाँ भी स्वाभाविकता, विषय-वस्तु और रचना-कौशल में पर्याप्त आगे है। मानुषी उनकी कहानियों का संग्रह है। इस संग्रह में कुल मिला कर आठ कहानियाँ है। इसके अतिरिक्त 'प्रतीक' नामक द्वैमासिक के कुछ अंकों में भी तीन कहानियाँ मिलती हैं। मानुषी की कहानियाँ बहुत पुरानी है। इनकी रचना के बाद लेखनी इतस्ततः भ्रमण करती रही है। उसकी यात्रा में काव्य, उपन्यास, नाटकादि मिलते रहे हैं।

'प्रतीक' में प्रकाशित कहानियों के नाम हैं—(१) चुक्खू, (२) प्रेत का पलायन (३) रामलीला। 'मानुषी' में प्रकाशित कहानियों में प्रथम कहानी लगभग २४ पृष्ठों की है। कहानी का कथानक शंकर-पार्वती के संवाद से प्रारम्भ होता है। शंकर संसार के सुख-दुःख से मुख मोड़ना चाहते है, पर पार्वती उसके निवारण हेतु पति से आग्रह करती है—इस प्रकार कहानी का कलेवर आगे बढ़ता है।

'रुपये की समाधि' का अन्त सुधारवाद के दृष्टिकोण से किया जाता है और प्रारम्भ में कुतूहल का सृजन है। 'बैल की बिक्री' में ऋणदाता महाजन की क्रूरता, बैल के प्रति ममता तथा पारस्परिक प्रेम आदि भावों के चित्र स्पष्ट उभर कर कहानी को सफल बना देते है। कहानी के रचना-विधान के अनुसार सियारामशरण जी की कहानी में अपनापन और शैली का वैचित्र्य ही मिलेगा। 'काकी' कहानी का आधार बाल-मनोविज्ञान है। 'त्याग' भी इसी भूमिका में है। 'कोटर और कुटीर' में नयी सूझ-बूझ है। प्रतिज्ञा के जिस भार को चातक युगों से ढोता आ रहा है, उसका बेटा उसका अन्त करना चाहता है। पिता और पुत्र का वाद-विवाद कितना सामयिक है। एक ओर प्राचीनता को सँजोने का उद्देश्य है तो दूसरी ओर पुरातनता के निर्मोक को हटाने का उत्साह। चातक का बेटा कहता है—

"पुरानी बातें पुराने समय के लिए थीं। आप अब भी उन्हें इस तरह छाती से चिपकाए हुए हैं, जिस तरह वानरी मरे बच्चे को चिपकाए रहती है।

घनश्याम की बाट आप जोहते ही रहिए। अब मुझ से नहीं सध सकता।"[१०१]
पिता अपने पुत्र के उपर्युक्त कथन का उत्तर देता है--

"घनश्याम के सिवा हम और किसी का जल ग्रहण नहीं करते। यही हमारे कुल का व्रत है। इस व्रत के कारण अपने में न तो किसी की मृत्यु हुई और न कोई दूसरा अनर्थ।"[१०२]

प्राचीनता और नवीनता के प्रति प्रेम करने वाले भी प्राचीन और नवीन हैं। 'कष्ट का प्रतिदान' में कुतूहल का सृजन युक्तिपूर्ण ढंग से किया गया है। रामनारायण अपनी स्त्री गोमती को ट्रेन पर चढ़ा कर स्वयं स्टेशन पर ही रह जाता है। कारण यह था कि एक अन्य स्त्री को लौटा लेने के लिए वह ट्रेन से उतर गया था। अगले स्टेशन को उन्होंने सूचना भेजी अवश्य, पर वहाँ जाने पर स्टेशन-मास्टर ने चुप्पी साध ली। इतने में पता लगता है कि उसकी स्त्री ने गोमती को स्टेशन पर उतार लिया है जिसको लौटा लेने के लिए रामनारायण नीचे उतरा था। 'प्रतीक' में प्रकाशित 'चुक्खू' कहानी का नायक चुक्खू एक महाजन का सहपाठी है। चुक्खू को प्लेग के मुँह में झोंक कर महाजन अपनी दुकान के लिए अन्य चुक्खू चाहता है।

"कल के मरने वाले चूहों और मनुष्यों में एक का नाम चुक्खू है। उस टीन के नीचे छप्पर वाली पिंजड़े जैसी दुकान के लिए अब दूसरा चुक्खू चाहिए।"[१०३]

श्री विष्णु प्रभाकर इस कहानी की आलोचना करते हुए कहते हैं—

"यद्यपि चुक्खू का चित्रण एक आदर्शवादी के रूप में हुआ है, तो भी इसमें उस कला की उपासना है जो दलित मानवता की शक्ति बन कर शोषण के इस उद्घोष को चुनौती देती है कि चुक्खू मरा या दूसरा चुक्खू चाहिए। दूसरा भी मर जाये पर शोषण की यह शाश्वत् परम्परा रुकने वाली नहीं है।"[१०४]

सियारामशरण जी की सारी कहानियाँ मानवतावादी हैं। आस्तिकता की चित्रपटी पर उरेहे गये ये चित्र अपनी रेखाओं में यथार्थ और प्रगति को लिये पाठक के मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ते हैं। इन चित्रों पर दृष्टि डालते हुए श्री ठाकुरप्रसाद सिंह ने लिखा है—

---

१०१. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १००
१०२. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १००
१०३. प्रतीक सं० २ : पावस १९४९
१०४. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १२९

"श्री सियारामशरण गुप्त ने यद्यपि कहानियाँ कम लिखी है, किन्तु साहित्य में वस्तुगत कारुण्य से उनकी शैली मे एक मार्दव सब कही दीखता है, अपनी सीमा से काफी आगे बढ़ कर निर्णय देते है।"[१०५]

एक बात और इसी प्रसंग में कह देनी है। कहानियों का कथानक लेखक पूर्व निश्चित नही रखता। इस बात को उसने एक बार डा० प्रभाकर माचवे से कहा था -

"चिरगाँव में एक बार बातचीत के एक सिलसिले में सियारामशरण जी ने मुझे बतलाया कि वह अपने कथानक पहले से योजना करके मन मे या कागज पर नक्शे की तरह खीच कर नही रखते।"[१०६]

आगे चल कर इन कहानियों की शैली, भाषा, कथावस्तु, कथोपकथन, वातावरण, सामाजिकता, मनोवैज्ञानिकता, आदर्श और यथार्थ के समन्वय के दृष्टिकोण पर विस्तार में विचार किया जायगा।

नाटक

पुण्यपर्व

सियारामशरण जी का यह प्रथम नाटक है। लेखक ने इसकी परिसमाप्ति बुद्ध जयन्ती वैशाख पूर्णिमा संवत् १९८९ को की थी। प्रस्तुत नाटक मे कुल सात पुरुष पात्र हैं और स्त्री पात्र केवल तीन है। कथानक का समय भगवान गौतम के जन्म के पहले का है। घटनाएँ राजधानी हस्तिनापुर एवं मृगचिरा नामक स्थान में घटित हुई थी। राज प्रासाद और वन प्रदेश नाटक-लीला का क्षेत्र रहा हैं। किसी समय सुतसोम (श्रुतसोम) इन्द्रप्रस्थ का राजा था और विशाखा उसकी रानी। यशोधन सुतसोम का सहचर सचिव था। ब्रह्मदत्त वाराणसी का निर्वासित राजा था। किंकर जैसा कि उसके नाम से विदित है ब्रह्मदत्त का अनुचर था तथा रसक किंकर का साथी था। पूर्णा और उत्पला विशाखा की दासियाँ थी। एक पात्र नन्द था जिसका कि उपयोग नाटक-रचना-विधान मे कम किया गया है। नाटक का प्रारम्भ सुभद्र से ही आगे बढ़ता है। कहानी जिसके आधार पर नाटक का भवन खड़ा किया गया है, अहिंसा पर आधारित है। वर्तमान जीवन के संघर्षपूर्ण वातावरण को चित्रित करने का नाटककार ने सफल प्रयास किया हैं। अहिंसा और हिंसा का सघर्ष नाटक में सजीव हो उठा है। इसी को सत् और असत् का संघर्ष भी कहा गया है—

१०५. हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ : राजकमल मूल्यांकनमाला, पृष्ठ ५७
१०६. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ११४

"इस युग का एक प्रसिद्ध सांस्कृतिक नाटक है 'पुण्यपर्व'। सियारामशरण जी ने इस नाटक को सत् और असत् के प्रतीक रूप में सुतसोम बोधिसत्व और ब्रह्मदत्त नरखादक को रखा है। इन दोनों का संघर्ष ही नाटक का प्राण है। इस नाटक को यदि प्रतीकवादी मान लिया जाय तो इसमे वह संघर्ष समझना चाहिए जो मानव के अन्तःकरण में देवता और राक्षस के मध्य होता रहता है।"[१०७]

डा० ओझा ने इसे एक सांस्कृतिक नाटक माना है; किन्तु जैसा कि उन्होंने सकेत किया है इसको प्रतीक नाटक भी माना जा सकता है। इन्द्रप्रस्थ का राजा सुतसोम अहिंसा का प्रतीक है जब कि वाराणसी का निर्वासित राजा (ब्रह्मदत्त) हिंसा का साक्षात् निदर्शन है। ब्रह्मदत्त मनुष्यो को बलिपशु बना कर अपनी सिद्धि के लिए उन्हें मौत के घाट उतारना चाहता है। आतंक की भूमिका मे सारा सभ्य समाज उससे भयभीत है। उसके क्रूर कर्म की कहानी दूर-दूर तक फैल चुकी है। अपने छल और प्रपंच के आधार पर वह बलि चढ़ाने के लिए राजा सुतसोम को भी बन्दी बनाता है। इस कार्य मे उसके अनुचर किंकर और रसक ने साथ दिया था। सुतसोम और ब्रह्मदत्त मे अपने-अपने पक्ष के सम्बन्ध मे बातें हुई। सुतसोम की बातों से प्रभावित होकर ब्रह्मदत्त ने एक निश्चित काल के लिए सुतसोम को इस बात पर छोड़ दिया कि वह पुन. लौट आयेगा। सुतसोम ने अपने वचन को पूरा किया। अन्त में अपने सद्व्यवहार के कारण सुतसोम ब्रह्मदत्त के हृदय को जीत लेता है। सोमवती के पुण्य अवसर पर सौ पुरुषों की बलि से क्षुब्ध वातावरण पुन. प्रफुल्ल हो उठता है। सुतसोम और ब्रह्मदत्त दोनों तक्षशिला मे आचार्य सुबंधु के यहाँ सहपाठी थे। प्रारम्भ में ही दोनों की विचारधाराओं में विरोध रहा है। यही 'पुण्यपर्व' नाटक की कथावस्तु है।

नाट्यकला के आधार पर पुण्यपर्व के बारे में आगे विस्तार से विचार किया जायेगा। यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि इस नाटक की मूल भित्तियाँ गाधीवाद पर आधारित हैं। बौद्ध-युग के पूर्व बलिदानों की इतनी भरमार थी कि सारी जनता व्याकुल और संत्रस्त सी थी। गुप्त जी ने सुतसोम के मुख से क्षात्र धर्म के सम्बन्ध मे कहलवाया है —

"यदि क्षात्र धर्म का मूल हिंसा ही है तो धिक्कार है उसे! चला जाय वह

---

१०७. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास : डॉ० दशरथ ओझा, पृष्ठ २७

रसातल को। हमें उससे कोई प्रयोजन नहीं। क्षात्र धर्म की इस भाँति प्रशंसा करके तुम उसे हिंस्र पशु की ही संज्ञा दे रहे हो, इससे उसका गौरव बढ़ नहीं सकता। × ×तुम हमें यह तो बताओ कि तुमने जो इतने बालक, युवा और वृद्ध पकड़-पकड़ कर बन्दी कर रखे हैं, उन्होंने कौन-सी दुष्टता की है और तुम्हारे इस क्षात्र धर्म में संसार का कौन-सा कल्याण छिपा है।"[१०८]

इतना ही नहीं ब्रह्मदत्त से परस्पर वार्तालाप के प्रसंग में सुतसोम और भी कहता है :—

एक बार ही श्रेष्ठजनों का
संग करो तो बेड़ा पार।
नीचों का बहुबार संग भी
नहीं कर सकेगा उद्धार॥[१०९]

लगता है समस्या का निदान ढूँढते-ढूँढते लेखक की शैली उपदेशात्मक बन गयी है। अभिनय की दृष्टि से रंगमंच पर पुण्यपर्व भले ही असफल दिखायी दे पर उद्बोधन, विवेक और सत्य के उद्घाटन और उन्नयन की दृष्टि से नाटक की उपलब्धि बेजोड़ है।

गीतिनाट्य

उन्मुक्त

कवि की इस कृति को 'गीतिनाट्य' की संज्ञा दी जाती है। इस रचना में युद्ध और उससे अनिवार्य रूप से होने वाले दुष्परिणामों का वर्णन है। संत्रस्त मानव-वाणी का सत्कार करने वाली लेखनी ने रक्तपात और हिंसा का जो चित्र खींचा है वह हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी है। रचना की पृष्ठ-भूमि में प्रेरणा-स्रोत बनने का श्रेय किस वातावरण को प्राप्त है, इसे ज्ञात करने के लिए मैथिलीशरण गुप्त लिखित 'उन्मुक्त' की भूमिका देखनी होगी—

"संसार में इस समय जो घोर हिंसाकांड हो रहा है, जिस प्रकार निरीह नागरिकों की हत्या की जा रही है और विज्ञान का दुरुपयोग करके जैसा पैशाचिक प्रलय मचाया जा रहा है, उसे देख कर जिसने अपने मारक रोग की

---

१०८. पुण्यपर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ०, १२६

१०९. पुण्यपर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ०, १३४

इस छन्द की मूल गाथा इस प्रकार है :—

सकिदेव सुतसोम सब्भि होति समागमो।
सा नं संगति पालेति नासब्भि बहु संगमो।

—पुण्यपर्व, पृ० १३५

उपेक्षा करके उसके विरुद्ध अपने पाठकों की महानुभूति प्रवुद्ध करने का प्रयास किया है, मेरे निकट स्वयं सफलता से उसके उद्योग का मूल्य अधिक है।"[११०]

कवि ने रचना को समाप्त किया है। संवत् १९९७ की चैत्र अमावस्या को और 'स्थापना' (भूमिका) लिखी गयी है वैशाख कृष्ण २, १९९८ को। यह ईसवी सन् १९४१ था। समाचारपत्रों में उस समय नर-संहार के चित्रों को देख कर कवि की लेखनी विचलित हो उठी थी। डा० नगेन्द्र ने 'उन्मुक्त' की रचना के सम्वन्ध में लिखा है —

"बुन्देलखंड की शस्यश्यामला भूमि, रुग्ण कवि का एकान्तवास, युद्ध के भीषण समाचारों को मोटे-मोटे अक्षरों में देने वाले दैनिक पत्र। कवि श्वास-रोग से पीड़ित है। पत्रों में हत्याकांड के समाचार पढ़कर उसकी व्यथा द्विगुणित हो जाती है। जी घुटने लगता है। मन के बोझ को हलका करने के लिए वह बाहर देखता है। वसुन्धरा का अंचल उसे शरण देता है और वह कुछ स्वस्थ होकर कविता लिखता है, जिसका सुफल होता है 'उन्मुक्त'।"[१११]

कवि ने उन्मुक्त की रचना रूपक-योजना के आधार पर की है। लौह द्वीप के शासक के प्रचण्ड प्रताप से संसार के प्राणी प्रभावित होते हैं। ताम्र, रौप्य आदि द्वीपों को इसके सम्मुख नतमस्तक होना पड़ा है। रक्त-रंजित धरती कराह उठी है। ध्वस्त द्वीपों में सिर उठाने का पौरुष नहीं वच पाया है। अव कुसुम द्वीपवासियों को लौह द्वीपवासियों से संघर्ष करना पड़ रहा है। कुसुमद्वीप का शक्ति-संचालक 'गुणधर' अपने साथी 'पुष्पदन्त' से कहता है : —

होगा परिणाम अन्त में क्या, यह सोचा है
क्या हम हरा सकेंगे लौह सैन्य दल को ?
ताम्र ध्वस्त, रौप्य ध्वस्त, ध्वस्त प्राय स्वर्ण भी
तुम कहते हो हुआ; हम तो कुसुम हैं,
होगी क्या हमारी दशा ?[११२]

लौह द्वीप के सैनिकों का सामना कुसुम द्वीपवासी वड़ी लगन और उत्साह के साथ करते हैं। पुष्पदंत (कुसुमद्वीप का सेनानी) अपना सारा पराक्रम अपने देश की मर्यादा को वचाने में लगा देता है। अनेक प्रयत्नों के फलस्वरूप कुसुमद्वीप पर लौह द्वीप ने अपनी विजय-पताका फहरा दी। कुसुम द्वीप के

---

११०. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २
१११. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, ० १७५
११२. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० २३

निवासियों में पुष्पदंत, गुणधर और मृदुला विशेष सक्रिय दिखायी पड़ते हैं। ये तीनों हृदय से शान्ति-कामना करते है पर अवसर पड़ने पर पुष्पदंत कहता है—

अच्छा ही यह हुआ कर सके निज में अनुभव।
है कैसा पाशविक हिंस्र ज्वाला का तांडव॥
इस अविजय में आज बात यह हमने जानी
प्रतिहिंसा में छिपा हुआ निज का अभिमानी
कोई हिंसक क्रूर स्वयं हममें बैठा था,
जो वैरी में नहीं हमारे में पैठा था।[११३]

कष्ट, असत्य और पाशव हिंसा के कारण कुसुमद्वीप वाले पराजित हुए हैं। यदि ये बातें इस द्वीप के पास वैरियों से अधिक होती तो हारने का कोई कारण न था। गुणधर अहिंसा की उपासना सच्ची लगन से करता है। ऐसे वातावरण में रहते हुए भी पुष्पदंत वैरियों का सामना करने के लिए 'भस्मक किरण' का प्रयोग करता है। इसी घटना को देख कर गुणधर का मन युद्ध से विकल हो जाता है। युद्ध के प्रति अनास्था की भावना को पुष्ट करने का कार्य हिंसा करती है। ऐसी दशा में भी गुणधर चाहता है:—

नये खेत की शस्य-शालिनी में लहराकर,
लतागुल्म की विकच हास-माला में छाकर।
खिल उठता है नवल रूप यौवन में फिर फिर
ओझल होकर लौट लौट आता है सुरुचिर।
हूँ मैं भी आश्वस्त नहीं यों ही जाऊँगा
हृदय-हृदय में भाव-सुमन बन खिल जाऊँगा।[११४]

वह अपनी इसी कामना को लेकर आगे बढ़ता है। पुष्पदंत द्वारा दंडित होकर भी वह आगे बढ़ता जाता है। अन्त में तीनों (मृदुला, पुष्पदंत और गुणधर) एक ही पथ के पथिक देखे जाते हैं। जीवन से उन्मुक्त होने में भी तीनों का साथ है। 'उन्मुक्त' की सारी कथा 'अलिंद', 'घोषणा', 'मृदुलालय', 'रणस्थल', 'सुश्रूपालय', 'शिविर', 'ध्वंस', 'एकान्त' और 'उन्मुक्त' आदि शीर्षकों में विभक्त है। इन शीर्षकों को देख कर विषय-वस्तु का आभास मिल जाता

---

११३. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० १६१
११४. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० १४७

है। डा० नगेन्द्र ने सुश्रूपालय वाले प्रसंग को अधिक कारुणिक और मर्मस्पर्शी माना है।[११५] गुणधर को कवि का प्रतिरूप मान कर उसमे कवि के हृदय की छाया देखी जा सकती है।

गीतिनाट्य की परम्परा मे उन्मुक्त एक आकर्षक प्रयोग है। 'प्रसाद' के करुणालय के ढर्रे पर चलने वाले 'उक्मुक्त' को मैथिलीशरण जी के अनघ और प्रेमी जी के 'स्वर्ण विहान' की कोटि मे रखा जा सकता है। डा० दशरथ ओझा ने स्पष्ट शब्दो मे लिखा है :—

"सियारामशरण जी ने 'उन्मुक्त' नामक एक गीतिनाट्य लिखा है। इस नाटक मे भी श्री मैथिलीशरण जी के 'अनघ' के समान स्थान से दृश्य की सूचना मिलती है। जैसे 'शयनकक्ष', 'सुश्रूपालय', 'संचालन-शिविर' इत्यादि। इसमे रगमच के सकेत भी अनघ के सदृश मिलते है। यह नाटक भी गीति-नाट्य की दृष्टि से सफल नाटक कहा जा सकता है।"[११६]

सम्पूर्ण रचना मे कही ध्वस के चित्र है, कही हिंसा की ज्वाला जल रही है। कही अहिंसा सहमी हुई दृष्टिगोचर हो रही है और कही हिंसा अपना नाशोन्मुख विस्तार-वैभव चाहती है। कही दया की मन्दाकिनी उमड रही है और कही विश्वासघात का विष हिंस्रा सत्रस्त मानव को मृत्यु की ओर सकेत कर रहा है। किन्तु कवि समाश्वस्त है। इसलिए कि विनाश के खडहरो मे निर्माण के दीप जलेगे। क्रूरता का साम्राज्य समय-सागर मे डूबेगा। कवि ने अहिंसा को हिंसा के प्रत्युत्तर मे स्वीकार किया है। तार्किक शैली का सहारा लेते हुए कहा गया है, कि हिंसानल से हिंसानल नही शान्त होता। युद्ध से युद्ध नही बन्द होता। रचना के ध्येय का उद्घाटन वहाँ होता है जब मृदुला पुष्पदंत के टीका लगाते हुए कहती है—

> कर दूँ आओ आज तुम्हे कुंकुम का टीका।
> सबके हित में लाभ करें नव विजयश्री का॥[११७]

रचना का मुख्य विषय मृदुला का यही वाक्य है।

---

११५. सियारामशरण गुप्त : स० डा० नगेन्द्र, पृ० १७६

११६. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास : डा० दशरथ ओझा, पृ० २९७

११७. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० १६६

निबन्ध-संग्रह

झूठ-सच

इस कृति में सियारामशरण गुप्त जी के निबन्ध संग्रहीत है। निबन्धो की संख्या २८ है। अन्तिम निबन्ध 'झूठ-सच' है। इसी के आधार पर पुस्तक का नामकरण किया गया है। झूठ-सच के निबन्ध पूर्णरूपेण वैयक्तिक है। उन पर लेखक की शैली की अमिट छाप है। वस्तुतः कवि सियारामशरण गुप्त का व्यक्तित्व झूठ-सच से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

जहाँ एक ओर सियारामशरण जी ने धरती से लेकर स्वर्ग तक के विषयों पर कविताएँ लिखी हैं; उपन्यास के क्षेत्र में 'गोद', 'नारी' और 'अन्तिम आकांक्षा' की त्रिवेणी प्रस्तुत की है, तथा नाटक और कहानियों के क्षेत्र में भी प्रवेश किया है वही उन्होंने निबन्ध-साहित्य को भी अछूता नहीं छोड़ा। इस-लिए बहुमुखी दौड़-धूप के लिए श्री बनारसीदास जी ने एक बार लिखा था—जिसका उल्लेख लेखक ने झूठ-सच के प्रारम्भ में किया है :—

"कई बरस पहले बंधुवर श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक बार मेरे विषय में कुछ ऐसी बात लिखी थी कि मैं कविता में अनादृत हुआ, इसलिए उधर से हटकर मैंने यह लिखा, वह लिखा और और कुछ लिखा और अब मैं निबन्ध लिखने की सोच रहा हूँ।"[११८]

श्री बनारसीदास जी की इस बात को 'झूठ-सच' के लेखक ने निषेध समझा है। इस निबन्ध में भी वह स्नेह की कल्पना करता हुआ आगे बढ़ता है। साथ ही यह भी कहता चलता है कि मेरे लिए 'मा फलेषु कदाचन' की आज्ञा लगी हुई है। भूमिका में लेखक ने अपने रोग का भी परिचय देना चाहा है पर डरते-डरते।

यह डर इसलिए कि पाठकों को रचना चाहिए न कि रोग। किन्तु जिसे रचना का ही रोग हो उसका रोग ही वरेण्य है।

झूठ-सच के लिए 'प्रारम्भिक' में एक बात लेखक ने बड़े पते की कही है—

"...... परन्तु यह सच है कि यह संग्रह पाठक के लिए नहीं, बन्धुजनों के लिए किया गया है। अपरिचितों में भी वह बड़ी संख्या में मिल सकते है। बन्धु के लिए, सुहृद के लिए, आत्मीय के लिए परिचय की शर्त नहीं होती। इसी से इन रचनाओं में जहाँ-तहाँ निजी बातें भी मिलेंगी।"[११९]

---

११८. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० २
११९. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३

झूठ-सच के निबधों मे केवल निजी बातें ही नही निजी ढंग भी मिलेगा। स्वतंत्रचेता लेखक यदि साधारण विषयो पर कोई बात कहता है तो उस पर भी मौलिकता की छाप लगी होती है। झूठ-सच के कुछ शीर्षक सामान्य हैं पर उन पर किये गये विचार श्रेष्ठ और तर्क-शैली पर आधारित है।

प्रथमत: 'बहस की बात' है। कविता के 'एक शीर्षक' पर भी लेखक ने विचार किया है। 'उपेक्षिता सुनन्दा' शीर्षक में उपेक्षिता हटाकर गुप्त जी केवल 'सुनन्दा' चाहते है। शीर्षक की संक्षिप्तता, उपयुक्तता और चुटीलापन उसका प्राण होता है। लेखक कहता है—

"अपनी कविता का नामकरण करते समय मेरे मित्र-कवि भूल गये है कि वह कवि हे। व्याख्याता या टीकाकार नही। व्याख्या या टीका बहुत अच्छी चीज है, उसके बिना मुझ जैसो का काम नही रुक जाता।"[१२०]

'ऋणी' के प्रसग मे लेखक अपने को उन पात्रो के सम्बन्ध मे ऋणी मानता है जिनका उत्तर वह अभी तक नही दे पाया है। 'मनुष्य की आयु दो सौ वर्ष' शीर्षक की प्रेरणा समाचारपत्र के एक रोचक समाचार से मिलती है। ससार की रगशाला पर इस निबन्ध में विचार किया गया है। निरन्तर प्रवाहशील जीवन को हँसते-हँसते समाप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। बीच-बीच मे लेखक व्यग्य भी करता चलता है :—

"खेतो मे इतना अन्न है फिर भी करोडो प्राणी भूखो मर रहे है।"[१२१]

'अन्य भाषा का मोह' मे साहबो की भाषा की अच्छी खबर ली गयी है। आगन्तुक की बोली मे भी 'साहब' बैठा हुआ है। यद्यपि वह 'काला आदमी' है पर है अग्रेज का ड्राइवर। 'अपूर्ण' में प्रकृति चित्रण है। 'एक दिन' नामक निबन्ध मे लेखक के पास कोई विषय-वस्तु नही है। वह लिखे क्या ? किसान और फेरी वाले की दशा देखकर लेखनी प्रभावित हो उठती है। फेरी वाले की असमर्थता यह है कि यदि उसे उसके कार्य का फल न मिला तो उसके घर का चूल्हा न जलेगा। 'बाल्यस्मृति' मे बचपन की एक मौलिक कल्पना का वर्णन किया गया है। मिट्टी के हाथी मे चीटी डालकर वायु जाने के सारे मार्ग बन्द कर देने पर क्या होगा ? लेखक का बाल-हृदय जिज्ञासु है। लेखक की बाल-प्रतिभा समाधान भी स्वय ही ढूँढ लेती है। जिस चीटी को हाथी के अन्दर रखा गया

१२०. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २१
१२१. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३३

है, उसके प्राण निकल कर हाथी में आ सकते है। फिर मिट्टी का छोटा हाथी सारे आँगन में खेलेगा।

इस प्रकार की बाल-कल्पनाएँ पूरी न हो सकी। जिस प्रकार मिट्टी के हाथी मे प्राण संचार नही हो सका उसी प्रकार पीतल के लोटे से अक्षय निर्झर धारा नहीं वह सकी। 'घोड़ाशाही', 'शुष्को वृक्षः', 'साहित्य और राजनैतिक', 'छुट्टी',' साहित्य में क्लिष्टता', 'आशुरचना', 'कवि चर्चा' तथा 'घूँघट' आदि शीर्षक अपने में मौलिकता और स्वतंत्र रचना-शैली लिये हैं। मुंशी अजमेरी जी से संबंधित कुछ विचार 'मुंशी जी' नामक शीर्षक मे एकत्र किये गये है। 'हिमालय की झलक' में प्रकृति चित्रण है। 'कवि की वेशभूषा' में लेखक ने मौलिक विचार-पद्धति का सहारा लिया है। अंतिम निवन्ध 'झूठ-सच' है। इस रचना मे आश्चर्य और कुतूहल पाया जाता है। तीसरे खंड की खिड़की से लेखक दृश्य देखता है। दूर पर एक मकान वन रहा है। एक राज और एक स्त्री काम कर रही है। मालिक देखभाल कर रहा है। युवक राज और युवती के सम्बन्ध मे किसी प्रकार की शंका नही करनी चाहिए।

"अतएव जो मैं उन युवक और युवती की वाते यहाँ से सुन रहा हूँ, इसमे किसी तरह का सन्देह न किया जायेगा। किया जायेगा तो उसके छीटे वहुतों को कलंकित कर देगे।"[१२२]

रधिया के पति का नाम गिरधारी था। वह मद्यप था और रधिया को अनेक प्रकार के कष्ट देता था। काशीराम (राज) ने उसको पंक-पयोधि से उवारा। लोगों के शंका प्रकट करने पर काशीराम ने कहा—'यदि रधिया गिरधारी की व्याहता है तो मेरी भी सगी बहन है।'

हिन्दी निवन्ध-साहित्य मे झूठ-सच अपना एक विशिष्ट स्थान रखता हे। एक तो इस प्रकार के निबंधों की हिन्दी में कमी है और दूसरे इनसे पाठकों को विचार करने का एक नवीन और मौलिक मार्ग मिलता है। सहज शैली, वार्तालाप जैसी, स्वाभाविकता मे गूढ़ता छिपाए है। व्यग्य भी ऐसा नही जिससे कोई तिलमिला उठे वरन् ऐसा जो अपने तीखेपन मे मधुरता लिये हो। श्री प्रभाकर माचवे ने इस शैली मे दो निबंध-संग्रहों के नाम और लिये हे—

"गभीर विचारक कवि के रूप में सियारामजी जहाँ कही-कही रूखे और

---

१२२. झूठे-सच: सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २०८

और दुर्ज्ञेय से हो जाते हैं, निबंधों में ऐसा कहीं भी नहीं होता। उनका निष्कपट व्यक्तित्व, सरल भाषा में जैसे पाठकों से वार्तालाप करता जाता है। वार्तालाप में ही संस्मृतियां गुँथी हुई होती हैं और उन्हीं में से तत्त्व-चिन्तन का नवनीत सहज भाव से ऊपर तैरता हुआ आता है। हिन्दी की दो तीन श्रेष्ठ निबंध-पुस्तकों में 'झूठ-सच', 'अशोक के फूल', 'मोन विचार' हैं।"[१२३]

'झूठ-सच' के कुछ निबंध ऐसे हैं जिनमें हम केवल वाग्विलास ही पाते हैं। यह वाग्विलास भी अपने ढंग का अनोखा है। इस श्रेणी में 'निजकवित्त' और 'घोड़ाशाही' आदि निबंध आते हैं। इनमें किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं पाया जाता। लेखनी कल्पना और विचार की धरती पर अपने लिए सामग्री बटोरती चलती है।

अंत में एक बात और कहकर इस प्रसंग का अन्त करता हूँ। सियाराम जी की यह कृति अपने साहित्य का सब कुछ लिये है। सब कुछ अर्थात् कविता, कहानी, रेखाचित्र, संस्मरण आदि। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य में यह प्रयास महत्त्वपूर्ण है।

अनूदित कृतियाँ

गीता-संवाद

महाभारत में गीता को 'सर्वशास्त्रमयी' कहा गया है। तत्त्व-विवेचन की दृष्टि से गीता का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। यही कारण है कि कर्म में प्रवृत्त करने वाली गीता विद्वानों की दृष्टि में अनुपमेय रही है। महाभारत के भीष्मपर्व में एक श्लोक आता है :—

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्र संग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुख पद्माद्विनिःसृता ॥[१२४]

वस्तुतः भारत की धर्मप्राण जनता ने गीता को सुगीता बनाने का प्रयास किया। गीता के निर्माण काल के पश्चात् कदाचित ही कोई महापुरुष अवतरित हुआ हो जिसने गीता का सहारा अपने जीवन-दर्शन के निर्माण में न लिया हो। आधुनिक युग के निर्माता महात्मा गांधी ने गीता का अनुवाद मूल संस्कृत से हिन्दी में किया था। पुस्तक का नाम रखा था 'अनासक्ति योग'। यह अनुवाद गद्यात्मक था।

---

१२३. हिन्दी निबंध : डा० प्रभाकर माचवे, पृष्ठ ७५
१२४. महाभारत : भीष्मपर्व ४३ । १

सियारामशरण जी ने भी गीता का समश्लोकी पद्यात्मक अनुवाद किया है। राम और कृष्ण की गाथा को अपने जीवन की पत्रिका पर अंकित करने वाले गुप्त-बंधु गीता को कैसे छोड़ते। पुस्तक के साथ अनुवादक का निवेदन और आचार्य विनोबा लिखित भूमिका संलग्न है। अनुवादक के निवेदन से स्पष्ट है कि पुस्तक प्रस्तुत करने की प्रेरणा पूज्य बापू से मिली हे। केवल प्रेरणा ही नही सहायता भी—

"अनुवाद में यथासाध्य सावधानी बरती गयी है। सहायता के लिए शंकराचार्य, तिलक, बापू और विनोबा आदि रहे है।"[१२५]

गीता-संवाद की रचना के समय अनुवादक के सामने सबसे बड़ी असुविधा रही है छन्द साम्य की। अनुष्टुप आदि मे पादान्त के लघु को दीर्घ करने की क्रिया हमारे लिये अस्वाभाविक हो सकती है।[१२६]

सम्पूर्ण पुस्तक में इन्ही सब कठिनाइयों के आधार पर अस्वाभाविकता आ जाना स्वाभाविक हे। कभी-कभी अनुवाद में शब्दों की कड़ी जोड़ते-जोड़ते भावों की शृंखला भग्न हो जाती है। प्रथम अध्याय से लेकर अठारहवें अध्याय तक कहीं भी इस अस्वाभाविकता की झाँकी देखने को मिल जाती है। परिचय हेतु देखा जा सकता है :—

१—(मूल) यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नितिर्मतिर्मम ॥[१२७]

२—(अनु०) जहाँ योगेश श्रीकृष्ण, जहाँ पार्थ धनुर्धर।
मेरी मति, वहीं नित्य जयश्री निधि नीति है ॥[१२८]

यहाँ 'मतिर्मम' का अनुवाद 'मेरी मति' खटकता है। सस्कृत मे कभी-कभी बिना क्रिया के भी काम चल जाता है, किन्तु हिन्दी में अस्वाभाविक लगता है। ऐसा लगता है मानो कुछ छूट गया है। एक अन्य प्रसंग में अनुवाद का स्वाभाविक रूप देखा जा सकता है—

---

१२५. गीता-संवाद : अनु० सियारामशरण गुप्त (निवेदन)
१२६. सियारामशरण गुप्त, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० ५४
१२७. श्रीमद्भगवद्गीता : अध्याय १८ श्लोक ७८
१२८. गीता-संवाद : अनु० सियारामशरण गुप्त, अध्याय १८ श्लोक ७८.

१—(मूल) त्वमादि देवः पुरुषः पुराण—
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्त रूप ।[१२९]

२—(अनु०) प्रभो, तुम्हीं हो पुरुष-प्रधान
निधान सारे जग के तुम्हीं हो ।
ज्ञाता तुम्हीं, ज्ञेय तुम्हीं अकेले
अनन्त होके सब ओर छाये ।[१३०]

इन पक्तियो मे भाषा और भाव का सामंजस्य ठीक है । कोई भाव छूटने भी नही पाया और भाषा मे कृत्रिमता भी नही आ पायी ।

छन्द-प्रक्रिया को यथावत् रखने के लिये जो अस्वाभाविक प्रयोग अनुवादक से बन पड़े है उनके लिये वह विवश है ।

हमारी प्रार्थना

प्रस्तुत पुस्तिका विनोबा जी द्वारा निर्धारित सायंकालीन और प्रातः-कालीन उपासना हेतु प्रस्तुत की गयी है । केवल सोलह पृष्ठों की इस कृति मे कोई साहित्यिक धारा सामने नही आती । मूल संस्कृत की रचनाओं का अनुवाद मात्र ही प्रस्तुत किया गया है । इस रचना से, आस्तिकता और भक्ति का वह रूप दिखायी पड़ता है जो सियाराम जी के जीवन का प्रधान अंग है ।

पुस्तक रचने की प्रेरणा विनोबा जी द्वारा ही मिली है इसको रचियता ने अपने 'निवेदन' में स्वीकार किया है—

"अब पूज्य विनोबा जी की आज्ञा से 'हमारी प्रार्थना' में उनकी उपासना का समग्र रूप एकत्र उपस्थित किया जा रहा है । इसमे एक नयी षट्पदी पहली बार प्रकाशित हो रही है । हिन्दी पद्य को विनोबा जी की संभवतः यह पहली देन है ।"[१३१]

'हमारी प्रार्थना' मे सर्वप्रथम प्रसिद्ध श्लोक 'यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्र मरुतः-स्तुन्वन्ति दिव्यैःस्तवै.' दिया गया है । यह सायकाल की उपासना के अन्तर्गत है । इसके बाद का अंश 'गीता-संवाद' मे उद्धृत किया गया है । गीता के दूसरे

१२९. श्रीमद्भगवद्गीता : अ० ११ श्लोक ३८
१३०. गीता-संवाद : अनु० सियारामशरण गुप्त, अध्याय ११ श्लोक ३८
१३१. हमारी प्रार्थना : सियारामशरण गुप्त, निवेदन, पृ० ४

अध्याय के चौवनवें श्लोकानुवाद से बहत्तरवें श्लोकानुवाद तक यथावत् रखा गया है। विनोबा जी ने दूसरे अध्याय के इन अठारह श्लोकों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

"मानो इन १८ श्लोकों में गीता के १८ अध्यायों का सार ही एकत्र कर दिया है।"[132]

'हमारी प्रार्थना' की रचना में कवि के सम्मुख दो दृष्टिकोण रहे हैं—

१—वाणी को पवित्र करने की भावना।

२—दृष्टि को नवीन दर्शन की उपलब्धि।

प्रार्थना में प्रेरणा का सागर होता है जिसके अवगाहन से दृष्टि निर्मल हो जाती है। संध्याकाल की उपासना के साथ ही प्रातः उपासना का प्रारम्भ इस प्रकार किया गया है—

ॐ पूर्ण है वह पूर्ण है यह
पूर्ण से निष्पन्न होता पूर्ण है।
पूर्ण में से पूर्ण को यदि लें निकाल
शेष तब भी पूर्ण ही रहता सदा।[133]

सर्वत्र उस अज्ञातसत्ता की महत्ता के ही गीत गाये गये हैं जिनमें सर्वस्व समर्पण की भावना पायी जाती है। सर्वधर्म स्मरण की भावना के साथ नाम धुन का भी विधान-क्रम रखा गया है। क्रमानुसार दोनों काल की उपासनाओं को हम इस प्रकार देख सकते हैं :

सायंकाल की उपासना—

१. स्थित प्रज्ञ लक्षण २. सर्वधर्म स्मरण ३. नाम धुन ४. एकादश व्रत।

प्रातःकाल की उपासना—

१. ईशावास्य २. सर्वधर्म स्मरण ३. नाम धुन ४. एकादश व्रत।

छन्दयोजना साधारण है। कुछ छन्द कीर्तन के ढंग के हैं और कुछ गीता के अनुष्टुप वृत्त भी हैं। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के छन्दों का भी विधान

---

१३२. गीता-प्रवचन : विनोबा, पृ० ३२

१३३. हमारी प्रार्थना : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६

है। आस्तिक कवि के भक्त हृदय का पता इस पुस्तक से लग जाता है। रचना का धार्मिक महत्त्व ही मुखर है।

बुद्ध-वचन

यह ग्रंथ पालि भाषा के 'धम्म पद' का अनुवाद है और तथागत की २५वीं परिनिर्वाण शताब्दी के अवसर पर प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुति के समय श्री विनोबा, डा० राजेन्द्रप्रसाद तथा श्री जवाहरलाल नेहरू का स्मरण भी किया गया है। अनुवादक को अहिंसा की उस आलोक-शिखा से प्रेरणा मिली है, जो इस बुद्धभूमि से अन्यान्य सुदूर देशों तक फैल रही है। 'धम्म पद' के इस अनुवाद को 'समश्लोकी' संज्ञा दी गयी है।

'धम्म पद' में भगवान बुद्ध की उपदेश-गाथाएँ संग्रहीत हैं। यह ग्रंथ बौद्ध मतानुयायियों की गीता है। वे लोग इसे अत्यन्त आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। अनुवादक के शब्दों में—

"श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत से लिया गया अंश-विशेष है। धम्म पद भी पालि भाषा के त्रिपिटक का एक खंड है। इस प्रकार ये दोनों ग्रंथ लोगों के तत्त्व संग्राहक पौरुष को प्रकट करते है। हिन्दू के ही अथवा बौद्ध के ही लिये ये नही है। इनके वक्ता और श्रोता दोनों सार्वजनीन है।'[१३४]

इस ग्रंथ की रचना प्रकाशन काल के सात-आठ वर्ष पूर्व ही हो चुकी थी। प्रकाशन के समय अनुवादक ने उसका एक बार संशोधन भी किया था। बँगला और संस्कृत के अनुवादों से भी सहायता ली थी।

प्रयत्न इस बात का किया गया है कि अनुवाद मूल के अधिक समीप रहे। छन्द भी लगभग उसी प्रकार के है। अनुवादक का प्रयास अन्तर्बाह्य को समानान्तर बनाने का रहा है—

"इस प्रकार 'धम्म पद' के अन्तर्बाह्य दोनों को सुरक्षित रखने की चेष्टा की गयी है। ऐसे ग्रंथों के अनुवाद में मूल के निकट रहना ही श्रेयस्कर होता है।"[१३५]

इसे पढ़ते समय जिन पाठकों को बुद्ध और उनके उपदेशों का ध्यान रहता है उन्हे किसी भी प्रकार की कठिनाई नही होगी। मानव की वे दैनिक

---

१३४. बुद्ध-वचन : अनु० सियारामशरण गुप्त, भूमिका पृ० ६

१३५. बुद्ध-वचन : अनु० सियारामशरण गुप्त, भूमिका पृ० ७

समस्याएँ जो अनिवार्य रूप से उसके जीवन-पट पर अंकित हैं उनका समाधान ये गाथाएँ अपने अंक में लिए हैं। भूमिका के अनुसार बुद्धघोषाचार्य ने धम्मपद की अट्ठकथा नाम की टीका में इस बात का उल्लेख किया है कि कौन गाथा किस समय की है। जिन स्थानों का वर्णन गाथाओं में किया गया है वे हिन्दी भाषी प्रान्त के हैं। इन गाथाओं में उस समय की लोक भाषा का रूप उपलब्ध होता है।

सम्पूर्ण धम्म पद सत्ताइस वर्गों में संग्रथित है। अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत शब्दार्थ और सूचनाएँ नियोजित की गयी हैं। पालि भाषा के ग्रंथों के समश्लोकी अनुवादों की हिन्दी साहित्य में बहुत कमी है। इस दृष्टि से इस प्रयास का महत्त्व और बढ़ जाता है। सभी वर्गों में गाथाओं का संयोजन समान रूप से नहीं किया गया है। उदाहरण हेतु मूर्खवर्ग में केवल १६ गाथाएँ हैं। ब्राह्मण वर्ग में ४१ गाथाएँ है। अधिकांशत: गाथाएँ जेतवन की हैं। वेणु वन, राजगृह, कूटागारशाला, गृध्रकूट आदि स्थानों की भी गाथाएँ भी संग्रहीत हैं। ये गाथाएँ उपदेश मात्र होने से कहीं-कहीं अपने अनूदित रूप में नीरस सी लगती हैं। अपनी इस विवशता को अनुवादक ने सिर माथे लिया है। इस प्रकार के धर्मग्रंथों के सदुपदेशों की एक झलक ही जीवन को पावन कर देती है। कालान्तर में बौद्ध-धर्म की चाहे जो परिणति हुई हो, परन्तु उसकी शिक्षाएँ शाश्वत हैं और अनवरत रूप में सद्धर्म की प्रेरणा देती रहती हैं। कुछ गाथाएँ तो इतनी लोकप्रिय हुई है कि जनता ने उन्हें अपना लिया है। उन गाथाओं की झंकार आज भी चीन, जापान, ईरान आदि देशों में तथागत की मंगल कामना का प्रसार कर रही हैं। जीवन से जूझने के लिए केवल दो पंक्तियाँ ही पर्याप्त है—

> चर चे नाधि गच्छेय्य सेयं सदिसमत्तनो।
> एक चरियं दलूहं कयिरा नत्थि बाले सहायता॥
>
> — गाथा, ५-६१

इसका अनुवाद बुद्ध-वचन में इस प्रकार है—

> सहचारी न हो कोई श्रेष्ठ या निज तुल्य, तो
> चले सुदृढ़ एकाकी, मूर्ख की क्या सहायता।[१३६]

पालि भाषा के ग्रंथ के इस अनुवाद से अनुवादक का प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम झलकता है। बुद्धदेव के इन वचनों से हिन्दी-जगत का क्या लाभ

१३६. बुद्ध-वचन : अनु० सियारामशरण गुप्त, गाथा ५-६१

होगा इसे भविष्य बतायेगा। ब्राह्मण की परिभाषा से युक्त ब्राह्मण वर्ग अपना पृथक् महत्त्व रखता है। क्रोध वर्ग समाज में फैले क्रोध को ललकारता है। धर्मस्थ वर्ग हमारे सम्मुख वह झाँकी प्रस्तुत करता है जहाँ शान्ति और अहिंसा के स्रोत मानवता के गीत गा रहे हैं। नरक वर्ग हमें जीवन के प्रति सचेत करता है। तृष्णा, भ्रम और संशय के देश से मुक्त होने के लिए प्रेरणा मिलती है। 'अप्रमाद', 'पाप', 'चित्त', 'मूर्ख', तथा 'लोक' आदि विषयों के विचार थके मानव को संजीवनी शक्ति प्रदान करने वाले हैं।

वे लोग सुखी और सुप्रबुद्ध हैं जिनका चित्त निरवच्छिन्न और अहिंसारत है। बुद्धगता स्मृति वाले प्राणी सदैव आनन्द-विभोर रहते हैं। उपदेशों में कहीं-कहीं दृष्टान्त का सहारा भी लेना पड़ा है। इन दृष्टान्तों की योजना अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से की गयी है। जिस प्रकार वृक्ष को समूल न काटने से कुछ समय बाद उसमें फिर नये-नये अंकुर निकल आते हैं उसी प्रकार तृष्णा का भी समूल घात न करने से वह पुनः पनपने लग जाती है। मालुवा (लता-विशेष) के समान बढ़ने वाली तृष्णा मनुष्य को नष्ट कर डालती है।

बुद्ध-वचन में ४२३ गाथाएँ हैं। इसके साथ एक-एक संक्षिप्त कथा है। अनुवाद का निर्वाह सफलतापूर्वक हुआ है। भाषा, प्रवाह और यति के लिए अनुवादक को कठिनाई का सामना करना पड़ा है क्योंकि वह भावों को उनके मौलिक रूप में ही देखना चाहता था।

⊙

काव्य की मुख्य संवेदना

सियारामशरण जी के परिवार का वातावरण साहित्यिक रहा है। अग्रज श्री मैथिलीशरण गुप्त का सहज स्नेह तथा मुंशी अजमेरी जी का साथ कवि के लिए वरदान सिद्ध हुआ। अजमेरी जी स्वयं एक कवि थे। उनकी कृतियाँ भी साहित्य-जगत में आयी थीं। एक समय था जब उनका स्वागत हुआ था। सुकवि सियारामशरण को राजकवि अजमेरी जी से पर्याप्त प्रेरणा मिली। अनेक गोष्ठियाँ संयोजित की जाती थीं। उनमें मुंशी अजमेरी जी एक घटना बड़े रोचक ढंग से सुनाया करते थे। बचपन में कहीं जाते हुए पिताजी ने सियारामशरण जी से खीझ कर इनको गाड़ी से उतार दिया। युवक कवि अजमेरी ने इन्हें गोद में उठा लिया। इस घटना को एक बार नहीं अनेक बार अजमेरी जी सुरुचिपूर्ण ढंग से सुनाते थे। गुप्त-परिवार में मुंशी जी इतने घुलमिल गये थे, कि वे परिवार के अभिन्न अंग के रूप में समझे जाते थे। मुंशी जी सियारामशरण जी की काव्य-सम्बन्धी अशुद्धियाँ सुधारा करते थे। यह बात पीछे कही जा चुकी है।

भाइयों का परस्पर स्नेह इस बात का प्रमाण है, कि कवि के जीवन में सर्वत्र प्रेम, आह्लाद, आनन्द और प्रेरणा बनी रही है। प्रारम्भिक शिक्षा गाँव

की पाठशाला में समाप्त हुई। उसके पश्चात् स्वाध्याय ही कवि के अध्ययन का साधन बना।[1] अपने अध्ययन द्वारा सियारामशरण जी ने गांधी से सत्य, विनोबा से दर्शन, गुरुदेव रवीन्द्र से कवित्व तथा अरविन्द से चिन्तन पाया।[2] इन महापुरुषों के आदर्शों से सियारामशरण जी अभिभूत होते रहे।

मैथिलीशरण जी भारतीय संस्कृति के व्याख्याता माने जाते हैं। राम और कृष्ण के आदर्शों का प्रशस्त पथ ही उनकी उन्नति का आधार रहा है। दया, करुणा, ममता, सहानुभूति, प्रेम तथा सामाजिकता की भावना की वास्तविक झाँकी गुप्त जी के परिवार में मिलती है। यहाँ छायावाद की स्वच्छन्दता नहीं वरन्-भक्ति का अनुशासन है। इस परिवार में यदि एक ओर बड़ों को छोटों की सुविधाओं का ध्यान हर समय रहता रहा है तो दूसरी ओर छोटे भी बड़ों की सेवा और आज्ञा-पालन में सदा तत्पर रहते हैं। जहाँ अपने से उच्च पद वालों के लिए हृदय में समादर तथा श्रद्धा घर किये हो तथा किसी भी आज्ञा को शिरसा स्वीकार करने में हृदय सदैव तत्पर हो, वहाँ कहना ही क्या? इससे यह न समझना चाहिए कि कवि के समक्ष सुविधाओं का भांडार था। सुविधाएँ थी अवश्य पर असुविधाओं ने उनका साथ नहीं छोड़ा था। बचपन से ही इनकी भी प्रवृत्ति कविता की ओर देखकर घर के बड़े-बूढ़ों ने सोचा कि एक ही घर में अनेक कवि हो जाना ठीक नहीं है। इसी कारण सियारामशरण जी की प्रवृत्ति का विपयान्तर करने के लिए उन्हें रोकड़-वही का काम सौंपा गया। पर वे जन्मजात कवि थे। रोकड़-वही इनकी भावप्रवणता और काव्योन्मुखता का लेखा-जोखा करने में असमर्थ ही रही। फलस्वरूप स्थूल लाभ पर विशेष दृष्टि रखने वाले गुरुजनों ने कार्य-क्षति के भय से शीघ्र ही उनसे यह कार्य वापस ले लिया। इस सम्बन्ध में कवि ने एक घटना की ओर संकेत किया है—

"मैं निश्चिन्त होकर जोर-जोर से किसी कविता की आवृत्ति कर रहा था। जोर-जोर से इसलिए कि कविता केवल मन के उपभोग की वस्तु नहीं है। चुपके-चुपके रसना तृप्त होती हो, कान क्यों न चाहें कि वे वंचित न हों। जीभ और कान के इसी अतिलोभ ने उस दिन धोखा दिया। मुंशी जी ने डाटकर

---

[1] कवि श्री : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४

[2] सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १०

कहा जब देखो, तब यही काम। जो बताया जाता है वह क्यों नही करते अब इस तरह पाया तो पिटोगे।[३]

कवि को प्रेरणा उस समय भी मिलती है जब उसे अंग्रेजी के कवि पोप की एक कहानी का पता चलता है। पोप के पिता बालक पोप को कविता करने से रोकते थे। जब पोप नहीं माने तो पिता ने पीटना शुरू किया। इस पर पोप ने कहा—हे पिता मेरे ऊपर दया करो मैं कभी कविता नही करूँगा।[४] पोप के पिता ने कहा—यह तो अब भी कविता में बोल रहा है। ऐसी ही मार की कल्पना सियारामशरण जी का बाल-कवि करता था। वे लिखते हैं -

"भाग्यवश यह विपत्ति कभी सामने नहीं आयी। भाग्यवश इसलिए कि यदि कभी वैसा प्रसंग आता तो मैं समझता हूँ आँसू तो मेरी आँखों में बहुत निकलते, किन्तु कविता की एक पंक्ति निकलना भी असंभव सा था।"[५]

कभी-कभी मैथिलीशरण जी अधिक संशोधन करने से अजमेरी जी को रोकते भी थे। अजमेरी जी स्वयं कम लिखते थे, संशोधन अधिक करते थे। इसीमें उन्हें काव्य-सृजन का पूरा आनन्द मिल जाता था। कवि बनने के लिए आतुर व्यक्ति को उचित सलाह देने के लिये उनके पास यथेष्ट समय था। मुंशी अजमेरी जी की बातें इस प्रसंग में इसलिए अधिक आ रही है, क्योंकि सियारामशरण की कविता में उनका सहयोग था। वे भी अजमेरी जी से लिखने के लिए बार-बार कहते थे पर उन्हें यह काम रुचता नहीं था। बहुत कहने-सुनने पर उन्होंने 'गोकुलदास' की रचना की जिसमें सियारामशरण जी के लिए इस प्रकार कहा गया है -

"अब मेरे लिए ठीक यही था, कि मैं प्रेम से तुम्हारी रचनाओं का आनन्द प्राप्त करता रहता; पर तुम्हारी निरन्तर प्रेरणाओं ने मुझे इस अवस्था में भी विश्राम न लेने दिया, उठाया, बैठाया, और दौड़ाया भी, मैंने बहुत कहा कि मैं कहीं गिर गिरा पड़ूँगा, पर तुमने मेरी एक भी न मानी।"[६]

---

३. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ८१, ८२

४. "Father father mercy take, I shall never verses make.
—आदर्श की पगडंडियाँ : शंकरलाल; पृ० १७

५. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ८२, ८३

६. गोकुलदास : मुंशी अजमेरी, भूमिका।

कवि सियारामशरण जी की कविता की नई पौध की जड़ सुदृढ़ करने में अजमेरी का पर्याप्त हाथ रहा। अजमेरी जी भाषा और भाव दोनों के धनी थे। उनके लम्बे पत्रों से सियारामशरण जी को प्रेरणा मिलती रही। मुंशी जी के ऊपर 'सेवासदन' की वैष्णवता की छाप थी। जन्मना मुसलमान होते हुए भी वे भारतीय आदि संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित थे।

जिन साहित्यिक गोष्ठियों से सियारामशरण जी को प्रेरणा मिली उनके बारे में यहाँ विचार कर लेना समीचीन होगा। भक्तिरस से अजमेरी जी बहुत प्रवाभित होते थे। भक्ति-भावना चिरगाँव के इस परिवार की निधि थी ही। अजमेरी जी बड़े-बड़े राजाओं के दरबारों में जाया करते थे। उनकी प्रत्युत्पन्न-मति का बड़ा नाम था। एक साथ कई लोगों को उत्तर देने की कला उन्हें खूब आती थी। यह विशेषता श्री मैथिलीशरण जी में भी पायी जाती है। उत्तर-प्रत्युत्तर की परम्परा गोष्ठियों से मिली। कुछ प्रतिभा और कुछ सत्संग भी इसमें सहायक रहे हैं। इन्हीं गोष्ठियों में भाग लेते-लेते सियारामशरण जी की वाक्-शैली इतनी विलक्षण हो गयी कि थोड़े में बड़े प्रश्न का उत्तर देना उनका सामान्य स्वभाव बन गया। अपनी एक भेंट में इन पंक्तियों के लेखक ने उनसे पूछा - 'कविता की भाषा कैसी होनी चाहिए ?' बोले—'जैसी मैं लिखता हूँ।'[७]

गोष्ठियों में कविता पाठ और कहानी कथन सभी कुछ होता था। फिर चिरगाँव तो एक साहित्यिक तीर्थ बन गया था। साहित्यकारों का आगमन तथा गोष्ठियों का संयोजन होते देर नही लगती थी। हाँ, गोष्ठी के परिहास-प्रसंगों में सियारामशरण जी उतने पक्के नही थे। एक बार 'नवीन'जी के घर पर कानपुर में एक गोष्ठी का आयोजन किया गया था। 'नवीन'जी ने सियारामशरण जी से कहा कि अपना लिखा दोहा सुनाइए। 'नवीन'जी लिखते हैं :—

> "सियाराम जी हक्के-बक्के थे, बोले—नही जी मैंने कहाँ लिखा ? मैंने कहा वाह मित्र, चौबे जी के लट्ठ से डर कर अब यों मुकरने लगे। खूब हँसी हुई। जैसा मैं कह चुका हूँ, सियाराम जी परिहास में कच्चे है।"[८]

---

७. ४ मार्च सन् १९६२ ई०।
८. प्रताप : पृ० ११—सियारामशरण गुप्त विशेषांक, १९५२

इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे ऐसे व्यक्ति थे कि लोग उनके व्यक्तित्व को हवा में उड़ा दें। वे भी उस खरेपन से काम लेते हैं जिसकी आवश्यकता आज के युग में पग-पग पर पड़ती है। सारांश यह कि कवि की शिक्षा-दीक्षा, स्वाध्याय, घर का वातावरण तथा मुंशी अजमेरी की कृपा ही उनके काव्य के लिए सहायक सिद्ध हुई।

सियारामशरण जी का पारिवारिक वातावरण धर्म से प्रभावित है। इसी कारण वे अपने जीवन और जगत के प्रति एक मंगलमयी आस्था रखते है। 'निवन्ध' पुस्तक में सियारामशरण जी लिखते हैं—एक दूसरा साथी था छिमा-धर वह भी मुझे सुना-सुना कर पढ़ता —'जाके हिरदे है क्षमा ताके हिरदे आप।' निराश होकर पुस्तक के पन्ने मैं भी उलटता। ढूँढ़-खोज कर राम का नाम दिखायी देता। राम-नाम की महिमा अपार है मैं मानता हूँ परन्तु उस समय तो सीता माता ही लाज रख सकती थी। मैं हतप्रभ हो उठता, लाचार होकर कहता—'मेरा नाम 'रामायण' में छपा है। यह पुस्तक भी कोई पुस्तक है। उदाहरण मुझे याद था—'सियाराममय सब जग जानी, करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।'[६]

यह कवि की बाल-स्मृति है। राम के नाम का जप करना साधारण बात है। बहुत से लोग जप कर लेते हैं और करवा लेते हैं; पर जप के साथ राम के आदर्श को अपने दैनन्दिन जीवन में उतारना कठिन काम है। आदर्श जब नित्य-प्रति के जीवन में कार्यान्वित किये जाते हैं तभी उनका महत्त्व है। 'शरणागत' कविता से यह प्रतीत होता है कि कवि इस संसार-सागर में चक्कर काट रहा है। सिंधु के तरंगाघात उसे थपेड़े खिलाते है। संसार के समस्त सहारों की रज्जु टूट चुकी है। कवि निस्सहाय होकर शरण्य की शरण चाहता है—

> क्षुद्र सी हमारी नाव चारों ओर है समुद्र
> वायु के झँकोरे उग्र रुद्र रूप धारे हैं।
> शीघ्र निगल जाने को नौका के चारों ओर
> सिंधु की तरंगें सौ-सौ जिह्वाएँ पसारे हैं।
> हारे सब भाँति हम अब तो तुम्हारे बिना
> झूठे ज्ञात होते और सब के सहारे हैं।
> और क्या कहें अहो! डुबा दो या लगा दो पार,
> चाहे जो करो शरण्य! शरण तुम्हारे हैं।

---

६. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६५-६६

सुनसान कानन भयावह है चारों ओर
दूर-दूर साथी सभी हो रहे हमारे हैं।
कांटे बिखरे हैं कहाँ जावेंक हाँ पावें ठौर
छूट रहे पैरों से रुधिर के फुहारे हैं।
आ गया कराल रात्रिकाल, हैं अकेले यहाँ
हिंस्र जन्तुओं के चिह्न जा रहे निहारे हैं।
किसको पुकारें यहाँ रोक कर अरण्य बीच
चाहे जो करो शरण्य शरण तुम्हारे हैं।[१०]

उनकी आस्था और व्यक्तित्व दोनों मूर्त्तिमान होकर उनके काव्य में उतरे है। भारतीयता की भावभूमि पर अनुभूति के चित्र सँवारे गये हैं। इसके अतिरिक्त कवि ने अपने जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव देखे थे। कभी वह पारिवारिक सुख के साम्राज्य में सानन्द विचरता रहा है और कभी दुख की वेदनाओं से जूझता रहा है। वह अपना रुग्ण जीवन भी कभी-कभी उलझन में डाल देता था। रोग से जूझते हुए कवि ने आशा और धैर्य से काम लिया है। अत्यन्त साहस और आत्म-बल के सहारे सृजन-कार्य करते जाना कवि का उद्देश्य रहा है। उनका रचना-कार्य अधिकांशतः कठिनाइयों के बीच हुआ है। जीवन में काम ही सब कुछ है। काम करने वाले व्यक्ति को विराम कैसा?—

हे नाथ न लें विराम हम,
दिनभर करें बस काम हम,
संध्या समय ऐसे थकें,
हम नींद गहरी ले सकें।[११]

अपने जीवन के अल्पकाल मे मनुष्य सब कुछ करने के लिए उद्यत रहता है। कर्मशील जीवन मे प्रेरणा और साहस बड़ा काम करते है। सियारामशरण जी की कुछ रचनाएँ ऐसी है जिनमें कर्मठता की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। ऐसी कर्मठता जो जीवन में पुलक और हर्ष भर दे। समय-सखा का साथ छूट जाने पर कोई काम भी तो नहीं बनता—

करना हो जो करें शीघ्र हम
तज आलस्य अभंग

१०. सरस्वती : जनवरी १९२०
११. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १९

क्या जाने कब छूट जाय
इस समय-सखा का संग ।[12]

सियारामशरण जी की प्रायः सभी रचनाओं के पीछे कोई न कोई विशेष दृष्टि रही है । उनकी प्रसिद्ध रचना 'मौर्य विजय' ऐतिहासिक है । कुछ रचनाएँ पौराणिक भी है—जैसे नकुल एवं गोपिका । 'बापू', 'आत्मोत्सर्ग' और 'अमृत-पुत्र' आदि रचनाओं में महापुरुषों के उदात्त जीवन-वृत्त की विमुग्धकारी झाँकियाँ काव्य के ललित-परिवेश में प्रस्तुत की गयी है । 'जयहिन्द' तथा 'नोआखाली में' रचनाओं के रूप में कवि ने राष्ट्रीय यज्ञ में अहुतियाँ दी है । 'विषाद' और 'पाथेय' में कवि के अपने अन्तर का नैराश्य, विषाद और आत्मा श्वासन के संवादी स्वर आत्म-वृत्त के रूप में मुखरित हुए है । 'अनाथ' मे किसी अनाथ की दीन-हीन दशा का करुण चित्रण है । 'दूर्वादल', 'आर्द्रा' एवं 'मृणमयी' रचनाओं में विविध संवेदनाओं के आधार पर रचे हुए प्रगीत मुक्तक है ।

कवि की सारी कृतियों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

१. ऐतिहासिक : मौर्य-विजय ।
२. पौराणिक : नकुल, गोपिका ।
३. महापुरुषों से सम्बन्धित : बापू, आत्मोत्सर्ग, अमृतपुत्र ।
४. राष्ट्रीय : जयहिन्द, नोआखाली में ।
५. कारुणिक काव्य : पाथेय, अनाथ, विषाद ।
६. प्रगीत मुक्तक : दूर्वादल, मृण्मयी, आर्द्रा आदि ।

भारतीयता पर विश्वास करने वाले कवि का प्राचीन के प्रति प्रेम होना स्वाभाविक है । 'मौर्य-विजय' की रचना इस बात को प्रकट करती हे । अपने प्रथम प्रयास में कवि ने मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त का यशोगान किया है । भारत-महिमा की प्राचीनता पर उसे विश्वास है । प्रथमतः सियारामशरण जी ने मंडला की रानी दुर्गावती से सम्बन्धित कुछ लिखा था । रानी दुर्गावती अकबर के समय में थी । श्री मैथिलीशरण जी के कहने पर उसका नाम बदल कर मौर्य-विजय रख दिया गया । विषय-वस्तु में भी कुछ हेर-फेर करना पड़ा । इससे व्यक्ति के प्रति उनका आकर्षण स्वदेशानुराग में बदल गया । इस सन्दर्भ में मैथिलीशरण जी का विचार है—

"वर्तमान ऐसा नही है, कि उस पर विशेष अभिमान किया जा सके, ऐसी

---

१२. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३४

दशा में अपने अतीत गौरव की ओर ध्यान होना स्वाभाविक है।"[१३]

पौराणिक वृत्तों को लेकर लिखे गये काव्यों में 'नकुल' तथा 'गोपिका' है। 'नकुल' की कहानी महाभारत की है। नकुल (अज्ञात कुल वाला) को युधिष्ठिर प्राथमिकता देते है। यह बात स्वभावतः हृदय स्पर्श करती है। इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर 'नकुल' काव्य की रचना की गयी है। युधिष्ठिर किस प्रकार अग्रज होने का निर्वाह करते हैं? महाभारत के रचयिता के शब्दों में—

धर्मशीलः सदा राजा इति मां मानवा विदुः।
स्वधर्मान्न चलिष्यामि नकुलो यक्ष जीवतु॥
कुंती चैव तु माद्री च द्वे भार्ये तु पितुर्मम।
उभे सपुत्रे स्यातां वै इति मे धीयते मतिः॥
यथा कुन्ती तथा माद्री विशेषो नास्ति मे तयोः।
मातृभ्यां समिच्छामि, नकुलो यक्ष जीवतु॥[१४]

युधिष्ठिर की यह नीतियुक्त बात सुन कर यक्ष कहता है—

तस्य तेर्थाच्च कामाच्च आनृशंस्यं परं मतम्।
तस्मात् ते भ्रातरः सर्वे जीवन्तु भरतर्षभ॥[१५]

युधिष्ठिर के इस कार्य में कवि के अग्रज श्री मैथिलीशरण जी के व्यक्तित्व की छाया दिखायी पड़ती है। अपने छोटे भाइयों के प्रति इस प्रकार का व्यवहार करना आजकल की दुनिया नही जानती है। जो लोग इस बात के अपवाद है, वे धन्य हैं। भ्रातृ-प्रेम की जो झांकी महाभारत के प्रसंग में युधिष्ठिर भीमादि में दिखायी पड़ती है, उससे बहुत कुछ मिलती-जुलती चिरगांव में देखी जा सकती है।

'गोपिका' में पुराण के प्राचीन पात्रों का चित्रण नवीन प्रणाली से किया गया है। इस रचना के बहुपरिचित पौराणिक पात्रों के रीतिकालीन आदर्शों में यथेष्ट काट-छाँट करके कवि ने उन्हें प्रस्तुत किया है। कवि का यह प्रयास अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ है। कविवर मैथिलीशरण जी ने राम-काव्य को अपने जीवन का आदर्श माना है तथा सियारामशरण जी ने कृष्ण-काव्य को प्राथमिकता दी है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि इस बँटवारे की कोई पूर्व योजना

---

१३. मौर्य-विजय की भूमिका : श्री मैथिलीशरण गुप्त।
१४. महाभारत : वनपर्व, पृष्ठ १८३५ ; गीता प्रेस गोरखपुर।
१५. उपरिवत।

थी। गोपी कृष्ण के चरित्र के प्रति आकर्पण ही 'गोपिका' की रचना का कारण है।

जिन महापुरुषों से सम्बन्धित रचनाएँ सियारामशरण जी ने लिखी हैं उनमें 'वापू' (गांधीजी) प्रभु ईसा, तुलसीदास जी[१६] तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर[१७] आदि के नाम आते हैं। गाँधीजी के व्यक्तित्व से कवि विशेप प्रभावित था। इस तथ्य पर अन्यत्र विचार किया जायेगा। गाँधीजी पर एक छोटी काव्य-पुस्तक की रचना की गयी है। ईसा के चरित्र पर भी 'अमृत पुत्र' नाम से पुस्तक है। रवीन्द्र और तुलसीदास सम्वन्धी फुटकर रचनाएँ पृथक् हैं। वापू का चरित्र एक तीर्थ है। इस 'तीर्थ' को कवि ने समीप से देखा था और तीर्थ-जल से फल-लाभ भी हुआ था। गांधीजी से सम्वन्धित हिन्दी में अनेक कृतियाँ हैं, पर सियारामशरण जी के 'वापू' का महत्त्व अलग है। कारण यह है कि कवि ने वापू के चरित्र को केवल अपनी लेखनी में ही नहीं उतारा अपितु जीवन में भी उससे प्रेरणा ग्रहण की है।

प्रभु ईसा पर हिन्दी में अभी तक कुछ ही कृतियाँ उपलब्ध हैं। सियारामशरण जी का ध्यान महात्मा ईसा की ओर भी गया और 'अमृत पुत्र' कृति का सृजन करके कवि ने विशेप ख्याति पायी। इस पुस्तक का प्रचार अमेरिका में भी है।[१८] वैसे ईसाई विपयों पर अंग्रेजी में रचनाओं की कमी नहीं है; किन्तु हिन्दी में महात्मा ईसा पर रचना प्रस्तुत करके कवि ने हिन्दी साहित्य के एक पक्ष की पूर्ति की है।

गोस्वामी तुलसीदास सम्बन्धी जिस कविता का उल्लेख ऊपर किया गया है वह 'दूर्वादल' में है। इससे तुलसीदास जी के व्यक्तित्व की थोड़ी झलक मिलती है। ऐसा ज्ञात होता है कि जहाँ गाँधीजी तथा प्रभु ईसा ने कवि को प्रभावित किया था, वहाँ तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ टैगोर, गणेशशंकर विद्यार्थी आदि से सम्वन्धित रचनाएँ भी हृदय का स्पर्श करने वाली हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर से कवि विशेप प्रभावित था। गीतांजलि के भावों के आधार पर भी कुछ रचनाएँ की गयी हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर सम्बन्धी कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

देखा था तुमने सुदूर से विस्मयपूर्वक
करता हूँ अनुभूत प्रबल यह आज अचानक

---

१६. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त. पृष्ठ ३९
१७. आजकल : मई १९६१, रवीन्द्रनाथ ठाकुर विशेपांक।
१८. परिशिष्ट में डॉ० प्रभाकर माचवे का पत्र।

ऊर्ध्वलोक से विगत वत्सरों के कितने स्वर
भेदन करती हुई पीठ पर मेरी आकर
दृष्टि तुम्हारी पड़ी मुझे चौंकाकर ऐसे
प्रिय वयस्य की मृदुल थपथपाहट हो जैसे

× × ×

मैं चिरजीवी आज तुम्हारे प्रेम स्पर्श से
देख रहा हूँ स्पष्ट और शत संख्य वर्ष वे।[१९]

कवीन्द्र रवीन्द्र का काव्यमय व्यक्तित्व सियारामशरण जी के लिए विशेष ग्राह्य हुआ। काव्य-सृजन के लिए जिस गहरी अनुभूति की आवश्यकता पड़ती है वह रविबाबू मे इतनी मिली कि सियारामशरण जी का कवि-हृदय झूम उठा। यहाँ केवल यह देखना है कि साम्प्रदायिक दगे से जो रक्तपात कानपुर में हुआ था उसमे गणेशशंकर जी ने कितना साहसपूर्ण कार्य किया और कवि सियारामशरण के अहिंसावादी हृदय पर उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई। हिन्दुओं और मुसलमानो के साम्प्रदायिक झगड़ो ने मानवता को पीस डाला। एक को दूसरे के सम्मान का ध्यान नही रहा। परस्पर विद्रोह की ज्वाला में गणेशशंकर जी ने भी अपने प्राण की आहुति दी। गणेशशंकर जी से कवि के सम्पूर्ण परिवार का विशेष स्नेह-सम्बन्ध था। श्री मैथिलीशरण जी लिखते हैं—

"'साकेत' के प्रकाशित अंशों को देख-सुनकर जिन मित्रों ने मुझे उत्साहित किया है मैं हृदय से उनका आभारी हूँ। खेद है कि उनमे से गणेशशंकर जैसा बंधु अब नही।"[२०]

लोकमान्य तिलक की मृत्यु पर सियारामशरण गुप्त लिखित एक रचना (आठ छंदो की) सितम्बर १९२० की 'प्रभा' में छपी थी। कवि की हृदय-विह्वलता केवल दो पंक्तियो में देखिए—

भारत माता के मंदिर का आज दीप निर्वाण हुआ
भाल तिलक से शून्य हमारा देश आज म्रियमाण हुआ।[२१]

---

१९. आजकल : २१ मई १९६१ : रवीन्द्रनाथ ठाकुर विशेषांक।
२०. साकेत की भूमिका—श्री मैथिलीशरण गुप्त।
२१. प्रभा : सितम्बर १९२०

इस प्रसंग में कवि की विनय और भक्ति-भावना पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। ये भावनाएँ सियारामशरण जी के जीवन में नया आह्लाद और नयी प्रेरणा भरती रही हैं। कवि की विनयशीलता की छाप उनके अपने व्यक्तित्व पर भी पड़ी है जिसे कभी उन्होंने महत्त्व नहीं दिया। अपने व्यक्तित्व को महत्त्व न देना उदास मनोवृत्ति का सूचक है। कवि यशःप्रार्थी होता है यह बात सियारामशरण जी का व्यक्तित्व नहीं स्वीकार करता पर रचना न छपने पर वे इस प्रकार अपने को संतोष देते हैं—

"मेरा लेख उन्होंने लौटा दिया है, फिर भी यह कैसे कहूँ कि वे निर्दय हैं। प्रत्येक सहृदय को दूसरे के दुःख में दुःख होना चाहिए। इतने पर भी धन्यवाद उन्होंने मुझे दिया है। इस धन्यवाद की गुरुता एक बात से और बढ़ जाती है, लेख लौटाने के लिए डाक खर्च मैंने नहीं भेजा था।"[22]

यह तो हुई सदाशयता की बात। इसके साथ ही कवि का औदार्य, विनम्रता श्रद्धा और भक्ति आदि वृत्तियाँ कविता के रूप में जब-जब आयी है तब-तब नया रूप धारण करके। दूर्वादल और पाथेय की रचनाओं में कतिपय कविताएँ ऐसी हैं जिनमें ये भावनाएँ पायी जाती हैं। कवि का भक्त हृदय जब मुखरित हुआ है तो शान्त रस की धारा बही है। भावप्रवणता और हृदय के सच्चे उद्गारों से युक्त गुप्त जी की 'शरणागत' नामक विशेष रचना के बारे में श्री अशोक जी लिखते हैं—

"आज से कोई तीस वर्ष पहले की बात है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का अभिनन्दन हो रहा था। कविता पाठ का आयोजन था। द्विवेदी जी ने सियारामशरण जी को स्मरण किया और उनसे एक विशेष कविता पढ़ने का आग्रह किया। अन्तिम चरण था—'शरण्य शरण तुम्हारे हैं।' द्विवेदी जी यह कविता स्वयं पढ़ने लगे और पढ़ते-पढ़ते रोने लगे। उन्होंने कहा कि यह कविता में प्रतिदिन पढ़ता हूँ।"[23]

कविता पीड़ा की व्याख्या होती है। जब-जब इस प्रकार के अवसर आये हैं कि सियारामशरण जी के हृदय को कोई हृदय-विदारक घटना छू गयी है तब-तब उनकी लेखनी द्रुतगति से आगे बढ़ती गयी है। करुणा का संयोग पाकर उनका विषाद निखरा है। युद्ध का भीषण हाहाकार देख कर 'दैनिकी' की

---

२२. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १६७

२३. योजना : अप्रैल १९६३

कुछ रचनाओं का सृजन हुआ है। साम्प्रदायिक दंगों में होने वाला नर-संहार देख कर कवि की आत्मा तड़प उठी है—

> 'एक सहस्र हताहत'—सहसा जाग उठी जिज्ञासा
> धरती पर उनका जीवन था क्या कृमि कीटों का सा
> उनके लिए किसी के उर में उठी न करुणा लहरी
> उनकी मरण यातना में भी बोध शक्ति है बहरी।[२४]

दैनिकी में कुछ रचनाएँ ऐसी संग्रहीत है जो प्रतिदिन की साधारण वातों से सम्वन्धित है। कवि के हृदय में उपेक्षा की भावना नही अपितु संयोजन की प्रवृत्ति है। हिन्दी साहित्य में मानवता को विजयिनी बनाने वाले कवियों में जहाँ एक ओर प्रसाद, मैथिलीशरण आदि का नाम आता है, वहाँ सियारामशरणजी भी मानवतावादी कवि के रूप में अपना निश्चित स्थान रखते हैं। मानव को संबोधित करके की गयी रचनाओं में 'दैनिकी' की अधिकांश रचनाएं आती हैं। जेठ की दुपहरी में तथा माघ के पाले में काम करने वाले कृपक, मजूरों के प्रति सियारामशरण जी की लेखनी क्या कहती है—

> यह मजूर जिसके अंगों पर लिपटी एक लँगोटी,
> यह मजूर जर्जर कुटिया में जिसकी वसुधा छोटी,
> किस तप में तल्लीन यहाँ है भूख-प्यास को जीते,
> किस कठोर साधन में इसके युग के युग हैं बीते।[२५]

इतना ही नहीं, जब देश की कविवाणी जनता की स्वतन्त्रता-प्राप्ति हेतु जन-जन में चेतना के प्राण फूँक रही थी तब सियारामशरण जी भी अपने जन-जागरण के कर्तव्य से उदासीन नही रहे। वे धरती का नवीन रूप देखने के लिए शिव का ताण्डव नहीं चाहते, उन्हें रौद्र रूप नहीं रुचता, वे ध्वंसहीन निर्माण के पक्षपाती है। अवतारों या गौरवशाली नृपतियों को उन्होंने अपने काव्य का विषय नहीं बनाया। डा० नगेन्द्र इस सम्वन्ध में लिखते है—

"......यह नव जागृति पश्चिम से आयी थी। अतः इसमें वहाँ के साम्य-वादी विचारों का पूर्ण प्रभाव था और हमारे कविगण कंचन में ही कवित्व

---

२४. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७
२५. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० १७

टटोलते रहने के स्थान पर अब निर्धन कुटी-द्वारों की ओर आकर्षित होने लगे। कविवर सियारामशरण के ग्रन्थ 'आर्दा', 'दूर्वादल', 'विषाद' आदि इसके उदाहरण हैं। मानव का सबसे बड़ा गौरव उसका मानवत्व है-- भाग्यपीड़ित मूक जनता की आहों में अब हमारे सहृदय कवि भारती के भव्यगान सुनने लगे।"[२६]

मानव और उसकी मानवता के प्रति कवि का विशेष लगाव रहा है। कवि की अधिकांश फुटकर रचनाएँ तथा कुछ एक स्वतन्त्र काव्य-पुस्तकों में प्रगति-वादी धारणाओं का प्रस्फुटन हुआ है। अन्न-वस्त्र की समस्या को ध्यान में रख कर काव्य की वीथिका में सियारामशरण जी का प्रवेश युगानुसार हुआ है। यदि कोई कवि अपने परितः बिखरी राशि-राशि वर्तमान कथाओं को न देख कर केवल आसमानी गीत गाये तो उसे यह भी समझना चाहिए कि इन गीतों को सुनने वाले प्राणी धरती के पुतले है। सियारामशरण जी की रचनाओं से प्रतीत होता है कि रचना करने में उनकी कोई पूर्व योजना नहीं थी। समया-नुसार कवि अपनी अनुभूतियों को लिपिबद्ध करता गया है। जीवन यापन की कला में उनके आदर्श बापू थे तथा काव्य-सृजन में उनकी प्रेरणा के स्रोत रवीन्द्र थे। इस बात को मैथिलीशरण जी ने स्पष्ट लिखा है—

"वस्तुतः मेरे सहयोग की सीमा कवित्व के ककहरे तक ही समझनी चाहिए। शीघ्र ही वे गुरुदेव की रचनाओं के सम्पर्क में आ गए और उनसे प्रभावित होकर उन्होंने अपना मार्ग निर्धारित कर लिया।"[२७]

फरवरी सन् १९२० में सियारामशरण जी की एक कविता 'प्रेम-विह्वल' शीर्षक से सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। इस कविता का आधार गीतांजलि का एक गीत है। प्रकाशित गीत से यह प्रतीत होता है कि कवि मार्ग ढूँढ़ना चाहता है। प्रियतम का पथ पा जाने पर सारे संकट दूर हो जायेंगे। 'प्रेम-विह्वल' कविता की रचना के समय कवि की अवस्था २४ या २५ वर्ष की थी। इस अवस्था में अपने निश्चित मार्ग के लिए इतस्ततः भटकना स्वा-भाविक था। यद्यपि सियारामशरण जी का मार्ग इस अवस्था में बहुत कुछ निश्चित हो चुका था। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी सन् १९२० से १९३० तक का समय पुराने संस्कारों के प्रति विद्रोह और नवीन संस्कारों के बीजारोपण

---

२६. सुमित्रानन्दन पंत : डा० नगेन्द्र, पृ० ५
२७. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० ८

का समय मानते है तथा सियारामशरण जी को इसी श्रेणी में रखते हुए, लिखते हैं—

"इस प्रवृति के और भी कई उन्नायक हुए पर सभी करीव-करीव नये थे। सन् १९२० के पूर्व उनके नाम क्वचित् कदाचित् ही सुनाई पड़ते थे। काव्य के क्षेत्र में सियारामशरण गुप्त, निराला, पंत, महादेवी वर्मा ऐसे ही हैं।"[२८] अपनी 'प्रेम-विह्वल' कविता में सियारामशरण जी लिखते हैं—

आज तुम्हारा मार्ग कहाँ है
आता है बस यही विचार
दूर कहाँ किस नदी किनारे
दूर कहाँ किस घन वन में,
प्रियतम किस गम्भीर तिमिर में
आज हो रहे हो तुम पार।[२९]

अज्ञातसत्ता के प्रति जिज्ञासा के भाव इस कविता में मिलते है पर सियारामशरण जी को अपनी सत्ता भले ही न ज्ञात हो किन्तु और सत्ताएँ भली-भाँति ज्ञात हैं। रवीन्द्रनाथ जी का प्रभाव यहीं से आगे वढ़ता है और स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगता है। रवीन्द्रनाथ में अनुभूति एवं अपार्थिव कल्पना का जो सामंजस्य पाया जाता है वह सियारामशरण जी में नही है। यहाँ अनुभूति की प्रधानता है और छायावादी लोकोत्तर कल्पना गौण है। उनकी कल्पना धीरे-धीरे जगत और जीवन की वास्तविकता की ओर वढती रही है और इसी कारण उनकी कविताओं में छायावाद के लक्षण उत्तरोत्तर कम होते रहे है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी लिखते है—

" 'सियारामशरण जी की रचनाओं में रवीन्द्रनाथ की काव्य-गरिमा भी है और गाधीजी की लोक सामान्य सरलता भी। यह सच है कि अव वे भावुकता को उतना पसन्द नही करते। सम्प्रति जीवन और जगत को सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से देखते है।"[३०]

रवीन्द्रनाथ का प्रभाव जिन कविताओं में दृष्टिगोचर होता है, वे अधिकांशतः 'विषाद', 'दूर्वादल', 'पाथेय', 'आर्द्रा', 'अनाथ' आदि संग्रहों में संग्रहीत है। 'अनाथ' का प्रकाशन १९२१ में हुआ था। 'मौर्य-विजय' काव्य को छोड़

२८. हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : पृष्ठ १५४।
२९. सरस्वती : फरवरी १९२० ई०।
३०. साकल्य : शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृष्ठ ११६

कर शेप सारी रचनाएँ १९२१ के पश्चात् प्रकाशित हुईं इसलिए 'सरस्वती' में प्रकाशित कविता 'प्रेम-विह्वल' कवि सियारामशरण और रवीन्द्रनाथ के परिचय और प्रभाव को स्पष्ट कर देती है। सन् १९४० में कविवर रवीन्द्रनाथ बीमार हुए थे और उन्होंने 'रोग शय्या' नामक काव्य-संग्रह लिखा था तथा ७ अगस्त १९४१ को उनका देहान्त हुआ था। सन् १९१४ तक रवीन्द्र नाथ की ख्याति देश-विदेश तक पहुँच चुकी थी। अनेक ग्रंथों की रचना पत्रों का सम्पादन नोवल पुरस्कार की प्राप्ति के साथ ही भारत में अनेक उपाधियों का सम्मान सन् १९१४ तक उन्हें मिल चुका था। इसी समय आत्म-सम्मानी कवि ने अंग्रेजों द्वारा दी गयी 'नाइटहुड' की उपाधि वापस कर दी थी। यह घटना भी सन् १९१४ की है।

यह विवरण देने का तात्पर्य यह है कि जब सियारामशरण जी का कवि जिज्ञासु बनकर रवीन्द्रनाथ साहित्य की ओर उन्मुख हुआ तब रवीन्द्रनाथ का साहित्य उन्नति की सीमा छू रहा था। वे विश्व-साहित्य में एक स्थान पा चुके थे और फिर वह एक ऐसा समय था, कि रविबाबू का प्रभाव हिन्दी के अधिकांश कवियों पर पड़ रहा था। कुछ कवियों ने तो अनुवाद का कार्य भी प्रारम्भ किया था। कहना न होगा, कि यह छायावाद का प्रारम्भिक काल था। आचार्य शुक्ल ने इस तथ्य को इस प्रकार लिखा है—

"गुप्त जी और मुकुटधर पाण्डेय आदि के द्वारा यह स्वच्छन्द नूतन धारा चली ही थी कि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उन कविताओं की धूम हुई जो अधिकतर पाश्चात्य ढाँचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद लेकेर चली थी। पुराने ईसाई संतों के छायाभास (Phantasmata) तथा यूरोपीय काव्य-क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (Symbolism) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएँ 'छायावाद' कही जाने लगीं थी। × × हिन्दी के कुछ नये कवि उधर एकबारगी झुक पड़े। यह अपना क्रमशः बनाया हुआ रास्ता नही था। इसका दूसरे साहित्य-क्षेत्र मे प्रकट होना, कई कवियों का इस पर एक साथ चल पड़ना और कुछ दिनों तक इसके भीतर अंग्रेजी और बँगला की पदावली का ज्यों का त्यों अनुवाद रक्खा जाना, ये बातें मार्ग की स्वतन्त्र उद्भावना नही सूचित करती।"[३१] सियारामशरणजी का नाम उन कवियों में नही आता है जो बंगाली छायावाद से इतने प्रभावित हो कि नवीन उद्भावना का अंकुर दब जाय। रवीन्द्रनाथ जी की काव्य-प्रतिभा से प्रभावित

३१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ६५० ६५१

होना और बात है तथा प्रभावित होकर एकमेक हो जाना अन्य। शुक्ल जी वाली बात अधिकांश कवियों के ऊपर लागू नही होती; और फिर सियाराम-शरण जी तो अपने ढंग के अलग कवि है।

रवीन्द्रनाथ जी की एक पुस्तक है—'कथा ओ काहिनी'। इस पुस्तक में कुल चौंतीस कविताएँ है। इनका आधार कोई न कोई कहानी है। बहुत कुछ संभव है कि सियारामशरण जी को यह प्रेरणा गुरुदेव रवीन्द्र से मिली हो, अथवा यह उनकी नवीन उद्भावना है कहा नही जा सकता। जिस प्रकार 'कथा ओ काहिनी' में 'अभिसार', 'प्रतिशोध', 'मूल्य प्राप्ति', 'पुजारिनी', 'श्रेष्ठ भिक्षा', 'विसर्जन' आदि रचनाएँ अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है, ठीक उसी प्रकार 'आर्द्रा' में 'एक फूल की चाह', 'डाक्टर', 'अग्नि-परीक्षा', तथा 'चोर' आदि रचनाएँ उत्कृष्ट हैं। इस प्रकार की रचनाओं का हिन्दी साहित्य में अभाव है। अब तो नित्य-नवीनता की धरती पर दौड़ने वाला कवि बहुत आगे बढ गया है और उसके लिये कविता की यह परिपाटी 'आउट-आफ डेट' हो चुकी है, आचार्य शुक्ल ने इस बात को स्वयं स्वीकार किया है —

"प्रकृति के प्रांगण के चर-अचर प्राणियों का रागपूर्ण परिचय, उनकी गति-विधि पर आत्मीयताव्यंजक दृष्टिपात, दुख-सुख में उनके साहचर्य की भावना ये सब बातें स्वाभाविक स्वच्छन्दता के पदचिह्न है। सर्वश्री सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, ठाकुर गुरुभक्तिसिंह, उदयशंकर भट्ट इत्यादि कई कवि विस्तृत अर्थभूमि पर स्वाभाविक स्वच्छन्दता का पथ ग्रहण करके चल रहे हैं। × × एक छोटे से घेरे में इनके प्रदर्शन मात्र से वे सन्तुष्ट नही दिखायी देते है। उनकी कल्पना इस वक्त जगत और जीवन की अनन्त वीथियों में हृदय को साथ लेकर विचरने के लिए आकुल दिखायी देती है।"[३२]

सियारामशरण जी ने कुछ ग्रंथों का अनुवाद भी प्रस्तुत किया हे। इन अनू-दित रचनाओं मे 'गीता-संवाद' और 'बुद्ध-वचन' प्रमुख हैं। एक अन्य पुस्तक 'हमारी प्रार्थना' नाम से भी है। इसके नाम से ही यह विदित है कि यह उपा-सना सम्बन्धी पुस्तक होगी। इसमें 'गीता-संवाद' का भी कुछ अंश आ गया है। सियारामशरण जी के व्यक्तित्व पर गीता तथा बौद्ध-दर्शन की अमिट छाप पड़ी थी। इसी कारण इन दोनों दर्शनों से सम्बन्धित साहित्य का अनुवाद उन्होंने प्रस्तुत किया। अनुवाद से यह सामग्री सर्वजन सुलभ हो गयी। ग्रंथकार के

३२. हिन्दी साहित्य का इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६५८

शब्दों में—

"यह ग्रंथ काव्य की प्रचलित रूपरेखा के भीतर नही आता। प्रत्येक छंद में अपनी रुचि का रस-भीना कवित्व चाहने वाले की प्यास हो सकता है, यहाँ न बुझे।"[33]

विध्वंस और विनाश बटोरने वाले मानवों के लिए हमारी महर्षि-वाणी ही कुछ कर सकती है। प्रलयंकारी ज्वालाओं का शमन प्राचीन आदर्शों को अपनाने से होगा। इसीलिए ग्रंथकार चाहता है—"सहस्रों वर्षों में उत्थान और पतन मे इन संस्कृत छन्दों की ध्वनि भारतवर्ष के आकाश मे भी कभी विलीन नहीं हुई वह होनी भी नहीं चाहिये।"[34] बुद्ध-वचनों से प्रभावित होकर सियारामशरण जी लिखते है—

"पाठक को यह नहीं जान पडता कि उस पर कुछ लादा जा रहा है। इसी से धम्मपद की ये गाथाएँ छन्द से उठकर गीत बन गयी है। उनकी टेक दूर-दूर तक मुखरित है जैसे हमारे लिए भी छूट हो कि भाव को इसी प्रकार हम भी आगे बढ़ा सकते हैं।"[35]

वस्तुतः सियारामशरण जी ने अनुवाद भी उन्ही ग्रंथों के किये है जिनकी छाप उनके जीवन पर पड़ी है। आजकल अन्य भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद का जो नशा हिन्दी लेखकों पर चढा रहता है उसकी सफलता-असफलता पाठकों से छिपी नही है। सियारामशरण जी को सफलता की चिन्ता नही। उनका काम मार्ग पर चलना है गंतव्य पाना नही। पालि भाषा की गाथाओ का जो रूपान्तर हिन्दी में किया गया हे, हो सकता है कि उसमे कवित्व न हो। यहाँ तो सच्ची भावना है। अनुभूति के प्रति ईमानदारी सियारामशरण जी के काव्य की प्रमुख विशेषता है।

३३. बुद्ध-वचन : अनु० सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८

३४. गीता-सवाद : अनु० सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६

३५. बुद्ध-वचन पृ०-१७

छन्द-विधान

युग-परिवर्तन को ध्यान में रख कर यदि सियारामशरण जी के छन्द-विधान पर विचार किया जाय तो ज्ञात होगा, कि हिन्दी-साहित्य मे छन्दो की चली आती हुई परिपाटी का उन्होने सर्वथा परित्याग नही किया। वे पुरानी पद्धति से इतने चिपके भी नही रहे, कि नवीन धारा की उपेक्षा हो जाय। छन्दो की प्राचीन परम्परा पर विचार करते हुए तथा काव्य मे छन्दों की उपयोगिता का मूल्याकन करते हुए सियारामशरण जी के छन्द-विधान पर कुछ कहना अधिक उपयुक्त होगा।

छंदशास्त्र के कर्ता महर्षि पिंगल माने जाते है। उनके द्वारा लिखा हुआ शास्त्र पिंगल शास्त्र कहलाता है। महर्षि पिंगल का ठीक समय निर्धारण करना तो कठिन है किन्तु प्राचीनता की दृष्टि से छदो को वेदो का चरण कहा गया है—

छंद पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ कथ्यते।
ज्योतिषामयनं नेत्रं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥[1]

---

१. छन्द प्रभाकर :—'भानु', पृष्ठ २

वैदिक काल में छन्द को स्तोत्र के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था। 'शतपथ ब्राह्मण', 'कौशीतकी ब्राह्मण' तथा 'तांड्य ब्राह्मण' (सामवेद) आदि ग्रंथों में छन्द की जो व्याख्या की गयी है, वह शास्त्रीय है। इस शास्त्रीय व्याख्या का सहारा लेकर आधुनिक हिन्दी-छन्द-विधान देखना समीचीन नहीं है। वैदिक संस्कृत से इधर चलकर जब हम लौकिक संस्कृत के क्षेत्र में पहुँचते हैं तो हमें अनेक प्रकार की छन्द-प्रणालियाँ मिलती हैं। अनेक कवि अपनी रचनाएँ छन्दों में करते रहे पर छन्द की कोई वैज्ञानिक और पूर्ण परिभाषा सामने नहीं आयी। जो कुछ भी इस सम्बन्ध में विचार किया गया उससे 'छन्द' पूर्ण रूप से स्पष्ट नही होता। संस्कृत भाषा का सम्पूर्ण काव्य-सृजन छन्दों में हुआ है इससे प्रतीत होता है कि छन्दों के साँचे में कविता के भावों को एक क्रम दिया गया है, एक व्यवस्था का विधान किया गया है।

छन्दःशास्त्र पर लिखी गयी हिन्दी पुस्तकों में कविवर जगन्नाथप्रसाद 'भानु' विचरित 'छन्दःप्रभाकर' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। छन्द की परिभापा वताते हुए 'भानु' जी ने लिखा है—"जिस पद रचना में मात्रा, वर्ण, गति, यति आदि के नियमों का पालन किया गया हो तथा चरणान्त में समता पायी जाती हो वही छन्द है।"[२] श्री सुमित्रानन्दन पंत लिखते है—"कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है।"[३] पंत जी का यह कथन अधिक आवेगपूर्ण है। यह तो ठीक है कि छन्दों के प्रयोग से एक प्रकार का श्रुतिरंजक प्रभाव और शक्ति पैदा हो जाय किन्तु यह उक्ति प्रत्येक अवसर पर ठीक नहीं उतरती। हमारे प्राणों की वात संगीतहीन भी हो सकती है। संभव है उसमें लयतान कुछ भी न हो। कवि ने एक अन्य स्थल पर छन्द में स्वरैक्य और संयम को स्थान दिया है—

"अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन छन्द ही में वहने लगता, उसमें एक प्रकार की सम्पूर्णता, स्वरैक्य और संयम आ जाता है।"[४] यहाँ एक प्रश्न हमारे सामने आता है, कि कोई भाव हृदय से वाहर आने पर अपने आप छन्दोवद्ध हो जाता है अथवा कवि-प्रयास के द्वारा ऐसा सम्भव है। आदि कवि का प्रथम

---

२. छंदःप्रभाकर, पृष्ठ १

मत्त वरण गति यति नियम, अंतहि समता वंद।
जा पद रचना में मिलें, 'भानु' भनत सोइ छंद॥ भानु

३. पल्लव : सुमित्रानन्दन पन्त, प्रवेश, पृष्ठ २१

४. पल्लव : सुमित्रानन्दन पन्त, प्रवेश, पृ० २१

'अनुष्टुप' वृत्त[५] इस बात का प्रमाण है कि कवि के भाव प्रकट होकर स्वयं छन्द का सहारा ढूँढ़ लेते हैं। इसी प्रसंग में आचार्य द्विवेदी ने छन्द को 'आवेग का वाहन' माना है।[६] पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के विचार से "पद्य की रचना लम्बाई की विशेष नाप के अनुसार होती है। इसी बन्धन का नाम 'छन्द' है। छन्द का प्रचार बहुत प्राचीन काल से दिखायी देता है। यह उतना प्राचीन है जितने प्राचीन वेद हैं।"[७]

लोक-संग्रह के क्षितिज से काव्य की जो मंगल-ज्योति उदित हुई उसका दृग्गोचर रूप छन्दों में ही था। ब्रह्मा की सृष्टि एक नियमित व्यवस्था के अधीन होने के कारण छन्दोमयी है। भावों के आवेग से छन्द का जन्म क्रौञ्च की कथा से सिद्ध है। हिन्दी के कतिपय कवि और समालोचक इस विचार से सहमत हैं। श्री सुमित्रानन्दन पंत लिखते हैं—

"कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है। हमारे जीवन का पूर्ण रूप हमारे अन्तरप्रदेश का सूक्ष्माकाश ही संगीतमय है। अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन, छन्द ही में बहने लगा है।"[८] इस प्रसंग में रवीन्द्रनाथ टैगोर का कहना है कि आदि कवि का शाप ही कोटि-कोटि कंठों से छन्द बन कर फूट रहा है।[९] विभिन्न मतों को देखते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि निसर्ग से मनुष्य को छन्दों का दान मिला है। भावावेग माध्यम का काम करता है। यह बात भी सुस्पष्ट है कि मनुष्य ने आगे चल कर अपने अनुसार छन्दों में काट-छाँट की। छन्द को साहित्यिक रूप देने में मानव का हाथ रहा है। इस सम्बन्ध में डा० पुत्तूलाल शुक्ल ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है—"सम्भवतः भावावेग ने अविकसित मानव को लय छन्द प्रदान किया होगा, जिसे उसने वाग्विलास

---

५. वाल्मीकि रामायण। बाल० २।१५
मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीस्समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

६. साहित्य का मर्म : हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ४१

७. वाङ्मय विमर्श : पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १४३

८. पल्लव : सुमित्रानन्दन पन्त, प्रवेश, पृ० २१

९. रवीन्द्र रचनावली, पृ० २६१
'किन्तु सेई आदिकविरशाप शाश्वत कालेर कण्ठे ध्वनति होये रइल एई शाश्वत कालेर कथा के प्रकाश कारबार जन्यइ तो छंद'।'

और कला-प्रियता के साथ-साथ अनुशासन करके साहित्यिक छन्द का रूप दिया है।"[10]

वीरगाथा काल से लेकर आधुनिक काल के प्रयोगवादी काव्य तक देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि छन्द-विधान समयानुसार बदलता रहा है। इतना अवश्य है कि एक काल के छन्द अन्य काल में भी चलते रहे पर कालविशेष की छन्द-परम्परा एकसी रही। वीरगाथा काल के छन्द-विधान में एकरूपता की जो झाँकी मिलती है उसे हम भक्ति-काल और रीतिकाल मे भी देख सकते है। यदि भक्ति-काल के कवियों ने अधिकाशतः पदो मे रचना की तो रीतिकाल के कवियों ने सवैयों और कवित्तों को अधिक अपनाया।

आधुनिक काल के प्रारम्भ में एक नवीन जागृति और नवल-चेतना का समारम्भ हुआ। यह जागृति केवल भावों के प्रदेश में ही नही हुई वरन् छन्द-परम्परा के भी आसन डिगे। रीतिकाल की 'छन्दता' ही आधुनिक काल की 'स्वच्छन्दता' वन गयी। हाँ द्विवेदी युगीन कवियो ने छन्दों के विरुद्ध विद्रोह करना उचित नही समझा, किन्तु फिर भी सूत्रपात वही से प्रारम्भ होता है। यह वात अनिश्चित है कि छन्द-परम्परा को चुनौती देकर प्रथमतः कौन आगे आया? सियारामशरण जी के छन्द-विधान में प्राचीन परिपाटी भी मिलती है और नवीन भी। यह गंगा-जमुनी तो अनोखी है ही साथ ही उन्होंने कुछ नये प्रयोग भी किये है।

जिस समय हिन्दी के वरिष्ठ आलोचको ने 'रवड़ छन्द' और 'केचुआ छन्द' की आलोचना प्रारम्भ की थी उसी समय 'निराला' जी का 'परिमल' प्रकाशित हुआ था। 'परिमल' की भूमिका में 'निराला' जी ने मुक्त छन्दों की प्रशंसा मुक्त कंठ से की थी। साथ ही आलोचकों को मुँह तोड़ उत्तर भी दिये। वे लोग जो छन्दों की वैदिक प्राचीनता सिद्ध करते हे, मुक्त छन्दों को वेद में भी देखे। इस सम्वन्ध मे 'निराला' जी लिखते है —

"मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिये अनर्थकारी नही होता, किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की मूल होती है। जैसे वाग की वँधी और वन की खुली हुई प्रकृति। दोनों ही

---

१०. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना : डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० २७

सुन्दर हैं, पर दोनों के आनन्द तथा दृश्य दूसरे-दूसरे हैं।"[११]

आगे चलकर छायावादी काव्यधारा में छन्द के विभिन्न प्रयोग किये गये। कुछ पुरानी परिपाटी से मेल खाने वाले और कुछ मौलिक। सियारामशरण जी के साथी कवियों ने छन्दों के सम्बन्ध में न्यूनाधिक विचार किया है। स्वयं श्री मैथिलीशरण गुप्त ने छन्दों के अनेक प्रयोग किये हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य के छन्दों में सियारामशरण जी की देन कई रूपों में है। कहीं तो वे द्विवेदी युगीन प्रभाव में छन्दों की लीक पर चलते हैं और कहीं पुराने छन्दों को स्वच्छन्द ढर्रे पर ले चलने का उपक्रम करते हैं। वैसे खड़ी बोली मात्रिक छन्दों में अधिक अनुकूलता प्राप्त करती है और वर्णिक छन्दों का प्रयोग ब्रजभाषा में अच्छा बन पड़ता है। सियारामशरण जी के काव्य में मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिकांशतः मिलता है। कवि की भाषा के सम्बन्ध में अन्यत्र विचार किया जायगा। यहाँ मात्राओं के क्रम से कवि द्वारा प्रयुक्त छन्दों पर विचार कर लेना उचित होगा।

'हाकलि' १४ मात्राओं का छन्द होता है। 'भानु' कवि ने इस छन्द में पदांत गुरु का विधान भी माना है।[१२] इस छन्द का प्रयोग 'दूर्वादल' में हुआ है—

II SI IIS S IS
यह रात सहसा आ गई,— १४ मात्राएँ तथा
नभ में अँधेरी छा गई। अन्त में गुरु
सोना पड़ेगा अब हमें,
ये कार्य तज कर सब हमें।[१३]

इस छन्द के सम्बन्ध में डा० पुत्तूलाल शुक्ल लिखते हैं—"सच बात तो यह है कि अन्त या मध्य में दो त्रिकलों के रखने से यह छन्द अधिक तरंगायमान हो जाता है। अतः इसका नियम केवल यही होना चाहिए—सम प्रवाही १४

---

११. परिमल : निराला, पृ० १४
१२. छन्दःप्रभाकर : 'भानु', पृ० ४४
१३. दूर्वादल : पृ० १६

मात्राएँ ।"[१४] सियारामशरण जी ने इस छन्द का प्रयोग बहुत कम किया है।

'शृंगार' छन्द में १६ मात्राएँ होती है। आदि में त्रिकल, मध्य में सम-प्रवाह और अन्त में प्रयत्न निपात (गुरु लघु से अन्त) या गलात्मक त्रिकल (ऽ।) भी होना चाहिए। सियारामशरण जी ने इस छन्द का प्रयोग अधिकांशतः किया है। 'मृण्मयी', 'दूर्वादल', 'अनाथ', 'आर्द्रा', 'पाथेय' आदि कृतियों में यह छन्द प्रयुक्त हुआ है। 'दूर्वादल' की 'लाभालाभ' कविता का एक अंश दृष्टव्य है—

।।। ऽ ।।। ।ऽ ऽ ऽ।
विभव की कनक सुरा से मत्त = १६ मात्राएँ
नगर श्रेष्ठी नरवाहनदत्त अन्त में ऽ।
भूल कर धन-व्यय का परिमाण
सूक्ष्म कौशल का पृथुल प्रमाण —[१५]

'दैनिकी' की 'लघु' शीर्षक रचना भी शृंगार छन्द में हुई है—

कौतूहलवश उत्सुक विशेष
निज शैया पर से निर्निमेष
मैं देख रहा था वह अनन्त
गृह तारा मंडल दीप्तिमंत —[१६]

प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ और अन्त में ऽ। है। तुकान्त प्रत्येक दो चरण का मिलता चलता है। ऐसा भी होता है कि तुकान्त में पहले तीसरे और दूसरे चौथे चरणों का मेल हो। हर्ष, पुलक, शृंगार आदि का वर्णन करने में शृंगार छन्द अधिक उपयुक्त है। "शृंगार छन्द 'अन्वर्थ' नाम है, क्योंकि शृंगार रस में अधिक सफल होता है।"[१७] 'अनाथ' के तृतीय खंड के सभी छन्द शृंगार' हैं। एक उदाहरण—

---

१४. आधुनिक हिन्दी काव्य में छंदयोजना : डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० २५३
१५. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ११
१६. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४१
१७. आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना : डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० २६६

हाय मोहन के घर इस ओर
हृदय था और अतीव कठोर
वहाती हुई अश्रु चुपचाप
पा रही थी यमुना संताप —[१८]

ऊपर दिये गये लक्षण के अन्तर्गत यह छन्द आ जाता है। पाथेय का 'आकांक्षा' शीर्षक, विषाद में 'एक चमक', 'स्वर्ण प्रतिमा', 'विदा' तथा 'आर्द्रा' में 'डाकू' शृंगार छन्द में लिखे गये हैं। सियारामशरण जी को यह छन्द अधिक प्रिय था। इसी कारण उनके काव्य में इस छन्द का प्रयोग हुआ है।

'पीयूषवर्ष' छन्द १९ मात्राओं से बनता है। इसमें तीसरी, दसवीं तथा सत्रहवी मात्रा लघु होनी चाहिए। हिन्दी की आधुनिक कविता में इस छन्द का प्रयोग अधिकता से हुआ है। शृंगारी भावनाएँ 'पीयूषवर्ष' का साथ पाकर अधिक संवेदनशील बन जाती हैं। पीयूषवर्ष का अर्थ होता है—अमृत की वर्षा करने वाला। पंत जी लिखते हैं—"पीयूषवर्ष की ध्वनि से कैसी उदासीनता टपकती है ? मरुभूमि में बहनेवाली निर्जनतटिनी की तरह, जिसके किनारे पत्र-पुष्पों के शृंगार से विहीन, जिसकी धारा लहरों से चंचल कलरव तथा हास-परिहास से वंचित रहती, यह छन्द भी वैधव्य वेश में, अकेलेपन में सिसकता, श्रान्त-गति से अपने ही अश्रुजल धीरे-धीरे बहाता है।"[१९] अपने ही अश्रुजल से बहने वाली बात प्रत्येक स्थल पर खरी नहीं उतरेगी। श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'पीयूषवर्ष' या सियारामशरण जी के ही ये छन्द सभी स्थलों पर अश्रुजल बहाने वाले नहीं हैं। 'प्रसाद' जी के प्रयोग भी इस कोटि में कम आते हैं। पंत जी की बात; 'ग्रंथि' के सम्बन्ध मे अवश्य उचित प्रतीत होती है, जहाँ का गान भी जीता सिसकता है।

सियारामशरण जी ने सर्वप्रथम इस छन्द का प्रयोग 'आर्द्रा' में किया, तदुपरान्त 'पाथेय' और 'दूर्वादल' में। ईसा के सम्बन्ध में लिखी पुस्तक 'अमृत-पुत्र' में भी पीयूषवर्ष छन्द का प्रयोग किया गया है। आर्द्रा में 'हूक' शीर्षक इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

उस दिवस तैयार मैं ज्यों ही हुआ
कार्यवश अन्यत्र जाने के लिये,

---

१८. अनाथ : सियारामशरण गुप्त, पृ० १९
१९. पंल्लव : सुमित्रानन्दन पन्त, पृष्ठ ३९

आ गयी झट से रमा मेरे निकट
लिपट कर मुझसे खड़ी वह हो गई।
हँस उठा मैं गोद में लेकर उसे,
चूम कर वह मंजु मुख बिखरी लटें
ठीक कर—मैं जा रहा हूँ काम से;—[२०]

सप्तक की दो आवृत्तियाँ हुई है और अन्त में रगण (ऽ।ऽ) रखा गया है—

उस दिवस तैयार मैं ज्यों ही हुआ
(७+७+५) १९ मात्राएँ

इस छन्द में सियारामशरण जी की लेखनी को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। अमृतपुत्र के अनुवादक श्री ए० जी० शिरेफ 'अमृतपुत्र' के अनुवाद 'दि क्रॉस वियरर' में लिखते हैं—

"The metre of the original is 'Piyush Varsha' (shower of nector) 'Anand Vardhak' (increaser of delight) an unrhymed verse of 19 beats. ××× the rythm of Hindi allows for great variety. For the first part of the translation I have used another trochaic measure which seems to suit its introspective mood the slow moving Locksley Hall couplet. For the second part which is mainly narrative, I have used ordinary blank verse making the poet's division into paragraphs by rhyming couplets."[२१]

शिरेफ साहब के अनुसार 'अमृतपुत्र' के छन्द पीयूषवर्ष हैं। अपने नाम के अनुसार ही इस छन्द से आनन्द मिलता है। 'अमृतपुत्र' में प्रयुक्त छन्द का एक अंश देखिए —

भ्रमण में पाया सुखी कोई नहीं,
मर रहे हैं जो रहे हैं लोग सब।
पूजते हैं सब उन्हीं को मान से
दूसरों को दाब जो ऊँचे उठे।

---

२०. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५
२१. दि क्रॉस वियरर : अनु० ए० जी० शिरेफ, पृष्ठ १९

इसके प्रत्येक चरण में १९ मात्राएँ है। पदांत में लघु और गुरु दोनों प्रयोग मिलते है। प्रत्येक चरण में तीसरी, दसवी और सत्रहवीं मात्राएँ लघु हैं। दूर्वा-दल की 'मूर्ति' और पाथेय की 'स्नेह-रीति' रचनाओं में पीयूषवर्ष छन्द प्रयुक्त है। 'स्नेह-रीति' का 'पीयूषवर्ष' १, ३ तथा २, ४ चरण के तुकान्त के आधार पर है—

दीप तू जागृत रहा है रात भर १
और मैं बेसुध पड़ा सोता रहा। २
हाय, अत्याचार यह निज गात पर ३
स्नेह सह तू प्रज्जवलित होता रहा। ४ [२२]

'सुमेरु' छन्द में भी १९ मात्राएँ होती है। श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने उसमें १२ या १० मात्राओं के पश्चात् यति मानी है। वे लिखते हैं—

'इस छन्द के आदि में लघु रहता है, अन्त में यगण। (ISS) कर्ण मधुर होता है। ध्यान रहे कि इसके अन्त में SSI, SIS, ISI ऐसे प्रयोग नही आते।"[२३] सियारामशरण जी ने इस छन्द का प्रयोग कम किया है। एक उदाहरण 'दूर्वादल' से प्रस्तुत है—

अभागे फूल मुरझाने लगा तू = १९ मात्राएँ
सताया काल से जाने लगा तू आदि में लघु
अभी अच्छी तरह खिल भी न पाया,
कि तुझ पर हाय ऐसा दुःख आया।[२४]

आधुनिक काव्य मे इस छन्द के जो प्रयोग मिलते है उनमें प्रायः १०वी मात्रा पर ही यति मिलती है। डा० पुत्तूलाल शुक्ल विना यति के भी इस छन्द का पाठ सम्भव मानते है।[२५] 'दूर्वादल' पुस्तक में २१ मात्राओं वाले छन्द 'चन्द्रा-यण' छन्द का प्रयोग गुप्त जी ने कम किया है। 'समीर के प्रति' रचना में 'चन्द्रा-यण' छन्द अच्छा वन पड़ा है—

गिरि, वन, उपवन नदी नदों को चूमते
हे समीर उद्भ्रांत हुए तुम घूमते

२२. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ९७
२३. छंदःप्रभाकर : 'भानु', पृष्ठ ५३
२४. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ११
२५. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना : डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृष्ठ २७४

जब से तुमने जन्म धरा पर है लिया,
क्षण भर भी विश्राम नहीं निज को दिया।[२६]

इस छन्द में 'भानु' जी के अनुसार ११ मात्राएँ जगणान्त और १० मात्राएँ रगणान्त होती हैं।[२७] अन्त में लघु-गुरु का होना आवश्यक है। ऊपर के उद्धरण में अन्त में लघु गुरु है।

२२ मात्राओं वाले 'राधिका' छंद का प्रयोग सियारामशरण जी ने अपने काव्य में कई स्थलों पर किया है। इसमें १३ मात्राओं पर यति आती है।[२८] 'अनाथ' के द्वितीय खंड में इसका प्रयोग हुआ है—

पथ ऊँचा-नीचा विषम और दुर्गम था,
मैला गंदा भी नहीं वहाँ कुछ कम था।
खंडहर के दोनों ओर मकान खड़े थे,
कूड़े-करकट के ढेर अनेक पड़े थे।[२९]

'पाथेय', की 'तिमिरालोक', दैनिकी की 'आश्वस्त', 'नोआखाली में' की 'निशान्त' आदि रचनाएँ 'राधिका' छंद के अन्तर्गत आती है। 'आश्वस्त' और 'निशान्त' में कवि ने नवीनता लाने का प्रयत्न किया है। इस नवीनता पर 'छंदों के नवीन प्रयोग' शीर्षक के अन्तर्गत विचार किया जायगा।

रोला २४ मात्राओं का छंद होता हे। इसमे दो प्रकार के पदों की रचना होती है—सम पद और विषम पद। आचार्य 'भानु' ने रचना-क्रम मे विषम पद में ४+४+३ या ३+३+२+३ तथा सम पद में ३+२+४+४ या ३+२+३+३+२ की योजना रखी है।[३०] सियारामशरण जी ने 'अनाथ', 'आर्द्रा', 'नकुल', 'मृण्मयी', 'दैनिकी' आदि कृतियो में रोला का प्रयोग किया है। कुछेक दृष्टान्त पर्याप्त होंगे—

---

२६. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४३
२७. छंदःप्रभाकर : 'भानु', पृ० ५६
२८. छंदःप्रभाकर : 'भानु', पृ० ५८

तेरा पै सज नव कला राधिका रानी।
लखि रूप अलौकिक मातु, कीर्ति हरखानी।

२९. अनाथ : सियारामशरण गुप्त, पृ० १०
३०. छन्दःप्रभाकर : 'भानु', पृ० ६१

मिट्टी का बेडौल एक छोटा सा घर है,
सभी ओर से जीर्ण शीर्ण अतिशय जर्जर है।
पर हे हरि, दृग आज खूब आंसू बरसावें,
दुःख शोक संताप सभी जिससे बह जावें ॥[31]

× × ×

करके हर हर नाद बेतवा की खर धारा
बड़े वेग से बही जा रही थी, तट सारा
वही एक ही गान सुन रहा था निर्जन में
तन्मय होकर सांध्य समीरण के सन सन में—[32]

२४ मात्राओं वाले रोला के चार पद तथा २६ मात्राओं के उल्लाला के दो पद मिलकर 'छप्पय' छंद की रचना करते हैं। कुछ विद्वान उल्लाला में २६ के स्थान पर २८ मात्राएँ मानते हैं।[33] सियारामशरण जी ने अपनी प्रथम कृति 'मौर्य-विजय' के सभी सर्गों में इस छंद का प्रयोग किया है। उदाहरण हेतु—

पूर्ण चंद्र है उदित सुनील नभोमंडल में,
चारु चंद्रिका छिटक रही है वसुधा तल में।
विहग गणों का बंद हुआ है आना-जाना,
नहीं रुका है किंतु पिकों का मधु बरसाना।
चलकर सुरभित शीतल पवन सबका श्रम है हर रही।
देकर सुगंधि सुखदायिनी मन को मोहित है कर रही॥[34]

सियारामशरण जी ने २८ मात्राओं वाले उल्लाला का प्रयोग किया है। प्रस्तुत उद्धरण से दोनों छंदों की एक-एक पंक्ति लेकर हम देख सकते हैं—

---

३१. अनाथ : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३

३२. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८५

३३. छन्दःप्रभाकर : 'भानु', पृष्ठ ६६

रोला को पद चार, मत्त चौबीस धारिए।
उल्लाला पद दोय, अन्त माहीं सुधारिए।
कहुँ अट्ठाइस होंय मत्त छब्बिस कहुँ देखो।
छप्पय के सब भेद मीत इकहत्तर लेखो।

३४. मौर्य-विजय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८

विहग गणों का बन्द हुआ है आना जाना=२४ (रोला)

उल्लाला की पंक्ति इस प्रकार है—

चलकर सुरभित शीतल पवन सब का श्रम है हर रही=२८ मात्राएं

(उल्लाला)

मौर्य-विजय के अतिरिक्त 'दूर्वादल'[35] में भी इस छंद का प्रयोग किया गया है।

२७ मात्राओं वाले 'सरसी' छंद का प्रयोग 'विषाद', 'दूर्वादल', 'पाथेय', 'मृण्मयी', आदि कृतियों में मिलता है। इस छंद में १६ मात्राओं के बाद यति और अन्त में ऽ। आना चाहिये।[36] डा० पुत्तूलाल शुक्ल के अनुसार "इस छंद में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ है। कुछ प्रयोग बिना यति के भी मिलते हैं, यही नयी बात है, पर इससे लय में अन्तर नहीं आता।"[37] 'विश्वास' शीर्षक में 'सरसी' का प्रयोग दृष्टव्य है—

हो अपराध भूलकर भी जब =१६
हमसे किसी प्रकार =११
निर्दय बन कर हमें दंड तब
दो हे करुणागार।
पाप कीट इस हृदय सुमन में
जब कर जाय प्रवेश,
निर्दय बन कर विष की धारा
छोड़ो तब अखिलेश।—[38]

प्रस्तुत उद्धरण में प्रत्येक चरण का तुकान्त मिलता चलता है। दूर्वादल में 'कोजागर पूर्णिमा', 'गत दिवस', विषाद में 'स्मृति', 'स्वप्न', 'मौनालय', आदि रचनाओं में सरसी छंद का प्रयोग हुआ है। 'पाथेय' के 'अनुकूल', 'वीर वन्दना' तथा 'दयनीय' शीर्षक भी इसी के अन्तर्गत आते है।

---

३५. 'जननी' शीर्षक पृष्ठ ३५ पर।

३६. आचार्य भानु लिखते हैं :—

सोह शंभु यती गल कीजै, सरसी छन्द सुजान।
श्री कबीर की बानी उत्तम, सब जानत मतिमान।।

छंदःप्रभाकर, पृष्ठ ६६

३७. आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना : डा० पुत्तूलाल, पृष्ठ २९४

३८. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २

२८ मात्राओं का 'नरेन्द्र' या 'सार' छंद सियारामशरण जी को अधिक रुचता है। 'दैनिकी' में सार छंद की अधिकता है। इस छंद में सोलह मात्राओं के बाद यति आती है। अन्त में दो गुरु होना आवश्यक है। दैनिकी के अतिरिक्त 'पाथेय' और 'दूर्वादल' में भी सार छंद मिलते है। नवीन प्रयोगों में कहीं-कही प्राचीन नियम भग कर दिया जाता है और बीच में यति नही दी जाती। डा० पुत्तूलाल शुक्ल के अनुसार, "लय-प्रवाह अखण्ड होने पर इसे असाम्य दोष नही मानना चाहिये।"[३९] यहां एक उदाहरण दिया जाता है—

> फैसे पाऊँ थाह अवश में
> तम की यह गहराई =२८
> मेरे सुप्रभ दिन के ऊपर
> कुटिल कुहू सी छाई।[४०]

'पाथेय' में 'नेत्रोन्मीलन' शीर्षक, 'दूर्वादल' में 'तुलसीदास', 'दैनिकी' में 'विकलांग', 'रुद्ध कक्ष', 'दो पैसे', 'मजूर', 'आज का पन्ना', 'अंडमान', 'स्वाश्रयी', 'लोहा', 'पृथ्वी' और 'स्मृति' आदि शीर्षकों में नरेन्द्र छंद प्रयुक्त हुआ है।

२८ मात्राओं वाला एक अन्य छंद हरिगीतिका भी है। इसमे १६ मात्राओं के बाद यति का नियम है। अन्त में एक लघु और एक गुरु होता है। पाँचवीं, बारहवी, उन्नीसवी और छब्बीसवीं मात्राएँ लघु होती है। श्री मैथिलीशरण जी की 'भारत भारती' में इसका सफल प्रयोग हुआ है। सियारामशरण जी ने हरिगीतिका छंद अधिक नहीं लिखे। 'अनाथ' के चौथे खंड में हरिगीतिका का प्रयोग मिलता है—

> था शांतिमय संध्या समय, बहता सुगंध समीर था,
> पर हाय! मोहन का हृदय अस्थिर अशांत, अधीर था।
> मृदु मंद झोंके वायु के उसका न चित्त चुरा सके,
> क्षण मात्र को भी वे न उसके अश्रु-बिंदु सुखा सके।[४१]

सियारामशरण जी के हरिगीतिका में कहीं तो १६ मात्राओं पर यति आती है और कही १४ पर। यही स्वेच्छा मैथिलीशरण जी के यहाँ भी है। मात्राओं

---

३९. आधुनिक हिन्दी काव्य में छंदयोजना : डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृष्ठ २९५

४०. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७८

४१. अनाथ : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २७

में चाहे १६ पर यति हो अथवा १४ पर, पढ़ने में गति भंग नहीं होना चाहिए।

३० मात्राओं का 'ताटंक' छंद सियारामशरण जी के काव्य में अधिकता से प्रयुक्त हुआ है। इसमें यति १६ मात्राओं के वाद आती है। चरण के अन्त में मगण (ऽऽऽ) अनिवार्य है। "नवीन प्रयोगों में ऽऽ, ।।ऽ, ऽ।।, समात्मक वर्णक्रम भी अन्त में आ सकते हैं।"[४२] 'एक फूल की चाह' नामक प्रसिद्ध कविता से उदाहरण प्रस्तुत है—

बेटी वतला तो तू मुझको =१६
किसने तुझे वताया यह =१४
किसके द्वारा कैसे तूने
भाव अचानक पाया यह।[४३]

आर्द्रा में 'खादी की चादर' कविता भी ताटंक छंद में लिखी गयी है। पाथेय में 'विदा', 'अविराम', 'परदेशी', 'वोध', 'वीच में' तथा 'असफल' आदि रचनाएँ भी इसी छंद में हैं। 'आत्मोत्सर्ग' कृति के सारे छंद ताटंक हैं। एक उदाहरण :—

अपने ही भाई के ऊपर =१६
यदि तुम जोर जमाओगे। =१४
तो अन्याय मिटाने जाकर =१६
क्या वह न्याय कमाओगे॥[४४] =१४

'दूर्वादल' काव्य-संग्रह की निम्नलिखित रचनाएँ ताटंक छंद के अन्तर्गत हैं :—

'गृह प्रदीप', 'सुजीवन', 'अपूर्ण', 'यांचा', 'माली के प्रति', 'संतोप', 'लेखनी' तथा 'घट' आदि। 'ताटंक' छंद के अधिक प्रयोग से यह पता चलता है कि कवि को यह छंद अधिक प्रिय था। छंद-योजना कहीं भी अनियमित नहीं है। प्रत्येक स्थल पर कवि ने अत्यन्त कौशल से काम लिया है। यह कवि के शास्त्रीय ज्ञान

---

४२. आधुनिक हिन्दी काव्य में छंदयोजना : डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृष्ठ २०२
४३. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४६
४४. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १७

का परिचायक है।

३१ मात्राओं वाले छंदों में 'वीर' और 'शृंगार गोपी' छंद का प्रयोग सियारामशरण जी के काव्य में पाया जाता है। वीर छंद में १६ मात्राओं के बाद यति आती है। कुल ३१ मात्राएँ होती हैं। चरणान्त में 'ऽ।' का होना आवश्यक है। इस छंद को 'आल्ह छंद' भी कहा जाता है। 'भानु' जी ने 'छंदः-प्रभाकर' में इसका एक अन्य नाम मात्रिक सवैया भी दिया है।[४५] वीर छंद वीर और शृंगार रस की रचनाओं के लिए उपयुक्त है। इसी छंद में वर्षाकाल में 'आल्हा' गाया जाता है। सियारामशरण जी का 'वीर छंद' दृष्टव्य है :—

वाणी के मंदिर में आकर, =१६
फर्म स्वयं झंकृत है आज। =१५ अन्त में ऽ।
गिरा अर्थ से अर्थ गिरा से
सादर समलंकृत है आज।[४६]

'बापू' नामक काव्य-कृति में इस छंद का प्रयोग पाया जाता है। कवि का कोई विशेष लगाव इस छंद की ओर नहीं दिखायी पड़ता।

३१ मात्राओं वाले 'शृंगार गोपी' नामक छंद का प्रयोग भी सियारामशरण जी के काव्य में मिलता है। 'पाथेय' की 'समाधान' रचना 'शृंगार गोपी' छंद में है :—

अरे ओ मेरे मार्ग महान =१५
तुझे तम ही तम क्यों भाया ? =१६
मेट कर दिन ही में दिन-मान
तिमिर में तूने क्या पाया ?[४७]

३१ मात्राओं के पश्चात् युग्मक अन्त्यानुप्रास आया है। ३२ मात्राओं वाले छंदों में 'मत्त सवैया' और 'शृंगारहार' का प्रयोग सियारामशरण जी के काव्य में मिलता है। प्राचीन और नवीन मत्त सवैया में पर्याप्त अन्तर है। प्राचीन सवैया पदपादाकुलक के दो चरणों के योग से बनता है। नवीन में चौकलों का

---

४५. छंदःप्रभाकर : 'भानु', पृष्ठ ७२
४६. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ९
४७. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८८

प्रयोग किया जाता है। 'दूर्वादल' और 'पाथेय' में मत्त सवैया के प्रयोग मिलते है :—

हे वीणे बता कहाँ पाया
इस दारुखंड में मनभाया।[४८]

इसी प्रकार 'पाथेय' में 'यथास्थान' तथा 'प्रमाण' शीर्षकों में मत्त सवैया छंद आया है। 'श्रृंगारहार' दैनिकी में कई स्थलों पर आया है। 'यंत्रपुरी', 'नवनिर्माण', 'स्मरण', 'विरजू', तथा 'खनक' आदि रचनाएँ इसी छंद में है। कवि की और कृतियों में 'श्रृगारहार' का प्रयोग नही हुआ है। इस छद में भी कवि की सिद्धहस्तता दृष्टिगोचर होती है। एक उदाहरण :—

जिस नगरी के प्रासाद भवन =१६
करते थे अम्बर में विहार =१६
वह बनी कोयला ईंटों की =१६
धरती पर है अब निराधार।[४९] =१६

इन मात्रिक छंदों को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि कवि का छंद ज्ञान उच्चकोटि का था। छंद उनकी कविता के लिए बाधक नहीं बने। वर्णिक छंदों का प्रयोग सियारामशरण जी के काव्य मे कम हुआ है। 'घनाक्षरी' और 'शरण' छंद ऐसे है जिनके कुछेक उदाहरण इनके काव्यों में मिलते है। 'दूर्वादल' के अन्तर्गत 'शरणागत' शीर्षक का छंद घनाक्षरी है :—

सुनसान कानन भयावह है चारों ओर,
दूर-दूर साथी सभी हो रहे हमारे हैं।
काँटे बिखरे हैं कहाँ जावें जहाँ पावै ठौर,
छूट रहे पैरों से रुधिर के फुहारे है।
आ गया कराल रात्रिकाल है अकेले यहाँ
हिंस्र जन्तुओं के चिह्न जा रहे निहारे हैं।
किसको पुकारें यहाँ रोकर अरण्य बीच =१६ वर्ण
चाहे जो करो शरण्य शरण तुम्हारे हैं।[५०] =१५ वर्ण

---

४८. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५६
४९. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २६
५०. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १२

प्रस्तुत उद्धरण में प्रत्येक चरण में १६,१५ के वर्ण-क्रम के आधार पर कुल ३१ वर्ण होते हैं। रीतिकालीन साहित्य में इस छन्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। इसे घनाक्षरी, मनहरण, कवित्त आदि कई नामों से सम्बोधित किया जाता है। पंत जी पल्लव की भूमिका में लिखते हैं—

"कवित्त छन्द मुझे ऐसा जान पड़ता है, हिन्दी का औरस जात नहीं, पोष्य पुत्र न जाने यह हिन्दी में कैसे और कहाँ से आ गया। अक्षर मात्रिक बँगला छन्द में मिलते हैं, हिन्दी के उच्चारण संगीत की वे रक्षा नहीं कर सकते। कवित्त को हम संलापोचित छन्द कह सकते हैं, सम्भव है कि पुराने समय में भाट लोग इस छन्द में राजाओं-महाराजाओं की प्रशंसा करते हों और इसमें रचना सौकर्य पाकर तत्कालीन कवियों ने धीरे-धीरे इसे साहित्यिक बना दिया। पर कवित्त छन्द हिन्दी के इस स्वर और सामंजस्य को छीन लेता है। उसमें यति के नियमों के पालन पूर्वक चाहे आप इकतीस गुरु अक्षर रख दें, चाहे लघु एक ही बात है, छन्द की रचना में अन्तर नहीं आता.....................
..................हिन्दी का स्वाभाविक संगीत नष्ट हो जाता है।"[५१]

पंतजी के अनुसार राजाओं-महाराजाओं के युगीन कवियों ने रचना-सौकर्य के कारण कवित्त को साहित्यिक बना दिया। साथ ही इससे हिन्दी का स्वाभाविक संगीत नष्ट हो जाता है। इतना होने पर भी मुक्तक रचना के रूप में कवित्त की सफलता 'रत्नाकर' तथा अन्यान्य कवियों में देखी जा सकती है। निराला जी भी कवित्त छंद को सरल प्रवाही मानते हैं।[५२] यह सरल प्रवाह श्रीसियारामशरण जी के कवित्तों में भी मिलता है किन्तु उनकी रचनाएँ कवित्त में अधिक मात्रा में नहीं हुई हैं। हाँ कवि ने कवित्त का सहारा लेकर अपने नवीन प्रयोग अवश्य किये हैं। 'शरण' छन्द का प्रयोग सियारामशरण जी ने 'बापू' में किया है। इस छन्द में कुल २३ वर्ण होते हैं। क्रम १२, ११ का रहता है।

शरण छन्द

कौन वह कौन महज्जन है। =११ वर्ण
कितना उदार स्वर इसका =११ वर्ण

---

५१. पल्लव : सियारामशरण गप्त, पृ० २६
५२. परिमल : निराला, पृ० २२

दूर यह तो है पास किसका	=११ वर्ण
विजयी विमुक्त-काल बंधन से	=१२ वर्ण
उद्घोषित सा है चिरन्तन से—[५३]	=११ वर्ण
स्थान पात्र भेद नहीं जिसका	=११ वर्ण

इसी प्रकार १२ वर्णों वाले प्रयोग भी पाये जाते है। 'बापू' में ११ वर्ण और १२ वर्णों के चरण को बिना क्रम के भी प्रयुक्त किया गया है।'[५४] इन छन्दों के अतिरिक्त कुछ नवीन प्रयोग (मुक्त छन्द और अतुकान्त) भी गुप्त जी ने किये हैं। अधिक विस्तार में न जाकर यहाँ केवल इतना कहना है, कि भिन्न तुकान्त शैली और मुक्त छन्द प्रणाली में हिन्दी काव्य में सियारामशरण जी का विशेष स्थान है। 'निराला' जी लिखते है—

"सियारामशरण जी ने 'प्रभा' में इस प्रकार की अतुकान्त कविता पहले-पहल लिखी थी। यह मुझे उन्ही के कथनानुसार मालूम हुआ है। अब तक मैं समझता था इस १६ मात्राओं के अतुकान्त काव्य के पंत जी ही प्रथम आविष्कारक है।"[५५]

इसी प्रसंग में 'निराला' जी ने 'हरिऔध' जी तथा गिरिधर शर्मा का नाम लिया है। 'हरिऔध' जी मुक्त छन्द (Blank verse) के क्षेत्र में तथा गिरिधर-जी अतुकान्त १६ मात्राओं वाले छन्द के सम्बन्ध में जाने जाते है। मुक्त छन्द के आविष्कारक के रूप में श्री रामनरेश जी त्रिपाठी ने अपनी 'कविता कौमुदी' कृति में 'प्रसाद' जी का नाम लिया है।[५६] इस मतभेद का निर्णय सरल कार्य नहीं है। १६ मात्राओं की जिस रचना की ओर निराला जी ने संकेत किया है वह संभवत: १६२१ में प्रकाशित हुई थी। नवम्बर सन् १६२४ की 'प्रभा' में 'बाढ़' शीर्षक से एक कविता प्रकाशित हुई है। सियारामशरण जी ने इसे 'विषमाक्षरी' कहा है --

पेय पय अन्तर के स्नेह का पिलाती हुई,	=१६ वर्ण
खेल सा खिलाती हुई,	= ८ वर्ण

---

५३. बापू : सियारामशरण गुप्त : पृ० १६

५४. आधुनिक हिन्दी काव्य में छंदयोजना : डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० १६६

५५. परिमल : निराला, पृ० १८

५६. परिमल : निराला, पृ० १६

नन्हीं उन लहरों को लेके निज गोद में, =१५ वर्ण
मग्न थी अभी तो तू प्रमोद में, =११ वर्ण
जैसे कुल लक्ष्मी निज अन्तःपुर चारिणी, =१५ वर्ण
वैसे ही तटों के बीच भीतर विहारिणी, =१५ वर्ण
तू थी महा शोभामयी, =८ वर्ण
नित्य नई।[५७] =४ वर्ण

इस उद्धरण से १६ मात्राओं के उस छन्द की बात पूरी नहीं होती जिसका उल्लेख निराला जी ने 'परिमल' की भूमिका में किया है और पंत जी को इस छन्द का प्रथम आविष्कारक भी माना है। निराला जी ने अपनी उसी भूमिका में दो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

अहह विरह कराहते इस शब्द को,
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा।[५८] (पंत)

यह छन्द १६ मात्राओं का है। इसकी तीसरी, दसवीं तथा सत्रहवीं मात्राएँ लघु है। यह लक्षण पीयूषवर्ष छन्द का है। कहना न होगा कि पीयूषवर्ष सियारामशरण जी का अत्यन्त प्रिय छन्द है। उनके काव्य में इस छन्द का प्रयोग मिलता है, यह बात पीछे कही जा चुकी है। यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि सन् १९२१ में 'कृष्णा' नाम का एक गीतनाट्य 'प्रभा' में प्रकाशित हुआ था जिसके लेखक थे सियारामशरण गुप्त। यह भी १९ मात्राओं का अतुकान्त छन्द है। इसकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

योग्य है श्रीमान को कहना यही
किन्तु जननी जन्म भूमि स्वदेश का
त्राण करना ही प्रथम कर्त्तव्य है।
युद्ध में यदि वीर गति हमको मिली,
दुर्दशा होगी हमारी भूमि की।[५९]

बहुत कुछ सम्भव है कि रचनाकाल और प्रकाशन-समय में साल दो साल का अन्तर हो। पंत जी की 'ग्रंथि' सन् १९२० के जनवरी मास में लिखी गयी

---

५७. प्रभा : नवम्बर १९२४
५८. परिमल : निराला, पृ० १८
५९. प्रभा, अप्रैल १९२१

थी।[६०] कुछ भी हो इस १६ मात्राओं वाले छन्द का प्रयोग 'ग्रंथि' में अच्छा बन पड़ा है। सियारामशरण जी ने भी अपनी रचनाओं में इस छन्द का सफल प्रयोग किया है। पीयूषवर्ष छन्द की रचना दोनों कवियों की मौलिक उद्‌भावना है। सियारामशरण जी ने प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक से अपनी एक भेंट में बताया था कि "यह छन्द मेरे मन में गूँजा करता था। जब पहले-पहल इसे लिपिबद्ध किया तो इसकी शैली मनोहर प्रतीत हुई।"[६१]

कवित्त छन्द को तोड़-मरोड़ कर सियारामशरण जी ने अनेक नवीन प्रयोग किये हैं। प्रसंगवश कुछ प्रयोगों को यहीं देख लिया जाय। निराला जी ने वर्णिक-मुक्त छन्दों का प्रयोग अधिकांशतः 'परिमल', 'अनामिका' और 'अणिमा' आदि में किया है। 'प्रसाद' की 'लहर' में भी ऐसे प्रयोग है। सियारामशरण जी ने 'बापू', 'आर्द्रा' तथा 'दूर्वादल' आदि कृतियों में नवीन प्रयोग किये हैं। 'जयहिन्द', 'पाथेय', 'मृण्मयी' तथा 'दैनिकी' आदि में अन्य छन्दों के नवीन प्रयोग पाये जाते हैं। 'शृंगार', 'सारक', 'सार', 'चौपाई', 'मत्त सवैया', 'ताटंक' आदि छन्दों को कुछ घटा-बढ़ा कर भी कहीं-कहीं प्रयोग किया गया है। कतिपय स्थलों पर दो छन्दों को एक में मिला कर एक नया छन्द कर दिया गया है। 'दैनिकी' के अन्तर्गत 'निवेदन' शीर्षक देखिए—

हुआ-हुआ चुम्बन-आलेहन यह इस अम्बर पट में।
भर लाओ जल, भर लाओ जल अपने छोटे घट में।

मर के भीतर अमर उजागर,
नर है नारायण का आगर[६२]

उपरिलिखित दोनों पंक्तियों में २८, २८ मात्राएँ हैं। २८ मात्राओं से 'सार' छन्द बनता है; किन्तु नीचे की दोनों पंक्तियों में १६, १६ मात्राएँ हैं जिनसे चौपाई छन्द बनता है। 'दैनिकी' में 'अंजलिदान'[६३] शीर्षक भी इसी कोटि का है। 'आवाहन'[६४] शीर्षक में मत्त-सवैया और चौपाई की पंक्तियाँ मिलती हैं। 'जयहिन्द' भी इसी मुक्त छन्द में लिखा गया है—

---

६०. सुमित्रानन्दन पन्त : डा० नगेन्द्र, पृ० ८८
६१. ८ अप्रैल १९६२ को चिरगाँव, झाँसी में
६२. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० १४
६३. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० १९
६४. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त पृ० २१

भारत, प्रभारत है अमिताभ,	=१२ वर्ण
एक स्वर से अथक	=८ वर्ण
गौतम से वापू तक	=८ वर्ण
तेरा यही पौरुष परम है,	=११ वर्ण
जीवन की एक यही साधना चरम है,	=१५ वर्ण
बन्धन से मुक्ति लाभ !	= ८ वर्ण
आज इसी हेतु जब तू स्वाधीन	=१२ वर्ण
कोटि-कोटि वन्दियों की कारा का कपाटखोल	=१६ वर्ण
देकर स्वतन्त्रता का पूरा मोल,	=१२ वर्ण
वाहर की मुक्त वायु में नवीन	=१२ वर्ण
आ गया स्वतन्त्रों की समिति में,	=११ वर्ण
अथ तब आया नया पिछले ही इति में।[६५]	=१५ वर्ण

वर्णो की संयोजना के अनुसार प्रस्तुत छन्द में कोई क्रम नहीं है। तुक कहीं-कहीं मिलता चलता है—

'परम है', 'चरम है', 'कपाट खोल', 'पूरा मोल', 'समिति में', 'इति में', आदि। मुक्त छंद की यह परम्परा छायावाद युग की देन है। 'निराला' जी की 'जुही की कली', 'पंचवटी प्रसंग', 'जागो फिर एक बार', 'स्मृति चुम्बन' आदि रचनाओं से मेल खाने वाली सियारामशरण की 'जयहिन्द' कृति भी है। इसी प्रकार शृंगार छन्द के आधार पर एक नवीन खोज इस प्रकार है —

कड़ी दोपहरी का वह ताप,	क
वारि का पावक बनना आप	क
दिशाओं का वह हाहाकार	ख
ज्वलित मारुत का क्रुद्धालाप	क
तुम्हारे लिये हुआ निस्सार।[६६]	ख

१६ मात्राओं वाले इस छन्द में अन्त्यक्रम क, क, ख, क, ख का रखा गया है। सियारामशरण जी ने राधिका छन्द में भी कुछ उलट-फेर की है—

इतना यह चारों ओर संकुचितपन है	क
कितना यह चारों ओर परापहरण है !	ख

---

६५. जयहिन्द : सियारामशरण गुप्त पृ० १३

६६. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृ० ८५

सम्पूर्ण अरक्षित आज यहाँ जीवन है — क
किस नए प्रेम से वैर-विरोध चरण है ! — ख
इस वसुधा को मै प्यार करूँगा तव भी — ग
इस पर जो यह उन्मुक्त असीम गगन है ![६७] — क

इसमे क, ख, क, ख, ग, क का अन्त्यक्रम सयोजित किया गया है। राधिका छन्द मे और कुछ अन्य रचनाओ मे अन्त्यक्रम कवि ने अपनी इच्छानुसार रखा है। 'पाथेय', 'मृण्मयी' और 'आर्द्रा' आदि कृतियों मे घनाक्षरी के आधार पर अनेक नवीन प्रयोग किये गये है। इस कोटि का एक छन्दांश ही यहाँ पर्याप्त होगा—

पास ही पड़ोस में सुनीर-भरा था जो ताल	=१६ वर्ण
करके भी तेज चाल	= ८ वर्ण
भरसक,	= ४ वर्ण
उनके किनारे तक	= ८ वर्ण
जा न सके तव लौं	= ७ वर्ण
जब लौं—	= ३ वर्ण
शुद्ध जल देवी ने विशुद्ध स्थान	= १२ वर्ण
उसको किया प्रदान,	= ८ वर्ण
दूर कर सारा दाह अपने अंक-तल में	=१६ वर्ण
शीतल सुअंचल में ।[६८]	= ८ वर्ण

यह शैली सियारामशरण जी को अधिक प्रिय है। उनकी अनेक रचनाएँ इसी शैली मे है। कही-कही वे अन्त्यक्रम मिला देते है। हाँ अन्त्यक्रम मिलाने का कोई विशेष आग्रह नही रहता। अपनी अन्तिम कृति 'गोपिका' मे भी कवि ने इसी से मिलती-जुलती शैली अपनायी है—

आज नाम शेष मधुवन है	=११ वर्ण
तन्वी पदयात्रिणी यहाँ की यह	=१२ वर्ण
छोटी गली कैसे उसे पा सकेगी ?	=१२ वर्ण
आयी यह गोपी ग्राम से है इन	=१२ वर्ण

---

६७. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ५१
६८. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७४-७५

छोटे-बड़े नीच-उच्च भवनों की पदरेणु = १६ वर्ण
लेती हुई।[६९] = ४ वर्ण

प्रस्तुत उद्धरण में अन्त्य क्रम नहीं मिलता है। 'गोपिका' में अधिकतर अतुकान्त मुक्त छन्द शैली का प्रयोग है। कहीं-कहीं गीतों की भी योजना है। तीन-तीन पंक्तियों का अन्त्य क्रम एक रखा गया है और उसके बाद प्रथम पंक्ति के अन्त्य क्रम की एक पंक्ति रखी गयी है। यह ढंग कुछ ही स्थलों पर अपनाया गया है। वैसे 'गोपिका' का छन्द-विधान सरल प्रवाही और मुक्त है। इसमें छन्दता कम और स्वच्छन्दता अधिक है।

अपनी अनूदित कृतियों में कवि ने मूल छन्दों का प्रयोग करते हुए लिखा है :—

"छन्द भी मूल के ही लिये गये हैं। आज जब हिन्दी में छन्द सम्बन्धी औदार्य की कमी नहीं है तब प्राचीन होने के कारण ही अनुष्टुप आदि के प्रति संकोच उचित नहीं जान पड़ता। हमारे बड़े से बड़े कवियों के द्वारा व्यवहृत इन छन्दों में भारतवर्ष के हृदय का स्पन्दन ध्वनित है।"[७०] यद्यपि अनुवादक की कामना है कि हिन्दी में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग हो पर सम्पूर्ण हिन्दी-काव्य देखने से यह पता चलता है कि कवियों ने इधर अभिरुचि नहीं दिखायी। हिन्दी के अनुष्टुप में एक कठिनाई यह सामने आती है, कि चरणान्त के लघु को दीर्घ करके पढ़ना पड़ता है। इसमें पाठक को असुविधा होती है। सियारामशरणजी ने चरणान्त के लघु को दीर्घ करने का यथासम्भव प्रयास किया है। बीच-बीच में अनुष्टुप के अतिरिक्त और छन्द भी आये हैं; पर उनकी संख्या अत्यल्प है। गीता के समश्लोकी अनुवाद में ११वें अध्याय के छन्द मनमोहक हैं और मूल कविता के मूल भाव को भली प्रकार स्पष्ट करते हैं। यह अनुवाद का विशेष गुण माना जाना चाहिए। संक्षेप में, सियारामशरण जी अपने काव्य में प्रयुक्त छन्दों के प्रति सतर्क रहे हैं। उनमें ऋजुता अधिक पायी जाती है।

⊙

---

६९. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृ० १९
७०. बुद्ध-वचन : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७

अभिव्यंजन-प्रणालियाँ

शब्द-शक्ति :

काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने अर्थ तीन प्रकार के माने हैं :—वाच्य, लक्ष्य, और व्यंग्य। इन तीन प्रकार के अर्थों के आधार पर तीन प्रकार के शब्दों में अर्थ प्रकट करने की जो क्षमता होती है उसे आचार्यों ने शब्द-व्यापार कहा है। अतः इन तीन प्रकार के शब्दों का व्यापार क्रमशः अभिधा, लक्षणा और व्यंजना कहा गया है। किसी पद के संकेतित अथवा प्रसिद्ध अर्थ का बोध कराने वाले व्यापार को अभिधा कहते है। इसे प्रथमा (मुख्या) भी कहा जाता है।[1] लक्षणा व्यापार वह शब्द-व्यापार है जो मुख्यार्थ के बाधित अथवा अनुपपन्न होने पर वहाँ ऐसे अर्थ का बोधन कराता है जिसका सम्बन्ध मुख्यार्थ से तो रहता है किन्तु होता वह मुख्यार्थ से भिन्न है।[2] इस प्रकार लक्षणा में तीन बातें मुख्य रूप से होती है—

१—मुख्यार्थ की बाधा।

२—मुख्यार्थ का योग।

३—रूढ़ि या प्रयोजन।

---

१. तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा। साहित्य दर्पण—२-४

२. मुख्यार्थबाधे तद्युक्तौ ययान्योऽर्थःप्रतीयते।
रूढेः प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता। साहित्य दर्पण—२-५

मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ के अतिरिक्त अर्थ का एक और अन्य प्रकार भी माना गया है जिसे व्यंजना कहा जाता है। साहित्यदर्पणकार का कहना है कि जहाँ अभिधा तथा लक्षणा के कार्य करके शान्त हो जाने पर किसी भी व्यापार के आधार पर अन्य अर्थ की प्रतीति होती है वहाँ व्यंजना शक्ति होती है।[3]

अनेक मत-मतान्तरों के विवेचन के साथ-साथ आचार्यों ने इन शब्द-व्यापारों के भेदों और अभेदों की व्याख्या की है। इन विस्तार में न जाकर हमें यहाँ यह देखना समीचीन होगा, कि किस शब्द-व्यापार से काव्य अधिक संवेदनशील बनता है और सियारामशरण जी की लेखनी का झुकाव किधर अधिक रहा है। कतिपय आचार्यों ने अभिधा को प्रधान और काव्य के लिए अधिक उपयुक्त माना है। कुछ ने लक्षणा को विशेष बताया है। व्यंजना को सर्वोपरि मानने वाले आचार्यों का कहना है, कि व्यंजना के द्वारा ही सुन्दर काव्य-सृजन सम्भव है। वैसे तो अभिधा शक्ति किसी न किसी रूप में सर्वत्र पायी जायी है पर महाकवि देव उसे सर्वोपरि मानते हैं :—

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन।
अधम व्यंजना रस विरस, उलटी कहत प्रवीन ॥[4] (देव)

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के विचार भी इसी मत के पोषक हैं :—

"अब प्रश्न यह कि काव्य की रमणीयता किसमें रहती है ? वाच्यार्थ में अथवा लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ मे ? इसका बेधड़क उत्तर यही है कि वाच्यार्थ में, चाहे वह योग्य और उपपन्न हो अथवा अयोग्य और अनुपपन्न। मेरा यह कथन विरोधाभास का चमत्कार दिखाने के लिये नहीं है, सोलह आने ठीक है।"[5]। इस कथन के आधार पर प्रश्न यह उठता है कि यदि वाच्यार्थ ही काव्य मे रमणीयता ला सकता है तो लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ का क्या प्रयोजन है ? शुक्लजी लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ को काव्य नही मानते ; किन्तु इस सम्बन्ध मे वे कहते है :—

"सुनिए, वह काव्य नही, काव्य को धारण करने वाला सत्य है जिसकी देख-रेख मे काव्य मनमानी क्रीड़ा कर सकता है।"[6] कवि देव की बात और

---

३. विरता स्वभिधाद्यास्तु ययार्थो बोध्यते परः।
सा वृत्ति व्यंजनानाम शब्दस्यार्थादिकस्य च। साहित्य दर्पण—२-१२
४. चिन्तामणि भाग २ : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १६४
५. चिन्तामणि भाग २ : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १६६
६ चिन्तामणि भाग २ : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १६७

शुक्लजी के विचारों में मेल है पर 'वाच्यार्थ में ही रमणीयता होती है' यह धारणा आगे नहीं पनप सकी। पं० रामदहिन मिश्र लिखते हैं :—

"सम्भव है देव को अभिव्यंजना-वैचित्र्य के कारण ही अभिधा को उत्तम काव्य कहने की भावना हो गयी हो। चाहे जो कुछ हो यह भ्रान्त धारणा हिन्दी साहित्य में किसी प्रकार बद्धमूल न हो सकी।"[७]

इसी प्रसंग में काव्यप्रकाश के प्रणेता आचार्य मम्मट कहते है :—

"प्रायः सारे अर्थों में व्यजकत्व भी पाया जाता है।"[८] वस्तुतः वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य तीनों से भी व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो सकती है। शुक्लजी ने अभिधा की सर्वोत्तमता बताने के लिए 'साकेत' का उद्धरण प्रस्तुत किया है—

जी कर हाय ! पतंग मरे क्या ?

वस्तुतः वाच्यार्थ की रमणीयता शब्द-चातुरी पर निर्भर करती है; किन्तु व्यंग्यार्थ की रमणीयता का सम्बन्ध सीधे 'भाव' से होता है। डा० नगेन्द्र शुक्ल जी के उद्धरण पर विचार करते हुए लिखते है—" 'जी कर हाय! पतंग मरे क्या?' इसमें 'मरे' शब्द का लाक्षणिक प्रयोग 'जी कर' के साथ बैठ कर विरोधाभास चमत्कार उत्पन्न करता है। अतएव जहाँ तक इस चमत्कार का सम्बन्ध है, उसका अधिवास वाच्यार्थ में ही है, लक्षणा अर्थ को उपपन्न कराकर इस चमत्कार की सिद्धि अवश्य कराती है, परन्तु उसका कारण वाच्यार्थ ही है, लक्ष्यार्थ दे देने से चमत्कार ही नही रह जाता। परन्तु अब प्रश्न यह है कि क्या उक्ति का सम्पूर्ण सौरस्य इस 'मरे' और 'जी कर' के उपपन्न या अनुपपन्न अर्थ पर ही आश्रित है ? यदि ऐसा है, तो इस उक्ति में रमणीयता नही है; क्योंकि यह विरोधाभास अपने आपमें कोई सूक्ष्म या गहरी आनन्दानुभूति उत्पन्न नहीं करता।.........इस प्रकार इस उक्ति की वास्तविक रमणीयता का सम्बन्ध रतिजन्य व्यग्रता से ही है जो व्यंग्य है और स्पष्ट शब्दों में जो उपर्युक्त लक्ष्यार्थ के प्रयोजन रूप व्यंग्य का भी व्यंग्य है।'[९] इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकला कि रस व्यंग्य है। वास्तव में रसनात्मक व्यापार का ही नाम व्यंजना-व्यापार है। रसवादी आचार्य अभिनव गुप्त ने भी इस मत का समर्थन किया है तथा रस

---

७. काव्यालोक—द्वितीय उद्योत : पं० रामदहिन मिश्र, पृष्ठ ३६

८. सर्वेषां प्रायशोऽर्थानां व्यंजकत्वमपीष्यते.

—काव्यप्रकाश : उ० २।२

९. ध्वन्यालोक की भूमिका. पृष्ठ ११ (व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर)

की प्रतीति मे व्यंजना का ही हाथ माना है।[१०] यह अवश्य है कि जहाँ भी व्यंजना होगी उसके मूल में अभिधा अथवा लक्षणा अवश्य होगी। अनेक भ्रान्त धारणाओ से खीझ कर पं० रामदहिन मिश्र ने कहा है "कोई कितना हू वाच्यार्थ चमत्कार की चर्चा करे पर वह व्यंग्यार्थ वैभव को पा नही सकता। व्यग्यार्थ के काव्यत्व को कोई मिटा नही सकता।"[११]

व्यजना-व्यापार के अन्तर्गत ही 'ध्वनि' का नाम आता है। जहाँ अर्थ अपने को अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके उस (प्रतीयमान) अर्थ को अभिव्यक्त करते है। उसे ध्वनि (काव्य) कहते है।[१२] यह अभिव्यक्त किया हुआ अर्थविशेष होता है। ध्वनि तीन प्रकार की होती है—वस्तु ध्वनि, अलकार ध्वनि तथा रस ध्वनि। ध्वनि का परिवार इतना बड़ा है कि उसका वर्णन यहाँ अप्रासगिक होगा।

अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के अतिरिक्त एक अन्य वृत्ति भी आचार्यो ने मानी है—वह है तात्पर्य वृत्ति। इस वृत्ति को मानने वाले 'अभिहितान्वयवादी' कहलाते है। तात्पर्य वृत्ति पदों के पृथक्-पृथक् अर्थो के परस्पर अन्वय तथा सम्वन्ध का वोध करवाती है।[१३] तात्पर्यार्थ वाक्य का अर्थ हुआ करता है। इस वृत्ति को मान्यता देने वालों मे कुमारिल भट्ट का नाम प्रथम है। ये अभिहि-तान्वयवादी लोग 'भाट्टमतानुयायी' कहे जाते हैं। योग्यता आकाक्षा और आसक्ति की तत्त्व सामग्री के आधार पर ही तात्पर्य वृत्ति का आविष्कार आचार्यों के द्वारा हुआ है। अव इस शास्त्रीय विवेचन के विस्तार पक्ष से चल कर हमे अपने मुख्य विपय की ओर उन्मुख होना है।

---

१०. तेन प्रतीतिस्तावद्रसस्य सिद्धा। साच रसना रूपा प्रतीतिरुत्पद्यते।
—ध्वन्यालोक लोचन—द्वितीय उद्योत

११. काव्यालोक : द्वितीय उद्योत, पृष्ठ १८१

१२. यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनी कृत स्वार्थो
व्यंक्तः काव्य विशेपः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥
ध्वन्यालोक—प्रथम उद्योत, कारिका १३

१३. तात्पर्याख्यां वृत्तिमाहुः पदार्थान्वय वोधने।
तात्पर्यार्थं तदर्थं च वाक्यं तद्वोधकं परे।
—साहित्य दर्पण २।२०

सियारामशरण की के काव्य में अभिधा के प्रयोग अधिक मिलते हैं। 'मौर्य-विजय' से लेकर 'गोपिका' तक सभी कृतियों में यह बात पायी जाती है। वैसे शब्द-शक्तियों द्वारा काव्य की उत्कृष्टता बढ़ाने में सियारामशरण जी जितने सजग हैं अभिधात्मक प्रयोगों में उतने ही सरल भी लगते हैं। एक तो उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ कहानियों पर आधारित हैं और दूसरे कवि के स्वभाव की ऋजुता उसके काव्य में साकार हो उठी है। मुख्य अर्थ का बोध कराने वाली परि-पाटी का प्रयोग 'आर्द्रा', 'दूर्वादल', 'पाथेय', 'मृण्मयी' आदि कृतियों में किया गया है। कवि की अंतिम कृति 'गोपिका' में 'लक्षणा' और व्यंजना के प्रयोग अधिक मिलते है। 'वाच्यार्थ' की रमणीयता देखने के लिए कवि की सभी कृतियों पर पृथक्-पृथक् विचार करना विषय-विस्तार की दृष्टि से उपयुक्त न होगा। कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

(क) हाय ! यदि हम मूर्ति ही होते कहीं,
और होकर और तो होते नहीं।
प्राप्त जो तुमको महान महत्त्व है,
इस मनुजता में कहाँ वह तत्त्व है ?[१४]

(ख) हे निस्पृह, निज धन्य-भूमि का,
प्रेम तुम्हें भी भाया,
अपने छोटे से उस पुर को,
राजापुर कहलाया।[१५]

(ग) खड़ी रहो प्रियतमे, तनिक को तुम ऐसी ही
इस निकुंज में यहाँ लिए नभ की सारी श्री
उतरी हो तुम मंजु उषा देवी ज्यों नीचे,
कच-गुच्छों में किये ओट में निशि को पीछे।[१६]

(घ) सभ्य स्वामी स्वामिनी से कह रहे
अद्यतन वृत्तान्त पावन धाम के।

---

१४. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४९
१५. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४२
१६. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५७

सुन रहा हूँ सन्निकट इस कक्ष में,
समझ पड़ता कुछ समझ पड़ता नहीं।[१७]

(ङ) डाक्टर साहब एक स्वच्छ पत्थर पर बैठे,
नदी किनारे भाव—नदी में से थे पैठे।[१८]

(च) भीतर जो डर रहा छिपाये,
हाय ! वही बाहर आया।
एक दिवस सुखिया के तन को,
ताप तप्त मैंने पाया।[१९]

काव्योपयुक्त शब्दों का प्रयोग सियारामशरण जी के काव्य में बड़े कौशल से हुआ है। कवि का भाषा सम्बन्धी ज्ञान इस बात के लिए सहायक सिद्ध हुआ है। 'क' उद्धरण में मूर्त्ति के प्रति कवि का कथन है—'हाय ! यदि हम कहीं मूर्ति भी होते तो मुझे इसके बाद और कुछ तो न बनना पड़ता। मूर्ति को जो महान् महत्त्व प्राप्त है वह मनुष्यता मे कहाँ सम्भव है।' यह वाच्यार्थ है। चारुता इस बात में है कि मनुष्य मनुष्य होकर भी अनेक-अनेक रूप अन्तराल में छिपाये रहता है, पर मूर्ति की बाह्य और अन्तःप्रकृति समान-सी है। दूसरे उद्धरण मे 'अपने छोटे पुर मे राजापुर' बसाने की बात कही गयी है। इस विरोधाभास के आधार पर वाच्यार्थ में चारुता आयी है।

उद्धरण 'ग' में अर्जुन द्रौपदी की छवि अपलक निहारते हैं। उपमा द्वारा सुन्दरता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—'तुम उषा देवी के समान यहाँ नीचे उतरी हो।' निराला जी ने संध्या-सुन्दरी को नीचे उतारा है।[२०] वाच्यार्थ है—'उषा के रूप में तुम मेरे सामने हो'। कच-गुच्छों के रूप में निशि उषा के पीछे चली गयी। 'घ' उद्धरण में 'समझ पड़ना' के दो बार प्रयोग होने से वाच्यार्थ कितना रमणीय बन गया—'समझ पड़ता है, कुछ समझ ही नहीं पड़ रहा है।' कक्ष में सुनायी पड़ने वाला वृत्तान्त समझ में नही आ रहा है किन्तु यह समझ में आ रहा है कि कुछ भी समझ में नही आ रहा है। यदि रमणीयार्थ

---

१७. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५६
१८. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८६
१९. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८६
२०. अपरा : निराला, पृष्ठ १२

प्रतिपादक शब्द ही काव्य है तो निश्चय ही ये अभिधात्मक प्रयोग सुष्ठु है। सामान्यतः सियारामशरण जी अपनी बात सीधी-सादी शैली में कहते है, जो उनकी अपनी है। उस पर किसी कवि अथवा लेखक का प्रभाव नहीं दृष्टि-गोचर होता। तत्कालीन कवियों के कुछ प्रयोग ऐसे मिलते हैं जिनमें उनका बुद्धिवादी दृष्टिकोण सामने रहता है। 'छाया' के चक्कर में अपनी सुध-बुध खोने वाले कवियों की भाँति सियारामशरण जी ने हवा के गीत नहीं गाये। जो बातें कही गयी है उनका आधार अनुभूति है। कविताओं में इतिवृत्तात्मक पक्ष के स्पष्ट और मूर्त होने के कारण अभिधा के प्रयोग अच्छे बन पड़े है। पूर्व उद्धृत 'डाक्टर' उद्धरण में डाक्टर साहब एक नदी के किनारे पर बैठ कर भाव-नदी में पैठे हैं।

अभिधा के प्रयोगों में कुछ स्थलों पर कवि ने परम्परायुक्त कथनों में कुछ परिवर्तन भी किये है। 'गोता खाना' मुहावरे को 'गोता साधना' के रूप में प्रयुक्त किया है। तरंगों को सागर की नन्हीं बालिकाएँ मानता हुआ कवि कहता है—

> **झाँकती हैं चपल दृगों से कुछ आस-पास;**
> **और क्षण में हीं तभी**
> **गोता साध लेती वहीं करके मुखर-हास।[२१]**

वैसे तो 'गोता साधना' कुछ अटपटा-सा लगता है पर विचार करने पर 'गोता खाना' और भी अटपटा है। गोता खाया कैसे जाएगा? वैसे तो गम खाया जाता है। यदि तरंगें मुखर हास करके गोता साध लेती हैं तो उनके प्रति उत्सुकता और बढ़ जाती है। एक तो मुखर हास का आकर्षक और कम-नीय रूप और उनका नयनों से ओझल हो जाना। 'गोता साध लेती' इस वाच्यार्थ में एक और बात व्यजित होती है। तरंगें मुखर हास करके गोता साध लेती है जैसे अभी थोड़ी बाद पुनः ऐसा करेंगी। मुखर हास और गोता साधना यह प्रक्रियाएँ क्रमिक है पर समय का थोड़ा अन्तर देकर। यह व्यंजना दूर की कौड़ी है। सीधी बात तो वाच्यार्थ में है। 'गोता साध लेती' के स्थान पर 'गोता खा जाती' अथवा 'गोता खा लेती' प्रयोग चारु न बन पाता।

'आर्द्रा' का एक प्रयोग इस प्रकार है—

---

२१. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६८

आती न थी काम पै दयामयी,
याद उसकी ही मुझे आ गयी।[२२]

'काम करने के लिए दयामयी नहीं आती थी; पर सहसा उसकी याद आ गयी'—यह वाच्यार्थ है। 'आ गयी' क्रिया के प्रयोग-कौशल के आधार पर चारुता आयी है। आने का काम दयामयी कर सकती है पर 'याद' के साथ 'आने' वाली वात भी प्रसंगानुकूल है। एक वाक्य है—'आदमी चलता है।' इस वाक्य में चलना क्रिया का प्रयोग किया गया है। 'चलना' क्रिया वाले कुछ वाक्य और देखिए—

वात चलती है, काम चलता है, हवा चलती है, राम और श्याम की चलती है। वात होना, काम होना तथा हवा वहने के वदले 'चलना' कहा गया है। अन्तिम वाक्य में वाच्यार्थ की चारुता नहीं है। राम और श्याम की चलती है से स्पष्ट है कि दोनों में वैर है। यह वाक्य का व्यंग्यार्थ हुआ। ऐसे ही 'आगयी' क्रिया का प्रयोग भी है। कवि की प्रसिद्ध कृति 'बापू' में 'अभिधा' द्वारा करुण रस का अच्छा परिपाक हुआ है—

चीर कर अंतर-सा
प्रज्वलंत ज्वाला की घहर का
सहसा सुनाई पड़ा माता का व्यथित रोर
कोमल में तीव्र घोर
'भीतर कहीं है अरे मेरा लाल, मेरा लाल !'
सब अवसन्न से निमेष काल !
'मेरा' लाल !—व्योम में ध्वनित था
'मेरा लाल, मेरा लाल !' वायु में खनित था
सबके उरों में वही—'मेरा लाल !'
सबके उरों में वही—'मेरा लाल, मेरा लाल।'[२३]

भारत मां के प्यारे पुत्र की नृशंस हत्या हुई है। अपने लाल की स्मृति में

---

२२. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८१
यह उद्धरण पं० कृष्णाशंकर शुक्ल के 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास' में भी उद्धृत है।

२३. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७०

सारी बातें कही गयी हैं। उपरिलिखित पंक्तियों का वाच्यार्थ ही रमणीय है। बात सीधी-सादी है उसमें किसी प्रकार की काट-छाँट नहीं, कोई बाँकपन नही। जैसे कवि वैसे उसकी लेखनी।

'अभिधा' के पश्चात् 'लक्षणा' का नाम आचार्यो ने लिया है। सियारामशरण जी के काव्य में लाक्षणिक प्रयोग भी मिलते है। कवि इस बात के लिये प्रयत्नशील नहीं रहता कि लक्षणा का प्रयोग पग-पग पर आये किन्तु ऐसा न होने पर भी लाक्षणिक प्रयोगों के आधार पर काव्य में चारुता आयी है। यह बात प्रसिद्ध है कि 'कवि यशःप्रार्थी' होता है किन्तु सियारामशरण जी ऐसा नहीं चाहते। काव्य की अन्य प्रयत्न-प्रतिपादित विधियों द्वारा काव्य में चमत्कार लाना उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। वे क्लिष्टता से भी दूर रहना चाहते हैं। लाक्षणिक प्रयोगों का वह चमत्कार यहाँ पाठकों को नही मिलेगा जो रीतिकाल और छायावाद युग के अधिकांश कवियों में पाया जाता है। चमत्कार के सम्बन्ध में सियारामशरण जी लिखते है—

"साहित्य का उद्देश्य कोरे चमत्कार के ऊपर नहीं टिका है। यदि यही उसका सर्वोपरि गुण होता तब बाजीगरों के काम की गणना भी साहित्य में हुई होती। ऐसा साहित्य जीवित नहीं रह सकता।"[२४]

कवि के सम्पूर्ण काव्य का अवलोकन करने के पश्चात् ज्ञात होता है कि लाक्षणिक प्रयोगों का वैशिष्ट्य यत्नज नहीं अपितु स्वभावज है। इस प्रसंग में कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं। गांधीजी के सम्बन्ध से सियारामशरण जी लिखते है—

लाया है परायी पीर नरसी के घर से
टालसटाय से अधीत
प्रेम प्रतिरोध का समर-गीत
शाश्वत गिरा ने दिया राम-नाम
अपना विराम धाम
तिल तिल संग्रह के कोष भरे
कितने युगों ने किया इसका अमल साज
देश काल मेरे अरे,
तेरा ही नहीं है यह आज का पुनीत आज।[२५]

---

२४. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १२६

२५. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६६

मुख्यार्थ की बाधा होने पर लक्षणा होती है। प्रस्तुत उद्धरण में आने वाले इन पदो का मुख्यार्थ बाधित है—

(क) 'लाया है पराई पीर'
(ख) 'शाश्वत गिरा ने दिया राम नाम'
(ग) 'कितने युगों ने किया इसका अमल साज'

पीर कोई लाने की मूर्त वस्तु नही है। वह लायी कैसे जाएगी, किन्तु अमूर्त के साथ मूर्त की क्रिया का आरोप यहाँ किया गया है। लक्षणा से इस पद का अर्थ हुआ—पराई पीर के प्रति जैसी सहानुभूति नरसी के हृदय में थी वैसी ही गांधीजी के यहाँ भी पायी जाती है। दूसरे पद मे शाश्वत गिरा राम-नाम देती है। न तो राम नाम दिया जाता है और न लिया जाता है। लक्ष्यार्थ के अनुसार राम-नाम कहा जाता है। आचार्यों ने लक्षणा के अनेक भेद-प्रभेद माने है। उनके विस्तार मे जाना विषयान्तर होगा। यहाँ लाक्षणिक प्रयोगो वाले कुछ उद्धरण ही पर्याप्त होंगे।

सियारामशरण जी 'अग्नि-परीक्षा' शीर्षक मे लिखते है—

शोणित के सिंचन से और भी धधक उठी
विपुल विरोध-वह्नि वेग से भभक उठी।
जन-रव-हीन हाट-बाटों बीच चारों ओर
भीतर छिपा कर अशांति घोर
घोर शांति छा गयी,
यामिनी दिवा के यहाँ आ गई।[२६]

प्रस्तुत अवतरण के कुछ पद लीजिए—

(क) विपुल विरोध-वह्नि वेग से भभक उठी
(ख) भीतर छिपा कर अशांति घोर
(ग) घोर शांति छा गयी
(घ) यामिनी दिवा के यहाँ आ गयी।

इन चारो पदो के मुख्यार्थ मे बाधा पडती है। इनके लक्ष्यार्थ इस प्रकार हैं—(क) विरोध वढा (ख) अशान्ति शान्त हो गई (ग) वातावरण शान्त

२६. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६५-६६

था (घ) रात हो गयी। लाक्षणिक प्रयोगों के काव्य का रूप अधिक आकर्षक और चमत्कारपूर्ण बन जाता है। जब कवि वाचक शब्दों में अपने भावों को स्पष्ट करने में अपने को असमर्थ पाता है, तभी लाक्षणिक शब्दों का सहारा लेता है। आधुनिक काल के कवियों की विशेषता यही रही है कि उनका काव्य लाक्षणिक प्रयोगों से भरपूर है। सियारामशरण जी के लाक्षणिक प्रयोग चली आती हुई लीक पर चलने वाले नहीं हैं। जहाँ कहीं अवसर मिला है उन्होंने अपनी लीक स्वयं बना ली है। कुछ लाक्षणिक वैचित्र्य इस प्रकार है—

आ डटा अँधेरा, प्रकाश भी सचेत किया, पागल समीर कहता था जोर से पुकार, लिया धरा ने श्वास, जाते कहाँ चतुर्दिक ही था अचिर मरण का गर्त, नीरस नीलाकाश, क्षुब्ध तुंग तरंगों के नर्तन में, नीरधि था तल्लीन, चलने लगे निरीह नरों पर, भाले और छुरे चाकू, संकट के संकीर्ण पथों पर अटक न हो जिसको कोई, वह भूला-भटका मनस्ताप, कर उठा अचानक है विलाप, वह विगत निशाएँ एक संग, हो गई खड़ी आकर समक्ष, रह रह कर यह पिक बार बार, कर रहा मधुरिमा का प्रसार, नित्य नवीन उषा आती है सज सोने का थाल, दूर से आकर तुम हे गान, मूर्च्छित सी है दशों दिशाएँ, हुई इकट्ठी अयुत निशाएँ, कोई दिव्य देवी दया-दीप लिये जाती थी, मार्ग मे सुवर्ण रश्मि-राशि बरसाती थी, आदि प्रयोग लक्षणा के है। ये प्रयोग 'मृण्मयी', 'आर्द्रा', 'आत्मोत्सर्ग' और 'विषाद' से लिये गए है। 'नोआखाली मे' रचना के कुछ लाक्षणिक प्रयोग देखिए—

चीख उठा नीचे का नीरव, ऊपर का निर्जन चौंका, ऊपर नभ में टिम टिम करता लगा तारकों का मेला, इस फूटे घर को न दे सकी एक दीप संध्या वेला।[२७] 'पाथेय' में सियारामशरण जी लिखते हैं—

"कहीं धँसी है धरा गर्त में कही चढ़ी है टीलों पर, शान्ति यहाँ झट आ जाती है, कुछ प्रभंजन के स्वर में, तुच्छता के पंक में ही सन कर व्यर्थ नही आया हूँ, निश्चल रजनी थी क्रम क्रम से सोने की तैयारी में, कठिन प्रस्तरों की काया का निर्मल-वक्ष विदार, बहा रहे हो अपने यश की सुर-सरिता की धार।[२८] गोपिका का प्रमुख प्रसंग लाक्षणिक प्रयोगों मे कितना अच्छा बन पड़ा है—

---

२७. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४

२८. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २२, २७, ३५, ३७, १२७

समझा होगा पता नहीं चिरगाँव में भोजन मिले या न मिले।" सरल सीधे ढंग से कही हुई सियारामशरण जी की बात में जो व्यंजना है वह समझने और सुनने की वस्तु है। हर्ष और विषाद के क्षण में कवि की जो रचनाएँ हुई हैं उसमें व्यंजना-व्यापार की कमी नहीं पायी जाती है। 'इत्तिवृत्त' से युक्त कविताओं में ऐसी बात नहीं। वैसे इत्तिवृत्तात्मक शैली की कविताओं में उनकी कथन-शैली ही प्रधान है। व्यंजनाशक्ति कहीं-कहीं मिलती है। कुछ उद्धरण दृष्टव्य है :—

(क) विश्वनाथ हा विश्वनाथ ! तुम
हो यथार्थ ही पत्थर के।[३४]

(ख) राज कन्या कृष्णा ने पिया था विष एक बार
मेरी जानकी ने पिया रात दिन लगातार
मेरा सभी अत्याचार
शिशु के उपद्रव-सा शांत रह के सहा।[३५]

(ग) गाँव का उल्लास वह आनंद वह
आ गया था जागरण का पर्व सा[३६]

(घ) कुटिल कँटीले झंखाड़ों में
उत्तरीय उड़ कर मेरा
उलझ उलझ जाता है, इसको
कहाँ-कहाँ सुलझाऊँ मैं।[३७]

(च) मेरी काली सघन निशा में
तड़िल्तेज तू ले आया
क्षण भी पै इन क्षुद्र दृगों ने
सहन न उसको कर पाया

---

३४. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १०६
३५. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४६
३६. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २८
३७. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २२

कहीं अचल तू हो जाता
तो खो जाता प्राप्त विभव भी
हुआ मुझे यह ज्ञान नया ।[३८]

(छ) तेरे इस दिन की विषम प्यास,
अनवुझी निरन्तर है निरास,
तव भी कल के तू समाश्वास,

वहने दे कल की सुरस धार,
हे खनक किये जा कूप खनन,
तू यहाँ वीच में ही न हार ।[३९]

(ज) चादर दूर की गयी मुँह से
ऐ, गणेश जी है ये ही ?
है ये ही माने किस मन से
वे पुनीत पुण्य-स्नेही ।[४०]

(झ) सघन त्रियामा का तृतीय याम;
चारो ओर घोर अंधकार का प्रसार था,
लुप्त प्राप्त निखिल अरण्य-ग्राम;
गगन धरातल अभिन्न एकाकार था ।
हो उठी पयोद घटा गहरी
एक साथ विज्जु छटा छहरी
वायु वही सर-सर
काँप उठे वन्य वृक्ष थर थर
सहसा अकाल वृष्टि घन घन घहरी ।[४१]

ये समस्त उद्धरण भिन्न-भिन्न प्रसंगों के है । कुछ में शाब्दी व्यंजना है कुछ में आर्थी । इन्ही दो भेदों के आधार पर विचार करना समीचीन होगा । पहले उद्धरण में 'विश्वनाथ' शब्द का साभिप्राय प्रयोग किया गया है । वैसे तो विश्वनाथ

---

३८. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६१
३९. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३७
४०. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८२ ।
४१. वापू : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १२

की मूर्ति पत्थर की होती है किन्तु विश्व के नाथ का हृदय तो कोमल होना चाहिए। उसका शिव (कल्याणकारी) रूप सामने होना चाहिए। व्यंजित अर्थ हुआ—अभी तक तो जाना जाता था कि विश्वनाथ का हृदय कोमल है किन्तु अब पता चला कि सचमुच उनमे प्रस्तर जैसी कठोरता है, उनका हृदय कभी पसीज नही सकता। स्पष्ट है कि व्यजना अभिधामूलक एवं लक्षणामूलक दोनों रूपों मे पायी जाती है। यहाँ 'विश्वनाथ' और 'पत्थर का होना' प्रयोग दृष्टव्य है। विश्वनाथ के स्थान पर 'शंकर' शब्द का प्रयोग उतना व्यंजक न होता। अभिधा-मूला और लक्षणामूला भेद शाब्दी व्यंजना के है।

दूसरे उद्धरण में व्यंजित अर्थ है—राजकन्या कृष्णा[४२] ने तो एक बार ही विष पिया था पर बेटी तुझे तो रात-दिन कटु बातों का विष पीना पड़ता है। और यह भी बात ध्वनित होती है कि यंत्रणा सहने में राजकुमारी कृष्णा से मेरी जानकी आगे है। उसने एक बार विपत्ति सही है मेरी जानकी बार-बार पीड़ा सहने की क्षमता रखती है। 'गाँव के उल्लास' से जन-जन के प्रमुदित होने की ध्वनि निकल रही है। काँटों और झखाड़ों से उत्तरीय फटने में अपने कष्टों की व्यंजना है। काली सघन निशा अपने अन्तराल में वेदना और पीड़ा की व्यंजना छिपाये है। 'खनक' के प्रसंग में कठिन परिश्रम करने की ओर संकेत है। 'आत्मोत्सर्ग' वाले उद्धरण में 'गणेश' का व्यंजित अर्थ गणेशशंकर विद्यार्थी होगा न कि शंकर के पुत्र गणेशजी। अन्तिम उद्धरण मे प्रकृति के माध्यम से तत्कालीन स्थिति की ओर संकेत है। यह सकेत व्यंजना पर आधारित है। व्यंजना रस-परिपाक में क्या सहायता करती है यह हम रस-विवेचन के प्रसंग में देखेंगे। यहाँ इतना ही कहना है कि जहाँ-जहाँ व्यंग्यार्थ की प्रतीति हुई है वहाँ-वहाँ रमणीयता आयी है। अभिधा और लक्षणा की चारुता के सम्बन्ध में हम पीछे कह आये है।

'बापू' से उद्धृत अंतिम उद्धरण की आर्थी व्यंजना की व्याख्या करके इस

---

४२. कृष्णा उदयपुर के महाराना भीमसिंह की पुत्री थी। विवाह की समस्या के कारण कृष्णा को विष दिया गया था। कृष्णा के अचेत होकर मरने पर राजमहिषी विलाप करती है तथा भीमसिंह भी चिन्ताकुल होते हैं। इसी कृष्णा से सम्बन्धित एक गीतनाट्य श्री सियारामशरण जी ने लिखा था। यह गीतनाट्य अप्रैल १९२१ को 'प्रभा' में प्रकाशित हुआ था।

प्रसंग को समाप्त किया जाय । आर्थी व्यंजना मे निम्नलिखित कारणों से किसी अन्य अर्थ का प्रत्यायन होता है—

१. वक्तृ वैशिष्ट्य २. वोद्धव्य वैशिष्ट्य ३. वाक्य वैशिष्ट्य ४. अन्य संनिधि वैशिष्ट्य ५. वाच्य वैशिष्ट्य ६. प्रस्ताव वैशिष्ट्य ७. देश वैशिष्ट्य ८. काल वैशिष्ट्य ९. काकु वैशिष्ट्य १०. चेष्टा वैशिष्ट्य ११. अन्यान्य वैशिष्ट्य ।[४३] वक्तृ वैशिष्ट्य वक्ता या कवि कथन मे होता है। वोद्धव्य वैशिष्ट्य श्रोता में होता है । और वैशिष्ट्य स्पष्ट है । कभी-कभी तो एक ही उक्ति मे कई कारण एक साथ ही आ जाते है । 'बापू' वाले अश को लीजिए—इसमें वक्तृ वैशिष्ट्य के साथ ही देश-काल वैशिष्ट्य भी है । देश और काल वैशिष्ट्य युक्त व्यंजनाएँ 'अमृतपुत्र' 'वापू' और 'आत्मोत्सर्ग' आदि काव्यों मे भी मिलती है । ये व्यंजनाएँ वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य संभवा तीनो प्रकार की है । अमृत-पुत्र का एक प्रसंग है—

> चित्त के उन्नत शिखर पर रात दिन
> अडिग रह उसने विविध तप है तपे,
> सुदृढ़ उसके व्रत नियम उपवास है ।
> नत उसे शैतान कर पाया नहीं ।[४४]

इस कथन मे वक्तृ वैशिष्ट्य है । यीशु के चित्त की प्रशान्तता की प्रशंसा है । 'व्यक्तित्व की वेदी पर यीशु ने सब कुछ कर दिखाया, अनेक प्रकार की यंत्रणाएँ सहते रहे फिर भी वे अपने पथ से विचलित नहीं हुए । उनकी दृढ़ता की टक्कर तो शैतान भी नही कर पाया मानव की वात कौन करे । यह किसी सामान्य वक्ता के व्याज से कवि का स्वयं कथन हे । यह तो हुआ सियाराम-शरण जी के काव्य में शब्द-शक्तियो के प्रयोग का विवेचन । इसके पश्चात् अब अप्रस्तुत विधान के सम्बन्ध मे विचार कर लेना उपयुक्त होगा ।

⊙

---

४३. वक्त वोद्धव्य वाक्यानामन्य संनिधि वाच्ययोः ।
प्रस्ताव देशकालानां काकोचेष्टादिकस्य च ॥
—साहित्य दर्पण २।१६

४४. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४६

अप्रस्तुत-योजना

अलंकार काव्य के आवश्यक उपादान हैं। अर्थ की शोभा बढ़ाने के हेतु इन उपादानों का संयोजन किया जाता है। प्राचीन आचार्य अलंकारों को काव्य का अस्थिर धर्म मानते हैं।[1] अलंकार काव्य में दो प्रकार का कार्य करते हैं—एक तो काव्य की सौन्दर्य-वृद्धि और दूसरे रसभाव के अभिव्यंजन में सहायक हुआ करते हैं। ध्वन्यालोक में अलंकारों को 'कटकादिवत्' माना गया है।[2] आचार्य शुक्ल लिखते हैं—"वस्तु या व्यापार की भावना चटकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुँचाने के लिये कभी किसी वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ा कर दिखाना पड़ता है, कभी उसके रूपरंग या भावना की उस प्रकार के और रूपरंग मिलाकर तीव्र करने के लिए समान रूप और धर्म वाली और वस्तुओं को सामने लाकर रखना पड़ता है। कभी-कभी बात को घुमा-फिरा कर भी कहना पड़ता है। इस तरह के भिन्न-भिन्न विधान और कथन के ढंग

---

१. शब्दार्थयोरस्थिराये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्॥

—साहित्यदर्पण : १०।१

२. अंगाश्रितास्त्वलंकारा मन्तव्याः कटकादिवत्।

—ध्वन्यालोक : २।६

'अलंकार' कहलाते हैं।"[3] हिन्दी में संस्कृत वाली बात ही घुमा-फिरा कर कही गयी है। शुक्ल जी का कथन 'कहने के अनेक ढंगों' की ओर संकेत करता है। वस्तुतः अनन्त वाग्विकल्पों के प्रकार ही अलंकार हैं।

शब्द और अर्थ की अन्योन्याश्रितता देखते हुए भी अलंकारों में दो भेद किये गये। काव्य के शरीर तत्त्व शब्द को अलंकृत करने वाले शब्दालंकार कहलाये और काव्य के आत्म तत्त्व की सौन्दर्य-वृद्धि करने वाले अर्थालंकार। क्योंकि अलंकारों की स्थिति काव्य में अनिवार्य नहीं इसलिए इन्हें अस्थिर धर्म कहा गया है। आचार्य शुक्ल ने अलंकार को अप्रस्तुत विधान कहा है। वस्तुतः अलंकार के पूरे भाव को अप्रस्तुत-विधान अपने में समाहित नहीं कर पाता। शब्दालंकार के अनुप्रासादि को अप्रस्तुत-विधान कैसे कहा जायगा ? उपमान के प्रसंग में यह बात सोची जा सकती है। शुक्ल जी ने उपमान शब्द के ही स्थान पर 'अप्रस्तुत-विधान' और 'अप्रस्तुत-योजना' शब्दों का प्रयोग किया है। साथ ही अलंकारों का वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है—

१. अप्रस्तुत-योजना के रूप में (उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि)
२. वाक्यवक्रता के रूप में (अप्रस्तुत-प्रशंसा, परिसंख्या, विरोध आदि)
३. वर्ण-विन्यास के रूप में (अनुप्रासादि)[4]

इस वर्गीकरण से स्पष्ट है कि अप्रस्तुत-योजना केवल उपमा-उत्प्रेक्षा आदि में पायी जाती है। हम यहाँ अलंकार और अप्रस्तुत-योजना दोनों नामों का प्रयोग सुविधानुसार करेंगे। अनेक विचारों को देखने के पश्चात् निष्कर्ष यह निकला कि अलंकार कविता के सौन्दर्य में वृद्धि करने वाले उपकरण हैं।

काव्य में इन सौन्दर्योपकरणों की उपयोगिता अनिवार्य नहीं। यद्यपि अलंकार के बिना भी काव्य हो सकता है; किन्तु अलंकारों के कारण काव्य में रमणीयता और सम्प्रेषणीयता की वृद्धि होती है। यदि अलंकारों की समुचित योजना न की गयी तो कवि उपहास का पात्र हो जाता है। इस संबन्ध में पं० कृष्णशंकर शुक्ल का मत है—"सौन्दर्य के इन उपकरणों की समुचित योजना करने के लिए एक कला की आवश्यकता है। और ये उपकरण तभी सौन्दर्योत्कर्ष में सहायक हो सकते हैं जब वे उचित पात्र पर सजाए गये हों।"[5] हिन्दी के

---

३. चिन्तामणि, भाग १ : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १८१
४. चिन्तामणि भाग १ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १८१
५. केशव की काव्यकला : पं० कृष्णशंकर शुक्ल. पृष्ठ ६४

जिन कवियों को अलंकार की समुचित योजना का ज्ञान नहीं रहा उन्होंने कविता की बड़ी भद्दी रूपरेखा तैयार की।

द्विवेदी-युग के कवियों ने अपने काव्यो में अलंकार-संयोजन का अपना दृष्टिकोण पृथक्-पृथक् रखा है। कुछ कवि ऐसे है जो इस सम्बन्ध में सजग रहे हैं और कम ऐसे है जिनकी गति स्वच्छन्द और स्वाभाविक है। आगे चलकर छायावादी कवियों की स्वच्छन्दता ने अलंकार-योजना को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। काव्य-कौशल में परिवर्तन हुआ, साथ ही शब्दालंकारों की भरमार कम हुई और अप्रस्तुत-योजनाओं का रूप निखरा। सियारामशरण जी के काव्य मे अलंकारों की जो योजना है उसमें द्विवेदी-युग की विशेपताएँ भी पायी जाती है और छायावादी प्रयोग भी :—

यद्यपि वे श्री चंद्रगुप्त जग में कहलाये,
प्रकट चंद्र से किंतु उन्होंने गुण थे पाये।
सज्जन रूप चकोर समूहों को सुखदायी
उनकी उज्ज्वल कीर्ति चंद्रिका सी थी छायी।
निज रुचिर गुणों से वे सुधी सबको प्रिय थे सर्वथा।
होता है प्यारा कुमुद पति कुमुद-समूहों को यथा॥[१]

प्रस्तुत उद्धरण कवि की प्रथम कृति का है। कहना चाहिए कि यह कवि का प्रथम प्रयास है। चन्द्रगुप्त का शाब्दिक अर्थ लेकर कवि ने चन्द्रगुप्त में प्रकट चन्द्र का गुण निरूपित किया है। यहाँ विरोध का रूप स्पष्ट है। 'सज्जन रूप चकोर' तथा 'कीर्ति चन्द्रिका सी छायी थी' प्रयोग उपमा के है। यहाँ उपमेय और उपमान अपने-अपने स्थान पर है। वाचक भी ठीक स्थान पर स्थित है। अलकारो के प्रयोग में कोई वक्रता या नवीनता नही अपितु चली आती हुई परिपाटी का पालन मात्र है। ऐसे प्रयोग द्विवेदी-युग के प्रयोगों के मेल में है। एक अन्य उदाहरण :—

सामने के मौरे सहकार की विरल छाँह युगल पदों को
छू रही थीं वहाँ वढ़ कर।
पद-रज चाँदनी ने मानो वह आंचल में पोंछ ली।
अब तक ओट लिये पूर्णिमा का शशधर झाँकता था,

१. मौर्य-विजय : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६

अब वह ऊँचा उठा ।
माधव की मुरली में फूँक पड़ी ।
फूटी मुरली के रंध्र रंध्र से चलोर्मि स्वर-गंगा वह,
मग्न हुआ गोवर्धन गिरि अधलेटे निज शैया से कुछेक उठ शृंग तक
सिहरे तमाल-तरु डोली लता बल्लरियाँ जिनके नवीन पल्लवों में,
चाँदनी के प्रभा दीप जगमग थे ।'[७]

प्रस्तुत उद्धरण कवि की अंतिम कृति गोपिका से उद्धृत है । गोपिका की रचना में कवि का काव्य-कौशल अपने चरम विकास पर था । मौर्य-विजय वाले उद्धरण से अधिक काव्य-नैपुण्य इसमें दृष्टिगोचर होता है । 'सहकार की विरल छाँह युगल पदों को छू रही थी' मानवीकरण हुआ । चाँदनी के आंचल से पद-रज पोंछी जा रही है । कवि संभावना करता है । कोमल कल्पना द्वारा उत्प्रेक्षा अलंकार की कितनी सुन्दर योजना है । इसी प्रसंग में 'स्वर-गंगा' और "चान्दनी के प्रभा दीप' का रूपक भी है । 'स्वर-गंगा' के रूपक को प्रभावशाली बनाने के लिए कवि ने अधलेटे गोवर्धन को मग्न दिखाया । 'मग्न' का प्रयोग यहाँ मानवीकरण भी लाता है साथ ही रूपक को भी पुष्ट करता है । तमाल का सिहरना और लता-वल्लरियों का डोलना भी काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से द्रष्टव्य है ।

यह तो हुई सियारामशरण जी के काव्य-कौशल के आरम्भिक और परिपक्व प्रयोगों की बात अब उनके काव्य में विभिन्न अलंकारों के स्वरूप पर विचार किया जाय ।

पहले शब्दालंकारों की दृष्टि से काव्य के सम्बन्ध में विचार करना सुविधाजनक होगा । आचार्य शुक्ल ने शब्दालंकारों को वर्ण-विन्यास सम्बन्धी अलंकार कहा है ।[८] कवि के अलंकार-प्रयोग श्रम-साध्य न होकर सहज और स्वाभाविक हैं । कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते है :—

(क) तोड़ मोड़ वे फूल फेंक सब
बोल उठी वह चिल्लाकर ।

७. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १७०
८. चिन्तामणि, भाग १ : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १८१

मुझको देवी के प्रसाद का
एक फूल ही दो लाकर।[९]

(ख) गूँज उठे अलि, कूक उठे कोकिल कुंजों में;
फूल फूल कर फूल उठे पादप-पुंजों में।[१०]

(ग) हैं जहाँ अगम्य दिवाकर-कर
तेरे गह्वर भी आकर वर
हैं ऊँचों से भी ऊँचे पर,
मन उन तक भी किस भाँति जाय?
ओ गौरव गिरि उत्तुंग काय।[११]

(घ) हाय मोहन के घर इस ओर,
दृश्य था और अतीव कठोर।
बहाती हुई अश्रु चुपचाप,
पा रही थी यमुना संताप।[१२]

'क' उद्धरण में 'तोड़ मोड़' और 'फूल फेंक' पदांशों में छेकानुप्रास[१३] है। छेकानुप्रास के एक नही अनेक उदाहरण सियारामशरण गुप्त के काव्य में मिलते हैं। अनुप्रास तो इतना सरल संभव अलंकार है कि किसी भी सामान्य पंक्ति में खोज निकाला जा सकता है। 'ख' उद्धरण की सानुप्रासिकता भली बन पड़ी है। सुगंधि फैलने के लिए यदि कहा जाय 'बगीचा मह मह महकने लगा' तो इससे ध्वनि यह निकलती है, कि बगीचा सुगंधि से आपूरित है। फूल फूल कर फूलने में प्रसन्नता की बात भी है, साथ ही पादप-पुंजों की मनोहारिणी छटा की ओर भी संकेत है। वर्णों से खिलवाड़ न करके यदि उनका उचित और उपयुक्त प्रयोग किया जाय तो अनुप्रास से भी काव्य में चारुता आती है। अन्यथा 'पद्माकर' की भाँति कवि 'वसंत' के वर्णन में वर्णों की दूकान सजाता रहेगा

---

९. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५०
१०. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृ० ५
११. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृ० २५
१२. अनाथ : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १९
१३. छेकोव्यंजन संघस्य सकृत्साम्यमनेकधा।
—साहित्यदर्पण : १०/३

और कविता द्वारा वसंत की अनुभूति और रसास्वाद नही मिल पायेगा।[१४]

'ग' उद्धरण में यमक[१५] का प्रयोग है। 'दिवाकर' सूर्य के अर्थ में प्रयुक्त है तथा 'कर' किरण के अर्थ मे। जहाँ पूरे पद की आवृत्ति हो वहाँ 'पदावृत्ति तथा पद के आधे, तीसरे या चौथे भाग की आवृत्ति हो वहाँ 'भागावृत्ति' यमक माना जाता हैं। यहाँ पूरे भाग की आवृत्ति नही है। इसलिए 'भागावृत्ति' यमक हुआ। यमक के प्रयोग सियारामशरण जी के काव्य में कम मिलते है। इस प्रकार के कुछ प्रयोग प्रस्तुत है—

(१) खर प्रखर कर और अपनी आग तू[१६]

(२) भारत, प्रभारत है अमिताभ[१७]

'घ' उद्धरण में श्लेष अलकार हैं। 'मोहन' शब्द के दो अर्थ है।—(१) 'अनाथ' कृति का नायक (२) 'कृष्ण'। इसी प्रकार 'यमुना' शब्द के भी दो अर्थ है—(१) मोहन की पत्नी (२) यमुना नदी। एक ही पद के दो अर्थ निकल रहे है। कृष्ण के पक्ष का अर्थ कितना सुन्दर है—मोहन के रहते यमुना का कष्ट पाना असह्य और विचित्र है। न रहने पर कोई बात नहीं फिर चाहे यमुना आठ-आठ आँसू रोये किन्तु यह रोना आश्चर्यजनक है। श्लेष अलकार के प्रयोग सियारामशरण जी के काव्य मे अधिक नही हुए है। कवि इस योजना के प्रति सजग नही प्रतीत होता। प्रबध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों मे श्लेप के प्रयोग कम है। पुनरुक्ति और वीप्सा के प्रयोग कवि ने यत्र-तत्र किए है—

---

१४. कूलन मे केलि मे कछारन में कुंजन मे,
क्यारिन मे कलित कलीन किलकत है।
कहै पद्माकर परागन मे पौनहू मे,
पातन मे पीक में पलासन पगंत है।
द्वारे में दिसान मे दुनी मे देस देसन में,
देखो दीप दीपन मे दीपति दिगंत हैं।
वीथिन में ब्रज में नवेलिन मे वेलिन मे,
वनन मे बागन मे बगर्यो वसत है।
—पद्माकर ग्रन्थावली : सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १६१

१५. सत्यर्थे पृथगर्थाया. स्वर व्यजन सहतेः।
क्रमेण तेनैव आवृत्तिर्यमक विनिगद्यते ॥
साहित्यदर्पण : पृ० १०८

१६. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, पृ० २७

१७. जयहिन्द : सियारामशरण गुप्त, पृ० १२

आया यह उस दुर्गमता की
गुण गरिमा गाते गाते;
रात हो गयी यहीं बीच में
पद तल तक आते-आते ।[१८]

यहाँ 'गाते' और 'आते' शब्दो के पुन: कथन के आधार पर पुनरुक्ति अलकार है। यह अलकार वहाँ होता है, जहाँ भाव को अधिक रुचिकर बनाने के लिए एक ही बात को बार-बार कहा जाये ।[१९] इस अलकार के प्रति कवि का कोई विशेष झुकाव नही दिखायी पडता किन्तु जहाँ-जहाँ प्रयोग आये हैं, भाव सुन्दर बन पड़े है। उदाहरण के लिए कुछेक प्रसंग लिये जा सकते हैं—

रत्नराज इस दुर्गम खनि में
होकर दीन मलीन ।
रहते हो क्यों बुझे बुझे से,
दूर दूर द्युतिहीन ?[२०]

× ×

एक ग्वालिन वह जमुना तटकी,
लौटी मटकी-मटकी ।[२१]
यह नटनागर नाच उठा है,
बजा बजा कर तालो ।[२२]

वीप्सा में आदर घृणा, आदि किसी आकस्मिक भाव को प्रभावित करने के लिए शब्दों की आवृत्ति की जाती है ।[२३] वीप्सा अलंकार के कुछ प्रयोग 'पाथेय' और 'आर्द्रा' मे मिलते है। कुछ फुटकर रचनाओं में भी ऐसे प्रयोग पाये जाते है। 'नव-जीवन' शीर्षक का एक सन्दर्भ है—

---

१८. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५०
१९. काव्य-दर्पण : पं० रामदहिन मिश्र, पृष्ठ ३४८
२०. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५३
२१. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७६
२२. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७९
२३. काव्य-दर्पण : पं० रामदहिन मिश्र, पृष्ठ ३४६

उछल उछल कर छूट छूट कर
उभय तटों की कारा से,
मुझमें आज असीम उठा है,
ऐसा कुछ मैंने पाया।
पाया हाँ पाया पाया।[२४]

'पाया' में आकस्मिक भाव का संयोजन है, इसलिए 'वीप्सा' अलकार हुआ। 'उछल-उछल' में पुनरुक्ति है।

सियारामशरण जी के काव्य में वक्रोक्ति[२५] अलकार के प्रयोग भी मिलते है। इन प्रयोगों में वचनभंगी की वक्रता के साथ सादगी और सरलता भी है। एक उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें वक्रोक्ति कितनी अच्छी बन पड़ी है—

वह कहते हैं इनकी चोटी कर देंगे हम साफ,
यह कहते हैं उनकी दाढ़ी हम न करेंगे माफ।
कौन कहे इन हज्जामों से बको न यों निस्सार,
बहुत बहुत हम देख चुके है इस कैंची की धार।[२६]

चोटी और दाढ़ी हिन्दू और इस्लाम धर्म के प्रतीक बन गये है। एक-दूसरे की चोटी और दाढ़ी साफ़ करने का अर्थ हुआ हिंसात्मक व्यवहार। चोटी और दाढ़ी साफ करने का वाच्यार्थ लेकर कवि ने हिन्दू-मुसलमान दोनों को हज्जाम बना कर वक्रोक्ति की है।

अर्थालंकारों मे सर्वप्रथम स्थान उपमा का है। काव्य के विस्तृत क्षेत्र में उपमा अपने अनेक रूपों में व्याप्त रहती है। उपमा के ही आधार पर कतिपय अन्य अलंकारों का जन्म होता है। इसमे दो बातें आवश्यक रूप से होनी चाहिए। एक तो वाक्य विशेष में प्रतिपादित होने वाला उपमेय और उपमान का साम्य और दूसरे उस वाक्य में वैधर्म्य की कोई चर्चा नही होनी चाहिए।[२७] सियाराम

२४. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६६

२५. 'जहाँ कोई बात किसी को जिस मतलब से कहे, दूसरा उसका और ही अर्थ लगावे।' काव्य-दर्पण : पं० रामदहिन मिश्र, पृष्ठ ३४६

२६. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १२

२७. साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमाद्वयो :।
—साहित्यदर्पण : १०। १४

शरण जी ने अपने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों में उपमा की योजना की है। उनकी कृतियों से कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं—

१— मुख मुद्रा थी शान्त कान्त संध्या-सी भावित,
बहुत दूर के स्वर्ण-घनों से विमल विभान्वित।[२८]

× × ×

२— ये घर बुझी चिताओं से हैं,
गांव नहीं मरघट यह है।
जीवित दीख रहे जो उनको,
मरण-वेदना दुस्सह है।[२९]

× × ×

३— मुख यों किये क्या हाय ! कान्तिहीन ?
दिन के प्रदीप की शिखा-समान,
आग में जला के प्राण
पाती नहीं कण भी प्रकाश का।[३०]

× × ×

४ – दीखे तुम आगे ज्योति-पुंज ज्यों तिमिर में,
पथ की अजस्र चल फिर में
सीधे ही दिखाई दिये छूटे हुए शर से
दीप्त सूर्य-कर-से।[३१]

पहले उद्धरण में शान्त मुख-मुद्रा की उपमा शान्त-कान्त संध्या से दी गयी है। संध्या समय पक्षी अपने-अपने बसेरे को लौटते हैं। गो-धूलि लग्न का कोलाहल विश्राम ले चुका होता है। संध्या की इसी शान्ति से कवि ने मुख-मुद्रा की उपमा दी है। यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है; क्योंकि उपमा के सारे अंग पूरे हैं।

---

२८. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृ० २७
२९. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३३
३०. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७८
३१. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३४

'मुख-मुद्रा' उपमेय है तथा 'शान्त-क्रान्त-संध्या' उपमान है। 'सी' वाचक के रूप में है और 'भावित' धर्म है।

दूसरे अवतरण में लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा के चारों अंगों में से यदि कवि किसी की भी योजना नहीं करता है तो वह लुप्तोपमा अलंकार होता है। 'ये घर बुझी चिताओं से हैं' में 'घर' उपमेय 'बुझी चिता' उपमान तथा 'से' वाचक है। धर्म लुप्त है। इसलिए इस अंश में धर्मलुप्तोपमा अलंकार है। 'गाँव नहीं मरघट है' में अपह्नुति अलंकार है। 'गाँव' प्रकृत का निषेध करके 'अप्रकृत' 'मरघट' अर्थात् उपमा की स्थापना की गयी है। अपह्नुति का अभिप्राय है उपमेय का निषेध और उपमान की स्थापना। एक ही छन्द में उपमा और अपह्नुति होने से संसृष्टि अलंकार भी सहज रूप में घटित हो गया है। तीसरा उदाहरण भी इसी प्रकार का है। इसमें उपमा और विशेषोक्ति की संसृष्टि है। 'जलना' कारण है; किन्तु 'प्रकाश' कार्य नहीं हो रहा है।

चौथे उद्धरण में बापू उपमेय के लिए कई उपमान एक साथ ही जुटाए गये हैं। 'ज्योति पुंज', 'शर','दीप्त','सूर्य की किरण' ये सभी उपमान एक साथ आये हैं। यहाँ मालोपमा अलंकार है। इन सभी उपमानों के धर्म भिन्न-भिन्न हैं। इसलिए भिन्नधर्मा मालोपमा अलंकार हुआ।

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि सियारामशरण जी के काव्य में उपमानों की योजना परिष्कृत ढंग से हुई है। कवि जान-बूझकर अलंकार-योजना का प्रयत्न नहीं करता। संयोजन में स्वाभाविकता है। इतना अवश्य है कि उपमा के कुछ प्रयोग ऐसे भी हैं जहाँ उपमेय ही उपमान बना दिये गये हैं। अनन्वय अलंकार के ये रूप भी कहीं-कहीं मिलते हैं—

नई ज्योति में नई ज्योति ज्यों देखा तुमको।
चुनतीं थीं तुम झुकी झाड़ पर वन्य कुसुम को।[३२]

यहाँ नई ज्योति उपमेय का उपमान भी नई ज्योति ही है।

सियारामशरण जी के काव्य में रूपकों की योजना भी मिलती है। ये रूपक उपमा के आधार पर ही बनते हैं। वस्तुतः रूपक अलंकार वहाँ माना जाता है जहाँ उपमेय और उपमान का अभेद हो। कवि की प्रथम कृति 'मौर्य-

---

३२. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५८

विजय' मे रूपक योजनाएँ अधिक नहीं है; किन्तु आगे चल कर 'नकुल', 'पाथेय' और 'मृण्मयी' आदि कृतियो मे रूपकों के सफल प्रयोग मिलते हैं। सादृश्य योजना के रूपक सम्बन्धी कुछ प्रसग प्रस्तुत है—

१— ज्योति-वधू को निज घेरे के
अन्तःपुर में डाल,
घन-तम ने फैला रक्खा था
घन-पटलों का जाल।[33]

× × ×

२— वह कृतार्थ है मिला उसे लक्ष्मण का गौरव।
पहुँचे तुम तक दूर यहाँ उसका यश-सौरभ॥[34]

× × ×

३— मातः वसुधे, स्वजन-स्वजन का वैर-पंक वह,
तेरी सुरसरि मध्य हुआ है निष्कलंक यह।
तेरे इस युग-विटपि तले मै निर्भय घूमूँ,
लेकर ये फल फूल इन्हीं पत्तों सा झूमूँ।[35]

× × ×

तेरा धरा धाम मध्य निर्मलिन
आज का नवीन दिन
लाया है प्रफुल्लित प्रकाश गिरा।
कर के निजस्व निरा
रख क्या सकेगा इसे रुद्ध किसी घेरे में।[36]

अप्रस्तुत वही सुन्दर होते हैं जो प्रस्तुतों के समान ही प्रसन्नता, खिन्नता, कोमलता तथा उग्रता आदि की भावना उत्पन्न करे। प्रथम उद्धरण में 'ज्योति-

---

३३. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७०
३४. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५३
३५. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८३
३६. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६८

वधू' में रूपक है। 'ज्योति' उपमेय है और 'वधू' उपमान। अन्तःपुर की परिकल्पना भी न्यायसंगत है। यह अन्तःपुर घन-तम से आवृत्त है। यह तो विशेष बात है, साथ ही इसी कारण सांगरूपक की योजना भी बन पड़ी है। परंपरित रूपकों का विधान कम है।

दूसरे उद्धरण में 'यश' उपमेय है, 'सौरभ' उपमान है। यश के प्रसंग में सौरभ की योजना उपयुक्त है। सौरभ की भाँति ही यश के भी फैलने की बात कही गयी है। यश के समान ही सौरभ भी अमूर्त है। तीसरा अवतरण सांग-रूपक का है। सुरसरि के प्रसंग में 'वैर-पंक' की योजना है। नदी के प्रसंग में पंक की बात सहज बोधगम्य है। उसी सुरसरि के पास ही युग-विटपि का विधान वर्णन में चित्रात्मकता ला देता है। कवि स्वयं पत्तों के समान झूम-झूम कर इस युग-विटपि की मनोहर और शीतल छाया में विहार करना चाहता है। 'प्रकाश' और 'गिरा' का रूपक भी अपने में एक विशेषता लिये है। प्रकाश की स्थिति जहाँ होगी वहाँ उसके द्वारा प्रकाशन का काम अवश्य होगा। इसी प्रकार, गिरा की स्थिति भी गोपन से परे है। जिस प्रकार प्रकाश तम का विनाशक है उसी प्रकार गिरा निस्तब्धता को हटाती है। इनको किसी घेरे में रुद्ध नहीं किया जा सकता। यह तो हुए अमूर्त उपमेय के अमूर्त उपमान। अब अमूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमान की भी एकाध योजना देख ली जाय। नकुल में एक स्थल पर कवि ने रात्रि और पिकी के रूपक का विधान किया है—

> **तरु शाखा के दोल-शयन पर सुख से सोकर।**
> **बोली थी जब रात्रि पिकी, उड़ने को होकर।**[३७]

इस रूपक में उपमेय और उपमान का परस्पर रूपसाम्य है। रात्रि काली होती है और पिकी भी उसी वर्ण की होती है। यह रूपक योजना रूपसाम्य पर आधारित है। इस प्रकार के अनेक प्रयोग सियारामशरण जी के काव्य मे मिलते हैं। नवीनता के लोभ में कवि ने परम्परा से चले आये उपमानों का सर्वथा तिरस्कार नही किया। प्रयोग और विधान की प्रणाली कवि की अपनी है।

सन्देह और भ्रांतिमान के प्रयोग सियारामशरण जी के काव्य में प्रायः नही मिलते है। एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है :—

---

३७. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३६.

मुख में थी मुसकान कि थी मुसकान समुखमय ।
उलझ गये उस एक सत्य में संकल्प द्वय ॥[३८]

धनंजय की मुसकान का वर्णन करते हुए मणिभद्र नाम का यक्ष सन्देह प्रकट करता है कि मुख में मुसकान थी अथवा मुसकान में मुख था । यहाँ वाक्-चातुर्य भी है ।

अभेद-प्रधान अलंकारों में उत्प्रेक्षा का स्थान प्रथम है । जहाँ प्रस्तुत की अप्रस्तुत में संभावना की जाय वहाँ यह अलंकार होता है । उत्प्रेक्षा की योजना सियारामशरण जी ने अपने काव्य में यत्र-तत्र की है । कुछ योजनाएँ तो भावोद्रेक की दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी हैं :—

सोने की हो गई छुरी वह चमकी चमकी ।
मानों कोई जटिल अमावस्या आ दमकी ॥[३९]

लोहे की छुरी पथरी छूने से सोने की बन जाने पर ऐसा भासित होता था मानों कोई अमावस्या दमक उठी हो । लोहे और अमावस्या में गुणसाम्य है । लोहे में निजी गुण में परिवर्तन हो जाने के कारण कवि ने अमावस्या में दमकने की सम्भावना की । उत्प्रेक्षा के वाचक शब्द हैं—जनु, जनहुं, जानों, मनु, मनहुं, मानों । जहाँ इन वाचकों के न रहने पर सम्भावना की जाती है वहाँ प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा होती है ।

अतिशयोक्ति भी इसी श्रेणी का अलंकार है । सियारामशरण जी अतिशयोक्ति करना जैसे जानते ही नहीं । जाने या अनजाने कुछ प्रयोग ऐसे हैं जिनमें अतिशयोक्ति अलंकार की झलक मिलती है । जहाँ उपमान के द्वारा उपमेय पक्ष का निगरण सिद्ध हो जाता है वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है । 'आत्मोत्सर्ग' में सियारामशरण जी लिखते हैं :—

पर तुम भी कैसे हो क्या हो ?
तुम पर भी है क्रूर कलंक;
सौ सागर भी धो न सकेंगे
तुम्हें लग गया है जो पंक ।[४०]

---

३८. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३०
३९. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ११३
४०. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३५

यहाँ कारण और कार्य की पूर्वापर विपरीतता है इसलिए कारणातिशयोक्ति है। जब केवल उपमान द्वारा ही उपमेय का वर्णन किया जाय तब रूपकातिशयोक्ति होती है। रूपकातिशयोक्ति के उदाहरण सियारामशरण जी के काव्य में कम है। "नकुल" में द्रौपदी के प्रसंग के कुछ भाव इस कोटि में आते हैं। अपने काव्यों में अतिशयोक्ति की भारी-भरकम योजना कवि ने नही की।

कवि की जो रचनाएँ छोटी-छोटी कहानियों पर आधारित है उनमें तो नही; किन्तु अन्य प्रकार की रचनाओं में प्रतिवस्तूपमा के प्रयोग भी मिलते है :—

रहें कहीं भी आप, आपका धाम अमल है,
निकल जाय नद जहाँ, वहीं उसका स्वस्थल है।[४१]

× × ×

कंपित हो उठते हैं भय से
दो दिन बाद इसे अवलोक।
दीप वही पर काली बत्ती
निरालोक देती है शोक।[४२]

एक ही सामान्य धर्म का निर्देश जब पृथक्-पृथक् किया जाता है तब यह अलंकार होता है। पहले उद्धरण के 'रहे' और 'निकल जाय' दो रूपों में एक ही धर्म की बात कही गई है। इसी प्रकार दूसरे उद्धरण में निष्प्राण शरीर को देखने से भय तथा 'दीप को निरालोक काली बत्ती' देखने से शोक उत्पन्न होता है। एक ही धर्म का कथन भिन्न-भिन्न शब्दों में किया गया है।

प्रतिवस्तूपमा की ही श्रेणी में दृष्टान्त और निदर्शना दोनों अलंकार आते है। 'जहाँ उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।' सियारामशरण जी लिखते है :—

दूर अबलते, भूमि सबल की ही है सारी;
सिंह कहाँ मृग राज, नहीं यदि मृगयाचारी।[४३]

प्रस्तुत अवतरण का तात्पर्य है—'अबलते दूर हो। यह भूमि सबलों की

---

४१. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३५
४२. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ८२
४३. मृण्मयी : पृष्ठ ११८—पुनरपि शीर्षक

है।' इसी बात का निश्चय कराने के लिए सिंह का दृष्टान्त दिया गया, कि सिंह बिना मृगयाचारी हुए कैसे मृगराज हो सकता है? यहाँ धर्म का पार्थक्य है, किन्तु भावों का साम्य है। यद्यपि साधारण धर्म दोनों का एक नहीं है पर समता की झलक मिलती है।

दृष्टान्त से मिलता-जुलता अलंकार निदर्शना है। इसमें बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध दिखाया जाता है। निदर्शन अर्थात् दृष्टान्त-करण में अनुपपन्न बात भी उपमानोपमेय भाव में परिणत हो जाती है। पं० रामदहिन मिश्र दृष्टान्त और निदर्शना का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखते है—"दृष्टान्त में दो निरपेक्ष वाक्य रहते हैं और दृष्टान्त दिखा कर उपमान से उपमेय की पुष्टि की जाती है। निदर्शना में दोनों वाक्य सापेक्ष रहते है; क्योंकि उपमेय वाक्य में उपमान वाक्य के अर्थ का आरोप किए जाने के कारण उनका सम्बन्ध बना रहता है।"[४४] 'निदर्शना' के उदाहरण के लिए आत्मोत्सर्ग से एक छंद प्रस्तुत है :—

> वह शव कहीं छिपाने को तब
> वे घसीट ले गये तुरन्त;
> ओ मूढ़ो! यों घास-फूस से
> मूँदोगे यह ज्वाल ज्वलंत?[४५]

यहाँ पहला वाक्य उपमेय है तथा दूसरा उपमान है। 'यों' वाचक है। दोनों वाक्य एक-दूसरे की अपेक्षा रखते हैं।

भेद-प्रधान अलंकारों में व्यतिरेक का नाम आता है। इसमें उपमेय का उत्कर्ष दिखाकर उपमान का अपकर्ष दिखाया जाता है। कभी-कभी यह उत्कर्षापकर्ष कहा नहीं जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि केवल उत्कर्ष ही कहा जाय अथवा अपकर्ष का ही कथन हो। नकुल में सियारामशरण जी लिखते हैं :—

> उतरी हो तुम मंजु उषा देवी ज्यों नीचे,
> कच गुच्छों में किये ओट में निशि को पीछे।[४६]

---

४४. काव्यदर्पण : पं० रामदहिन मिश्र, पृष्ठ ३८१

४५. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७७

४६. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५७

यहाँ कच-गुच्छ उपमेय है और निशि उपमान है। 'पीछे' शब्द दो अर्थों वाला है। एक अर्थ तो है शिर के पीछे और दूसरा अर्थ हुआ—पीछे कर देना, हरा देना। वैसे कच-गुच्छ शिरोभाग के पीछे होता है। गुण साम्य के आधार पर निशि का उपमान भी सुन्दर है। कथन में और विशेषता तब आती है जब कवि कहता है कि उषा देवी ने कच-गुच्छ में निशि को पीछे कर दिया। उषा के आगमन के पश्चात् निशि का तिरोहित हो जाना भी संगत है। वस्तुतः यहाँ उपमा और व्यतिरेक की संसृष्टि है। द्रुपद सुता को उषा के समान माना गया है। उपमा का वाचक 'ज्यों' है। गुप्त जी के 'नकुल' काव्य में इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। वैसे सियारामशरण जी के सम्पूर्ण काव्य में इस प्रकार की योजनाओं की संख्या कम है। व्यतिरेक की ही श्रेणी में आने वाले अलंकार सहोक्ति और विनोक्ति भी है। सहोक्ति वहाँ होता है जहाँ 'सह', 'साथ' आदि शब्दों के सामर्थ्य से दो अन्वित अर्थों की बोधकता हो। 'नकुल' काव्य का एक प्रसंग है :—

उसे देखकर चौंक खड़ी हो गई द्रुपदजा,
एक साथ ही राज-रोष अन्तस् में उपजा ॥[47]

यहाँ 'साथ' कथन के आधार पर दो भाव एक साथ व्यंजित हो रहे हैं—एक तो चौंककर खड़ा हो जाना और दूसरे अन्तस् में राज-रोष का उपजना। इस प्रकार की अलंकार-योजना सियारामशरण जी के काव्य में प्रचुर मात्रा में नहीं पायी जाती।

विशेषण-वैचित्र्य उपस्थित करने वाले अलंकारों में समासोक्ति और परिकर का नाम प्रमुख है। समासोक्ति में प्रस्तुत वर्णन में अर्थश्लेप अथवा साधारण प्रयोगों द्वारा अप्रस्तुत अर्थ का भी भान होता है तथा परिकर में साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग किया जाता है। समासोक्ति अलंकार रहस्यवादी कविताओं में अधिक पाये जाते है। सियारामशरण जी के प्रयोग रहस्यवादी नहीं है। उनकी सारी कल्पनाएँ सुस्पष्ट है। इसीलिए समासोक्ति अलंकार के प्रयोग भी नहीं मिलते। परिकर अलंकार प्रायः सभी कृतियों में पाया जाता है। किसी विशेषण का साभिप्राय प्रयोग करना सियारामशरण जी खूब जानते है। पाथेय कृति का एक उदाहरण है :—

---

४७. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १५

अमर हूँ मैं ओ काल-कृशानु,
कर सकेगा तू क्या मेरा ?
रहे तू फँसा ही वृष-भानु
व्यर्थ है कोपानल तेरा।[४८]

प्रस्तुत अवतरण मे 'वृष-भानु' का प्रयोग द्रष्टव्य है। काल-कृशानु को कवि ने वृष-भानु कहा है। वृष राशि पर भानु का ताप अपनी चरम सीमा पर होता है। तापाधिक्य प्रदर्शित करने के लिए ही वृष-भानु का प्रयोग किया गया है। ऐसे ही दूर्वादल में मूर्ति को योगिनी कह कर कवि ने परिकर अलंकार की योजना की है –

ग्रीष्म जब बनता कृतान्ताकार-सा
गात होता तप्त तप्तांगार सा,
पर तुम्हें होता नहीं दुख-रोग है,
कौन-सा हे योगिनी, यह योग है ?[४६]

'योगिनी' कह कर मूर्ति को साधिका रूप में चित्रित किया गया है तथा उसकी साधना पूछी गयी है। 'योगिनी' और 'योग' दोनों पदों का प्रयोग साभिप्राय हुआ है।

अर्थश्लेप के कुछ प्रयोग सियारामशरण जी के काव्य में मिलते हैं। कुछ विचारकों ने शब्दश्लेप और अर्थश्लेप को एक ही अलंकार माना है। वस्तुतः 'शब्दश्लेप मे दो अर्थो वाले शब्द प्रयुक्त होते है और अर्थश्लेप में दो एकार्थक शब्दों के अनेक अर्थो का कथन किया जाता है।'[५०] अर्थश्लेप और शब्दश्लेप मे कोई विशेप भेद नही, अतएव शब्दालंकार वाले प्रसंग के उदाहरण ही पर्याप्त होगे।

अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार सियारामशरण जी की 'बापू' कृति मे मिलता है। वैसे इस प्रकार के प्रयोगों की ओर कवि की लेखनी की रुझान नहीं दिखायी पड़ती, किन्तु मिलने वाले प्रयोग विपय को सुन्दर बनाते प्रतीत होते है। एक उदाहरण :—

---

४८. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६२
४६. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४७
५०. काव्य-दर्पण : रामदहिन मिश्र, पृष्ठ ३८६

कितने युगों की घनीभूत रात !
जाने कब होगा प्रात ?
दीखता अकाट्य ही विकट ध्वान्त।
नूतन शताब्द—शिशु-हेतु वे सभी अशान्त।
हो न अरे संतति का सर्व स्वान्त !
रात्रि बढ़ती ही प्रतिपल है।
रात्रि कट जाय तब वह भी सफल है,
पाकर प्रकाश मणि
हाय री प्रकाश मणि ! कौन खनि
धारण किये है तुझे अन्तर में,
पुष्टिकर उर के अजस्र दुग्ध सर में ?[५१]

यहाँ अंधकार और रात्रि (प्रस्तुत) के वर्णन मे परतंत्रता (अप्रस्तुत) की ओर संकेत है। प्रकाश मणि का प्रयोग गांधीजी के लिए हुआ है। अप्रस्तुत-प्रशंसा में भी एक प्रकार का 'गोपन' होता है पर प्रकृत (उपमेय) और अप्रकृत (उपमान) में किसी प्रकार के साम्य का कथन नहीं किया जाता। 'बापू' कृति के अतिरिक्त 'विषाद' और 'पाथेय' के कुछ प्रयोगों में अप्रस्तुतप्रशंसा की झलक मिलती है। कहीं-कहीं सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन पाया जाता है। आचार्यो ने कथन की इस शैली को अर्थान्तरन्यास कहा है। कुछेक उदाहरण प्रस्तुत है:—

१— सब भाँति यद्यपि लोक में अवनति हमारी हो रही।
पर यह नहीं उद्योग से हम हो न सकते हों वही ॥
पा कर सुसिंचन नीर का सूखे हुए भी तरु कभी।
हैं प्राप्त कर लेते पुनः निज पूर्व की शोभा सभी ॥[५२]

२— विदित हुआ था मुझे साधना का पथ दुर्गम,
साधक साधक नहीं, न हो जब तक वह निर्मम।
होती है जिस समय पूर्ति के निकट तपस्या,
अपसरियाँ है उसी समय की विकट समस्या।[५३]

---

५१. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १७
५२. सरस्वती : १९१३ भाग १४, सं० ४
५३. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७६

पहले उदाहरण में अपनी अवनति और उद्योग द्वारा उन्नति की बात कही गयी है। इस बात का समर्थन सूखे तरु और नीर-सिंचन द्वारा उसकी श्री से किया गया है। इसी प्रकार दूसरे उद्धरण में साधना पथ की दुर्गमता और कठिनता का समर्थन अप्सराओं की समस्या से किया गया है।

सियारामशरण जी ने कुछ प्रसंगों में अभिलषित अर्थ का कथन विशेष भंगिमा के साथ किया है। यह भंगिमा भी स्वाभाविकता से दूर नहीं है। ऐसे कथन अलंकारो के मोह से नही किये गये है, अपितु उन कथनों में स्वाभाविक रूप से अलंकार आ गया है। एक कथन में पर्यायोक्त[५४] अलंकार देखिए :—

अब व्याह मृत्यु से ही कर तू,
कुत्ते की मौत अभी मर तू।
मरते है पामर इसी तरह,
तू बच न सकेगा किसी तरह।[५५]

यहाँ भंगिमा पूर्ण कथन केवल पहली पंक्ति में है। गन्नौर के राजा की विधवा रानी से नवाव वन्दीगृह में प्रणय-प्रस्ताव करता है। प्रस्तुत कथन उसी प्रस्ताव का उत्तर है।

व्याजस्तुति, आक्षेप, तथा विनोक्ति अलंकारों के उदाहरण भी सियारामशरण जी के काव्य में मिलते है। कवि ऐसे प्रयोगों के प्रति सजग नही रहा है। फुटकर गीतों में 'व्याजस्तुति' नहीं पायी जाती। 'नकुल' और 'उन्मुक्त' में कुछ उदाहरण मिलते है।

अब विरोधमूलक अलकारों के प्रसंग भी देख लिये जाँय। मुख्य रूप से इन अलंकारों के समूह में विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, असंगति, विषम, सम, अधिक, अल्प, अन्योन्य, व्याघात, विचित्र आदि अलंकार आते हैं। इनमें से कुछ के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है।

---

५४. जहां अभिलषित अर्थ का विशेषभंगी के साथ कथन हो।
—काव्यदर्पण : पं० रामदहिन मिश्र, पृ० ३६०

५५. सरस्वती : मार्च १६२० ई०

विरोधाभास –

यह है धरित्री में गगन-जात
जागृति का मांगलिक सुप्रभात[५६]
(विरोध होने का आभास)

जागृति में साश्चर्य अजागृति भरे नयन में,
थे अब ज्यों वे उसी पूर्व के भूमि शयन में[५७]
(जागृति और अजागृति में विरोध)

विभावना –

मनोमुकुल विकसा विकसा कर
नव नव दृश्य दिखाती है,
बिना तार झंकार दिये ही,
हृत्तन्त्री पर गाती है।[५८]

विशेषोक्ति—

दिन के प्रदीप की शिखा-समान
आग में जला के प्राण
पाती नहीं कण भी प्रकाश का।[५९]

असंगति—

पानी पीने बैठेंगे हम
सूखेंगे इनके मन-प्राण।[६०]

विषम –

बढ़ गया आश्चर्य मेरा और अब
उटज में मेरे उतर कर आ गया
राज सिंहासन वहाँ का मणि मुकुट।[६१]

---

५६. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६८
५७. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३३
५८. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २६
५९. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७८-७९
६०. आत्मोत्सर्ग, सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५९
६१. अमृतपुत्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४२

सम—

ले आयी है मुझे यहां पर सजग पिपासा।
मिला सुदर्शन, पूर्ण क्यों न होगी अब आशा ।।[६२]

अन्योन्य—

करोड़ों का अपना व्यवसाय
हानि के भीतर ही है आय[६३]

उद्धृत उद्धरणों मे विभावना मे विना कारण कार्य हुआ है। विशेषोक्ति मे कारण रहते हुए भी कार्य नही हो पाया है। असगति मे कार्य और कारण के स्थान मे दूरी है। 'विषम' मे वेमेल घटना का वर्णन है। सम विषम के विपरीत है। अन्योन्य मे हानि और आय परस्परविरोधी वस्तुओ का, अन्योन्य सामान्य सम्बन्ध बताया गया है। 'अल्प', 'अधिक' और 'विशेष' आदि गौण अलंकार हैं। इस प्रकार के प्रयोगो की ओर कवि का ध्यान भी कम रहा है। कुछ अन्य अलकार भी देखे जा सकते हैं—

प्रहर्षण –

चलते ही चलते विना प्रयास
पाके यह ऐसा नया
हर्षोल्लास,
पान्थ भी तुरंत ही चला गया।
दर्शक को दीख पड़ा—दोनों ओर
ले रहा था उद्वेलित हर्ष एक सी हिलोर।[६४]

यह स्थिति परमानन्द की है। हर्ष और पुलक का साम्राज्य है। प्रहर्षण अलंकार के उदाहरण गुप्त जी के 'जयहिन्द' काव्य मे मिलते है। प्रहर्षण के प्रयोगाधिक्य का कारण कवि का समाश्वास है।

---

६२. नकुल : सियरामशरण गुप्त, पृष्ठ ७०
६३. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १८
६४. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५८

विषादन—

सुना श्रेष्ठी ने भी सब हाल,
धरा पर पटक दिया निज भाल।
लुट गया हा ! मैं सर्व समक्ष,
हुए मिट्टी मेरे शत लक्ष !
तुझे मैंने ओ मेरे गेह,
गिरा क्यों नहीं तभी निःस्नेह ?[६५]

यहाँ इष्ट लाभ के विपरीत अनिष्ट परिणाम निकला है। इसलिए विषादन अलंकार है।

ललित—

अंधकार में अर्द्ध निशाकर
खिसक गया निज ज्योति समेट;
कांप उठे झिलमिल तारागण
निखर निरीहों का आखेट।[६६]

इस उद्धरण में वर्ण्य-वस्तु का वर्णन सीधे न करके छाया द्वारा किया गया है। हिन्दू-मुस्लिम मार-काट के वर्णन को निशाकर और तारों के भय के रूप में वर्णित किया है।

स्वभावोक्ति—

मैंने कई फूल ला ला कर
रक्खे उसकी खटिया पर;
सोचा शांत करूँ मैं उसको;
किसी तरह तो बहला कर।

---

६५. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृ० २८
६६. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३२

तोड़-मोड़ वे फूल फेंक सब
बोल उठी वह चिल्ला कर
मुझको देवी के प्रसाद का
एक फूल ही दो लाकर।[६७]

यहां अछूत की बालिका की स्वाभाविक इच्छा का वर्णन किया गया है।

सूक्ष्म—

मटकी हथेलियों से सिर पर साध नंदा पूछ बैठी,
'इंदु अरी आज बड़े भोर कैसी इस ओर ?'
पूछने में उसकी कुटिल भौंह नाच उठी,
मानो कहती हो—'हम जानती हैं।'[६८]

प्रस्तुत अवतरण में संकेतयुक्त रहस्य को चमत्कारपूर्ण ढंग से वर्णित किया गया है।

इन अलंकारों के अतिरिक्त मानवीकरण का प्रयोग सियारामशरण जी ने अधिकांशत: किया है। यह अलंकार छायावाद युग की देन है। यद्यपि इसके प्रयोग और पहले से मिलते हैं पर छायावाद युग में मानवीकरण अलंकार की विशेष महिमा रही। अंग्रेजी का 'परसानीफिकेशन' (Personification) हिन्दी में मानवीकरण है। सियारामशरण जी के कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं :—

मानवीकरण -

धरा इधर दुबकी बैठी है,
उधर झांकती है कुछ उठ,
मूर्तिमंत भय क्रूर कटक ले
मानों अभी चढ़ा आता।[६९]

---

६७. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृ० ५०
६८. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४४
६९. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४०

आज कोकिल फिर बारंबार,
कर उठा मोह-मंत्र उच्चार,
मुकुल-बालाएँ नयन उघार,
निरखती हैं मृदु वायु विहार,
और तुम जाने को तैयार।[70]

× × ×

चित्रण निरत प्रभात मात्र रेखाएँ देकर,
आँक रहा है विपिन कुंज निशि से मसि लेकर।[71]

मानवीकरण मे मानवोचित भावों और गुणो को निर्जीव वस्तुओ या भावो में आरोपित करके वर्णन किया जाता है। इस प्रकार के प्रयोगो से भाषा में वैचित्र्य आता है। साथ ही काव्य मे चमत्कार भी उत्पन्न होता है। सियाराम शरण जी की लेखनी मे कलात्मक वैचित्र्य की विलक्षणता उतनी नही पायी जाती जितनी निजीपन से भावाभिव्यक्ति की साधुता। इसीलिए उनकी कविता साधना का परिणाम नही अपितु साधना ही कविता है। पश्चिमी अलकारों मे 'विशेषण विपर्यय' के उदाहरण भी सियारामशरण जी के काव्य मे मिलते है। ध्वन्यर्थ व्यंजना के प्रयोग की ओर कवि की रुचि नही दिखायी पडती। रोती रजनी, हँसता प्रातः, डरती आशा, उड़ा उजियाला—जैसे प्रयोग सियारामशरण जी काव्य मे मिलते है। इन पश्चिमी अलकारो के प्रयोगो मे युगीन शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है।

अलंकारों की दिशा मे साम्य योजना के अन्तर्गत शास्त्रीयता की मर्यादा से सियारामशरण जी बँधे नही। उनका प्रस्तुत अप्रस्तुत के साथ भले ही न हो पर वह अपने परिष्कृत और उदात्तीकृत रूप मे सदैव परिनिष्ठित रहता है। कतिपय प्रयोग ऐसे आये है जहाँ काव्यत्व उत्कृष्ट कोटि का है, पर अप्रस्तुत विधान की छाया भी नही पायी जाती। चित्रात्मकता गुण से अभिभूत कवि की लेखनी ने अनेक आकर्षक और मनोरम चित्र उरेहे है। इस विशेषता पर भाषा वाले प्रकरण में विचार किया जायेगा। यहाँ तो यही कहना अभीष्ट होगा कि

---

७०. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृ० ८६
७१. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३७

सियारामशरण जी ने रीतिकालीन अथवा द्विवेदीयुगीन उपमानों की सूची नहीं दुहराई, अपितु अपना नवीन और अछूता स्वर-संधान किया। इतिवृत्तात्मक रचनाओं में तो निजनी परम्परित अलंकार योजनाओं की वीथी से गया है, किन्तु जहाँ सियारामशरण जी छायावाद के महल का कपाट अनावृत्त करना चाहते हैं वहाँ स्वच्छन्दता से काम लिया गया है। मानव के रूप, धर्म, और व्यापारों को आधार बना कर मानवीकरण की सृष्टि की गयी है। कुछ ऐसे भी स्थल हैं जहाँ अलंकारों का निर्णय नहीं हो पाता। भावशबलता और भावसंधि के प्रयोग भी इनकी रचनाओं में पाये जाते हैं। सियारामशरण जी की सूक्ष्म काव्य-दृष्टि नवीनता के अन्वेषण में सजग है। 'मौर्य-विजय' से लेकर 'गोपिका' तक बड़े चाव और प्रेरक स्फूर्ति से कवि बढ़ता आया है। अप्रस्तुत योजना का क्रमिक विकास उनके काव्य में देखने को मिलता है, और वह भी भार नहीं शृंगार के रूप में। प्रतीक-विधान शैली भी कहीं-कहीं सियारामशरण जी ने अपनायी है। प्रतीक-विधान के प्रयोग 'पाथेय' और 'विषाद' में आये हैं। इन दोनों कृतियों को इतिवृत्तात्मक नहीं कहा जा सकता है। सियारामशरण जी के सम्पूर्ण काव्य में यथासंभव अलंकारों का परिचय प्राप्त किया गया; किन्तु अलंकारों का पूर्ण विवेचन सम्भव नहीं; क्योंकि हर नयी वचन-भंगिमा एक नवीन अलंकार है।

⊙

रस-विधान

जो स्थिति शरीर में प्राण की है वही काव्य में रस की है। जिस प्रकार निष्प्राण शरीर कोई महत्त्व नही रखता उसी प्रकार रसहीन काव्य का भी कोई मूल्य नहीं होता। काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने काव्य की विशद व्याख्या की है तथा काव्य मे रस की स्थिति का मूल्यांकन भी विस्तार से किया है। सियारामशरण जी के काव्य में नौ रसों का परिपाक और प्रयोग किस प्रकार हुआ है ? यहाँ इसी बात पर विचार करना है।

भरत आदि आचार्यों ने शृंगार रस की गणना प्रथम श्रेणी मे की है और शृंगार को रसराज का पद भी मिल चुका है। सियारामशरण जी की कुछ कृतियों को छोड़ कर शृंगार रस का प्रयोग प्राय. सभी कृतियो मे हुआ है। कवि की किसी भी कृति को पूर्णरूप से शृंगारिक नही कहा जा सकता। कवि ने प्रसंगानुसार शृंगार रस का प्रयोग किया है। 'मौर्य-विजय' के शृंगार-वर्णन में अधिक अभिरुचि नहीं दिखायी है। अन्तिम कृति 'गोपिका' में शृंगार-वर्णन का जो उत्कर्ष पाया जाता है वह कवि की अन्य कृतियों में नही है। गोपिका में अलंकारों का सहारा लेकर तथा लक्षणा और व्यंजना के माध्यम से शृंगार का वर्णन किया गया है। मध्यकाल की प्रेम-भावना को कवि ने अपने अनुसार ढाल

लिया है। सियारामशरण जी का शृंगार अत्यन्त मर्यादित, वासना-रहित तथा अपने सयत रूप में पाया जाता है। यद्यपि गोपिका में सद्यःस्नाता, दिवाभिसारिका, निशाभिसारिका, खंडिता, मुग्धा, विरहोत्कंठिता आदि नायिकाओं के वर्णन आये है किन्तु इन प्रसंगों में कवि ने अपने काव्य-कौशल का अच्छा परिचय दिया है। अश्लीलता 'गोपिका' के शृंगार की छाया भी नहीं छू पायी। स्निग्ध और सात्विक रूप में कवि ने जिस शृंगार का वर्णन किया है वह उत्तर-मध्यकाल के शृंगार का उदात्तीकृत और परिष्कृत रूप है।

फुटकर गीतों के संकलन में शृंगार रस का वर्णन कम पाया जाता है। 'नकुल' प्रवन्धकाव्य में कुछ स्थल ऐसे आये है जहाँ शृंगार रस की योजना की गयी है। नकुल के ही एकाध प्रसंगों की शृंगारिक प्रक्रियाओं की आलोचना डा० नगेन्द्र ने की है—

"नारी के लिए उनके मन में श्रद्धा और संकोच मिश्रित स्निग्धता भर है। जहाँ कहीं शृंगार का प्रसंग आता है, सियारामशरण जी के ये दोनों भाव उस पर आरुढ़ हो जाते है। उदाहरण के लिए—

करती थी वह वहाँ अकेली स्नान विमज्जन
अंजलि से जल वक्ष वाहु कच भिगो-भिगो कर।
जलधारा में पसर गयी वह लम्बी होकर,
सैकत में फिर युग मृणाल-भुज स्थापित कर निज,
ऊपर समुद उछाल दिया उसने मुख सरसिज।
—नकुल

रूप-वर्णन कितना फीका है। इसको पढ़ कर स्पष्ट ही यह धारणा होती है कि या तो कवि के पास रमणी के इस रूप का पान करने वाली दृष्टि नही है या फिर उसने साहस के अभाव के कारण अपनी आँखें दूसरी ओर मोड़ ली है। वास्तव में यही हुआ है। कवि सचमुच सहम कर आकाश की ओर देखने लगा है।' [1] शृंगार के पक्ष में सहमने वाली वात शृंगार सम्वन्धी प्रायः सभी कृतियों के सम्वन्ध में लागू होती है। इसी प्रसंग में नगेन्द्र जी ने लिखा है— "इसमें सन्देह नहीं कि विवेक-वल के द्वारा सियारामशरणजी ने भी एकाध स्थान

---

१. सियारामशरण गुप्त : संपादक डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ७७

पर सकोच का परित्याग कर प्रकृत चित्र अंकित करने का प्रयत्न किया है; परन्तु उसके लिए अब बहुत विलम्ब हो गया है और इन अभिव्यक्तियों मे ऊष्मा की कमी है।"[२] छायावादी कवियो ने चाहे भले ही यौवन की ऊष्मा से युक्त शृंगार रस का विधान किया हो, किन्तु सूर, तुलसी जैसे मध्ययुगीन कवियों ने जीवन की प्रौढोत्तर अवस्था मे ही शृंगार का वर्णन पूर्ण सफलता के साथ किया है।

गोपिका के पहले की सारी कृतियो का शृंगार अपनी निष्पत्ति सामग्री के साथ शास्त्रीय रूप मे नही पाया जाता। मौर्य-विजय की एथेना, अथवा नकुल की द्रौपदी के प्रसंग का शृंगार-वर्णन इसी प्रकार का है। ये प्रसग सयोग-शृंगार के है। 'विषाद' कृति मे एक शीर्षक है 'अभिसार'। उसमे कवि का वियोग-शृंगार वर्णित है।

सियारामशरण जी के कवि की सारी सात्विकता सयतता और मर्यादा को ध्यान मे रख कर यदि गोपिका के शृंगार-वर्णन पर विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि गोपिका के शृंगार-वर्णन मे कवि अपने पूर्व प्रसगो के वर्णनों की अपेक्षा कही आगे है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

बिन्दी लगे भाल पर स्वेद कणिकाएँ है।
जब जब धूप के झलकने से उसमें नवांकुरित
होती है दिवाकर की किरणें
ताप तप्त उद्वेलित दुग्ध निभ यौवन अमाता नही
उमँग रहा है वह ऊल मानो हेम घट अंग-अंग दीपित तरंगों में,
तप से पसीज रही पीठ पर कसी
कंचुकी के बंध उन पर गति लोल कच-गुच्छ
केसरिया चूनर के भीतर झलकते।[३]

प्रस्तुत अवतरण मे 'इन्दु' का सौन्दर्य वर्णन है। दुग्ध निभ यौवन का शरीर के हेम घट मे न अमाना प्रयोग सुन्दर है। दिवाकर की किरणो के ताप से दुग्ध निभ यौवन का उद्वेलित होकर हेम घट मे न अमाना और स्वाभाविक है। यह मर्यादित शृंगार वर्णन है। लगता है कवि ने एक सीमा-रेखा निश्चित कर ली है और वह उसी के भीतर रहना चाहता है। शान्त रस के वातावरण मे शृंगार

---

२. सियारामशरण गुप्त : संपादक डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ७८
३. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ५४

का वर्णन उत्तम नही बन पड़ता। यद्यपि कवि का प्रयत्न रहा है कि लक्षणा और व्यंजना के द्वारा तथा अलंकारों के प्रयोग से ही मार्मिक स्थलों का वर्णन किया जाय किन्तु कतिपय मार्मिक स्थल सियारामशरण जी के काव्यों में ऐसे हैं जहाँ अभिधात्मक प्रयोग ही सुन्दर है। शृंगार-वर्णन में इन सभी का सहयोग है।

सियारामशरण जी के काव्यों में वर्णित शृंगार में आलम्बन और उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत राजा, नायक, नायिका, सखा, सखी, दूती, चन्द्र, चाँदनी, प्रकृति के नाना रूप, ऋतु तथा उपवन आदि आते है। 'गोपिका' और 'नकुल' के सन्दर्भ में यत्र-तत्र शृंगार के ये उद्दीपन विभाव दर्शित होते हैं। अनुभाव में प्रेमपूर्ण आलाप, आलिंगन, रोमांच, कम्प, स्वेद, भ्रू भंग आदि आते है। ये तीन प्रकार के होते है—कायिक, वाचिक, मानसिक। संचारी भावों में लज्जा, चपलता, जड़ता, कृशता, मूर्च्छा, संताप आदि आते हैं। 'मौर्य-विजय' में संयोग शृंगार पाया जाता है। एथेना और चन्द्रगुप्त के प्रणय के प्रसंग में शृंगार वर्णन नाम मात्र को है। फुटकर कविताओं के संग्रहों का शृंगार अपनी पूर्ण और उत्कृष्ट स्थिति में नही है। अपने विभावों-अनुभवों तथा संचारी भावों के साथ शृंगार रस की झाँकी गोपिका में विशेष और नकुल में किसी सीमा तक पायी जाती है। नकुल की द्रौपदी तथा पाण्डव, गोपिका की इन्दु, उसकी सखियाँ और कृष्ण आलम्बन और आश्रय के रूप में चित्रित किये गये है। शृंगार अपनी पूरी रस-सामग्री के साथ गोपिका में चित्रित है।

हास्य रस की योजना सियारामशरण जी ने नही की है; किन्तु कुछ रचनाओं मे वचनवक्रता अथवा व्यंग्य के सहारे हास्य रस का आभास जान पड़ता है। 'नोआखाली में' रचना का एक प्रसंग है—

> वह कहते है इनकी चोटी कर देंगे हम साफ,
> यह कहते हैं उनकी दाढ़ी नहीं करेंगे माफ।
> कौन कहे इन हज्जामों से बको न यों निस्सार,
> बहुत बहुत हम देख चुके हैं इस कैंची की धार।[४]

प्रस्तुत पद्यांश में हास्य रस का पूर्ण परिपाक नही हुआ है। यद्यपि कवि की वचनवक्रता में हास्य की सामग्री जुटाई गयी है पर अन्तिम पंक्ति पाठक के मन को दूसरी ओर ले जाती है। संस्कृत के कतिपय आचार्यो ने शृंगार से हास्य

४. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १२

की उत्पत्ति मानी है; किन्तु हास्य रस की सामग्री प्रायः सब क्षेत्रों में मिलती है। अपढ़ की मूर्खता, बुद्धिमान की बुद्धिहीनता, विकृत वेष-भूषा, रूप, वाणी, अंगभंगी, व्यंग्य वचन, विचित्र बोली आदि हास्य रस के आलम्बन विभाव हैं। यहाँ हिन्दू और मुसलमान हज्जाम के रूप में हास्य रस के आलम्बन विभाव हैं। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत हास्यवर्द्धक चेष्टाएँ आती हैं। 'हज्जाम' संबोधन सुन कर मुख का विकसित होना ही अनुभाव है। हर्ष संचारी है।

हास्य रस के दृष्टिकोण से सम्पूर्ण काव्य को देखने से पता चलता है कि कवि को हास्य रस नहीं रुचा। यदि कहीं वचनभंगी के आधार पर हास्य की योजना स्वतः हो गयी है तो इसका श्रेय कवि की वाक्पटुता और शब्दचातुरी को है।

करुण रस का स्थायी भाव शोक है। यह रस सियारामशरण जी की रचनाओं में प्रायः मिलता है। करुण रससिक्त रचनाएँ फुटकर संग्रहों में संग्रहीत हैं। 'एक फूल की चाह' नामक प्रसिद्ध रचना में करुण रस की योजना है। रचना की रस-सामग्री इतनी परिपुष्ट है कि पाठक के हृदय पर एक अमिट छाप पड़ती है। यही कारण है कि सियारामशरण जी की यह रचना बहु चर्चित और चिर परिचित है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

> उसे देखने मरघट को ही
> गया दौड़ता हुआ वहाँ,
> मेरे परिचित बंधु प्रथम ही
> फूँक चुके थे उसे जहाँ।
> बुझी पड़ी थी चिता वहाँ पर
> छाती धधक उठी मेरी,
> हाय ! फूल सी कोमल बच्ची,
> हुई राख की थी ढेरी।[५]

यहाँ इष्ट वस्तु की अत्यन्त हानि और प्रेम पात्र के चिर वियोग से शोक स्थायी भाव घनीभूत हुआ है। प्रिय वियोग आलम्बन विभाव है। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत बच्ची के प्रति वात्सल्य भाव और उसके गुण तथा रूप का स्मरण है। प्रलाप और छाती पीटना अनुभाव हैं। स्मृति और विषाद आदि संचारी

---

५. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६२

भाव है। इन सभी सामग्रियों से परिपुष्ट होकर करुण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

भारतीय काव्य-परम्परा के अनुसार दुःखान्त काव्यों की रचना निषिद्ध मानी गयी है। पाश्चात्य काव्य-परम्परा दुःखान्त नाटकों अथवा काव्यों के पक्ष में है। इस सन्दर्भ में दुःखान्त और सुखान्त रचना-प्रक्रिया के विवाद में न पड़ कर केवल इतना कहना है कि दुःख मानव मात्र को समता की धरती पर ला खड़ा करता है। सहानुभूति के एक तार में सारी आत्माएँ अनुस्यूत प्रतीत होती हैं। हृदय स्वतः आकर्षित हो जाता है उस दृश्य की ओर जो करुण रस उद्भावक होते हैं। पं० रामदहिन मिश्र इस सन्दर्भ में लिखते है—

"आँसू हृदय की मलिनता को दूर कर देते है। दुःख से हमारी आत्मा शुद्ध और परिष्कृत हो जाती है। दुःख ही कर्तव्य का स्मरण दिलाता है।"[६]

'एक फूल की चाह' रचना का प्रस्तुत अंश उपरिलिखित कथन के मेल में है। छोटी-छोटी कथाओ में करुण रस की योजना कवि को अधिक अच्छी लगी है। आर्द्रा में 'हूक' रचना भी इसी प्रकार की है। कवि (सियारामशरण जी) एक बार कहो जा रहा था। रमा नाम की लड़की भी साथ जाने के लिए तैयार हो गयी। यह पूछने पर कि रमा क्या करने जायेगी ? रमा ने बताया कि उसकी खेल की 'सखी' किसी ने तोड़ डाली। उसी को लेने वह जायेगी। कवि ने कहा, "मैं तुम्हारे लिए 'सखी' लेता आऊँगा।" रमा नही जा सकी। यात्रा से लौटने पर कवि को 'बेटी' नही मिली। वह सर्वदा के लिए अज्ञात लोक को चली गयी। इस अवसर पर कवि की करुण-रस युक्त रचना देखिए—

वह सखी लाता कहीं, तो गोद में
रख उसे ही आज पा जाता तुझे !
जन्म भर उसको बचा कर काल से
काल से भी छीन कुछ लेता तुझे !
धधकती रह, जागती रह हूक तू
दग्ध इन वक्षस्थलों में रात-दिन;
ले रही थी शान्त तेरे दाह में
हाय वह मेरी 'सखी' मेरी रमा ![७]

---

६. काव्य-दर्पण : रामदहिन मिश्र, पृ० १९५-१९६
७. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृ० १०-११

'आर्द्रा' की करुण रस युक्त रचनाओं में 'नृशंस', 'अग्नि परीक्षा', 'चोर', 'डाक्टर', 'अबोध', 'खादी की चादर' तथा 'वन्दी' आदि कविताएँ आती हैं। छोटी-छोटी कहानियों पर आधारित ये रचनाएँ मन को आकर्षित करने वाली हैं।

'अनाथ' कृति में करुण रस की व्याप्ति है। 'विषाद' की रचनाएँ भी इसी कोटि में आती हैं। यहाँ 'घनाह्लाद' भी अन्त में विषाद का रूप धारण कर लेता है। 'चित्रांकिता', 'एक चमक', 'स्मृति', आदि शीर्षक करुण रस की दृष्टि से विशेष आकर्षक हैं। 'दूर्वादल' के 'बाढ़' शीर्षक का कुछ अंश करुण है। 'आत्मोत्सर्ग' में भी सियारामशरण जी ने करुण रस का विधान किया है। स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी की स्मृति में लिखा गया यह काव्य अत्यन्त कारुणिक है। कृति के अंतिमांश में ही करुण रस की योजना है। 'पाथेय' की 'विदा', 'मृण्मयी' की 'भोला' रचना तथा 'बापू' के कुछ प्रसंग करुण रस युक्त हैं। 'दैनिकी' के 'विकलांग', 'नर किंवा पशु' शीर्षक तथा 'नोआखाली में' के कुछ प्रसंग भी इसी कोटि में आते हैं। ईसा से सम्बन्धित कृति 'अमृतपुत्र' की 'सामरी' और 'क्रूसधर' रचनाओं में करुण रस की सुन्दर उद्भावना हुई है। सियारामशरण जी ने करुण प्रसंगों के वर्णन में अधिक तल्लीनता दिखाई है। कवि की लेखनी ऐसे प्रसंगों में अधिक रमी है जिनमें वेदना और पीड़ा है। करुण रस युक्त रचनाओं में अनुभूति और कल्पना का सामंजस्य अपनी चरम सीमा पर है। किसी सीमा तक सियारामशरण जी को करुण रस का कवि कहा जा सकता है।

रौद्र रस क्रोध स्थायी भाव द्वारा परिपुष्ट होता है। सियारामशरण जी के काव्य में रौद्र रस का विधान प्रायः नहीं हुआ है। यह रस कवि की प्रकृति के विपरीत है। जिन काव्य-कृतियों में रौद्र रस के प्रसंग आये हैं, उनमें कवि ने उन प्रसंगों से शीघ्र छुटकारा पाने का प्रयत्न किया है। 'मौर्य-विजय' में यदि कवि चाहता तो रौद्र रस के वर्णन विस्तार से करता किन्तु एक छंद लिखकर कवि आगे बढ़ गया है। और वह भी अपने में क्रोध की वह आग नहीं लिये है जो रौद्र रस के लिए अपेक्षित है। वर्णन अत्यन्त ठंडा है—

> तब कराल करवाल हाथ में लेकर सत्वर,
> सिल्यूकस हो गया खड़ा उत्तेजित होकर!
> बोला वह—'हे चन्द्रगुप्त आगे बढ़ आओ,
> बस अंतिम बल-वीर्य मुझे अपना दिखलाओ।

देखूं कैसे वीर हो कितना बल तुम में भरा,
है रखती कितना तेज यह भारतवर्ष वसुन्धरा ।।'[८]

वर्णन में स्वाभाविकता नहीं है। लगता है प्रसंगवश कवि को लिखना पड़ा है। ऐसे सन्दर्भों में सियारामशरण जी का मन नहीं लगा। यह उनकी प्रकृति के प्रतिकूल भी है। हाँ यदि वीणा पर स्वर-संधान करने वाला कोई व्यक्ति तलवार उठाने लगे तो इस कार्य को उसकी जिन्दादिली अवश्य कहा जायगा। सियारामशरण जी की जिन्दादिली उनकी एक-एक पंक्ति में है। रौद्र रस का वर्णन उनसे नहीं हो सका। गान्धीवादी विचारधारा इसका एकमात्र कारण है। जिस कवि ने अह को जीत कर विनम्रता का बाना धारण कर लिया हो, वह रौद्र रस विधान करे यह कैसे सम्भव है ?

रौद्र रस के पश्चात् उत्साह स्थायीभाव वाला रस वीर आता है। सियारामशरण जी ने वीरतापूर्ण वर्णन 'मौर्य-विजय', 'जयहिन्द' और 'उन्मुक्त' में किये हैं। इन प्रसंगों को पढ़ने से विषय-वस्तु के साथ मन का तादात्म्य स्वाभाविक रूप से हो जाता है। किसी भाव का बोध लोक-परक होने से ही उसे रस-रूप मिलता है, व्यक्ति-परक होने से नहीं। उत्साह की अनुभूति व्यक्तिविशेष की न होकर जब लोक की हो जाय तभी वीर रस का पूर्ण परिपाक माना जायगा। उस समय वैयक्तिक राग-द्वेष की परिस्थितियाँ और दशाएँ तिरोभूत हो जानी चाहिए। 'जयहिन्द' रचना का एक प्रसंग है—

भारत है भारत, हमारे हिंद
छाती पर घाव गहरा है जो
अब भी हरा है जो,
उसके लिये क्या सोच—
क्या संकोच ?
क्षति वर वीरों के लिये अनिंद्य
व्रण ही विभूषण हैं शूरों के,
उनमें पराक्रम है उन भरपूरों के—
जिनके क्षतों में जगे चलते

८. मौर्य-विजय : सियारामशरण गुप्त, पृ० २६

भावी पथ के ज्वलंत दीपक उजलते ।
चोट के बिना क्या जीत खिलती ?[९]

यहाँ आलम्बन विभाव शत्रु (अंग्रेज) हैं जो उपरिलिखित पंक्तियों में अनुक्त है। शत्रु की शक्ति अनुभाव है। संचारी भावों में गर्व, हर्ष तथा आवेग आदि हैं। वीर रस के अनेक भेद होते है। किसी विपय का उचित लगाव, त्याग और धैर्यपूर्वक काम करना भी तो एक प्रकार का उत्साह है। परोपकार, दान, दया, क्षमा, धर्म आदि सुकर्मो के आधार पर भी वीर रस की निप्पत्ति होती है। इस दृप्टि से 'नकुल', 'बापू', 'अमृतपुत्र', 'आत्मोत्सर्ग', तथा 'नोआखाली में', आदि कृतियों के कुछ स्थलों में वीर रस पाया जाता है। कतिपय स्थल ऐसे है जहाँ वीरता का भाव तो है पर वीर रस की निष्पत्ति नहीं हो पाती।

जीवन में भयंकर परिस्थितियों के आने से भय की उत्पत्ति होती है। यही भय भयानक रस का स्थायी भाव है। सियारामशरण जी की फुटकर रचनाओं से एक उदाहरण लीजिए :—

सुनसान कानन भयावह है चारों ओर
दूर दूर साथी सभी हो रहे हमारे हैं।
काँटे बिखरे हैं, कहाँ जावें जहाँ पावें ठौर,
छूट रहे पैरों से रुधिर के फुहारे हैं।
आ गया कराल रात्रि काल, हैं अकेले यहाँ,
हिंस्र जंतुओं के चिह्न जा रहे निहारे हैं।
किसको पुकारें यहाँ रोकर अरण्य बीच,
चाहे जो करो शरण्य शरण तुम्हारे हैं।[१०]

इस छंद को आचार्य पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी बड़े चाव से पढ़ते थे। सुनसान कानन, काँटे, कराल रात्रि-काल, हिंस्र जन्तु आदि आलम्बन विभाव हैं। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत हिंस्र जन्तुओं के चिह्न, साथियों का दूर-दूर होना, भयानक स्थान की निर्जनता तथा निस्तब्धता आदि है। करुणा से युक्त वाक्य, कंप, वैवर्ण्य, रोमांच आदि अनुभाव है। संचारियों में चिन्ता, त्रास, दीनता आदि आते हैं। इस प्रकार विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के संयोग

---

९. जयहिन्द : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १०
१०. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १२

से भयानक रस की निष्पत्ति हो रही है। सियारामशरण जी के सम्पूर्ण काव्य में भयानक रस के उदाहरण कुछेक ही मिलते हैं। 'उन्मुक्त' तथा 'नोआखाली में' और 'आत्मोत्सर्ग' के कतिपय स्थल तथा मृण्मयी' का 'छल' शीर्षक भय उत्पन्न करने वाले है। कुछ प्रसंगों का भय सामान्य है जो रस कोटि तक नहीं पहुंच पाया है। कही-कही कवि की विनम्रता दैन्य बन गयी है। कवि की एक रचना है 'मृत्युभय'। यह रचना 'दूर्वादल' नामक काव्य-संग्रह मे संग्रहीत है। किन्तु इस कविता में शीर्षक के अनुरूप भाव नही है। कविता पढ़ने से उत्साह पैदा होता है भय नही। अपनी कुछ रचनाओं मे कवि स्वयं भयभीत प्रतीत होता है पर अपने साथ अपने पाठकों को नही ले पाता यही उसकी असमर्थता है। भयानक रस की व्याप्ति सियारामशरण जी के काव्यों में अत्यन्त सीमित है।

भयानक रस के पश्चात् वीभत्स का नाम आचार्यो ने लिया है। वीभत्स का स्थायी भाव जुगुप्सा है। 'उन्मुक्त' गीतिनाट्य से एक उद्धरण देखिए--

प्रेतों का सा अट्टहास शत-शत प्रलयंकर
उल्काओं का पतन वज्रपातों का तर्जन
नीरव जिनके निकट हुआ ऐसा कटु गर्जन।
कुछ ही क्षण उपरांत एक अर्द्धांश नगर का
युग-युग का श्रमसाध्य साधना फल वह नर का,
ध्वस्त दिखायी दिया चिकित्सालय, विद्यालय
पूजालय, गृह-भवन, कुटीरों के चय के चय
गिरकर अपनी ध्वंस चिताओं में थे जलते,
कहीं उजलते, कहीं सुलगते, धुआं उगलते।[११]

इसी प्रकार 'नोआखाली मे' कृति का एक सन्दर्भ है—

विस्फोटन-विकलांग-विकृत वह
पड़ा हुआ नीरव था,
जिसकी आंतें बिखर गई हों
वह ऐसा ही शव था।[१२]

---

११. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४८
१२. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २६

यहाँ जलती चिता का दृश्य, विस्फोटन, विकलांग, बिखरी आँतों वाला शवादि आलम्बन विभाव हैं। गन्दे रूपरंग, लोथों का छटपटाना तथा प्रलयंकर दृश्यादि उद्दीपन विभाव हैं। चिन्ता, वैवर्ण्य, निर्वेद, ग्लानि आदि संचारी हैं। इसी सामग्री से वीभत्स रस की परिपुष्टि यहाँ होती है। यह रस इतना महत्व-पूर्ण नहीं कि विना इसके काम न चले। वीभत्स को काव्य में केवल प्रासंगिक स्थान ही मिलता रहा है। कभी-कभी काव्य में भयानक और वीभत्स का मिश्रित रूप भी मिलता है। इन दोनों में स्पष्ट अन्तर यह है कि एक में हम भय के कारण भागना चाहते हैं और दूसरे में घृणा से दूर होना चाहते हैं। सियारामशरण जी के काव्य में घृणा अथवा जुगुप्सा उत्पन्न करने वाले स्थल कुछेक ही हैं। कवि की प्रवृत्ति इस रस की ओर नहीं रही है। कभी-कभी वीभत्स रस अन्य रस का सहायक होकर आता है। भयानक, वीर या शान्त रस की पुष्टि में भी वीभत्स रस का वर्णन आता है। ऐसा सियारामशरण जी की काव्य-कृतियों में कम हुआ है। 'नोआखाली में' तथा 'आत्मोत्सर्ग' में शव के वर्णन आए हैं। एक स्थान पर तो स्त्रियों के स्तन काटने जैसे घृणित कार्य का वर्णन है। फुट-कर रचनाओं में वीभत्स रस नहीं पाया जाता।

सियारामशरण जी ने अद्भुत रस का विधान भी कुछ स्थलों पर किया है। 'लाभालाभ' शीर्षक कविता में एक मकान से आवाज आती है !

अचानक गूँज उठा यह बोल
'देख, मैं गिरता हूँ, दृग खोल।'[13]

इसी प्रकार उसी रचना में श्रेष्ठी का मकान विकजाने के पश्चात् गिरकर स्वर्ण का ढूह वन जाता है—

बड़े तड़के ही बिना विवाद
नगर में फैल गया संवाद
गिर पड़ा वह नरवाहन धाम,
किंतु गिर पड़ते ही अविराम
सौध का सब का सब वह ढूह
हो गया निर्मल स्वर्ण-समूह ![14]

---

१३. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृ० १५
१४. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृ० २८

इन उद्धरणों में स्थायी भाव आश्चर्य है। आलम्बन विभाव आश्चर्यचकित कर देने वाली घटना है। किसी गृह का बोलना और ध्वंस-गृह का स्वर्ण में परिवर्तन हमें आश्चर्यचकित कर देता है। घटित घटना में विद्यमान आकस्मिक भाव तथा स्वर्ण ढूह का वैलक्षण्य उद्दीपन विभाव है। अनुभाव रोमांच घबराहट तथा प्रफुल्लता आदि है। गृह से आती हुई आवाज श्रेष्ठी के मन में घबराहट पैदा करती है। स्वर्ण ढूह के दर्शन को उत्सुक जनसमूह के हृदय में उत्फुल्लता है। जड़ता हर्ष और उत्सुकता यहाँ संचारी रूप में कार्य कर रहे हैं। 'मृण्मयी' काव्य-संग्रह मे 'अमृत', 'नाम की प्यास', 'पुनरपि', 'मंजुघोष', आदि काव्य-कथाओं में अद्‌भुत रस का सुन्दर संयोजन किया गया है। 'गोपिका' के कुछ प्रसंगों में यह रस पाया जाता है।

शांत रस के संदर्भ में 'पाथेय' का एक अंश लीजिए—

मेरे प्राण
जो कुछ है चारों ओर
जिसका न ओर-छोर
हो गये उसी में हैं विलीय मान।
मेरा आज,
आज चिरकाल में रहा विराज
मेरे अरे ओ अनन्त
मुझको बता दे, कहाँ अन्तर्हित मेरा अन्त ?[१५]

शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद है। प्रस्तुत अवतरण में कवि अपना अन्त खोज रहा है। इससे प्रतीत होता है कि संसार की असारता का बोध उसे हो गया है। असारता का बोध ही आलम्बन है। सांसारिक माया-मोह आदि जो कवि के चारों ओर फैले है, उद्दीपन विभाव है। कवि की अपना अन्त खोजने की भावना अनुभाव है। संचारी दैन्य और निर्वेद है। इस पूरी रस-सामग्री द्वारा शान्त रस की निष्पत्ति हुई है। सियारामशरण जी के लघु प्रवंधकाव्यों और

---

१५. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३२

काव्य-संग्रहों में शान्त रस के अनेक स्थल है। लोक की विपथ-गामी वृत्तियों और अपने हृदय की आस्था के कारण ही कवि की प्रवृत्ति शान्त रस की ओर हुई है।

सियारामशरण जी अपने काव्यों मे कई स्थलों में समाश्वसित होने की बात करते है। कवि का हृदय अपने पर विश्वास करता है। यह समाश्वास उसी विश्वास का प्रतिफलन है। विश्वास के पीछे कवि की आस्तिक भावना कार्य कर रही है। आस्तिक भावना के कारण ही कही-कही भक्तिभाव से भरे छंदो की रचना भी हो गयी है। यद्यपि आचार्यो ने भक्ति रस और वात्सल्य रस का निरूपण पृथक् नहीं किया किन्तु कुछ विद्वान इन्हें नौ रसों के अतिरिक्त मानते है। भक्ति और वात्सल्य सम्बन्धी रचनाएँ भी सियारामशरण जी ने की है किन्तु वे थोड़ी है और कवि की विशेष अभिरुचि उधर नहीं दिखायी पड़ती।

कुछ समालोचकों को यह शिकायत है कि सियारामशरण जी की कृतियों में रस का अभाव है। यद्यपि कुछ प्रसंग इस प्रकार के खोजे जा सकते है जहाँ रस की परिपुष्टि भली-भाँति न हुई हो पर यह कहना कि रचनाएँ सर्वथा रसहीन हैं, कहाँ तक तर्कसंगत है, कहा नहीं का सकता। हाँ, कवि रसों का पृथक्-पृथक् घोल लेकर नहीं बैठा अन्यथा रचनाओं का एक-एक खंड विभिन्न प्रकार के रसों में सराबोर करता चलता। स्वाभाविक रूप से जिस रस की निष्पत्ति जहाँ होती गयी है वह उसी रूप में पायी जाती है। इस कार्य में कही भी कवि का प्रयत्न सामने नहीं आता। यत्नज रसविधान से सहृदयों का मन नहीं भरता। वस्तुतः सियारामशरण जी के कवि की निश्छलता, निर्विकारता, विनम्रता, तल्लीनता और उत्साह आदि भाव उनकी कविता के प्राण है। कवि की कविता की परख ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा तत्कालीन सामाजिक वैयक्तिक परिस्थितियों के अनुसार होनी चाहिए न कि एक विशिष्ट साँचे के अनुसार। दिनकरजी सियारामशरण में रस का अभाव मानते हुए लिखते है—

"रस का अभाव उनमें भले ही हो, किन्तु विचारों का उनमें एकदम अभाव नहीं है। उनकी कविताओं से एक ऐसे चिन्तक का व्यक्तित्व झलकता है जो सदैव नये-नये भावों का शोध कर रहा हो। उनकी प्रत्येक कविता भावप्रधान

है और उनके भाव भी विविध और विशाल हैं।''[१] भावों की यही विविधता पाठकों को आकर्षित करती है।

इस प्रकार ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि सियारामशरण जी का झुकाव किसी रसविशेष की ओर नहीं रहा है। विविध विषयों पर रचना करते हुए प्रसंगानुसार ही रसयोजना बनती रही है।

⊙

---

१. मिट्टी की ओर : दिनकर, पृ० १९२

सियारामशरण जी के काव्य की भाषा

कवि की अनुभूति और कल्पना को काव्य-रूप देने का कार्य भाषा करती है। प्रकृति की नाना दृश्यावली अथवा मानव-भावों के नित्य नये विम्वों को ग्रहण करके भाषा द्वारा उन्हे अभिव्यक्त किया जाता है। जो कवि अपनी भाषा द्वारा इन दृश्यावलियों और भावों का अपने पाठकों तक जितना सुन्दर सम्प्रेषण कर लेता है वह उतना ही सफल कवि माना जाता है। तात्पर्य यह कि भाषा काव्य को रूप देती है। विना भाषा के काव्य के दरवार मे कोई सहृदय नही पहुँच सकता। जो बातें हम नही जानते, जिन वस्तुओं का रूप-रंग नही देखा, जिन रमणीक घाटियों, पहाड़ियों और वनस्थलियों के दर्शन नही किये, भाषा द्वारा शव्दचित्रों के माध्यम से उन सवको हम देख सकते है।

भाषा की तीन शक्तियों (अभिधा, लक्षणा और व्यंजना) पर हम पीछे विचार कर आये है। अलंकार भी देखे जा चुके है। यहाँ हम शुक्लजी के मतानुकूल भाषा की विशेषताओं पर विचार करेंगे। उन्होने भाषा की निम्नलिखित विशेषताएँ वतायी है—

१—व्यंजना-वैचित्र्य और लाक्षणिक प्रयोग होना चाहिए।

२—जाति-संकेत वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष रूप से व्यापारसूचक शब्द अधिक होने चाहिए।

३—वर्ण-विन्यास।

४ व्यक्तियों के नामों के स्थान पर उनके रूप, गुण या कार्यबोधक शब्दों का व्यवहार।[1]

एक बार सियारामशरण जी से प्रस्तुत होकर मैंने पूछा था—'कविता की भाषा कैसी होनी चाहिए?' उनका सहज उत्तर था—'जैसी मैं लिखता हूँ।'[2] अपनी भाषा के सम्बन्ध में कवि का विश्वासपूर्ण उत्तर कितना स्वाभाविक और मार्मिक है। अब देखा जाय कि सियारामशरण जी ने अपने काव्य में कैसी भाषा का प्रयोग किया है? और उसमें कौन-कौन से गुण पाये जाते है? दिनकर जी ने लिखा है, कि "हिन्दी-संसार में जो सुयश उन्हें मिला है वह भी निरे कला-निर्माण के लिये नहीं, प्रत्युत विचारों की शुद्धता एवं भावों की पवित्रता के कारण ही।"[3] भावों की पवित्रता की बात रस-विधान प्रसंग में हो चुकी है। कला-निर्माण की दृष्टि से सियारामशरण जी की भाषा पर कोई प्रभाव नहीं दिखायी पड़ता। वह उन्हीं की अपनी है। उन्हीं के व्यत्रितत्व की छाप उनकी भाषा पर है।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल की बतायी हुई विशेषताओं के आधार पर कुछ लाक्षणिक प्रयोग और वचन-वक्रता के प्रसंग देखिए :—

(क) नन्दा गई, आई अब अमला। कम है क्या किसी से यह।
थमती ही नहीं है हँसी इसकी। बड़ी बात।
इससे इसी की कुछ पूछ छुट्टी पाऊँगी।
"कह क्यों मरी जा रही है?"[4]

(ख) ज्यों ही मुझे गगन में पाया।
कुमुदों ने भी मुद बरसाया।[5]

---

१. चिन्तामणि भाग १ : आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १७५
२. ४ अप्रैल १९६२ की भेंट : संस्मरण 'त्रिपथगा' मई १९६३ में प्रकाशित
३. मिट्टी की ओर : दिनकर, पृ० १९१
४. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४५
५. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६९

(ग) कैसी मृत्तिका है, जल कैसा और कैसे जन,
विस्मय में डूब जाता है तब मेरा मन।[६]

(घ) विना कहे ही बहुत कह गयी
उन बेचारों की जड़ मूर्ति।[७]

(च) लोहा नीचे पड़ा हुआ था होकर लांछित,
स्पर्श रत्न वह कर न सका उनका मन वांछित,
किसी तरह भी चौंक प्रिया ने भय से देखा—
प्रियमुख पर पुत गयी लौह की कालिख लेखा।[८]

(छ) पागल समीर कहता था जोर से पुकार
नारकीयों से भी क्रूर तूने किया प्रहार।[९]

(ज) चीख उठा नीचे का नीरव,
ऊपर का निर्जन चौंका।[१०]

इन उद्धरणों को देखने से पता चलता है कि कवि अपने प्रयोगो के प्रति सजग है, किन्तु अर्थ का बोझ उसे पसन्द नहीं है—

"अर्थ का बोझ लेकर वह नही चली थी। इसी कारण अपने मे से कुछ खो जाने की चिन्ता उसे छू तक न सकी।"[११]

वातावरण मे फैले हुए माधुर्य का वर्णन करने के लिए कवि ने कुमुदो की योजना की और फिर उनके मुद बरसाने की बात कही। मन का विस्मय मे डूब जाना प्रयोग भी इसी शैली का है। इसमे मुख्यार्थ बाधित है। जड मूर्ति विना कहे ही सब कुछ कह गई—विना कुछ कहे सारा प्रसंग स्पष्ट हो गया। भाषा का यही सौष्ठव अन्य उद्धरणो मे इस प्रकार है—

(च) नीचे पड़े हुए लोहे की कालिख लेखा का ऊपर मुख पर पुत जाना ही चमत्कार है।

---

६. पाथेय : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३४
७. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३८
८. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १००
९. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७५
१०. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६
११. झूठ-सच—सियारामशरण गुप्त, पृ० ६३

(छ) पागल समीर .... चारो ओर से यही आवाज आ रही थी कि नारकीयों से भी क्रूर प्रहार तूने किया। समीर का पागल होना लाक्षणिक प्रयोग है।

(ज) चीख उठा नीचे का नीरव......सारा वातावरण कंपित था। नीरव का चौंक उठना विरोध का चमत्कार है। वस्तुतः भाषा का चमत्कार यही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार से—"आजकल हमारी वर्तमान काव्यधारा की प्रवृत्ति इसी लाक्षणिक वक्रता की ओर विशेष है। यह अच्छा लक्षण है। इसके द्वारा हमारी भाषा की अभिव्यंजनाशक्ति के प्रसार की बहुत कुछ आशा है।"[12]

सियारामशरण जी की भाषा में वचनवक्रता और लाक्षणिक प्रयोग कुछ कृतियों में तो अपने चरमोत्कर्ष पर है और कुछ कृतियों में कवि ने अपनी सहज अभिधात्मक शैली अपनायी है। जैसे-जैसे लेखनी प्रौढ़ता को प्राप्त होती गयी है वैसे-वैसे भाषा में वक्रता आती गयी है। सियारामशरण जी के लाक्षणिक प्रयोगों से व्यंजना-व्यापार को सहायता मिली है। भाव-बोध सुगम हो गया है।

भाषा की दूसरी विशेषता है—'जातिसकेत वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष रूप व्यापारसूचक शब्द अधिक होने चाहिए।' सियारामशरण जी के काव्यों में विशेष रूप व्यापारसूचक शब्दों का प्रयोग अधिकांशतः हुआ है। वस्तुतः वे एक निपुण शब्द-शिल्पी हैं। किस शब्द की आवश्यकता कहाँ है, इसका ध्यान कवि को सदैव रहता है। उक्ति को प्रभावशालिनी बनाने के लिए कवि की लेखनी ने जहाँ किसी भाव को मूर्त करने का उपक्रम रचा है वहाँ विशेषरूप व्यापार सूचक शब्द स्वतः आ गये हैं। मूर्त-विधान में कवि ने चित्रभाषा का प्रयोग भी बड़ी चातुरी से किया है। इस सम्बन्ध में प० कृष्णशंकर शुक्ल लिखते हैं—

"आपकी कवित्वपूर्ण कहानियाँ बहुत सुन्दर बन पडी हैं। छोटे-छोटे सजीव चित्र हैं। दृश्यों के चित्र अंकित करने में अद्भुत क्षमता है। वर्ण्य-दृश्य का ऐसा आकार प्रस्तुत किया जाता है कि पाठक के सामने उसकी स्पष्ट रेखा खड़ी हो जाती है।"[13]

---

१२. चिन्तामणि, भाग १ : आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २७०
१३. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास : पं० कृष्णशंकर शुक्ल, पृ० ३६८

कवि की वे लघु कथाएँ जिनका वर्णन कविता में किया गया है, अधिकांशतः 'आर्द्रा' और 'मृण्मयी' में संगृहीत है। इन कथाओं में जो सजीव चित्र कवि ने उरेहे है, वे मन को मोहने वाले है। उनमें सहज सौन्दर्य है। अन्य कृतियों में भी सियारामशरण जी ने चित्रभाषा का प्रयोग किया है। इससे भावों में संप्रेषणीयता आयी है। वर्ण्य-दृश्य सामने साकार हो गया है। कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(क) मलयानिल में उत्तरीय अर्जुन का फहरा,
मिल कर जिससे केश-गुच्छ कृष्णा का लहरा।
ले उस उर की कूक कोकिला कूकी तरु पर,
गया तैरता हुआ नील नभ में वह मृदु स्वर।[१४]

(ख) पत्थरों की सीढ़ी पर सुश्री-भरी
स्नान कर बैठी थी अपूर्व एक सुन्दरी।
भीगा हुआ वस्त्र ही थी पहने,
धारण किये हुए सुवर्ण रंग
अंग अंग
उसके बने थे स्वयं गहने।
कलित कपोलों पर छूटे हुए केश-दाम
हिल-डुल क्रीड़ा करते थे कांति कांत धाम
उसमें से चूते हुए वारि-विन्दु झलमल
शोभा सरसाते थे
प्रतिपल
नये नये मोती प्रकटाते थे।
बायाँ पैर नीचे लटकाए नील नीर पर,
दायाँ पैर रक्खे हुए सीढ़ी के प्रतीर पर।[१५]

(ग) ऊँची कर भुजलता अरर का लिये सहारा,
खड़ी हुई थी विनतमुखी कंपित तनु दारा।

---

१४. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६२-६३
१५. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६७

दीपित था लघु दीप निकट के ही आले में,
आगत प्रिय ने लक्ष्य किया उस उजियाले में।
अँखियों के जल-विन्दु नासिका तल से ढल-ढल,
नथ-मुक्ता की छटा प्राप्ति कर पल भर झल-झल
लय होते हैं उठे उरोजों के चंचल में।
निज दक्षिण कर रोप प्रिया के कंठस्थल में,
भीतर बढ़ते हुए कहा उसने रोती हो ![१६]

ये उदाहरण भाषा की चित्रात्मकता के है। किसी सुन्दर रमणी का किसी स्थान पर वैठना एक वस्तु-व्यापार है; किन्तु शब्दों के माध्यम से कवि ने एक दृश्य उपस्थित किया है। वर्णन के पढ़ने से आँखों के सम्मुख एक दृश्य उपस्थित हो जाता है, कि पत्थरों की सीढ़ी पर स्नान करने के पश्चात् एक वाला वैठी है। वह भीगा वस्त्र पहने हैं। उसके अंग-अंग से स्वर्णाभा फूटी पड़ रही है। विधि के हाथों से गढ़ा हुआ अंग अपना अलंकार स्वयं था। कलित कपोल प्रदेश पर श्याम अलकों की लटें छायी है। उन कच-गुच्छों से वारि-विन्दु झलमल करके चू रहे है। उनमें मुक्ताओं की-सी कांति है। वाला अपना वाँया पैर नील नीर पर लटकाए हुए है और दायाँ सीढ़ी के 'प्रतीर' पर रखे हुए है।

दूसरे चित्र में एक गृहिणी अपनी भुज लता ऊपर किए -'अरर' का सहारा लेकर खड़ी है। वह विनत मुखी है। उसका शरीर कंपित है। निकट के आले मे दीप जल रहा है। आगत प्रिय ने देखा, कि विनतवदना दारा के अश्रु-विन्दु झलमल करते हुए नथ-मुक्ताओं की छटा प्राप्त करके अंचल के उठे उरोजों में लीन हो रहे हैं। इतने में प्रिय ने उसे वाहुपाश मे लेकर कहा— क्यों रोती हो ? इस प्रकार की दृश्य-योजना वनायी गयी है। इसमें स्वाभाविकता है। यदि इस प्रसंग में इतना कह कर काम चला लिया जाता कि 'एक सुन्दरी सीढ़ियों के पास वैठी है और उससे उसका प्रियतम दु:ख का कारण पूछ रहा है', तो भावों की स्पष्टता और कथन-सौन्दर्य अत्यन्त साधारण रहता।

चित्रभाषा के अन्तर्गत सियारामशरण जी की रचनाओं में शव्दचित्र भावचित्र तथा रेखाचित्र तीनो मिलते हैं। जहाँ जैसा प्रसंग रहा है वैसा प्रयोग कवि ने किया है। सियारामशरण जी की भाषा प्रकृति की अनेकानेक दृश्य-

---

१६. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १२०

छवियों को अंकित करने में सफल रही है। काव्य मे पारिभापिक शव्दों के कारण दुरूहता आती है। जातिसंकेत के शव्द काव्य की सरसता को आघात पहुँचाते है। रूपव्यापार वाले शव्दों का एक प्रयोग देखिए –

> करो नाथ स्वीकार आज इस हृदय-कुसुम को।
> करें और क्या भेंट राज राजेश्वर तुमको।
> इष्ट नहीं है इसे कि धारण करो हृदय पर।
> निज मन्दिर में ठौर कहीं दो इसको प्रभुवर।[१७]

यह भावातिरेक में की गयी भक्त की विनय है। कुशल शव्दप्रयोग से ईश्वर के प्रति कवि का सच्चा आत्मसमर्पण दिखायी पड़ता है। मन्दिर, ठौर, कुसुम, नाथ, आदि शव्दों के स्थान पर यदि इन्ही शव्दों के पर्याय रखे जाँय तो वर्णन में उतनी स्वाभाविकता और भावों मे सम्प्रेपणीयता नही आयेगी। मन्दिर और कुसुम को लाकर कवि ने अपने हृदय की वात कह दी। लेखनी का कौशल यही है।

कविता की तीसरी विशेपता में वर्ण-विन्यास आता है। जिस प्रकार कविता का चित्रधर्म उसे आकर्पक बनाता है उसी प्रकार उसका नाद-सौन्दर्य उसमें रस भरता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—

"नाद-सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है। ताल पत्र, भोज पत्र, कागज आदि का आश्रय छूट जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगों की जिह्वा पर नाचती रहती है।"[१८]

यदि तुकान्त के मोह में पड़ कर असंगत शव्द-जाल से कविता के रूप को विगाड़ दिया गया तो नाद-सौन्दर्य की आशा छोड़ देनी चाहिए। अस्वाभाविक तुकान्त और सानुप्रासिकता से सियारामशरण जी की कविता वची है। हाँ, नाद-सौन्दर्य का वह उत्कृप्ट रूप सभी कविताओं में नही मिलता जो किसी सुन्दर कृति के लिए अपेक्षित है। कवि की कुछ रचनाएँ नाद-सौन्दर्य के ही कारण हिन्दी जगत में अधिक प्रसिद्ध है। जो रचनाएँ छन्द-विधान के अन्तर्गत आती है उनमें संगीतमयता पायी जाती है; किन्तु वर्णनात्मक काव्यों (जैसे मौर्य-विजय) में यह गुण कम पाया जाता है। फुटकर रचनाओं तथा 'नकुल',

---

१७. सरस्वती : खंड २०, संख्या ४, सन् १९१९

१८. चिन्तामणि, भाग १ : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १७९

'आत्मोत्सर्ग' आदि प्रबन्धकाव्यों में नाद-सौन्दर्य विद्यमान है। पत्र-पत्रिकाओं में छपी हुई कुछ रचनाएँ ऐसी है जो भाषा की दृष्टि से अत्यन्त साधारण है। वैसे सियारामशरण जी को कोमलता प्रिय है किन्तु वे कठोरता का भी तिरस्कार नही चाहते। उन्ही के शब्दो मे—

'कोमलता अच्छी वस्तु है। आसानी से उसकी ओर हृदय खिंच जाता है। यह कोई न चाहेगा कि किसी हरी-भरी लता की छाया छोड़ कर ऐसे सूखे वृक्ष (शुष्को वृक्षः तिष्ठत्यग्रे) का आश्रय ले। लतामंडप मे जो शीतलता मिल सकती है वह इसमे कहाँ है ? फिर भी दीख यही पड़ता है कि खुली धूप में खेत का काम करने वाले अपना पसीना सुखाने यही आते है।

× × × ×

कर्तव्य के पिता का आदेश यही रहने के लिए उन्हे है। आश्चर्य का विषय यह है, कि जो बात इन लोगो की समझ में आती है वह हमारे समालोचकों की समझ मे नही आयी। वे वास्तव मे कठोर की उपेक्षा करके कोमलता के उपवन मे विचरण करने चले गये हैं। इस शुष्को वृक्षः मे भी जो आनन्द है उसकी ओर उनकी दृष्टि नही गयी।'[१६]

इन पंक्तियो मे कठोरता की ओर उन्मुख होने की बात तो कही गयी है; किन्तु सियारामशरण जी से यह काम बन नही पड़ा। 'आत्मोत्सर्ग' और 'नोआखाली मे' कुछ कविताएँ ऐसी है जिनमें कोमलता कम है; किन्तु अन्य कृतियो मे कोमल भावना का उन्मेष हुआ है। कवि की दृष्टि घाम मे काम करते हुए 'मजूर' की ओर भी गयी है साथ ही स्वर्ण पखो वाली परियों को भी उसने देखा है। साहित्य के दरबार मे पहुँचने के लिए भाषा का सुगम-दुर्गम पथ पार करना होता है।

'साहित्य के दरबार मे हम भाषा के मार्ग से पहुँचते है। मार्ग में कुछ-न-कुछ कष्ट होगा ही। बचने का उपाय ही क्या ? उपाय यही है कि चला जाय। जो चलना चाहते नही और कहते है, कि यह दरबार सार्वजनिक नही, चलने वालो के ही लिए है, वे किसी तरह नही समझेगे। उनसे निबटने के लिए यह कह देना होगा कि आप ठीक कहते हैं।'[२०]

---

१६. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १०६
२०. झूठ सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ११७-११८

कवि साहित्य के दरबार में पहुंचना चाहता है। मार्ग में उसे बीहड़ वनों पटपरों, नदियों, घाटियों से होकर जाना पड़ेगा, यह भी वह जानता है। सियारामशरण जी का यह पथ भाषा का पथ है। वस्तुतः उनकी भाषा का पथ राज-पथ है, उस पर किसी को भटकने और भूलने की आशंका नहीं होनी चाहिए।

भाषा की चौथी विशेषता के अन्तर्गत गुण और कार्य के आधार पर शब्दों या नामों का प्रयोग आता है। कहाँ कौन शब्द या नाम उपयुक्त है? सियाराम-शरण की लेखनी ऐसे शब्दों, नामों तथा स्थलों से पूर्ण रूप से परिचित है। गांधीजी को वे 'बापू' लिखेंगे। जो भाव 'बापू' में है वह 'गांधी' में नहीं पाया जाता। वे अर्जुन के भिन्न-भिन्न नामों का प्रयोग साभिप्राय करते हैं। 'उन्मुक्त' के कुसुमावती, पुष्पदंत, गुणधर, मृदुला आदि नाम इसी प्रकार के हैं। 'अनाथ' की 'यमुना' और 'मोहन' में भी वही चारुता है—यमुना का मोहन और मोहन की यमुना। यहाँ तक कि कृतियों के नामकरण में कवि ने सतर्कता से काम लिया है। 'आर्द्रा', 'मृण्मयी', 'दूर्वादल', 'पाथेय' नामों के प्रयोग सार्थक हैं। 'नकुल' (बिना कुल वाला) के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ के आधार पर ही नकुल काव्य की रचना हुई है। नकुल की इसी अकिंचनता के आधार पर काव्य का नाम 'नकुल' रखा गया है। 'गोपिका' में मोहन, माधव, मुरली के प्रयोग सुन्दर हैं। 'रुचिरा' और 'इन्दु' नामों के प्रयोग भी उपयुक्त हैं।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त कहीं-कहीं कवि ने जनभाषा के शब्दों का प्रयोग भी किया है। भँवर, निखरना, मूढ़ मसान, छोर, फुरहरी, कमाई, चीन्ह तथा बिरवा आदि शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। इस प्रकार के शब्दों के प्रयोगों में कवि सतर्क रहा है। संस्कृत शब्दों का बाहुल्य तो प्रायः हर कृति में पाया जाता है। कहीं-कहीं संस्कृत-बहुल शैली के कारण भाषा कुछ दुरूह हो गयी है—

दन्त धवल उन्नत यूथप यह
हिमगिरि का-सा शृंग
मानो क्षीरोदधि से उत्थित
उद्धत तरल तरंग।[21]

कवि ने कहीं-कहीं शब्द-संधियों का भी सहारा लिया है—

---

२१. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६५

इन वचनों में प्रभा पा रही दीपार्पण की।
देवी स्नानार्चिता तुम्हारे कमलानन की।[२२]

यहाँ 'दीपार्पण', 'स्नानार्चिता' तथा 'कमलानन' शब्दों की योजना संधि के आधार पर की गयी है। हिन्दी कविता में संधि के अधिक प्रयोग अस्वाभाविक ही लगते है। सियारामशरण जी ने इस प्रकार की योजना अपनी सरल प्रवाही गति से कुछ एक स्थलों पर की है। इसके कारण भाषा की चारुता पर किसी प्रकार का कुप्रभाव नही पड़ा है।

कुछ रचनाओं मे मुहावरों का प्रयोग अधिकता से हुआ है। मुहावरे भावो को तीव्र बना कर उसमे सम्प्रेषणीयता लाते हैं। भाषा में मुहावरों की योजना करते समय इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए, कि कही उनका प्रयोग आवश्यकता से अधिक न हो जाय। मुहावरों का प्रयोग भाषा को अधिक सवेद्य, स्वाभाविक और आकर्षक बनाने के लिए ही किया जाता है। हड्डी-हड्डी दिखाई पड़ना, अश्रु बरसाना, मजा चखाना, विना मौत मरना, गालियों से पेट भरना, टेक पकड़ना, जोर जमाना, सिर फोड़ना, भिड जाना, हाथ उठाना, ज्ञानवुद्धि स्वाहा होना, जूझ मरना, हवा हो जाना, सुधि लेना, काँटों में विंध जाना, आग लगा कर बुझाना, अनन्त मे छा जाना आदि मुहावरों के प्रयोग सियारामशरण जी के काव्य मे मिलते है।

विदेशी भाषा के शब्दो से कवि का विशेष लगाव नही रहा है, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर उनसे विमुख भी नही रहा गया। सियारामशरण जी लिखते है—

"निखिल के साथ हमारे इस महा-सम्मेलन का क्षेत्र भाषा भी है। अनेक नद-नदी, समुद्र और दुर्गम वन, पर्वत लाँघ कर एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा के शब्दों से अभिन्न भाई की भाँति गले लगते है। आज के युग मे खालिस और सुसंस्कृत भाषा के लिए जीवितो मे स्थान नही। एक परिवार दूसरे परिवार के साथ जिस तरह सम्बन्ध स्थापित करता है उसी तरह एक भाषा दूसरी भाषा से करती है।"[२३]

---

२२. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ६४

२३. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४३

दो संस्कृतियों के परस्पर आदान-प्रदान में शब्द भी एक-दूसरे से मिलते हैं। आज पता नहीं कितने शब्द अंग्रेजी, अरबी और फारसी भाषाओं से आकर हमारी भाषा में मिल गये हैं। उनका प्रयोग बहुत पुराना हो चला है। अब वे अपने लगते हैं। सियारामशरण जी ने 'बदनाम', 'पाक-कलाम', 'फौज', 'गैरत', 'दुश्मन', 'अब्बा', 'हज्जाम', 'पेट्रोल', 'दोजख', 'बहिश्त', 'काफिर', 'शैतान', 'नमक हराम', 'कहर', 'पैग़ाम', 'सलूक', 'परमाना', आदि अन्य भाषा के शब्दों के प्रयोग किये हैं। ये प्रयोग उन काव्यों में है, जिनमें हिन्दुओं और मुसलमानों के झगड़ों का वर्णन है। 'आत्मोत्सर्ग' और 'नोआखाली मे' की रचनाएँ इसी कोटि की हैं। इन शब्दों के प्रयोग के बिना उन प्रसंगों में काम भी नहीं चलता।

निष्कर्ष रूप में हम यह कहेंगे कि सियारामशरण जी की भाषा में जहाँ एक ओर अप्रस्तुत-योजना की शक्ति है वहीं भावाभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता भी। भाषा की दृष्टि से कवि किसी भी स्थल पर असमर्थ नहीं दिखायी पड़ता। अपनी भाषा का पथ कवि ने स्वयं खोजा है उस पर किसी का प्रभाव नहीं रहा है। इसीलिए वह अधिक स्वाभाविक और भावानुरूप है। एक सफल कवि के लिए जिस सशक्त भाषा की आवश्यकता होती है वही सियारामशरण जी की भाषा है। किसी ने भाव को अनूठा बताते हुए कहा है, कि भाषा चाहे जैसी हो भाव अनूठे होने चाहिए, किन्तु यहाँ भाव भी अनूठे हैं भाषा भी अनूठी है।

छायावाद की देन

सियारामशरण जी ने छायावादी काव्य को क्या दिया ? इस विषय को स्पष्ट करने के लिए तात्कालिक परिस्थितियों पर भी संक्षेप में विचार करना होगा। प्रथम और द्वितीय महायुद्धों के बीच का समय केवल भारत के लिए ही नहीं अपितु अखिल विश्व के लिए अत्यन्त परिवर्तनशील रहा है। शासन के क्षेत्र में सामंती प्रथा की छाया को नष्ट करने के लिए साम्राज्यवाद के वृक्ष को समूल नष्ट करने की बात सोची जाने लगी थी। इधर व्यापार के क्षेत्र में विज्ञान का उन्नति ने एक नयी क्रांति की। किसान और मजदूर अपना अधिकार मांगने लगे। सारे भारत में नवीन विचार-धारा का क्रांतिकारी और परिवर्तनशील रूप दिखायी पड़ने लगा। शासन, व्यापार और कृषि के क्षेत्रों में नयी चेतना और जागृति फैलाने में देश के सुधारकों और नेताओं का भी हाथ रहा। परतंत्र देश ने एक बार फिर अँगड़ाई ली। लगता था अब स्वतन्त्रता का प्रभात दूर नहीं है। हाँ, थोड़ी रात अवश्य रह गयी है।

महायुद्धों का परिणाम यह निकला, कि असंख्य व्यक्ति मृत्यु के ग्रास बने, अनेक विकलांग हुए, पता नही कितने युद्ध की विभीषिका से प्रभावित हुए। इस हिंसात्मक क्रूरता से विश्व की करुणा रो पड़ी। लोगों को चेत हुआ; किन्तु

परिस्थितियों ने भावनाओं को विद्रोही बना दिया। भारतवर्ष को अंग्रेजों ने अपनी सुविधाओं और सुखों का प्रसाधन बना रखा था। जब जैसी आवश्यकता पड़ी साधन का प्रयोग निस्संकोच भाव से किया गया। यद्यपि महायुद्ध से भारत का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था; किन्तु शासित होने के नाते उसे अंग्रेजों का साथ देना पड़ा। और कोई मार्ग भी तो नहीं था।

जागृति और चेतना की नवीन मान्यताओं की परिस्थिति और वातावरण बनाने के कार्य अरविन्द घोष, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि समाज-सुधारकों ने किया। गोखले, गांधी, तिलक और सुभाष जैसे नेताओं ने भारत की जनता का नेतृत्व किया। कुछ नेतागण अपने देश के अन्दर ही जागृति का सन्देश दे रहे थे; किन्तु सुभाष ने अपने व्यक्तित्व, धैर्य और साहस के बल पर अन्य राष्ट्रों से सम्बन्ध स्थापित कर अपने नवीन संगठन के सहारे अंग्रेजों का सामना किया था। भारत की जनता से उन्होंने ललकार कर कहा था, कि "तुम अपना रक्त दो मैं उसके बदले मैं तुमको आजादी दूँगा।" ये सारी परिस्थितियाँ हिन्दी कविता को प्रभावित करती रहीं।

जब सारा समाज परतंत्रता की रात्रि के अंतिम प्रहर में जागरण का स्वप्न देख रहा था तो देश का छात्र-वर्ग क्यों चुप रहता। पूँजीपतियों ने अपनी पूँजी का एक भाग नेताओं पर खर्च करके अंग्रेजों के विरुद्ध देश की जनता को उकसा कर अपना उल्लू सीधा किया; किन्तु किसान और मजदूर ईमानदारी से अपनी शक्ति-भर परतन्त्रता की बेड़ियों को काटने में लगे रहे। निम्न कक्षाओं का छात्र बेचारा कर ही क्या सकता था; किन्तु वह भी अपनी जिन्दादिली का परिचय यह कह कर देता था—'घरबार छोड़ करके जायेंगे जेलखाना।'[1] ऊँची कक्षाओं के छात्र और छात्राओं ने स्वतन्त्रता के स्वर को ऊँचा करके देशभक्ति का अच्छा परिचय दिया। विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र और छात्राओं ने अपनी शिक्षा छोड़ कर आन्दोलन में भाग लिया, आश्रमों में कार्य किया। प्रायः इनका जीवन अविवाहित था। छायावाद में वर्णित स्वच्छन्द प्रेम या वियोग-भावना बहुत कुछ इस परिस्थिति का परिणाम है।

भारतवर्ष के बाहर पूँजी के विरुद्ध जो आवाज उठायी गयी उसका परिणाम कहीं-कही दिखायी पड़ा। भारत में पूँजीवाद की जड़ें जम चुकी थीं। ऐसी

---

१. यह गीत स्वतन्त्रता मिलने के पहले बहुत गाया जाता था।

धरती पर जहाँ पूँजीवाद का वट-वृक्ष अपनी छाया को घनीभूत किये था समाजवाद के नवीन और सर्वगुणदायी पौधे रोपना दुष्कर कार्य था। इसीलिए गांधी ने पूँजीवाद का विरोध नहीं किया वरन् स्वतन्त्रता की लड़ाई में पूँजीवादी तत्वों से सहारा लेते रहे। इतना होने पर भी देश में पूँजीवाद का विरोध करने वाली संस्थाएँ बन चुकी थीं। किसानों के मन में अपने जमींदारों के प्रति विरोध अंकुरित हो चुका था। मजदूर मिल-मालिकों से अपने अधिकार और लाभ के पक्ष में बातें करने लगे थे।

हिन्दी की आधुनिक कविता में जागरण के स्वर भारतेन्दु-युग में गाये गये थे। द्विवेदी-युग में उन स्वरों को और प्रभाववादी और मनमोहक बनाया गया था। छायावाद काल में जागरण के वही पुराने स्वर अपने नवीन, स्वंदित स्वच्छंद और आकर्षक रूप में फूटे। छायावाद काल में ही पश्चिमी काव्य-पद्धतियों को बंगाल स्वीकार कर चुका था। रवि बाबू की गीतांजलि के गीतों में पश्चिमी झलक थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते है—

"श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उन कविताओं की धूम हुई जो पाश्चात्य ढाँचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद लेकर चली थी।"[२] छायावादी कवियों पर अंग्रेजी साहित्य की प्रवृत्तियों का जो प्रभाव पड़ा वह सीधे न पड़ कर बँगला के माध्यम से पड़ा। यद्यपि छायावादी कविता के सृजन में केवल पश्चिमी काव्य-प्रवृत्तियाँ ही नहीं कार्य कर रही थी; किन्तु हिन्दी के कुछ आलोचकों को इस बात का भ्रम हो गया है। हिन्दी में छायावाद आने के लिए जहाँ अंग्रेजी साहित्य की प्रवृत्तियाँ उत्तरदायी है वहीं देश की तात्कालिक परिस्थिति भी अपना विशेष स्थान रखती है। छायावाद के प्रमुख कवियों पर पश्चिम के कवियों का प्रभाव सिद्ध करते हुए डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा लिखते है—

"अंग्रेजी रोमांटिक साहित्य-शास्त्र का सर्वाधिक प्रभाव हिन्दी के छायावादी कवियों पर पड़ा। जयशंकर प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी और रामकुमार अंग्रेजी के वर्डसवर्थ, कालरिज, शैली, आदि की भाँति कवि होने के साथ-साथ आलोचक भी है। उनके काव्य और आलोचना दोनों पर ही अंग्रेजी के रोमांस-वाद का गहरा प्रभाव है।"[३]

---

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६५०
३. रोमांसवादी साहित्य-शास्त्र : डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा, पृ० ३२

छायावादी काव्य पर पश्चिमी प्रभाव को पंत जी ने भी माना है :—

"मेरे युग की जो काव्य-चेतना राष्ट्रीय जागरण के वाह्य प्रभावों से जागृत होकर, पश्चिमी सभ्यता तथा सस्कृति के स्पर्शों से सौन्दर्यबोध ग्रहण कर, भारतीय चैतन्य के अभिनव आलोक से अनुप्राणित होकर, क्रमशः प्रस्फुटित एवं विकसित हुई थी, आज वह अनेक भावनाओं तथा विचारों के धरातलो को पार करके, मानव-मन की गहनतम तलहटियों तथा उच्चतम शिखरों के छाया-प्रकाश का समावेश करती हुई अधिक प्रौढ एवं अनुभवपक्व होकर, मानव-जीवन के मगल-मय उन्नयन एवं मानव जाति से परस्पर सम्मिलन के स्वर्ग के निर्माण में अविरत रूप से साधनारत है।"[४]

निष्कर्ष रूप में यह बात कही जा सकती है, कि छायावाद के लाने में तात्कालिक राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का हाथ है। वस्तुतः छायावादी कविता विद्रोह-युग की कविता है। देश की परिस्थितियों ने छायावाद को जन्म दिया। अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क ने कुछ अपनी छाप छोड़ी। इस सम्वन्ध में हम रवीन्द्रनाथ टैगोर का नाम पीछे ले चुके है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना है कि उन्हे 'गीतांजलि' पर उतनी ख्याति तब मिली जब मिस्टर एण्ड्रूज की प्रेरणा से इस काव्य-कृति का अग्रेजी मे स्वय कवि ने अनु-वाद प्रस्तुत किया। फिर क्या था! यूरोप की सबसे बड़ी साहित्यिक संस्था 'विज्ञान कला साहित्य परिषद' का ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ। गीतांजलि को विश्व की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक घोषित करके नोबुल पुरस्कार कवि को दिया गया। पश्चिमी जगत मे इस प्रकार रवीन्द्रनाथ विश्रुत हुए और वहाँ के साहित्य का प्रभाव उन पर पड़ा। हिन्दी के कतिपय छायावादी कवि भी रवीन्द्र से प्रभावित हुए। सियारामशरण जी के ऊपर भी रवीन्द्र का प्रभाव पड़ा है। यह तथ्य पीछे दिया जा चुका है।

रवीन्द्र की प्रतिभा और प्रसिद्धि पर सियारामशरण जी कितने मुग्ध है —

> रस-धारा में मग्न कंठ तक, हिले न डोले,
> तब अनन्त के विहग पंख तुमने निज खोले।

---

४ रश्मि-बंध : श्री सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ३०

जिस सुषमा के साथ उठे थे पूर्वाचल पर
पश्चिम में भी उसी अरुणिमा का वैभव भर
तुम हे ज्योतिरदेव अगोचर हुए गगन में,
रहे एक से दीप्त आगमन और गमन में।[५]

वस्तुतः हिन्दी की छायावादी कविता को रवीन्द्रनाथ की काव्य-पद्धति से मार्ग मिला है। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि हिन्दी में छायावादी काव्य का प्रारम्भ पहले किसने किया? छायावाद के लक्षण द्विवेदी-काल के कुछ कवियों की रचनाओं में उदित होने लगे थे। जनवरी सन् १९५४ की 'अवन्तिका' में एक परिसंवाद छपा था। उसका शीर्षक था—'छायावाद का आरम्भ कब हुआ?' विभिन्न विचारकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इस विषय पर विचार किया था। 'छायावाद' को बँगला से उधार अथवा ईसाई संतों के 'छायाभास' से विकसित न मान कर अपना धन मानते हुए श्री रामनरेश जी त्रिपाठी लिखते हैं:—

"अपने कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत जी ने मुझे बताया था, कि पथिक में उनको छायावाद की पंक्तियाँ मिली थीं। यदि यह ठीक है, और मैं मानता हूँ कि ठीक है तो इसे स्वाभाविक विकास का एक प्रमाण मानना चाहिए; क्योंकि पथिक लिखते समय छायावाद की कोई कल्पना मेरे मन मे नही थी। और इसका श्रेय मुझे मिल सकता है या नही, विचार किया जा सकता है। पथिक की रचना १९१७-१८ में हुई थी।"[६]

श्रीयुत रायकृष्णदास 'प्रसाद' जी को प्रथम छाया-रहस्यवादी कवि मानते है तथा रविबाबू की अंग्रेजी साहित्य की अपेक्षा कबीर और विद्यापति आदि से 'इंसपिरेशन' ग्रहण करते हुए पाते है:—

"वे (प्रसाद) निर्विवाद रूप से हिन्दी के छाया-रहस्यवाद के जनक है। अन्य कोई भी नाम न उनके साथ लिया जा सकता है, न टिक सकता है।"[७]

---

५. आजकल : मई १९६१, रवीन्द्रनाथ ठाकुर विशेषांक
६. अवन्तिका : जनवरी, १९५४
७ अवन्तिका : जनवरी, १९५४

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय की कविताओं में पहले छायावादी लक्षण दिखायी दिये। गुप्त जी का 'जयद्रथ वध' १९१० ई० में प्रकाशित हुआ था। सियारामशरण जी यह समादर रवीन्द्रनाथ टैगोर को देना चाहते है :—

"यह आदर क्यों न हम श्री रवीन्द्रनाथ जी को ही अर्पित करें ? हिन्दी की नयी कविता-धारा ने वही से अपने को परिपुष्ट किया है—यह मेरा निश्चित मत है।"[८]

पंत जी के अनुसार 'प्रसाद' जी प्रथम छायावादी कवि है :—

"मोटे रूप से हम 'प्रसाद' जी को हिन्दी में छायावाद का जनक मान सकते है।"[९]

प्रेम-पथिक, कानन-कुसुम तथा चित्राधार की रचनाओं मे छायावाद के लक्षण मिलते हैं। डा० प्रभाकर माचवे, पं० माखनलाल चतुर्वेदी को प्रथम छायावादी कवि स्वीकार करते हुए लिखते है :—

"मेरे मत से छायावाद के पहले कवि पं० माखनलाल चतुर्वेदी है। उनकी रचना वहुत काल तक प्रकाश मे नही आयी – उनके संकोची स्वभाव के कारण परन्तु यह ऐतिहासिक श्रेय उन्हें ही देना चाहिए। 'प्रसाद', पंत आदि की रचनाएँ वहुत बाद की है।"[१०]

इन समस्त विचारों में विभिन्नता है। प्रसाद, पंत, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय तथा रवीन्द्रनाथ आदि की रचनाओं मे छायावाद के चिह्न मिलते हैं। किसमें पहले मिलते है—यह वात निर्णीत नही। श्री मुकुटधर पाण्डेय ने सन् १९२० में छायावाद के पनपने की मगल कामना की थी—

"छायावाद काव्य-कला का एक अपूर्व निदर्शन है। कवि की लेखनी का चातुर्य और सूक्ष्मातिसूक्ष्म चमत्कार देना हो तो छायावाद मे पढ़िए।.........

---

८. अवन्तिका : जनवरी १९५४
९. अवन्तिका : जनवरी १९५४
१०. अवन्तिका : जनवरी १९५४

हमारी व्यक्तिगत क्षुद्र सम्मति तो यह है, कि छायावाद को हिन्दी साहित्य में अवश्य स्थान मिलना चाहिए।"[११]

'छायावाद' के पनपने के समय इसका कड़ा विरोध हुआ था। विरोधों से चिढ़कर महाप्राण निराला ने लिखा था—

"पं० रामचन्द्र शुक्ल की 'काव्य में रहस्यवाद' पुस्तक उनकी आलोचना से पहले उनके अहंकार, हठ, मिथ्याभिमान, गुरडम तथा रहस्यवादी या छायावादी कवि कहलाने वालों के प्रति उनकी अपार घृणा सूचित करती है। ऐसे दुर्वासा समालोचक कभी भी किसी कृति शकुन्तला का कुछ बिगाड़ नहीं सके, अपने शाप से उसे और चमका दिया है।"[१२]

अनेक विरोधों के बाद भी छायावाद जिस उमंग के साथ अंकुरित हुआ वैसे ही पल्लवित, पुष्पित और फलित भी। शुक्ल जी का शाप सचमुच वरदान सिद्ध हुआ। छायावाद ने अपने अन्तराल में राष्ट्रीयता, जन जागरण, नवीन चेतना, नयी आस्था, नयी भाषा तथा नया दृष्टिकोण लिये है। सियारामशरण जी ने छायावाद को क्या दिया है ? इस सन्दर्भ में डा० हजारीप्रसाद जी सियाराम-शरण जी को छायावाद का अपने ढंग का विशिष्ट कवि मानते हैं —

"छायावाद काल में जो कवि अपने ढंग से आगे बढ़ रहे थे उनमें सबसे श्रेष्ठ सियारामशरण गुप्त हैं। इनमें भी व्यक्तिगत चिन्तन और अनुभूति है, और एक प्रकार से छायावादी कविता के बाह्य वृत्त से इनकी कविता सटी हुई कही जा सकती है। परन्तु सियारामशरण जी की रचनाओं में एक प्रकार की सावधानी और सतर्कता है जो छायावादी कविता में नहीं पायी जाती।"[१३]

छायावादी काव्य-चेतना में समालोचकों को 'अस्पष्टता' स्पष्ट दिखायी पड़ी। आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और अन्य समालोचकों ने प्रथमतः छायावाद पर इस बात का आरोप लगाया कि वह समझ में नहीं आता। सिया-रामशरण जी की कविता के साथ ऐसी बात नहीं पायी जाती। उनके भाव आसानी से पाठक की समझ में आ जाते हैं। इस दृष्टि से भी वे छायावादी

---

११. शारदा : दिसम्बर १९२० (जबलपुर)
१२. चाबुक : सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृष्ठ ४८
१३. हिन्दी साहित्य : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ४७६

पथ से थोड़ी दूर पर है। यद्यपि छायावाद की वह वीथी जो वाद में तत्युगीन कवियों के लिए राज डगर वन गयी, वे देख रहे है; पर उस पर चले नही। इसीलिए सियारामशरण जी की कविता में 'इस पार', 'उस पार', 'विकल रागिनी', 'शीतल ज्वाला', 'मूक वेदना', हँसी का शीत', 'चाँदनी का सागर', 'हिम-जल हास', 'गालों के फूल', 'तम का परदा', 'किसी की मृदु मुस्कान', 'विजली का फूल', 'चांदनी के साँप' जैसे छायावादी प्रयोग प्राय: नहीं मिलते, अस्पष्टता आये भी तो कैसे ?

छायावादी कवियों ने स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह किया। इस तथ्य के साथ यदि द्विवेदी युगीन और छायावाद युग के समालोचकों के मत पर विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्त आलोचकों की राय एक ही है। डा० नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में इस तथ्य की ओर संकेत किया है—

"इन तमाम वातों से यह मालूम होता है, कि शुरू-शुरू में जिस अस्पष्टता के लिए छायावाद शव्द चलाया गया वही थोड़ा नाम वदल कर मुकुटधर पाण्डेय और आचार्य शुक्ल से होती हुई नन्ददुलारे वाजपेयी और डा० नगेन्द्र तक आयी और अब भी अनेक विद्यार्थियों का संस्कार वन गयी है। सुशील कुमार की अस्पष्टता,[१४] मुकुटधर की आध्यात्मिकता, आचार्य द्विवेदी का रहस्य, शुक्ल जी का आध्यात्मिक छायाभास, वाजपेयी जी का आध्यात्मिक छाया का मान और नगेन्द्र का स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह सव एक ही है।"[१५]

सियारामशरण जी की प्रारम्भिक कृतियों में स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं पाया जाता। 'मौर्य-विजय' तथा 'अनाथ' में कथावस्तु के आस-पास ही उनकी कल्पना रहती है। स्थूलता कहीं भी साथ नही छोड़ती। 'मौर्य-विजय' और 'अनाथ' का प्रकाशन क्रमश: १९१४ ई० और १९१७ ई० में हुआ था। इन वर्पो के दस-वारह वर्ष वाद 'पाथेय' प्रकाशित हुआ। उसमें कुछ प्रयोग ऐसे है जो कवि के सूक्ष्म की ओर जाने की लालसा प्रकट करते है। इस कृति के

---

१४. जून सन् १९२१ की सरस्वती में सुशीलकुमार लिखित 'हिन्दी में छायावाद' नामक एक व्यंग्य लेख है, जिसमें अस्पष्टता की ओर संकेत किया गया है। डा० नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में भी इस लेख की वात लिखी है।

१५. छायावाद : डा० नामवर सिंह, पृष्ठ १३

पहले 'विषाद' और 'दूर्वादल' में भी ऐसे संकेत मिलते हैं। 'उद्धार आलोक', 'उल्लास-हास', 'शिशु मानस लहरावलियों का उछलना', 'छाया-छत्र', 'शुष्क विजन', 'किरण-मालाएँ', 'सत्य तीर्थ', 'तिमिर सिन्धु', 'सुवर्ण रश्मि-राशि' आदि प्रयोग इसी प्रकार के हैं।

'मौर्य-विजय' का नायक चन्द्रगुप्त तथा 'अनाथ' का मोहन—तत्कालीन अन्य रचनाओं के नायकों के मेल में है। सन् १६१० में प्रकाशित पथिक (लेखक पं० रामनरेश त्रिपाठी) का नायक भी मोहन जैसा है। रीति-कालीन सामन्ती विचार-धारा के प्रति द्विवेदी-युग ने जो विद्रोह किया, सियारामशरण जी उसमें किसी से पीछे नही रहे। प्रतीक रूप में स्थल-स्थल पर स्वच्छन्दता और नवीनता की ओर कवि उन्मुख दिखायी पड़ता है। इस प्रसंग में श्री शम्भूनाथ सिंह लिखते हैं—

"प्रिय प्रवास के कृष्ण, साकेत और रामचरित चिन्तामणि के राम, जयद्रथ-वध के अभिमन्यु और अर्जुन, वीर पंच रत्न के राणा प्रताप आदि, मौर्य-विजय के चन्द्रगुप्त, रंग में भंग के वीर राजपूत-- ये सभी समाज के क्रांतिकारी और उग्रपंथी नेताओं के प्रतीक है जो अपने शौर्य-तेज से आततायी साम्राज्यवाद के प्रतीक रावण कंस, जयद्रथ, मुसलमान बादशाह से युद्ध करते और विजय प्राप्त करते हैं।"[१६] इस प्रकार की कविता छायावाद-युग में हुई। यद्यपि छायावाद का कवि समाजवादी कम और व्यक्तिवादी अधिक है; किन्तु स्वतन्त्रता की पुकार किसी-न-किसी रूप में प्रायः सभी छायावादियों के काव्यों से ध्वनित होती है। सियारामशरण जी समाजवादी अधिक और व्यक्तिवादी कम हैं। उनके काव्यों में समाज पहले दिखायी पड़ता है, कवि का व्यक्तित्व बाद में।

छायावादी काव्य में 'मैं' शैली अपनायी गयी थी। इस सन्दर्भ में एक प्रकार की 'मिशनरी स्पिरिट' कार्य कर रही थी। छायावाद कैम्प के समस्त कवियों ने इसी भावना से प्रेरित होकर कार्य किया। सियारामशरणजी में इस 'मिशनरी स्पिरिट'का नितान्त अभाव है। उनकी मिशनरी स्पिरिट गांधीवाद के प्रसंग में दिखायी पड़ती है। छायावाद के तत्त्व उनकी कविता में आ गये हैं जिसके लिये कवि को श्रम नही करना पड़ा। व्यक्तिवादी भावना के प्रसंग में सारे छायावादी कवि एक है। मिशनरी स्पिरिट का जो रूप निराला में दिखायी

१६. छायावाद युग : श्री शम्भूनाथ सिंह, पृष्ठ २०-२१।

पड़ता है वह अन्य कवियों मे नही। आपबीती कहने में उन्हें कोई संकोच नही, कोई हिचक नही। प्रेम का जो रूप छायावादी काव्य में पाया जाता है वह सियारामशरण जी के यहाँ नही है। वे इतने मुखर भी नही है, कि छायावादी कवियों की भाँति अपनी घनीभूत पीडा को अन्य लोगों से बता सकें। जहाँ कही प्रेम का वर्णन आया है—अपने संयत और मर्यादित रूप में। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् लिखी गयी पुस्तक 'विषाद' है। उसमे कवि वियोग से विह्वल है। कवि में वहाँ अतीत के प्रति टीस, स्मृति के प्रति अपनापन, वर्तमान के प्रति क्षोभ दिखायी पड़ता है, जो छायावादी कवि की विशेषताएँ है। सियारामशरण जी की व्यक्ति-भावना का रूप सदैव आशावादी बना रहता है। यद्यपि छायावाद में आशावादी और निराशावादी दोनों दृष्टिकोण पाये जाते है—

ले अंधकार अपना.........अभंग
बहु विगत निशाएँ एक संग
हो गईं खड़ी आकर समक्ष।
कम्पित है एकाएक वक्ष।
अन्तस्तल बीच यही विषाद
करता था क्या चिर करुण नाद।

× × ×

इतने दिन रह छाया-समान
यह मिलन कराया है महान।
हे श्रान्त! पहन अब अश्रुमाल
लो विदा आज है पुण्य काल।[१७]

सियारामशरण जी के काव्य मे वर्णित प्रेम न तो द्विवेदी-युग का प्रेम है, जहाँ कोई बात कहते कवि को भय बना रहता है कि कही घर वाली देख-सुन न ले और न छायावादी मुक्त प्रेम है, जहाँ घर वाली की कोई चिन्ता नही है। शृंगार के प्रसंगों का वर्णन सियारामशरण जी ने उस ढंग का नही किया जैसे निराला आदि छायावादी कवियों ने किया है। इनका अपना एक मार्ग है। उसी को अपने अनुसार बनाने मे वे सक्षम सिद्ध हुए हैं। जीवन के स्थूल जंजालों

---

१७. विषाद : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४४-४५

से सियारामशरण जी भी ऊबे हैं। कभी-कभी तो किसी की स्मृति से मौनालाप करके उन्होंने लेखनी रोक दी है —

> आ न सकेगी किन्तु आज तू उसी भाँति साह्लाद,
> लिखने मुझे नहीं देती बस आकर तेरी याद।
> तो फिर उस तेरी स्मृति से ही करके मौनालाप,
> आज और कुछ नहीं लिखूँगा रुक कर अपने आप।[१८]

छायावाद की आत्माभिव्यक्ति का रूप सियारामशरण जी के 'पाथेय' और 'विषाद' में मिलता है। एक कवि की वियोगावस्था का चित्र है तथा दूसरा विरह-वेदना से सहारा पाने का 'पाथेय' है। छायावाद काल में वर्णित वियोग-शृंगार प्रायः सभी छायावादी कवियों की विशेषता है। सियारामशरण जी ने वियोग की दशा में कुछ गीत गाये अवश्य हैं पर यह वियोग भारतीय गृहस्थ का वियोग है। इसमें पंत और प्रसाद के वियोग की वह ऊष्मा नहीं जहाँ केवल आहों में गान बसता है।

छायावादी कवि के लिए प्रकृति में अनन्त सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। अनेक रम्य रूपात्मक प्रकृति गीतमयी है। इसलिए इस युग की हर लेखनी प्रकृति को अपने नवीन दृष्टिकोण से देखती है। द्विवेदी-युग अथवा उससे पहले का प्रकृति-वर्णन अपनी सीमाओं से जकड़ा था। छायावाद युग में स्वच्छन्द प्रकृति-वर्णन किया गया।। अप्रस्तुत विधान मे प्रकृति ने सहयोग दिया। प्रकृति में ही छाया-वादी कवि को अज्ञात सत्ता का आभास मिला। इस प्रसग में सियारामशरण जी छायावादी कवियों से बहुत पीछे हैं। उनकी रचनाओं में जो प्रकृति-वर्णन पाया जाता है वह युग के आधार पर अपर्याप्त है। प्रकृति हमको मानवता के उस धरातल की ओर ले जाती है जहाँ समानता मूर्तिमान है। हमारी विचारधारा का परिष्करण बहुत कुछ प्रकृति-वर्णन के ऊपर निर्भर है। वैसे तो सियाराम-शरण जी की काव्य-कृति मे प्रकृति-वर्णन पाया जाता है पर वह छायावादी ढग का नहीं। किसी विशेष प्रसग के अन्तर्गत प्रकृति-वर्णन करना एक बात है और विशुद्ध प्रकृति-वर्णन सर्वथा दूसरी बात है। षट्ऋतु वर्णन और बारहमासे की प्रथा तो रीतिकाल अपने साथ लेता गया। इधर छिटपुट कुछ ब्रजभाषा-प्रेमी कवियों ने प्रकृति-वर्णन के इस माध्यम को जीवित रखा है, पर छायावाद की प्रकृति के रूप 'पल-पल परिवर्तित' होने वाले

---

१८. विषाद : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३०

हैं। पंत जी का बादल स्वयंचेता है। घनघोर घटाओं में कौंधने वाली विज्जु-छटा भी किसी की ओर संकेत करती है। सियारामशरण जी ने 'फूल' पर अलग से कविता लिखी है। समीर, कोजागर पूर्णिमा, बाढ़ आदि इनकी कविता के विषय हैं। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि ने अपनी अभिव्यक्ति में प्रकृति का उपयोग जिस प्रकार किया है उस प्रकार सियारामशरण जी ने नहीं किया। फिर भी वे समयानुसार कुछ न कुछ प्रकृति के सम्बन्ध में कहते रहे हैं। इनकी प्रकृति मानव-दुख से दुखी और सुख से सुखी नहीं होती। हाँ, प्रकृति के कष्ट को देख कर कवि स्वयं दुखी हो जाता है—

> अभागे फूल मुरझाने लगा तू।
> सताया काल से जाने लगा तू ॥[१९]

वर्णन साधारण है। छायावादी चारुता का यहाँ नितान्त अभाव है। सियाराम-शरण जी की आध्यात्मिकता में कुछ भी गुप्त नहीं पाया जाता। यहाँ परदेश की अज्ञात-सत्ता के सन्देश नहीं आते। इसलिए सियारामशरण जी के काव्य में प्रकृति के माध्यम से रहस्यवाद का वर्णन नहीं हो पाया। प्रकृति का वह व्यापक रूप भी यहाँ नहीं मिलता। 'गोपिका' में जो प्रकृति-वर्णन कवि ने किया है अन्य कृतियों से वह कहीं आगे है। कुछ तो प्रकृति की स्वतन्त्र दृश्यावलियों के वर्णन हैं और कुछ वही व्रज-वनिताओं की जानी-पहिचानी वीथियाँ, यमुना-तट, कदम्ब, करील, वृन्दावन, कुंज आदि। स्वयं कवि ने प्रकृति से प्रेरणा नहीं ग्रहण की किन्तु औरों को प्रकृति का दिया दान मिला, कवि इसे स्वीकार करता है। कदाचित् वीणा का मधुर गान वसंत का संचित मधुर उच्छ्वास हो।

> मलयानिल को आगे करके,
> पीकर पराग मधु जी भरके,
> जब जब वसन्त आया नवीन,
> उसका विलास उच्छ्वास भरित
> चुपके चुपके करके संचित
> कर रक्खा था क्या आत्मलीन,
> है वही गूँज यह बंधहीन ![२०]

---

१९. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृ० ११
२०. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृ० ५८

सियारामशरण जी ने जो प्रकृति-वर्णन किया है उसमें जिज्ञासा और रहस्य की कोई बात नहीं पायी जाती। अतिरंजना और सूक्ष्म प्रकृति चित्रण से वे प्रायः दूर ही रहे हैं, किन्तु एकाध स्थल पर अंधकार का ऐसा दुर्निवार प्लावन छाया है, कि धरातल और पर्वत-प्रदेश का भेद मिट गया है। थोड़ी देर के लिये कवि दार्शनिक बन गया है—

उसने सब कुछ कर निमग्न नीचे निज जल में,
मिटा दिया है भेद धरातल पर्वत तल में,
यह मिट्टी का लोक यहाँ मिट्टी ही मिट्टी,
एक तुल्य हैं सभी राजमणि कंकड़ गिट्टी।[२१]

छायावादी कवियों का दृष्टिकोण नारी-समाज के प्रति उदार था। सुधारवादी आदर्शों के आधार पर बंधनयुक्त नारी को मुक्त करने के स्वर छायावादी लेखनी से निकले थे। यद्यपि द्विवेदी-काल में ही दृष्टिकोण बदल चुका था; किन्तु उसका परिष्कृत रूप छायावादकाल में दिखायी पड़ा। सियारामशरण जी ने साहित्य में नारियों के जो मूल्यांकन और चित्रांकन किये हैं उनकी अपनी एक दिशा है। 'नारी' उपन्यास की यमुना, 'नकुल' की द्रौपदी, 'अमृतपुत्र' की सामरी, 'उन्मुक्त' की मृदुला आदि स्त्री-पात्रों का चित्रण इस प्रसंग में द्रष्टव्य है। वह नारी जो अपनी दुर्बलताओं से अलग है तथा अपने वात्सल्य, स्नेह, प्रेम और रूप से माता, बहन, और प्रेमिका है—गुप्त जी के काव्यों में दिखायी पड़ती है। 'अमृतपुत्र' की सामरी अपने को तुच्छ अधम बताते हुए 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का सन्देश दे रही है :—

तुच्छ नारी मैं महा मूर्खा अधम,
देखते ही समझ जब उनको गई,
कठिनता तब क्या समझने में तुम्हें।
तुम उन्हें सत्कार दोगे अतिथि का,
प्रार्थना मेरी रहो सुख से सदा,
हों तुम्हारे साथ ही हम सब सुखी।[२२]

---

२१. नकुल : सियारामशरण गुप्त, पृ० ९४
२२. अमृत पुत्र : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३६

सियारामशरण जी के काव्य में वर्णित नारियों ने आश्रम खोल कर समाज-सुधार का बीड़ा नहीं उठाया और न कातर होकर अपने प्राण मृत्यु को अर्पित किये वरन् मर्यादा और गौरव को साथ लिए पुरानी रूढ़ियों से संघर्ष करते हुए जीवन-पथ पर आगे बढ़ती रहीं। एक कुल की बेटी अखिल कुलों की बेटी के रूप में चित्रित की गयी है। नोआखाली की विषम स्थिति के चक्कर में पड़ी हुई अमला के सम्बन्ध में कवि कहता है—

> नहीं एक कुल की थी बस वह
> निखिल कुलों की बेटी है,
> उसे उबार बचा लाना है,
> करके तिमिर महोदधि पार।[२३]

सियारामशरण जी ने उस रूपसी का वर्णन भी किया है जिसके लिए परिजनों से लज्जित होकर उसका प्रियतम अपना प्रेम नहीं प्रकट कर पाता है। उपहास और व्यंग्य के बाणों से डर कर प्रियतम लज्जा और धर्म छोड़ कर सबके सम्मुख प्रयाणोन्मुखी[२४] से कुछ नहीं कहता। यहाँ भी कवि का विद्रोह अन्तस्थ रह कर ही प्रकट है। उसने समाज की नारी सम्बन्धी जर्जर और रूढ़ मान्यताओं पर चोटें की हैं; किन्तु खुल कर नहीं। गोपिका में नारियो का वर्णन प्रेमिकाओं के रूप में है। वहाँ कवि ने स्वच्छन्दता से काम लिया है। छायावाद काल में नारी देवि, मां, सहचरि, प्राण मानी गयी। सियारामशरण जी ने नारी के इन सभी रूपों का वर्णन किया है। नारियों के प्रति कवि का दृष्टिकोण उदार रहा है। उनके लिए नारी केवल वासना का विषय नहीं थी। नैतिक दृष्टि से द्विवेदी-युग में वर्णित नारी का जो विशिष्ट रूप है सियारामशरण जी उससे कुछ आगे बढ़े हैं। उन्हीं के शब्दों में देखिए कवि अपनी रचना को प्यार करता है। उसे स्थिति का ध्यान है—

"जब मैं अपनी रचना को प्यार करता हूँ, तब बुरा नहीं करता। बहुत से यह बात कह नहीं सकते, बहुत से यह बात सुन नहीं। पुरानी प्रकृति के लोग किसी को पत्नी के साथ खुले में हँसते-बोलते देख रोष प्रकट करते है। यही

---

२३. नोआखाली : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४७
२४. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृ० १२

यहाँ होगा। इस विषय में आधुनिक भी मेरे लिए पुरानों के दल में जा मिलेंगे। फर भी असम्भव है कि मैं अपनी रचना को न चाहूँ। उसका मतलब होगा कि मैं अपने आपको नहीं चाहता।"[२५]

कवि ने रानियों की चमक-दमक के बारे में सुना है पर वह कुटीर वासिनी को भूल नहीं पाता। छायावादी कवियों के नारी-वर्णन से सियाराम-शरण जी का नारी-वर्णन भिन्न पड़ता है। नारी के सौन्दर्य में यदि छायावादी स्वच्छन्दता सियारामशरण जी के साथ है तो सामन्त युगीन पाली हुई नैतिक भावना ने भी उनका साथ नहीं छोड़ा। जहाँ एक ओर नारी के प्रति किये गये अत्याचारों की ओर संकेत करके उसी की दीन-हीन दशा का वर्णन किया गया है, वहीं उसमें आदर्श गृहिणी बन कर चुपचाप सब कुछ सहने की शक्ति भी भरी गयी है। नारी के प्रेम को लोक-व्यापक चित्रित करके सियारामशरण जी ने छायावादी काव्य-धारा को आगे बढ़ाया है।

नारियों के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण के साथ-साथ सियारामशरण जी ने 'जय-हिन्द' और 'बापू' आदि की रचना करके जागरण के गीत भी गाये हैं जो छाया-वाद-युग की एक विशेष प्रवृत्ति है। स्वयंप्रभा, समुज्ज्वला, स्वतन्त्रता की पुकार[२६] और 'जागो फिर एक बार'[२७] आदि रचनाएँ प्रसाद, निराला आदि की जागरण गीत गाने की भावना का परिचय देती हैं। सियारामशरण जी ने उद्बोधन और जागरण के जो गीत गाये हैं युग की प्रवृत्ति में उनका अच्छा योगदान है। कवि ने जागृति के प्रभात में केवल एक प्रकाश देखने की कामना की है :—

देखा जागृति के प्रभात में एक स्वतन्त्र प्रकाश
फैला है सब ओर एक सा एक अतुल उल्लास।
कोटि कोटि कंठों में कूजित एक विजय विश्वास,
मुक्त-पवन में उड़ उठने की एक अमर अभिलाष।
सबका सुहित सुमंगल सबका, नहीं वैर विद्वेष।
एक हमारा ऊँचा झंडा एक हमारा देश।[२८]

---

२५. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० १५६
२६. चन्द्रगुप्त : प्रसाद, पृ० १७०
२७. अपरा : निराला, पृ० ६८
२८. राष्ट्रीय कविताएँ : संकलनकर्त्ता—विद्यानिवास मिश्र, पृ० ५७

यह गीत स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद का है। राष्ट्रीयता देश-प्रेम और मानव-विकास की भावना से सियारामशरण जी की लेखनी अनुप्राणित होती रही है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पहले लिखे हुए 'जागरण-प्रसंग' में वे लिखते है—

भीतर बाहर का विस्फोटन
थिरता का अस्थिर आलोड़न
गहरी डुबकी का उत्तोलन
उत्थित उदधि-उमंग
जाग तू उज्ज्वल अभय अभंग।[२६]

वस्तुतः राष्ट्रीयता में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना छायावाद की एक विशेषता है। यह विशेषता सियारामशरण जी के विचारों में पायी जाती है। जागरण के प्रसंग में वे परिवर्तन चाहते है पर देश-प्रेम के साथ वे विश्व-प्रेम के भी इच्छुक है। इसी विषय के फुटकर गीतों की रचना समय-समय पर करके छायावादी प्रवृत्ति में वे योगदान देते रहे है। 'अनाथ', 'मजूर', 'खनक', 'वधिक', 'विकलांग' आदि रचनाएँ कवि के ऊपर तत्कालीन प्रभाव को स्पष्ट करती है। असहायों के प्रति सहानुभूति छायावाद की एक विशेषता है। यद्यपि छायावादी कवि अपनी व्यक्तिगत वेदनानुभूति से अधिक पीड़ित है फिर भी वह औरों के कष्ट और पीड़ाएँ भी कभी-कभी देख लेता है। इन कवियों की वेदना का अथाह सागर अपनी लहरियों में जगत को समेट लेना चाहता है। छायावादी कविता का श्रोता और पाठक भी कवि के साथ हो जाता है, यह छायावादी कविता की विशेपता है। सियारामशरण जी की पीड़ा का सागर इतना गहरा तो नही; किन्तु उनकी सहानुभूति लोकव्यापिनी और मर्मस्पर्शिनी है। व्यक्तिगत अन्तव्यापिनी मर्मव्यथा कवि ने कम गायी, पर लोकपक्ष के संवेदनशील चित्रों की रचना अधिक मात्रा में की। यह प्रसंग छायावादी काव्य-प्रवृत्ति मे अपना महत्त्व रखता है।

छंदों के बन्धन तोड़ने में सियारामशरण जी छायावादी कवियों के साथ है। यद्यपि प्रारम्भिक रचनाएँ पुरानी छंद-पद्धति के अनुसार हुई है, पर सियाराम-शरण जी के नवीन छंद-प्रयोगों की देन छायावादी-साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। इनकी इस विशेपता को निराला जी ने भी स्वीकार

---

२६. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० १३

किया है जिसका उल्लेख इसी प्रबन्ध में छंदों के सम्बन्ध में विचार करते हुए विस्तार से किया गया है। यथासम्भव सियारामशरण जी ने प्राचीन छंदों का परिष्कार भी किया है, साथ ही नवीन छंदों का निर्माण भी। सियारामशरण जी के छंद-विधान से यह संकेत मिलता है कि कवि इस दिशा में सचेष्ट रहा है। इसके साथ ही पद-विन्यास और भाषा के लाक्षणिक प्रयोगों की दृष्टि से सियाराम-शरण जी ने छायावाद को बहुत कुछ दिया है। भाषा और शब्द-शक्तियों के प्रसंग में इस दृष्टि से विचार किया जा चुका है।

छायावादी कवि स्वप्नशील (Dreamer) होता है। उसका दृष्टिकोण भी छायात्मक (Visionary) होता है। सियारामशरण जी ने व्यक्तिगत आन्तरिक छायाचित्रों की रचना कम की है; इस प्रसंग को हम पीछे देख चुके हैं। यहाँ हमें यह कहना है कि जगत में नाना रूपात्मक दृश्यों की अनुभूति बटोरता हुआ कवि प्रबन्धकाव्यों की रचना करने में सफल हुआ है। छायावाद-युग में प्रबन्ध-काव्य-कृतियों में कामायनी ही एकमेव प्रौढ़ रचना है। इस काल में फुटकल गीतों की रचनाएँ अधिक हुईं। यद्यपि सियारामशरण जी में भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है; किन्तु कवि की रचनाओं का अर्थ मौर्य-विजय और इति गोपिका प्रबन्ध-काव्य है।

सियारारशरण जी के कवि में पलायन और गोपन की प्रवृत्ति नहीं है। घनश्याम करुणा-धारा बरसाकर सारा संताप दूर कर देंगे, कवि को विश्वास है। नव-जीवन की इस आशा से कवि की लेखनी आगे बढ़ती गयी है। कवि अपनी लेखनी के बारे में स्वयं जानता भी है कि वह प्राचीन और नवीन दो प्रकार की स्याही प्रयोग करती है। जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं में भी कवि अपना कोई विशेष लक्ष्य खोजता प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में दिनकर जी लिखते हैं—"वे काव्य की भूमि में विचारक की भाँति गम्भीरता और सहज विनय के साथ उतरते है तथा प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व का सत्यान्वेषी पुरुषों की भाँति विश्लेषण करते हैं। वे इससे कुछ अधिक ठोस लक्ष्य की तलाश में है।"[३०] यह तलाश अज्ञात-सत्ता की नहीं, सत्य की हो सकती है। सियाराम-शरण जी में वह भावावेग नही जो छायावादी कवि का शृंगार है; किन्तु भाषा, छन्द, प्रवृत्ति तथा प्रयोग की दृष्टि से सियारामशरण जी छायावाद के पर्याप्त

---

३०. मिट्टी की ओर : दिनकर, पृष्ठ १६३

सन्निकट है, वर्ण्य-विषय के क्षेत्र में छायावादी कवियों से सियारामशरण जी का मेल नही खाता। वे विकास की परम्परा में विरोध सहने, प्रकट करने अथवा क्रांतिकारी परिवर्तन के पक्ष में नही है। छायावाद के प्रमुख चार स्तंभों (प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी) का योगदान छायावादी काव्य के लिए समान नहीं रहा। यदि छायावादी कल्पना के व्यक्तिवादी स्वरों में सियारामशरण जैसे तद्‌युगीन कवियों का लोकपक्षीय स्वर मिला लिया जाय तो छायावाद पर लगाया गया व्यक्तिवादी आरोप कम हो सकता है। उसी युग में एक ओर छायावादी कवियों की हृत्तंत्री के तार व्यक्तिगत स्पन्दनों से झंकृत थे दूसरी ओर कुछ कवि अपने ढंग से अपने भाव प्रकट कर रहे थे जिनमें अन्तर्जगत और वहिर्जगत का समन्वय था। आत्मा की प्रमुखता के साथ सात्विक भावों की प्रधानता थी।

⊙

अन्य कवियों के मध्य सियारामशरण जी का स्थान

कुछ कवि ऐसे होते है जो अपने पीछे के कवियों का प्रभाव ग्रहण करते हैं, कुछ अपना मार्ग स्वय प्रशस्त करते है। युगीन विचारधाराओं का प्रभाव जाने-अनजाने न्यूनाधिक सभी कवियों के ऊपर पड़ता है। सियारामशरण जी रवीन्द्र और गांधी से प्रभावित है, यह वात हो चुकी है। रवीन्द्र विश्व-कवि थे, गांधीजी मे राजनीतिक और धार्मिक विशेपता थी। उस युग के कवियों मे रवीन्द्र और गाधी-दर्शन की छाया में मुख्य रूप से निम्नलिखित विशेपताएं पायी जाती हैं—

(क) नवीनता की छाप
(ख) प्रगति और जागरण के स्वर
(ग) विद्रोह की अन्तर्मुखी भावना
(घ) वेदना की अनुभूति
(च) रूपसौन्दर्य-वर्णन के विविध रूप
(छ) लोकव्यापी कल्पना-प्रवणता का आधिक्य
(ज) उपेक्षितो के प्रति सहानुभूति

ये विशेषताएँ छायावाद काल के प्रायः सभी कवियों में पायी जाती हैं। यहाँ हमारा तात्पर्य तुलनात्मक विवेचन से नहीं वरन् इस बात से है, कि युग-धारा के अनुरूप चलने वाले कवियों ने जो काव्य-रचना की, उसके अनुसार सियारामशरण जी की काव्य-रचना किस कोटि की है।

'दूर्वादल', 'पाथेय' और 'विषाद' में दिखायी पड़ने वाले छायावादी लक्षण (रवीन्द्र का प्रभाव) सन् १९१४ के आसपास के हैं। जयशंकर प्रसाद की 'प्रेम-पथिक' रचना सन् १९१३ मे प्रकाशित हुई थी। रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' और 'मिलन' काव्य सन् १९१८ के आसपास के हैं। पंत की 'ग्रंथि' सन् १९२० में प्रकाशित हुई थी। सन् १९३० तक की प्रकाशित रचनाओं में 'प्रसाद' कृत 'कानन कुसुम', 'चित्राधार', 'झरना' और 'आँसू', निराला की 'अनामिका' तथा 'परिमल', रामनाथ सुमन कृत 'विपंची', ठा० गोपालशरणसिंह कृत 'माधवी', सियारामशरण गुप्त रचित 'दूर्वादल', 'आर्द्रा', 'विषाद', महादेवी का 'नीहार', मैथिलीशरण गुप्त रचित 'झंकार', गुरुभक्तसिंह का 'कुसुमकुंज', रूपनारायण पाण्डेय का 'पराग', पंत कृत 'पल्लव' और 'वीणा', रामनरेश त्रिपाठी की 'मानसी', मोहनलाल महतो 'वियोगी का 'एक तारा' आदि प्रमुख है। सन् १९३० के पश्चात् कुछ रचनाएँ तो इन्हीं कवियों की आयीं और कुछ प्रौढ़ रचनाएँ, बच्चन,[1] अंचल,[2] माखनलाल चतुर्वेदी,[3] उदयशंकर भट्ट,[4] आरसीप्रसाद सिंह,[5] भगवतीचरण वर्मा,[6] रामकुमार वर्मा,[7] दिनकर,[8] नरेन्द्र शर्मा[9] आदि कवियों की प्रकाशित हुईं। तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव इन समस्त कवियों पर पड़ा। छायावाद की मिशनरी भावना को कुछ ही कवियों ने ग्रहण किया। शेष कवि न्यूनाधिक छायावाद की प्रकृति के अनुगामी ही रहे। अपने साथी कवियों से सियारामशरण जी निम्न बातों में आगे हैं—

१. एकान्त संगीत, मधुबाला, मधुशाला, निशा-निमन्त्रण आदि
२. अपराजिता
३. हिम किरीटिनी
४. विसर्जन
५. कलापी
६. प्रेम-संगीत, मधुकण
७. चन्द्रकिरण, रूपराशि, चित्ररेखा आदि
८. रेणुका
९. पलाशवन

(क) गांधीवादी अभिव्यक्ति
(ख) भाषा का स्वच्छ और निजी रूप
(ग) शैली का अपना दृष्टिकोण
(घ) लोकपक्षीय दृष्टिकोण
(च) आत्मिक और सात्विक भावना

इन्हीं विशेषताओं के कारण वे युगीन अन्य कवियों से कुछ दूर-दूर प्रतीत होते हैं। नगेन्द्रजी के विचार से "भौतिकता के इस युग में, जिसमें मांस, वासना, अविश्वास और विद्रोह का स्वर सर्वत्र सुनायी देता है, इस साधु कवि की अन्तर्मुखी साधना एक विशेष महत्त्व रखती है। जीवन के निकट होते हुए भी यह कवि युग के किसी अन्य कवि से दूर है।"[१०]

सियारामशरण जी के युग के कुछ कवि छायालोक-विहारी हैं। उनकी कल्पना धरती की नहीं आसमान की है; किन्तु कवि धरती का है। कुछ कवि ऐसे हैं जिनके गीतों की सामग्री धरती से मिलती है। भौतिकता की लहरों में बहने वाले कवि से दिनकर जी ने कहा था—

"प्रवासी कवि! तुम्हारे गीत कालर, टाई और धुले कपड़ों के गीत हैं। उनमें इत्र और फुलेल की खुशबू है—सोंधी मिट्टी की महक नहीं। उनमें लिपस्टिक और रासायनिक योगों का रंग है—धान के नये कोमल पत्तों की हरीतिमा नहीं। सभ्य समाज का हँसना और रोना दोनों ही अर्थपूर्ण होते हैं। उसने तुम्हें रिझा लिया है। जरा उन्हें भी देखो जिनका हँसना और रोना केवल हँसना और रोना ही होता है।"[११] सियारामशरण की रचना मृण्मयी है। वे कभी प्रवासी नहीं बने। दिनकर जी ने सियारामशरण जी को मिट्टी का शोधार्थी माना है।[१२] युगानुरूप प्रवृत्ति के अनुकूल कहीं-कहीं सियारामशरण जी ने कल्पनालोक में विहार अवश्य किया है; किन्तु 'वे धरती के कवि हैं'—इसका उन्हें पूर्ण ध्यान है।

सौन्दर्य की अनुभूति के साथ-साथ आत्म-दर्शन और फिर जगत का सुख-दुःख एक साथ लेकर सियारामशरण जी ही चले हैं। उनकी सांस्कृतिक भाव-

---

१०. आधुनिक हिन्दी साहित्य : सं० 'अज्ञेय', पृष्ठ १३६, १३७
११. मिट्टी की ओर : दिनकर, पृष्ठ २०५
१२. मिट्टी की ओर : दिनकर, पृष्ठ १९६

धारा में कहीं भी क्षीणता नहीं है और न विचारों की दौड़ में संघर्ष। नैतिकता के सहारे दार्शनिकता की जो छाप सियारामशरण जी की कविता पर पड़ी है, अमिट है। वस्तुतः अपनी इस 'टेकनीक' में वे बेजोड़ हैं। इस सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र लिखते हैं—"उनके (सियारामशरण जी के) काव्य का आज हिन्दी में एक पृथक् स्थान है। भारतीय चिन्तन-धारा की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति के वे अकेले कवि हैं।"[13]

भारत की सांस्कृतिक चेतना को आगे बढ़ाने का कार्य द्विवेदी-युग के कवियों ने भी किया है। छायावाद के आधार-स्तम्भ कवि भी संस्कृति को महत्त्व देते रहे। डा० सुरेशचन्द्र गुप्त ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता के कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, सुभद्राकुमारी चौहान, नवीन, उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' के साथ सियारामशरण गुप्त जी का नाम भी लिया है।[14] सियारामशरण गुप्त को छोड़ सारे कवि अपना मार्ग बदलते रहे। कवियों का देश-प्रेम, सांस्कृतिक चेतना, प्रकृति-प्रेम, सौन्दर्य-भावना, स्पष्टवादिता, कल्पना-शीलता, स्वच्छन्दता, दार्शनिकता, प्रगतिशीलता, कलात्मक उपलब्धि, व्यक्ति-निष्ठता, व्यंग्य, ओजस्विता उनकी रचनाओं में उभर कर आया। परिस्थितिवश कुछ कवि राजनीति के प्रभाव में आये और कुछ को व्यक्तिगत परिस्थितियों ने प्रभावित किया। फलतः उत्थान-काल की शैली और उत्साह अपनी समाप्ति पर आया। नवीन आन्दोलनों के प्रभाव ने कुछ का चोला एकदम परिवर्तित कर दिया। वे अब जल्दी नहीं पहचाने जाते। सियारामशरण जी के काव्य की जो धारा बन गयी थी उससे उन्हें पहचानना आज भी उतना ही सरल है जितना सन् १९१४ के आसपास। यह विशेषता भी उन्हें उनको युगीन कवियों से अलग कर देती है।

भाषा के क्षेत्र में भी वे अपना निजी ढंग रखते हैं जो किसी भी पूर्ववर्ती या साथी कवि से प्रभावित नहीं है। पद-विन्यास और शैली भी उनकी अपनी है। रोग से जूझते हुए संसार के अनेक परिवर्तन देखते हुए भी वे साधना-रत रहे यही लगन क्या कम है ? वे यशःप्रार्थी भी उस कोटि के नहीं हैं जिसमें यश के अतिरिक्त कुछ चाहिए ही नहीं।

---

१३. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ : डा. नगेन्द्र, पृष्ठ ३९
१४. आधुनिक कवियों के काव्य-सिद्धांत ; डा. सुरेशचन्द्र गुप्त, पृष्ठ २९१

मूक-साधना में रत रहने का परिणाम यह हुआ कि सियारामशरण जी ने विनोवा और बुद्ध से भी प्रभाव ग्रहण किया। ये सारी भावनाएँ करुणा, अहिंसा का सन्देश देती हैं। इन सन्देशों को सियारामशरण जी ने खूब समझा है। अन्य कवियों की अपेक्षा इनकी साधना जीवन की साधना है। वह कभी भी परिणाम नहीं देखती। यही उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

⊙

सियारामशरण गुप्त के उपन्यास

चित्रित समाज का स्वरूप

ममय के अनुसार मनुष्य के जीवन की वढ़ती हुई गति ने अपने चलने के अनेक ढर्रे ढूँढ़ निकाले हैं। इस काम में उसे वहुत कुछ अपने को वदलना पड़ा है। मनुष्य वदला, उसके साथ ही उसके सोचने का ढंग भी वदला। मनोरंजन और प्रसाधन के साथ मानव जीवन की व्याख्या भी उपन्यास में आयी। फलतः उपन्यास मानव जीवन का चित्र मात्र माना गया।[1] मनुष्य का सम्वन्ध उपन्यास से जोड़ कर केवल उपन्यास की विशेषता नहीं वतायी गयी, वरन् मनुष्य के चित्र की उपस्थिति के लिए उचित मार्ग भी खोजा गया। उपन्यास से वढ़ कर साहित्य की कोई ऐसी विधा नहीं जिसके द्वारा मनुष्य का समुचित और आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया जा सके। कहानी जीवन की व्याख्या के लिए छोटी है। काव्य के अन्तर्गत जीवन के सारे तत्त्वों को प्रदर्शित करना सम्भव नहीं है। उपयोगिता की दृष्टि से कुछ विचारकों ने उपन्यास को 'पाकेट थियेटर'[2] भी

---

१. कुछ विचार : मुंशी प्रेमचन्द, पृ० ४१
२. एन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ लिट्रेचर ; हडसन, पृ० १२६

कहा है तथा बताया है कि उपन्यास में केवल कथावस्तु अथवा पात्र ही नहीं रहते वरन् रीति-रिवाज, दृश्य और अन्य नाटकीय बातें भी समाहित रहती हैं। घटना, विचार और वर्णन प्रणाली की सुविधा के दृष्टिकोण से उपन्यास अपने साथ सुगमता लेकर आया। नाटक और उपन्यास के भेद को बताते हुए विलियम हेनरी हडसन ने बताया है, कि "नाटक लिखने के लिए एक विशेष अनुशासन की, रंगमंच सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता है पर लेखनी रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति उपन्यास लिख सकता है।"[3] यह कथन कुछ अत्युक्तिपूर्ण है। धैर्य, समय और लेखनी आदि के साथ रचना-कौशल और प्रतिभा का भी पर्याप्त और अनिवार्य सहयोग रहता है।

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत उपन्यासकारों की जो एक बड़ी संख्या है, उनकी कला के आधार पर यदि उपन्यास के रचना-कौशल (Technique) पर विचार किया जाय तो एक निश्चित दिशा मिलना कठिन है। देवकीनन्दन जी उपन्यास को केवल मनोरंजन का साधन मानते हैं। इसीलिए मिरजापुर की सुरंगें अथवा अचेतन बना देने वाली बूटी उन्हीं की लेखनी तक सीमित है। उसमें जीवन नहीं है और जीवन को आगे बढ़ाने का कोई उपक्रम नहीं है। पाठकों की सहानुभूति पात्रों के साथ यदि होती भी है तो केवल पुस्तकों के पन्नों तक। इसी के साथ एक लेखनी ऐसी है जो जीवन की व्याख्या के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानती। जीवन की दुर्बलताएँ और कारुणिक प्रसंग ही मनुष्य और जीवन के सम्बन्ध को दृढ़ करते हैं। इसीलिए जीवन का सच्चा चित्र मन को अधिक भाता है। वैसे तिलिस्मी कारनामों पर लट्टू होने वाले लोगों की कमी नहीं है; पर उसकी उपादेयता और कौशल को समाज ने कितना चाहा है, इसे समय की धारा बताती रहती है।

युग की माँग और चिन्तन के दृष्टिकोण रचना-कौशल को प्रभावित करते रहते है। हिन्दी उपन्यास का स्वरूप इन्हीं परिस्थितियों से होकर आगे बढ़ता रहा है। जब समाज में कुरीतियाँ, आडम्बर और पाखंड बढ़े है तब हमें 'कंकाल' दिखाई पड़ा है। जब शोषण, अत्याचार और अनीति बढ़ी है तो 'गोदान' सामने आया है। विचार-परम्परा में जब मनोविश्लेषण ने रंग जमाया है तो 'शेखर' का चित्रण हुआ है। यौनविज्ञान के अध्ययन के फलस्वरूप इन

---

३. एन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑव लिट्रेचर : हडसन, पृ० १३०

समस्याओं को सुलझाने वाली कलमें भी दिखायी पड़ी हैं।[४] नारी की समस्या और गार्हस्थ्य जीवन की झाँकी उपस्थित करने वाले उपन्यासों में सियाराम शरण जी के उपन्यासों का नाम लिया जा सकता है। दैनिक जीवन की घटनाओं का सहारा लेकर उपन्यास का सम्वन्ध मनुष्यता (Humanity) से जोड़ दिया गया है। विलियम हैनरी हडसन ने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है कि अच्छे उपन्यास की विशेषता यही है कि "वह हमारी सामान्य मानवता के संघर्षों और भाग्यों को विस्तृत और गहरी व्याख्या दे। उपन्यास में वर्णित बातें भी गम्भीरता के साथ मानव-हृदय पर प्रभाव डालने वाली हों।"[५] वस्तुतः उपन्यास के साथ मानव और उसकी मानवता दोनों जुड़े हैं। घूम-फिरकर विद्वानों ने यही बताया है कि उपन्यास का विषय मनुष्य है। मनुष्य शब्द अपने में अपनी विविधता के अनेक रूप छिपाए है। उसके साथ एक ओर उसकी मनुष्यता है तो दूसरी ओर उसके क्रूर कर्म भी हैं। यदि अच्छाई-बुराई साक्षेप है तो दोनों का अस्तित्व वांछित है। हाँ, मात्रा और विस्तार में आनुपातिक क्रम होना चाहिए। यद्यपि इस प्रकार का आँकड़ा देना हास्यास्पद है पर अच्छाई हमारे जीवन की माप होनी चाहिए, बुराई नहीं। जिस प्रकार अंधकार का महत्त्व केवल इसलिए होता है कि हम प्रकाश को जानें, उसी प्रकार समाज में बुराई है। यदि सारा समाज दूध का धोया होता तो कदाचित हमें गाथा गाने की आवश्यकता न होती।

जिस दिन से उपन्यास जीवन का तानाबाना लेकर जगत में आया है, उसी दिन से लोगों को इस पर विश्वास होने लगा है। जीवन से पृथक् होकर उपन्यास का कोई महत्त्व नहीं है। मनुष्य के गौण विचारों की चित्रण-परम्परा सार्वभौम (Universal) नहीं हो पाती है। उसकी मुख्य दैनन्दिन समस्याएँ ही महत्त्वपूर्ण होती हैं। आकर्षण और विकर्षण का भाव सार्वभौम होता है। इसीलिए इसका चित्रण कभी भी बासी नहीं हो पाता। सत्य और कल्पना द्वारा जगाये गए विश्वास और जिज्ञासा के सुन्दर रूप ही उपन्यास में मिलने चाहिए। हिन्दी उपन्यासों का विकास बहुत कुछ इस दिशा में हुआ है। सियारामशरण जी के उपन्यासों में सत्य का ऐसा चित्रण नहीं है कि वह इतिहास बन गया

४. श्री यशपाल, श्री मन्मथनाथ गुप्त तथा इलाचन्द्र जोशी आदि के कतिपय उपन्यास इसी श्रेणी में आते हैं।

५. एन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑव लिट्रेचर : हडसन, पृष्ठ १३२

हो तथा कल्पना का ऐसा कोई रूप भी नहीं है कि उसका सत्य से कोई परिचय न हो।

सियारामशरण जी के तीनों उपन्यासों में 'गोद' की रचना सर्वप्रथम हुई है। गोद में जिस समाज की झाँकी हमें मिलती है उस समाज से हिन्दी-भाषी जनता सुपरिचित है—कुछ तो मुंशी प्रेमचन्द द्वारा और कुछ उन्ही की शैली से मिलती-जुलती शैली के लेखकों द्वारा। 'गोद' में गाँव का चित्रण है जो अपने साथ अपनी अशिक्षा, कमजोरी, रूढ़िवादिता आदि लिए है। ऐसा प्रतीत होता है, कि लेखक के हृदय की करुणा, ममता, दया, प्रेम और सहानुभूति उपन्यास में साकार होकर सामने आती है।

शोभाराम 'गोद' का नायक है। जिस समाज में वह रह रहा है, वह साधारण है, ग्रामीण है। उसके परिवार में उसके भाई और भाभी दो ही मुख्य प्राणी है। शोभाराम भाभी को भौजी कहता है। वंसा काम-काज करने वाला नौकर है। दयाराम शोभू का बड़ा भाई है। किशोरी कौशल्या की लड़की है जिसके साथ शोभू का विवाह निश्चित हुआ था, मेले मे किशोरी के खो जाने पर स्वयंसेवकों ने उसे घर पहुंचाया था। इसी बात को लेकर शोभाराम की ओर लोग शंका प्रकट कर रहे हैं। यह सब ऐसे समाज का चित्रण है जिसके साथ उसकी दुर्बलता है तथा दुर्बलता को प्रकट करने की क्षमता है। तीर्थ का पुण्य लूटने के लिए तीर्थ जाना ही 'गोद' का अर्थ है। पार्वती, दयाराम आदि ऐसे समाज के प्राणी है जिनकी प्रत्येक साँस धर्म का नाम लेकर चलती है। इतना ही नहीं तीर्थ से लौटकर सीधे घर जाना चाहिए इस विचार की मान्यता भी है—तीर्थ से लौटने पर मीठी झिड़की के साथ पार्वती शोभू को समझाती है :—

"कैसी बात करते हो लल्ला! भइया के साथ जाना क्या किसी दूसरे के यहाँ जाना है? वे तो यहाँ तक पहुँचाने के लिए आ रहे थे। मैने ही उन्हें घर जाने के लिए कहा, तब कही रुके। तीर्थ से लौट कर सीधे घर जाने की ही विधि है। इसमें किसी को बुरा नहीं मानना चाहिए।"[६]

तीर्थ और तीर्थ के देवता पर विश्वास करनेवाले इस परिवार का जीवन अत्यन्त सुखी है। शोभू के लिए पार्वती की गोद माँ की गोद है, तथा पार्वती

६. 'गोद' : सियारामशरण गुप्त, पृ० ८

भी अपने हृदय में वात्सल्य का सुन्दर रूप छिपाये है । शोभाराम को अपनी 'भौजी' पर विश्वास है। इस छोटे परिवार को हम मध्यम श्रेणी का परिवार कहेंगे। इसको जीवन-यापन में असुविधा नहीं है। इस परिवार में एक नौकर भी है। उधर किशोरी का परिवार भी वहुत कुछ इसी कोटि का है। रामचन्द्र मुखिया की वात तो मुखिया होने के नाते ही ज्ञात है।

उपन्यास के पात्रों का जो चित्रण किया गया है उसके आधार पर वे देवों की कोटि में न जा कर मनुष्यों की कोटि में ही रह जाते हैं। और ऐसे मनुष्य जो अपनी दुर्वलताओं से दुर्वल और सवलताओं से सवल हैं। 'गोद' का प्रारम्भ जिस धार्मिक कृत्य से होता है, समाज में उसकी प्रमुखता है। तीर्थ से लौटने वाली पार्वती को शोभाराम पवित्र दृष्टि से देखता है। पार्वती की दृष्टि में शोभू सुशील और आज्ञाकारी है। इसका परिचय समयानुसार मिलता रहता है। लोकप्रवाद से ऊवने वाला शोभाराम किशोरी से विवाह कर लेता है; वह भी अपने भाई की चोरी-चोरी। यह ऐसा समाज है जो अपने वन्धनों से स्वयं जकड़ा हुआ है। ऐसे समाज में अपने किये पर पछताने वालों की कमी नहीं है तथा विना पछताये अकरणीय कार्य करने वालों की अधिकता भी छिपायी नहीं जा सकती। एक ओर परिवार की शस्य-श्यामला धरती पर फूट की वारूद फैलाने वाला 'रामचन्द्र' है और दूसरी ओर दो परस्पर अनुरक्त प्राणियों को प्रणय-सूत्र में वांधने का सफल प्रयास करने वाली 'सोना' भी है।

लोकापवाद की जिस सामान्य धारणा से शोभाराम और किशोरी का विवाह-विच्छेद हो जाता है, वह समाज की सामान्य वात है। इस प्रकार के लोकापवाद के दुष्परिणाम पता नहीं कितने लोगों को भोगने पड़े है। किसी का काम वनाने के लिये अपना सर्वस्व लगा देना और विगाड़ने के लिये टरकाना भी समाज में खूव पाया जाता है। शोभाराम ऐसे ही समाज का सदस्य है। वड़ों के सामने अपनी अज्ञानता दिखाने में सज्ञान वनना एक निपुणता है। ऐसी निपुणता 'गोद' उपन्यास में कई स्थलों पर दिखाई गई है।[७]

कभी-कभी स्वार्थ के लिए व्यक्ति दूसरों की निन्दा करता है, पर जव निन्दा करना या विग्रह करवाना व्यक्ति का ध्येय वन जाता है तो उसे स्वार्थ और परमार्थ की चिन्ता नहीं व्यापती। विचार-वैभिन्य के आधार पर जितने

---

७. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० ५५

शिर हैं, उतनी बातें हैं। 'गोद' का समाज कुछ इसी प्रकार का है। वह प्रोग्रेसिव होने में संकोच ही नहीं करता अपितु डरता भी है। यद्यपि समस्या और समाधान का समुचित रूप इसकी विशेषता है; किन्तु मर्यादा और परम्परा की लीक पर चलना भी यह नहीं भूलता चाहे फिर गिरे भी तो क्या ! कदाचित् लेखक ने रामचन्द्र मुखिया के चरित्र को केवल मुकदमा दायर करवाने के लिए ही बुलाया है। इसके बाद उसकी झलक भी नहीं दिखायी पड़ती। इस घटना से शोभू की मानवीय दुर्बलता का साकार रूप सामने आ जाता है। जिनके माथे का सिन्दूर काल ने समय से पहले ही पोंछ दिया है, ऐसे लोगों में गंगादीन तिवारी की लड़की सोना है। कितनी ममता है उसके हृदय में किशोरी के प्रति, कहा नहीं जा सकता। यद्यपि समाज में ऐसे लोगों की छाया से भी बचा जाता है पर यहाँ सियारामशरण जी ने इस बात की ओर संकेत नहीं किया। कारण स्पष्ट है, कि मित्रता और अपनापन उत्कृष्टता और निकृष्टता के विवेक से शून्य होता है।

'अंतिम आकांक्षा' का सामाजिक चित्रण बहुत कुछ 'गोद' से मिलता-जुलता है। रामलाल बचपन से ही अपने मालिक के यहाँ काम करता है। इसी दशा में वह अपनी ईमानदारी और मानव-सुलभ दुर्बलताओं को लेकर जीवन-पथ पर बढ़ता जाता है। जिस प्रकार के समाज से उसे पाला पड़ा है, उसका रूप लेखक इस प्रकार आँकता है :—

"कापालिक की मृत-साधना इस समाज का स्वभाव है। संसार में जीवित की अपेक्षा मृत ही दुर्लभ है। किसी मृत को देखते ही यह समाज उसके शव के निकट आसन मारकर स्वादिष्ट भोजन के लिए चंचल हो उठता है। यह उसकी धार्मिक विधि है।"[८]

जी तोड़कर स्वामिभक्ति के साथ काम करने वाले व्यक्ति का समादर यहाँ इस समाज में नहीं है। यहाँ छिद्रान्वेषण करने वाले अधिक हैं, किन्तु सही मूल्यांकन करने वाले कम हैं। धर्म की चिन्ता ने यहाँ के व्यक्तियों को घुला डाला है। सारा का सारा समाज 'बुरे' का अन्वेषक है। यदि कोई दृष्टान्त मिल गया तो उसकी शव-परीक्षा के बाद अंगों का परिचय भी कठिन हो जाता है। समाज के धर्मध्वज अपने कर्मों का भार दूसरों पर लादने में संकोच नहीं करते।

---

८. अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० १८

करें भी क्या, वे ईश्वर के अधिक समीप जो हैं। अपने पर विश्वास न करने वाला समाज दूसरों पर क्या विश्वास करेगा ?

लोक जीवन की पवित्रता, दृढता, वीरता और दुर्बलता का प्रसंग ही 'अंतिम आकांक्षा' में किया गया है। नायक रामलाल—जिसके चारों ओर कहानी चलती है दूसरों के हाथ का बनाया खा सकता है अपने हाथ से बनाकर खिला नही सकता है। समाज उसे ऐसा नही करने देगा। वह बर्तन मल सकता है। घर की सफाई कर सकता है। अपने स्वामी की सुविधा के लिए वह सब कुछ कर सकता है, पर स्वामी अपने 'नौकर' को भी समाज की जोंकों से बचा नही सकता। समाज की आँखों की ग्राहिकाशक्ति अत्यन्त निपुण होती है। विशेषता यह है, कि कभी-कभी स्वामी को भी समाज का शिकार बन जाना होता है।

गार्हस्थ्य जीवन की वह झाँकी यहाँ पाठकों को देखने को मिलेगी जहाँ ममता और अपनापन देखकर हृदय द्रवित हो जाता है। रामलाल ने ऐसी ममता का आनन्द लिया है। यही नही, अपने उस वातावरण मे अख्यात साहित्यिक की तरह अपनी सर्वोत्तम वस्तु सुनाने को वह व्यग्र हो उठता है। मुन्नी कहती भी तो है—

'हाँ, रामलाल, सुनसान अँधेरी रात मे पेड़ के पछी ने—आदमी की बोली मे कहा, हाँ क्या कहा ?'[९]

लेखक की पैनी दृष्टि उस ओर भी गई है जहाँ चोरी होती है। स्वामी की दृष्टि बचाकर नौकर-चाकर अनाज और अन्य वस्तुएँ चुरा लेते है। यही वास्तविकता है। यही जीवन है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी सहज और सुलभ दुर्बलता से आक्रान्त है। कष्ट की सीमा के पार व्यक्ति बौखला जाता है; किन्तु व्यक्ति की दुर्बलता ने ही उसे व्यक्ति बनाया है अन्यथा वह स्वर्गिक होता। एक चुराता है, दूसरा बताता है। तीसरा दंड देता है। चौथा उसे छोड़ देता है। है न ये कलाकार अपने-अपने ढंग के। रामलाल द्वारा अपने एक साथी की व्याख्या कितनी स्वाभाविक है :—

'सीधा-सादा नही है उसमें बड़े गुण है। कल साँझ के झुटपुटे मे लोटा लेकर जल्दी-जल्दी दिशा के लिए जा रहा था। मैंने झट से पीछे से हाथ पकड़

---

९. अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० १५

कर लोटा औंधा दिया। नीचे जमीन पर डेढ़ सेर गेहूँ फैल गए। मेरे पैर पकड़ कर रोने लगा—भइया, किसी से कहना नहीं।'[१०]

जिस धर्म ने पाखंड बनकर इस समाज को छला, जिस कर्म ने इसके ऊपर व्यर्थ की मर्यादा का भार डाला उससे यह कभी ऊबा नहीं, उफ् तक नहीं किया। बँदरिया के मरे बच्चे की भाँति लटका रह कर भी एक वर्ग ऐसा है जो अपने धैर्य की शान्ति को अभी तक सम्हाले है पर इसी धर्म-कर्म की आड़ में सब कुछ होता है—

'धर्म-कर्म भी तो कुछ है। कई बार मेरे घर भी दिन-दिन भर रोटी नहीं बन सकी। परन्तु बप्पा कहते हैं, धीरज धरने से सब कुछ ठीक हो जाता है। भगवान रात-रात भर सबका पेट भरते हैं।'[११]

रामलाल की अंतिम आकांक्षा भी यही है, कि वह अगले जन्म में भी यहीं अपने स्वामी की सेवा करे। उसे ऐसे परिवार का साथ मिला जो उसे प्यार करता है। परिवार के ऐसे सम्बन्धी भी मिले जो उसे घृणा करते हैं। और घृणा भी इसलिए कि उसने एक डाकू को गोली मार दी थी इसी कारण वह नीच है, पापी है और अधम है। यह समाज डाकुओं का है, ईमानदारों का है, अधर्मियों का है, धार्मिकों का है। पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, घृणा और ममता की विविधता ही समाज की सही और वास्तविक झाँकी है। लेखक की यही विशेषता है, कि उसकी लेखनी ने जिस समाज का चित्रण किया है उसकी सत्यता के प्रति हमारा विश्वास भी है।

यह विश्वास 'नारी' के चित्रित समाज में और उभर कर आ गया है। जमुना साधारण पति की साधारण पत्नी है। वह ऐसे समाज में रहती है जहाँ के लोग चरित्र के ठेकेदार हैं। उनकी आँखें बड़ी तेज है। ये लोग प्रायः किसी पर विश्वास नहीं करते। सामाजिक चित्रण के ये विविध रूप ही 'नारी' उपन्यास की झाँकियाँ हैं। यहाँ पिता का विश्वास है कि गऊ माता की सेवा करने से सारे दुःख-दर्द दूर हो जाते हैं। बड़ी महिमा है उसकी। जमुना का पति वृन्दावन शहर जाना चाहता है। पिता ने कहा—

'दस-बीस के महीने के लिए परदेश जाकर कुली कहलाना क्या भले आदमी का काम है? घर की गऊ माता की सेवा तो करेंगे नहीं, बाहर जाकर दूसरे

१०. अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३५
११. अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३४

की जूती के चाकर बनेंगे। धिक्कार है अब के इन लड़कों की समझ को।'[१२]

सामाजिक चित्रण में लेखक ने प्रेम, करुणा, दया, घृणा, क्रोध, अपमान आदि को वाणी दी है। जो ईर्ष्या अथवा शंका मानव का भक्षण करना चाहती है, उसका चित्रण स्वाभाविकता की भाव-भूमि पर हुआ है। जमुना की आँसू-भरी स्मृतियाँ केवल पीड़ा बनकर रह जाती हैं। वर्णन उस समय अपनी सीमा के बाहर जाना चाहता है जब वृन्दावन लौटकर अपनी सम्पत्ति बेच देता है। उसे जमुना के चरित्र पर शंका है। ये परिस्थितियाँ गाँव वालों ने उत्पन्न की हैं। उत्पन्न क्यों न करते? वस्तुतः यही गाँव है, यही समाज है, और यही उसका सही चित्रण है।

पति के विदेश जाने पर एक असहाय पत्नी के लिए सहारा ही क्या बच रह जाता है? जमुना के पास उसका एकमात्र पुत्र 'हल्ली' है। वह उसके जीवन की आशाओं का साकार रूप है। उसमें बाल-सुलभ चापल्य और भोला-पन दोनों हैं। वह भी अपने पिता के पते के लिए कलकत्ते से पत्रक मँगाता है: अपने समाज में ऐसे पता नहीं कितने लाडलों के पिता परदेश जाकर कभी नहीं लौटे। सदा के लिए चले गये। पत्रक द्वारा पिता के पता लगाने का कार्य बाल-सुलभ है। ठीक इसी प्रकार अपनी पतंग में 'काकी' लिखकर एक बालक अपनी काकी को स्वर्ग से धरती पर उतारना चाहता है।[१३] क्योंकि किसी ने उसे यह बता दिया है तुम्हारी काकी स्वर्ग गई है, जो ऊपर है।

इस समाज में धर्म पर विश्वास किया जाता है, पर आवश्यकता पड़ने पर स्वार्थ के लिए धर्म का गला भी घोटा जा सकता है, रामायण की पोथी की पूजा की जा सकती है पर संयोगवश उसे नष्ट भ्रष्ट करना पड़ता है। जमुना में आशा और विश्वास का संगम पाया जाता है।

संगम की यही पवित्रता उसके पगों को डगमग नहीं होने देती। पर समाज मानता कब है। सियारामशरण जी के तीनों उपन्यासों के सामाजिक चित्रण में लेखक की अनुभूति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। जीवन में पैठ कर लेखक ने जीवन को देखा है। दृष्टि की यही समीपता चित्रण की उत्कृष्टता है। प्रेमचन्द जी ने कहा था—'हम तो समाज का झंडा लेकर चलने वाले सिपाही हैं और सादी जिन्दगी के साथ ऊंची निगाह हमारे जीवन का लक्ष्य है।'[१४] किसी

१२. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २

१३. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ११२

१४. कुछ विचार : मुंशी प्रेमचन्द, पृष्ठ १९

भी व्यक्ति का मूल्यांकन सामाजिक दृष्टिकोण से करना सियारामशरण जी की विशेषता है। 'सादी जिन्दगी और ऊँची निगाह' वस्तुतः यह शाश्वत सामाजिक दृष्टिकोण है। अपनी परिस्थितियों से लड़ती हुई जमुना जिस नारी-समाज का प्रतिनिधित्व करती है, वही कहीं निर्बल के रूप में सबलता की ओर याचना भरे नयनों से निहारता है और कहीं पत्थर की छाती करके समाज और भाग्य के क्रूर प्रहारों को झेलता है। शोभाराम ('गोद' का नायक), रामलाल ('अन्तिम आकांक्षा' का नायक) तथा वृन्दावन ('नारी' का नायक), तीनों ऐसे समाज के सदस्य हैं जहाँ आस्था ही सब कुछ है। इनके समाज में मानवता और नैतिकता को सदैव समर्थन मिलता रहा है। यह समाज संघर्ष नहीं जानता तथा परिवर्तन का इसने नाम नहीं सुना। यहाँ क्रान्ति नहीं, सुधार का उग्र दृष्टिकोण नहीं, क्योंकि 'सियारामशरण जी में सुधारवाद का स्वर इतना गुंजित नहीं होता, जितना विशुद्ध नैतिकता और मानवता के पक्ष का समर्थन है।'[१५] मानवता और समाज की मंगल भावना का महल गांधीवाद की पुष्ट नींव पर बना है। सत्य और अहिंसा से अनुप्राणित विचार-धारा समाज में सद्भावना और सहअस्तित्व की भावना पैदा करती है।

कथाशिल्प और अंकित चरित्र

उपन्यास की रचना करते समय लेखक के मस्तिष्क में कथावस्तु का ध्यान सर्वप्रथम आता है अथवा चरित्र का, यह प्रश्न विचारणीय है। कथावस्तु के आधार पर चरित्रों की रचना होती है या चरित्रों को ध्यान में रखते हुए कथा-वस्तु की। लेखक जब संसार का पर्यवेक्षण करने के लिए बाहर आता है, तो उसे दो प्रकार के चित्र मिलते है— एक तो प्राकृतिक और दूसरे सांसारिक अर्थात् भौतिक। एक ओर वह देखता है प्रकृति की गोद में बिखरी हुई राशि-राशि शोभा तथा दूसरी ओर उसे मानव-सम्बन्धी चित्र दिखायी पड़ते हैं। ये कुछ धुँधले तथा कुछ बिल्कुल स्पष्ट होते है, क्योंकि उपन्यास मानव चरित्र का चित्र है इसलिए स्वभावतः लेखक का मन यहाँ रमता है। लेखक जगत के अनेक दृश्यों का अवलोकन करता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है। मार्ग में उसे अनेक चित्र मिलते जाते है। लेखनी कुछ को समेटती और कुछ को छोड़ती जाती है। कतिपय चित्र छायाचित्रों की भाँति अपनी शीघ्रता और निर्विशेषता के कारण शीघ्र ही छिप जाते हैं, किन्तु कुछ अपनी छाप छोड़ कर छिपते है।

१५. हिन्दी उपन्यास : डा० सुषमा धवन, पृ० १०

मानव सम्बन्धी इन दृश्यों की दो कोटियाँ है। एक तो सुखपूर्ण तथा दूसरी दु:खपूर्ण। सुख वाले दृश्य मानव-हृदय को कम स्पर्श कर पाते है। दु:खपूर्ण चित्र लेखक को अधिक आकर्षित करते है। जहाँ जटिलता होती है, समस्या होती है, वही लेखक स्वाभाविक रूप से धीमा चलता है, कभी-कभी रुक भी जाता है। जहाँ लेखक का भावुक हृदय छटपटाने लगता है, अभिव्यक्ति का मार्ग पाने के हेतु व्याकुल होने लगता है वहाँ के चित्र विशेप आकर्षण के कारण वनते है। इस प्रकार के चित्र को पूर्ण वनाने के लिए लेखक अन्य चित्रों का संयोजन भी करता है। यही कथावस्तु की नीव पड़ती है। लेखक अपनी कथा-वस्तु के अनुसार चरित्रो का चयन करता है। उसका कौशल इसी वात मे है कि कथावस्तु का रूप जटिल न होने पाये। जटिल कथावस्तु पाठकों की अध्ययन-रुचि पर चोट कर सकती है। कथावस्तु की भावधारा उस मन्दाकिनी के समान होनी चाहिए जो अपने धीमेपन मे गहराई और प्रशान्तता दोनों लिये हो। उसकी सुन्दर लहरियाँ ससार के नयनों को सुख देती चलें तथा शीतल जल से विचारो की धरती शस्य-श्यामला वनती चले।

इस सम्बन्ध में सियारामशरण जी की लेखनी अत्यन्त सजग है। कथावस्तु के निर्माण में उसकी कुशलता का परिचय मिलता है। लेखक ने अपने कथानकों मे ग्राम्य जीवन के चित्र खीच कर इस वात का परिचय दिया है कि जीवन एक समस्या है। उसको मानव सुलझाता रहता है। प्राणपण से आगे वढने की चेप्टा करता रहता है। सामाजिक मान्यताओं, अन्तस्तल के विद्रोहो तथा मानव-सुलभ दुर्वलताओ से सारे कथानक पूर्ण है। इनमे लेखक की अनुभूति महत्त्वपूर्ण है। अंकित चित्रों के साथ स्वाभाविकता और सवेदना की तीव्रता है। गोद का कथानक इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

"सवेरे की धूप का सेवन करके शोभाराम नहाने की तैयारी मे था। इतने मे द्वार पर अचानक एक गाडी आ खड़ी हुई। पार्वती के गाडी से उतरने से पहले ही शोभाराम वहाँ आ पहुँचता है। झट से पैर छूते हुए उसने उन्हे सहारा देकर नीचे उतारा। आनन्द और आश्चर्य से विह्वल होकर वोला — 'अरे भौजी, समाचार दिये विना ही कैसे आ गयी? तुम तो काशी और अयोध्या जा रही थी? वंसा दिन भर न जाने कहाँ रहता हे? ओ भगोला, आ सव सामान झट से उतार तो।"[१६]

'गोद' का प्रारम्भ गार्हस्थ्य जीवन से हुआ है। देवर-भाभी की वात-चीत से

१६. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७

आगे बढने वाली कथा का अन्त भाई-भाई मे सहज स्नेह प्रदर्शित करते हुए होना है। सामाजिक कथावस्तु में शोभाराम का विवाह किशोरी से निश्चित हो जाता है। किशोरी अपनी मा के साथ मेले जाती है। मेले में भीड़ अधिक हो जाने के कारण किशोरी खो जाती है। पार्वती (शोभाराम की भाभी) के घर लौट आने का कारण भीड़ ही है। खोयी किशोरी स्वयंसेवकों को मिल जाती है। उनकी सहायता से वह अपनी मां का साथ पुनः प्राप्त कर लेती है। वय:प्राप्त लडकी का रात भर बाहर रहना समाज के धर्माधिकारी कैसे देख सकते हैं ? कौशल्या किशोरी की मां है। अपने किसी पड़ोसी के मुख से उसने सुना है, कि शोभाराम का विवाह निश्चित करने के लिए कहीं से नाई आया है। यह बात कौशल्या के हृदय में चुभ जाती है। उसका असमर्थ हृदय विद्रोह करने पर उतारू हो जाता है। वह किसी प्रकार सम्हलती है, पर हृदय मे तूफान और आँधी छिपाकर। समाज द्वारा लगाया गया लांछन इतना पक्का है, कि उसे कोई धो नही पाता। शोभाराम को इस प्रकार का वातावरण नहीं भाया। उसे अपने परिवार वालों के विचार भले नही लगे। बड़े भाई दयाराम चाहते थे, कि सगाई कही अन्यत्र हो जाय। भाभी यद्यपि शोभाराम को बहुत चाहती थी पर पति की बात को कैसे टाल सकती थी ? अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी शोभाराम कौशल्या के घर पहुँच कर विवाह कर लेता है। यह काम साधारण नहीं था। समाज के आक्षेप का ध्यान न कर परिवार की विचार-धाराओं की उपेक्षा कर कोई कार्य करना कितना संकटमय है, इसे समाज में रहने वाले सदस्य भली-भाँति जानते हैं।

कौशल्या की चिन्ता विवाह के पहले इसलिए बढ़ गयी थी, कि गाँव वालों की तीव्र दृष्टि और मुखर ओष्ठों के कारण एक विवाह-सम्बन्ध टूट चुका था। शोभाराम और किशोरी के विवाह के पश्चात् कथावस्तु का अन्त सन्निकट लगने लगता है; किन्तु रामचन्द्र नामक व्यक्ति (गाँव का मुखिया) ने शोभाराम से दयाराम के विरुद्ध न्यायालय में अभियोग लगवा दिया। यह मानव-स्वभाव की दुर्बलता और शंका का वास्तविक चित्रण है। रामचन्द्र शोभाराम को भोजन करवाता है, दयाराम के विरुद्ध उभाड़ता है, पर रह-रह कर शोभाराम का विश्वासी हृदय, जो अब अविश्वास के झोंके से लड़खड़ा रहा है, कचोट उठता है। समय की गति के साथ रामचन्द्र की चालों का पता लग जाता है। तभी तो शोभाराम कहता है —

'रामचन्द्र बड़ा भारी दुष्ट है। अभी जाकर उसकी हड्डी-पसली न तोड़ दी तो मेरा नाम।'[१७] कथानक के अन्त में डेढ़ पहर रात बीत जाने पर निर्द्वन्द्व भाव से शोभाराम अपने घर में प्रवेश करता है। वह प्रसन्न है। उसे विश्वास है कि बड़े भैया क्षमा कर देगे। वस्तुत: हुआ भी यही। भाभी की गोद बहू ने भर दी, भाई की गोद भाई ने। यही है गोद की कथा का सारांश।

गोद में वर्णित सारी घटनाओं का उत्तरदायी समाज है। रामचन्द्र मुखिया, पं० हरीराम तथा दयाराम इसी समाज के सदस्य है। मुखिया जाति के लोग इसी प्रकार का काम करते हैं। दयाराम कथावस्तु में बड़े भाई के रूप में हैं। सियारामशरण जी ने बड़े भाई को स्वभाव से क्षमाशील और उदार चित्रित किया है। इसमें लेखनी की भावुकता का सम्बन्ध सीधे हृदय से है। बड़ा भाई ऐसा कि छोटे भाई के लिए सूनी गोद खोलकर बैठा है। छोटा भाई भी अपनी भूलों का प्रायश्चित्त करता हुआ बड़े भाई के पास ही शान्ति-लाभ करता है। यह त्रेता का समाज नहीं है। इसमें भौतिकता अधिक है। ऐसी भौतिकता जो आदमी को अंधा बना देती है।

'अन्तिम आकांक्षा' भी एक लघु उपन्यास है। बालक रामलाल का परिचय जो उपन्यास का नायक है, इस प्रकार है :—

'एक बालक आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। अवस्था में वह मुझसे बड़ा न था। परन्तु अपनी स्वस्थ देह के कारण वह पहली बार ही मुझे अपने से बड़ा मालूम हुआ। मुझे अपनी ओर देखते देखकर अपने अपरिचय के किसी संकोच के बिना तुरन्त ही उसने कहा –परमादी भैया सौदा-पत्ता लेने बाजार गये हैं, क्या काम है—मैं कर दूँगा।'[१८]

ये प्रारम्भिक पंक्तियाँ इंगित करती है, कि अपने स्वामी के प्रति रामलाल के मन में असीम श्रद्धा है। कर्त्तव्यनिष्ठा की धरती पर पलने वाला रामलाल अपने स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता रहता है। स्वामी का काम अपना मुख्य स्थान रखता है। ऐसे काम करने में शरीर को कष्ट मिले तो क्या! अपने प्राणों को आपत्तियों की आँधी में दौड़ाता हुआ रामलाल सदैव प्रयत्नशील रहता है, कि स्वामी के काम में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। स्वामी के यहाँ

---

१७. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० १४१
१८. अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६

डाका पड़ता है। डाकुओं से त्राण पाने के लिए परिवार के सभी सदस्य व्याकुल हो उठते हैं। रामलाल की चिन्ता बढ़ जाती है। साहस और उमंग सँजोए अपने प्राणों की बाजी लगाकर बड़ी लगन के साथ वह डाकुओं का सामना करता है। संयोगवश उसके हाथ से एक डाकू मारा जाता है। इसी बात पर सारा समाज उसे 'हत्यारा' कहता है। जो लोग रामलाल की कर्तव्यपरायणता से परिचित हैं उनकी हिम्मत नहीं होती, कि 'हत्यारा' कहने वालों को मुँहतोड़ उत्तर दे सकें। 'हत्या' का रूप तब और भयंकर बन जाता है, जब पता चलता है, कि मारे जाने वाले डाकू के गले में यज्ञोपवीत भी था।'

हरिनाथ के यहाँ आई हुई बारात के लोग दोषारोपण करते हुए कहते हैं:—

"तो सुनो लाला आपके यहाँ कोई रामलाल है! रमला—हाँ वही नौकर। उसी के बारे में एतराज है।"

"क्या एतराज है?"

'एतराज कुछ नहीं, धर्म की बात है। कुछ भी हो हमें धर्म का पालन करना चाहिए।"[१९]

"रामलाल से जो आदमी (डाकू नहीं) मर गया उसके गले में जनेऊ था। अब ब्रह्म-हत्या का पाप उसे लगा या नहीं। उसे गंगाजी जाकर प्रायश्चित्त करना चाहिए। इसलिये घर जाकर सबसे पहले उसे हटा दो, तभी हम भोजन में शामिल हो सकेंगे।"[२०]

रामलाल बिना किसी भी प्रकार का अपमान अनुभव किए चला जाता है। पर जिस मुन्नी को उसने खिलाया है, उसके विवाह का आयोजन वह न देख पाये, यह हृदय को कचोटने वाली बात है। वह इसलिए चला जाता है कि मुन्नी के विवाह में उसके कारण व्यवधान न उपस्थित हो। रामलाल के चले जाने के बाद दुर्भाग्य ने उसका साथ न छोड़ा। यद्यपि उसने विवाह किया था सुखी होने के लिए पर फिर भी उसे सुख न मिला। सुख कहीं खरीदा भी न जा सकता था। अब धीरे-धीरे घर की ओर से रामलाल की विरक्ति देखते न बनती थी। वह दिन भर परिश्रम इसलिए कर लेता था, कि कहीं ऐसा न हो थकान से भेंट न होने पर स्त्री की भाँति निद्रा भी दूर चली जाय। एक बार मुन्नी की ससुराल में रामलाल को अपमान की अग्नि से पुनः तपना पड़ता है।

१९. अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७०,७१
२०. अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७२

अपमान कदाचित् अंतिम आकांक्षा के पाठक सोचते हों पर रामलाल नहीं सोचता। यही तो दुनिया का लेखा-जोखा है। अपने अपमान से रामलाल विचलित नहीं हुआ पर मुन्नी को वह रोक नहीं सका। मुन्नो के नयनों से असमर्थना की अश्रु-धारा वही जा रही थी। कथावस्तु में रामलाल की स्वामि-भक्ति प्रदर्शित करने वाली एक घटना प्रमुख है। स्वामी की मां की बीमारी में ट्रेन छूट जाने पर रामलाल पैदल जाकर ठीक समय से औषध लाता है। मा के गोलोकवास से रामलाल का हृदय विचलित हो उठता है। उसकी मां छुटपन मे ही उसे छोड गयी थी। दुबारा मां का मरण कैसे सहा जाता?

सात-आठ वर्ष के बीच रामलाल अपने स्वामी के यहाँ दो-तीन बार आया। उसका घर अब खंडहर बन चुका था। स्वामी को बारात के प्रसग में नये गाँव जाना पड़ा। रामलाल से मिलने की उत्कट इच्छा उसके हृदय में थी। रामलाल के बूढ़े पिता ने रामलाल के सम्बन्ध में कुछ बातें बतायी। डाकू न्यायाधीश की कृपा से छोड़ दिये गये हैं। इस कार्य में वकीलों की वाक्पटुता ने अधिक कार्य किया है। डाकुओं के छूट जाने पर रामलाल आतंकित हो उठता है। इसीलिए बहुत दूर उसने घर बनाया है। पुलिस की दृष्टि से यह निर्दोष दोषी बच नहीं सकता। दस साल से रामलाल डाकुओं का काम करता आ रहा है, इस बात को पुलिस ने अदालत में प्रमाणित कर दिया। रामलाल को पाँच वर्ष की सजा हुई। कठिनता से चार-पांच महीने बीते होंगे कि जेल में रामलाल के बीमार होने की खबर मिली। स्वामी और रामलाल के पिता सेन्ट्रल जेल गये। रोगी रामलाल अपने स्वामी से पूछता है :—

"भैया, घर पर मेरी भौजी, लल्लू और छोटी बिन्नी सब अच्छी तरह हैं? और दादा?"[२१]

अपने सम्बन्धियों से दूर, कारागार में एक दिन रामलाल की आँखें सदा के लिए बन्द हो जाती है। मृत्यु की शरण में आने से समाज की सजा और कारा-गार की कठोरता से उसे मुक्ति मिल गई। हाँ, स्वार्थी समाज को यह अच्छा न लगा होगा। यही है अंतिम आकांक्षा का अन्त, और रामलाल के अधूरे जीवन की पूरी कथा।

अंतिम आकांक्षा के पश्चात् नारी की रचना हुई है। मानवतावादी लेखक

---

२१. अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० १६७

की रचना-प्रक्रिया तदनुरूप विषय ढूँढ़ लेती है। यद्यपि सियारामशरण जी की अपनी धारणा इसके विपरीत है। उनके विचार मे नारी लिखते समय नारी का रूप उन्हे स्पष्ट नही था —

"उसे प्रारम्भ करते समय मेरे सामने उसका रूप कुछ भी स्पष्ट नही था, पर मै उसे लिखता गया और उसके नये-नये रूप मेरे समक्ष स्पष्ट होते गये। अगले अनुच्छेद मे मुझे कहाँ पहुँचना है, इसका पता भी प्रायः नहीं रहता था। पुस्तक का अंतिम अंश लिख रहा था परन्तु तब तक उसका नाम नही सूझा था। अंतिम वाक्य में अचानक आ गये नारी शब्द ने ही मुझे यह नामकरण सुझाया।[२२]

भले ही पहले से यह धारणा न बनी रही हो; किन्तु रचना-प्रक्रिया समाप्त होने के बाद उसकी एक रूपरेखा समझ में आती है। जमुना का पति वृन्दावन परदेश चला जाता है और परदेश से लौट कर शीघ्र अपने घर नहीं आता। जमुना का बेटा हल्ली अपने पिता को बुलाने के लिए बचपन के नये-नये प्रयोग करता है। अनुमान लगाया जाता है कि वृन्दावन ने अन्तिम साँस ले ली। यह अनुमान असत्य निकलता है। जमुना को बीते दिनों की याद आकर झकझोर देती है। कुएँ के पास वाला जो आम का गुल्ला है न, इसे वृन्दावन और जमुना के सम्मिलित प्रयत्न ने रोपा है। प्रतीक्षा करते-करते जमुना की आशा धुँधली होने लगती है। उसे लगता है जैसे वृन्दावन अब नहीं आयेगा। वृन्दावन के न होने पर जमुना को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

अजीत नाम के एक व्यक्ति ने जमुना की सहायता की है। अजीत द्वारा किये गये कामों से जमुना प्रभावित होती है। अपनी उजड़ी हुई गृहस्थी को बसाने के लिए जमुना अजीत की ओर आकर्षित होती है, पर कुछ डरी-डरी।

जगराम और वृन्दावन साथ-साथ परदेश गये थे। एक दिन वृन्दावन का समाचार जानने के लिए जगराम को अजीत जमुना के घर लाता है। जगराम की उल्टी-सीधी बातें अजीत को नही रुचती। वह सोचता है, मैं क्यों ऐसे आदमी को यहाँ लाया। अजीत के मन में वृन्दावन के लिए कोई दु.ख न था पर हल्ली के आँसू उसके हृदय को हिला देते हैं। हल्ली ही अब जमुना का सहारा है। इसलिए उसकी वेदना न तो जमुना से देखी जाती है और न अजीत से।

---

२२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान : ३ मार्च १९६३

वृन्दावन मोतीलाल महाजन का कर्जदार है। अनेक प्रकार के जाल और धोखे से जमुना अपनी सम्पत्ति से अपदस्थ कर दी जाती है। महाजन खेत और कुएं की रजिस्ट्री अपने नाम करवा लेता है। वृन्दावन थोड़े समय के लिए आकर यह सब कर जाता है। उसके कान इधर-उधर की सारहीन बातों से भर दिये जाते हैं। एक बार हल्ली का मन भी अजीत की ओर आकर्षित होता है पर जमुना अपनी स्थिति में अडिग है। अपने पुत्र का हाथ पकड़ कर गन्तव्य की ओर वह चल पड़ती है। पथ के अँधियारे का उसे कोई भय नहीं है और न आपत्तियों की क्रूरता का ही उसे डर है। नारी की कथावस्तु का सार यही है।

तीनों उपन्यासों की कथावस्तु के शिल्प को देखकर यह पता स्वभावतः लग जाता है कि रचना-कौशल की कोई विशेष पूर्वपीठिका नहीं सँजोयी गयी है वरन् सहज वर्णन ही उनका विशेष कौशल है। इस स्वाभाविकता में वहाँ धक्का अवश्य लगता है जहाँ कोई कहानी ऊपर से जड़ी जान पड़ती है। कहीं-कहीं छोटी घटनाएँ भी अधिक सी लगती हैं। मुख्य कथा में उनका सहयोग विशेष आवश्यक नहीं प्रतीत होता। कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जिनका मुख्य घटना के साथ अटूट सम्बन्ध है। 'गोद' में रामचन्द्र मुखिया की उपकथा के सहारे मुख्य कथा आगे बढ़ती है। आज के गाँवों में ऐसे मुखियों की कमी नहीं है जो आपस में फूट और बैर को जन्म देते रहते हैं। कदाचित् शोभाराम से दयाराम के ऊपर मुकदमा इसीलिए दायर करवाया जाता है कि बाद में दोनों का प्रेम और घनिष्ठ हो। इसीलिए भाई-भाई के विरोध को सीमा पर पहुँचा दिया गया है। इसी प्रकार अन्तिम आकांक्षा में रामलाल को बारात के विरोध करने पर घर से बाहर निकाल दिया जाता है, क्योंकि वह हत्यारा है। उसने एक डाकू की हत्या की है, जिसके गले में यज्ञोपवीत था। इस अपराध में उसे निष्कासन की सजा मिलती है। लेखक का हृदय इतने से भरता नहीं। वह समाज के कारनामों की सीमा देखना चाहता है। इसीलिए रामलाल को मुन्नी की ससुराल भेजता है। वहाँ वह उनके लोटे में पानी पी लेता है। यह उसका दूसरा अपराध है। इस अपराध में मुन्नी भी सम्मिलित है। उसे भी डाँट पड़ी। रामलाल का अन्तरमन विचलित हो उठता है। इसलिए नहीं कि उसका अप-मान हुआ है; अपितु मुन्नी के लिए। जिस समाज के सदस्यों को डाकुओं के आतंक से बचाने का रामलाल ने सफल प्रयास किया था, उसी समाज ने उसे कुत्ते की भाँति भगा दिया और अत्यन्त निर्दयता से भगा दिया। निर्दोष राम-लाल को कारागृह की कोठरी भी देखनी पड़ी, जहाँ चतुर न्यायाधीशों और

ईमानदार पुलिस की कानूनों का फल भुगतने वाले प्राणी बहुधा दिखायी पडते है।

'नारी' मे कथावस्तु की सहज गति पर पाठक को सन्देह वहाँ होता है जब वृन्दावन शहर से लौट आता है और अपनी सम्पत्ति की लिखा-पटी महाजन के नाम कर देता है। यह बात कुछ अस्वाभाविक सी लगती है। क्या एक बार भी वृन्दावन के मन मे यह बात न आयी होगी कि चल कर जमुना से पता लगा ले कि क्या बात हे? ऐसा प्रतीत होता है, कि जमुना को कष्ट देने की एक पूर्वपीठिका प्रस्तुत की गयी है, जिसमे वृन्दावन भी सम्मिलित है। नारी की कथावस्तु मे कुछ टेढ़ापन आया है। इसका कारण नारी-समस्या है। घटना-चक्र की योजना लेखक ने अपने अनुसार की है।

सामान्य रूप से सियारामशरण जी की कथावस्तु प्रशान्त, सुस्थिर और सयत हे। वक्रगति से चलने का प्रशिक्षण उसने नही प्राप्त किया। उसे शंका रहती है, कि पीछे आने वाले पता नही क्या सोचें? यद्यपि नवीनता की ओर लेखक का आकर्षण दिखायी पड़ता है, पर ऐसा प्रतीत होता है, कि सियाराम शरण जी को वह रुचता नही। कथावस्तु मे जब लेखक देखता है, कि नवीनता अपना पख पसार रही है तो झट से अपनी आस्तिक भावना को पुनः स्मरण कर लेता है। कथावस्तु की धुरी पर चरित्र चक्कर काटते है इसलिए लेखक कथा-वस्तु को नाटकीय दृश्य देकर रोचक बनाता है। सियारामशरण जी के उपन्यासो मे ऐसा नही हे। नाटकीय दृश्य वहाँ नही पाये जाते। पात्र अपने कामो मे स्वय कम क्रियाशील दिखायी पडते है। शोभाराम और वृन्दावन मे यह बात पायी जाती है। एक को उत्तेजित करने वाले है रामचन्द्र मुखिया और महाजन का कार्य वृन्दावन के सम्बन्ध में भी कुछ इसी प्रकार का है। यह कोई आवश्यक नही, कि कथावस्तु अनेक उपकथाओं से अपनी झोली को भरती चले। यदि किसी कथावस्तु के साथ रहस्य है, समस्या और सघर्ष है तो उसका रूप पाठक के अन्तरमन को छूता चलेगा।

सियारामशरण जी के उपन्यासो को कुछ विचारक बडी कहानी मानते है। इसलिए कि उनका कलेवर दो सौ पृष्ठो से अधिक नही है। वैसे विचारो की विभिन्नता के लिए वडा अवकाश है पर इस सन्दर्भ मे मुझे केवल यही कहना है, कि उपन्यास और कहानी के रचना-कौशल मे पर्याप्त अन्तर है। यह अन्तर अनेक समताओ के बीच भी बना रहता है। केवल पुस्तक के पृष्ठ गिन कर

किसी बात का निर्णय देना कितना तर्कयुक्त है, कहा नहीं जा सकता, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है, कि शरीर का भारीपन पौरुष का प्रमाण नहीं होता। इस विषय की अधिक चर्चा आगे चल कर यथास्थान की जायगी। सियारामशरण जी के तीनों उपन्यास आकार में छोटे हैं; उनकी कथावस्तु छोटी है; पर इसका तात्पर्य यह नहीं, कि वे उपन्यास कला की कसौटी पर कसने योग्य नहीं हैं। इन उपन्यासों की पूर्वपीठिका हेतु अधिक चिन्तन नहीं किया गया है यह उनकी गति और कथानक की सरलता से जान पड़ता है। कथाशिल्प की पूर्व योजना वाली बात पीछे कही जा चुकी है। उपन्यास लेखन के बारे में वेसिल होगार्थ लिखते हैं—

"जब आप अपने मस्तिष्क में सारी बातें लिये हों तब आपको निश्चयपूर्वक बैठ कर लिखते जाना चाहिए और तब तक लिखते जाना चाहिये जब तक कार्य समाप्त न हो जाय। यदि ऐसा आपने नहीं किया तो कभी आप कर नहीं पायेंगे।"[२३]

'नारी' 'गोद' और 'अन्तिम आकांक्षा' से यह पता चलता है, कि समाज की उन बातों की आँधी लेखक के हृदय में थी जिसके झोंके से मानवता के सीधे-सादे वृक्ष या तो समूल नष्ट हो जाते हैं, अथवा झकझोर उठते हैं। जैसे-जैसे लेखक अपने मन की बात कहता गया है उसकी रचना का स्वरूप सामने आता गया है। सियारामशरण जी के कथा-शिल्प का कौशल हमें आगे घटित होने वाली घटना की जानकारी नहीं दे पाता, यह उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। जब पाठक यह जान जाय कि अब क्या होने वाला है, तो कथानक का शिल्प कुछ ढीला-ढीला-सा लगता है। यहाँ लेखनी की गति वक्र नही है किन्तु यह कौशल उसमें आ गया है - जाने या अनजाने किसी प्रकार। स्वाभाविक गति जिसको स्वीकार करने में सियारामशरण जी के पाठक को कोई संकोच नहीं, कथा-शिल्प का कौशल है। उसमें कहीं भी कृत्रिमता का आभास नहीं होने पाता। यह चतुर लेखनी की उचित प्रक्रिया है। चतुर कहने का यह तात्पर्य नहीं कि उसने कथा-शिल्प को सँवारने में यत्नज कौशल का परिचय दिया है। अपने सहज स्वरूप में ही वह कुशल है, अपनी स्वाभाविकता में ही आकर्षक है।

तीनों उपन्यासों की कथावस्तु में जिन पात्रों के चरित्र उभर कर आए हैं वे इस प्रकार है—

---

२३. दि टेकनीक आव नावेल रायटिंग : वेसिल होगार्थ, पृष्ठ ३१

गोद—शोभाराम, दयाराम, पार्वती, कौशल्या, किशोरी, रामचन्द्र, मुखिया आदि ।

अन्तिम आकांक्षा—रामलाल, मोहन, हरिनाथ, मुन्नी आदि ।

नारी—जमुना, वृन्दावन, हल्ली, अजीत, महाजन आदि ।

इन पात्रों को देखते हुए कहा जा सकता है, कि लेखक ने अपनी आवश्यकता-नुसार चरित्रों का निर्माण कर लिया है । चरित्रों की सेना नहीं तैयार की गयी है जहाँ पाठक को परिचय के लिये डायरी रखनी पड़े । जितने चरित्रों का चित्रण किया गया है वे ऐसे नही है कि पथ पर विशाल रेगिस्तान आ जाने पर मार्ग भूल जाँय । वे अपने मार्ग के अन्वेषक स्वयं हैं । अपने इस काम में वे अपने से बड़ों के विरुद्ध जा सकते है और बड़े भी ऐसे कि बाद में किये गये कार्य की प्रशंसा करते है । कारण यह है, कि कृत-कार्य रूढ़िबद्ध समाज के दृष्टिकोण से भले ही गर्हित हो, किन्तु वैसे यह एक सत्प्रयास होता है । इसमें कल्याण और मंगल छिपा है, विद्रोह और विनाश नही ।

शोभाराम 'गोद' का प्रधान चरित्र है । उसे नायक भी कहा जा सकता है । शोभाराम में विद्रोह और प्रतिहिंसा के तत्त्व नहीं पाये जाते है; किन्तु अपने जीवन के प्रति जागरूकता और सजगता है, साथ ही समाज के जटिल बन्धन को छिन्न-भिन्न करने की क्षमता भी । दुनिया की आँखों की ओट में ही शोभाराम अपनी क्रियाशीलता का वास्तविक परिचय देता है । मध्यम श्रेणी का व्यक्ति होने के नाते शोभाराम का जीवन साधारण है । उसके बड़े भाई दयाराम उसे चाहते है । भाभी के स्नेह से वह द्रवीभूत रहता है । भाभी के ऊपर विश्वास करने वाला शोभाराम ऐसे परिवार का एक अंग है जहाँ विश्वास और वात्सल्य प्रेम और सम्मान के सहारे जीवन-यापन होता है । शोभाराम के प्रिय का रूप एकनिष्ठ है, जो लम्पटता से बहुत दूर आशा की धरती पर स्नेह-दीप के रूप में जगमग करता रहता है । किशोरी नाम की लड़की से उसके विवाह की बात निश्चित होती है । समाज की गुण-दोष विवेचन करने वाली आँखें किशोरी को दोषपूर्ण बताती हैं । वह मेले में भूल गयी थी न । एक रात घर नहीं लौटी । यदि घर नहीं लौटी तो कोई-न-कोई घटना अवश्य घटी होगी । इस प्रपंच से शोभाराम का हृदय काँप उठता है । किशोरी का क्या होगा ? वह अपनी बात किसी से कह नहीं सकता ।

शोभाराम के स्वच्छ हृदयकाश पर उदासी के बादल तब छा जाते है जब

उसके बड़े भैया उसका विवाह अन्यत्र निश्चित कर देते हैं। संकोच और दृढ़ता का मिश्रण गति को प्रभावित करता रहता है। एक ओर है अपने बड़ों के प्रति कर्तव्य का सेतु जिस पर शोभाराम को चलना है और दूसरी ओर है किशोरी का आकर्षण जिसमें उसकी निरीहता और विवशता व्याप्त है। ऐसी स्थिति में किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाना स्वाभाविक है। यहाँ चरित्र की वास्तविक परीक्षा होती है। अपनी भाभी के प्रति यद्यपि उसके हृदय में अपार श्रद्धा है; पर उस विश्वास और श्रद्धा पर एक धक्का तब लगता है जब पिरथीपुर वाला विवाह मान लिया जाता है। चरित्र में एकनिष्ठ प्रेम के सन्निवेश की अपनी रुचि और मर्यादा की सच्ची परख है। घरवालों की चोरी से जाकर कौशल्या की अपूर्व सेवा करना कुछ अस्वाभाविक सा लगता है। वैसे यह आदर्श सिद्धान्त की दृष्टि से उत्तम है। आए दिन समाज में कितने लोग इसका पालन कर रहे हैं कहा नहीं जा सकता। कृत कर्म पर पछतावा करना स्वाभाविक है। यह स्वाभाविकता वहाँ अपने उत्कृष्ट स्वरूप में तब आती है जब रामचन्द्र मुखिया के कहने से शोभाराम अपने बड़े भाई के ऊपर अभियोग लगा देता है। कभी उसे रोने की इच्छा होती है। कभी मन चाहता है, कि एकान्त सेवन करें। कदाचित् वहीं शान्ति-लाभ हो। यदि यहाँ चरित्र का प्रस्तर-खंड चित्रित किया जाता कि वर्षाओं के आघात और दुर्घटनाओं के प्रभाव उसे प्रभावित न कर पाते तो उसका सारा सौन्दर्य जाता रहता। जगत की संवेदनाओं से प्रभावित होने वाला चरित्र ही अधिक आकर्षक होता है। दुर्बलता और सबलता का जो सामंजस्य शोभाराम में पाया जाता है वह इस बात की पुष्टि करता है। इतना तो निश्चित है कि शोभाराम के जीवन का लक्ष्य विवाह नहीं है—नही तो वह विवाह के पश्चात् अपने बड़े भाई के पास न लौटता। उसके जीवन का उद्देश्य जीवन है। इसलिए समाज की दृष्टि में दोषी समझा जाने पर भी वह लालायित रहता है अपने भाई और भाभी से मिलने के लिए।

शोभाराम के अतिरिक्त 'गोद' में पाँच और मुख्य पात्र हैं :— दयाराम और उनकी धर्मपत्नी किशोरी एवं किशोरी की मां कौशल्या तथा रामचन्द्र मुखिया। ये पात्र सामाजिक गतिविधियों के साथ चलने वाले हैं। लगता है इन्होंने समाज के साथ एक प्रकार का समझौता कर लिया है। इन समस्त चरित्रों का आदर्श उनके साथ है। पार्वती शोभाराम की आदर्श भाभी है तो दयाराम आदर्श भाई। आजकल के मुखियों का प्रतिनिधित्व करने वाले मुखिया

रामचन्द्र मे वही विशेषताएँ विद्यमान हैं जिनका शिकार सारा समाज बना हुआ है। 'गोद' के अन्तर्गत जिन चरित्रों का चित्रण किया गया है उनमें रामचन्द्र मुखिया का चरित्र विशेष दृष्टव्य है। जब हम किसी पात्र के कार्य पर नाक-भौं सिकोड़ कर कहने लगते हैं— बड़ा बुरा किया, ऐसा नही करना चाहिए था, इस निन्दनीय कार्य को देखकर सारा संसार क्या कहेगा ? तब उस चरित्र की सफलता समझनी चाहिए। जिस कार्य के लिए उसका संयोजन किया गया है यदि वह उसमे खरा न उतरा तो फिर कैसे काम चलेगा। दयाराम के विरुद्ध शोभाराम को विचलित करने का काम रामचन्द्र मुखिया ने किया। इस युग के रामचन्द्र नामधारी लोग ऐसे ही हैं। नाम है रामचन्द्र काम रावण का करते है। यह चिढ़ने की बात नही है। यही समाज का रूप है, यही उसके सदस्यो का सही चित्रण है।

शोभाराम अपने बड़े भाई को दादा कहता है। दादा अपने कर्तव्य-पथ से कभी भी विचलित नहीं होते, यह चरित्र की दृढता का प्रमाण है। अन्त मे सारे कृत्यो की गठरी लादे शोभाराम जब अपने दादा के चरणों में अपने को समर्पित कर देता है तो उनकी क्षमा की छाया-तले जीवन की थकान विश्राम पाती है। दयाराम की सूनी गोद शोभाराम से भर जाती है। यह दयाराम के हृदय की विशालता हे जो अपने छोटे भाई की सुख-सुविधा का ध्यान रखता हे। इस बात का महत्त्व तब और बढ़ जाता है, जब शोभाराम के भ्रातृ-विरोधी कामों की सूची पाठकों के सम्मुख आ जाती है। इन चरित्रों में उपन्यासकार ने मानसिक गतिविधियो का रूप चित्रित किया है। ऐसा करने से ही मानव अपने वास्तविक रूप में समझ मे आता है, क्योंकि "मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्तियों का ऐतिहासिक विश्लेपण हो सकता है, पर उसकी मानसिक कामनाओं का विश्लेपण बड़ा जटिल है। इसीलिए वह सदैव अपने लिए एक स्वप्न का निर्माण करता है। उपन्यास भी उसी स्वप्न-जगत की कथा है।"[२४]

'अंतिम आकाक्षा' का प्रमुख पात्र रामलाल है। उसी की अंतिम आकांक्षा के आधार पर पुस्तक का नामकरण हुआ है। रामलाल का चित्रण एक नौकर के रूप मे हुआ है। ऐसा नौकर जिसने अपने स्वामी के कार्य के अतिरिक्त और किसी कार्य में मन न लगाया हो, साथ ही स्वामी की सम्पत्ति की

२४. हिन्दी कथा-साहित्य : पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पृ० १८७

रक्षा में अपने को वलिदान करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहा हो। एक आदर्श भृत्य के रूप में रामलाल समाज के सामने आता है। उसका चरित्र लौह-विनिर्मित है; क्योंकि प्रताड़ना और तिरस्कार की आँधियों में वह अपने को निश्चल पाता है। उसका अडिग और आकर्षक व्यक्तित्व पाठको की सहानुभूति को हठात् अपनी ओर खीचता है। रामलाल के चरित्र की विशेपता के कारण ही सियारामशरणजी के कतिपय पाठकों को यह 'अंतिम आकांक्षा' नारी से भी अधिक अच्छा लगता है। उपन्यास की सारी घटनाएँ रामलाल के चरित्र के चारों ओर चक्कर काटती है। समाज यातना की चक्की में रामलाल के व्यक्तित्व को पीसना चाहता है। उसका स्वामी भी इसे रोक नही पाता है। रामलाल समाज द्वारा लगाए गये आरोपों को सिरमाथे लेता है। इन वातो को दो प्रकार से सोचा जा सकता है :—

१—रामलाल में सहनशीलता की भावना अधिक थी, इसलिए उसने ऐसा किया।

२—समाज हमें कष्ट दे, हम उसे सहते रहे। यह हमारी भीरुता है। इस दब्बू-पन से काम नही चलने का। रामलाल के चरित्र को इन दृष्टियों से देखा जा सकता है। दूसरी विचारधारा के आधार पर हम रामलाल को पला-यनवादी कह सकते हैं।

कुछ लेखक धरती का सुधार निघर्षण, छेदन, तापन तथा ताड़न के द्वारा चाहते है। कुछ चाहते है, कि ऐसी अन्धड़ अग्नि की ज्वाला जले जिससे वसुधा का सारा कलुप जल जाय और शुद्धता निरावरण हो जाय। कुछ चाहते है, कि धरती का पाप ही पुण्य बन जाय। सत्य यह है कि चाहते सब एक है, किन्तु ढर्रे अनेक है। सियारामशरण जी का विश्वास क्रान्ति में नही निर्माण में है। वे समाज को उसके शरीर का फोड़ा दिखाना चाहते है पर निर्दयता से उसे काटना नही चाहते। वचा-वचा कर उसकी शल्य-क्रिया (ऑपरेशन) उनके हेतु अपेक्षित है। कभी-कभी यह समाज अपने ही दंडों से दंड पाता हे। रामलाल के चरित्र मे धीरता, विश्वास और श्रद्धा का मिश्रण है जो उसे निष्कलुप वना देती है।

लेखक ने रामलाल के चरित्र का निर्माण परिश्रम और विश्वास की भूमिका मे किया है तथा अन्त दुःखपूर्ण हुआ है। समाज के विरुद्ध क्रान्ति की चिन्गा-रियाँ प्रज्वलित करना उसका काम नही। उसमें औदार्य की आर्द्रता है जिससे

लोग द्रवीभूत हो उठते हैं। कारागार की यातना से लेकर गृहस्वामिनी के दुलार तक का स्वागत रामलाल ने किया। वृद्ध पिता अपने पुत्र की दशा पर दुखी था। लेखक कहता है -

"मोहन माते अब तक जी ही रहा था, परन्तु उसका यह जीवन किसी महा-नदी में बहाये गये उस दीपक जैसा था, जिसकी शिखा को बुझा कर भी भयंकर तरंगें कुछ देर तक अपने थपेड़ों पर नचाती ही रहती हैं।"[२५]

सामान्य जन-जीवन के बीच से ही रामलाल का चरित्र चुना गया है। इसीलिए उसकी ओर पाठक का सहज आकर्षण हो जाता है। रामलाल के चरित्र के अतिरिक्त अंतिम आकांक्षा में और चरित्र भी दो-एक हैं पर उनका उन्मेष नही हो पाया है। मुन्नी विवाह के पश्चात् फिर नही दिखायी पड़ती। माता की ममता घर तक ही सीमित है। कुरीतियों, अन्धविश्वासों और पाखंडों को दुर्धर्ष शक्तियो से लडने वाला मोहन कष्ट सहते-सहते पाषाण-हृदय हो जाता है। ये सारे चरित्र विकसित नही हैं वरन् प्रासंगिक रूप से रामलाल के चरित्र के चारो ओर घूमते है।

जिस प्रकार गोद मे शोभाराम का क्रान्तिकारी पग पाठकों को नही भूलता तथा अंतिम आकांक्षा के रामलाल को देख हृदय आर्द्र हो उठता है उसी प्रकार नारी की जमुना भी मन पर अपना प्रभाव छोड़ जाती है। कथाशिल्प का संयो-जन अत्यन्त ऋजु होने के कारण जमुना का चरित्र भी सीधा-सादा है। पति के चले जाने पर उसे आश्रय चाहिये। इसलिए नही कि उसकी यौन-भावनाओं को तृप्ति मिले वरन् इसलिये कि उसका खोया हुआ आश्रय पुनः प्राप्त हो जाय। निराशा के ससार में अजीत आशा की एक किरण बन कर आता है। लोग उस पर उँगली उठाते हैं। वह जमुना की सहायता करता है। देश की सामान्य नारियों का प्रतिनिधित्व करने वाली जमुना को जीवन में सुख भी मिला था पर आज पति की अनुपस्थिति में सब कुछ स्वप्न बन गया है। उसे सारी यातनाओं को भोगना है, क्योंकि उसके मन में धैर्य और आशा की मशाल जल रही है।

जमुना के साथ उसका छोटा लड़का है। उसे देख कर जमुना संतोष कर

२५. अंतिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० १६४

लेती है। वैसे पति की अनुपस्थिति में अजीत से जमुना का लगाव हो जाना स्वाभाविक है। जमुना अधिक बौद्धिक नहीं है। सहज रूप में जो कुछ होता जाता है, उसे वह सहती जाती है। अपनी वात वह किसी से कह नहीं सकती है। जमुना के चरित्र निर्माण में लेखक ने हृदय-पक्ष से अधिक काम लिया है। जहाँ बुद्धि चकरा जाती है कि दुःख और वेदना को हटाने के लिए क्या किया जाय वहाँ हृदय कहता है, कि सहनशीलता सब काम कर देगी। एक विपत्ति के वाद अन्य विपत्ति अपने भयंकर रूप में आयी नहीं कि पहली विस्मृत हुई। जमुना में विपत्तियों से टकराने का वल नहीं है वरन् उन्हें सहने की अपार शक्ति है। यह लेखक के हृदय की गांधीवाद की पूत भावना है, जो उथल-पुथल में विश्वास नहीं करती। 'मेरे द्वारा किसी का अहित न हो', इस संसार में कम लोग ऐसा सोचते हैं। जमुना चाहती तो दूसरे पति के साथ चली जाती। पर उसके लिए सहारा अभी उसका श्वसुर है तथा पति वृन्दावन उसकी गोद में छोड़ गया है पुत्ररत्न जिसे सब लोग हल्ली कहते हैं।

जमुना के चरित्र में जिज्ञासा और कुतूहल के पीछे दौड़ने वाले पाठकों को निराशा होगी। अपनी गृहस्थी के कार्यो में संलग्न रहने वाली जमुना को अपने लिए सोचने का अवसर ही कहाँ ? उसमें वह तन्मयता है जो व्यक्ति को उसके जीवन और परिस्थितियों से एक कर देती है। अपनी परिस्थितियों से घिरा गन्तव्य की ओर अँधियारे पथ पर चलता हुआ जमुना का चरित्र हमें जीने की कला भले न बताए पर जीने की सलाह अवश्य देता है। जमुना में वह आग नहीं जो अपने चारों ओर विखरे कल्मष को भस्म करती चले अपितु मधुर-मधुर प्रज्वलित होने वाले रवीन्द्र के दीप की वह लौ है जिसने सूर्य के कार्य को रात्रि में करने का वचन दिया था।[२६] जहाँ विवशता अपना क्रूर अट्टहास करती दिखायी पड़ती है, तरंगित भाव-लहरियाँ किनारा नहीं पाती है वहाँ जमुना सारे कार्यो का कारण अपने को मान वैठती

---

२६. "के लइवे मोर कार्य्य कहे संध्या रवि
शुनिया जगत रहे निरुत्तर छवि
माटिर प्रदीप छिल से कहिल स्वामी
आमार ये टुकु साध्य करिव ता आमि"

संचयिता : रवीन्द्रनाथ टैगोर, पृ० २९१

है। अजीत के सम्बन्ध को देखकर लोग आपस में कहा-सुनी करते है। जमुना वृन्दावन की अनुपस्थिति में न देखने योग्य दृश्य देखती है, न सुनने योग्य वात सुनती है। अपनी सारी वातें रूपा से एक-एक कर एक साथ कहे विना जमुना का मन नही मानता :—

"तुम नही जानती हो। मैं तो आज के दिन तुम्हें मुँह तक न दिखा सकती। जिनकी वुराई फैल रही है, उन्ही ने मुझे वचा लिया, मैं तो पापिन हूँ पापिन! उसी की सजा मिल रही है। आज वे कही वीमार पड़े है और मुझे कुछ खवर नही मिलने पाती! पाप मैने किया, दुःख किसी को मिल रहा है। मुझे पता-ठिकाना मिल जाता तो क्या मैं वहाँ पहुँच न जाती! माते कहते थे कि पाप केवल इसलिए वुरा नही है कि उससे अपने आपको नरक मिलता है। वुरा वह इसलिए है कि उसकी दुर्गन्ध से दूसरे का दम भी विना घुटे नही रहता। ......यह मेरा ही पाप है कि दूर परदेश में वे अकेले छटपटा रहे हैं।"[२७]

सियारामशरण जी के पात्रों के चरित्रों मे आने वाली स्वाभाविकता का पता पात्रों के कथनों तथा जीवन के क्रिया-कलापों से लगता है। कभी-कभी चरित्र का विश्लेपण संवादो द्वारा भी होता है। संवादों पर विचार करते समय इस सम्वन्ध में सोचना अधिक समीचीन होगा। यहाँ अव केवल यह देखना है, कि अंकित चरित्रों में गति साम्य किस रूप में पाया जाता है। इसके लिए हम मुख्य चरित्रों को लेगे। 'गोद' का शोभाराम, 'अंतिम आकांक्षा' का रामलाल तथा 'नारी' की जमुना पर्याप्त है। थोड़ा-सा उन पात्रों के चरित्रों को भी देखना है जो समाज की कोढ है, जैसे 'गोद' के रामचन्द्र मुखिया और 'नारी' का महाजन।

शोभाराम और रामलाल की स्थितियाँ अलग-अलग हैं। रामलाल परिवार का भृत्य है। शोभाराम परिवार का एक सदस्य है। किन्तु जैसे शोभाराम के लिए उसकी भाभी और भाई प्यारे है उसी प्रकार रामलाल के लिए मुन्नी और घर के स्वामी श्रद्धेय है। अपने देवर को गोद मे विठा कर पार्वती सन्तोप करती है, अपने को सम्हालती हुई कहती है—

"लल्ला, तुम प्रसन्न वने रहो, अव मुझे किसी लड़के की कांक्षा नही है।"[२८]

---

२७. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० १३
२८. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृ० १८०

'अन्तिम आकाक्षा' मे रामलाल अपनी स्वामिनी मा की दवा लाने मे गाडी चूक जाता है। परिवार के लोग उस पर रोष प्रकट करते है, पर स्वामिनी बोल उठती है—

"अरे, तुम सब उस पर इतने गुस्सा क्यो हो रहे हो, क्या जान-बूझ कर उसने गाडी चुका दी ? लड़का है, भूल हो गयी सो हो गयी।"[२९]

इसी प्रकार नारी मे बेटे के अपराध पर मा (जमुना) अपने बेटे के लिए कहती है—"रो मत बेटा, कल तेरे साथ पोथी लेने में आप चलूँगी।"[३०]

माता के रूप में जिन चरित्रों का संयोजन किया गया है उनमें उदारता और परदु:खकातरता पायी जाती है। ये माताएँ जान-बूझ कर स्वर मे स्वर मिला कर करुणा प्रकट करने का स्वाँग नही करती। जमुना के हृदय के स्वाभाविक वात्सल्य की छाया में ही हल्ली का लालन-पालन हुआ है। हल्ली भूखा है, जमुना का हृदय कचोट उठा है। हल्ली की प्रसन्नता जमुना का सुख है। बहुत कुछ जमुना के ही समान पार्वती अपने देवर का तथा गृहस्वामिनी अपने नौकर रामलाल का पूर्ण रूप से ध्यान रखती है। इन चरित्रों की चाल-चलन पर भारतीय संस्कृति की छाप है जो पाठक को लेखनी की विशेपता की ओर इंगित करती है। यह आकलन ऐसे चरित्रों का है जो आदर्श की धरती पर यथार्थ की अल्पना बनाते चलते हैं।

मुख्य पुरुप पात्रों की बात कही जा चुकी है। दयाराम, अजीत तथा वृन्दावन को पहले देख लिया जाय। दयाराम शोभाराम के बड़े भाई है, शान्ति और दया की मूर्ति। अनेक प्रकार की मनमानी करने पर भी अपने छोटे भाई को अंक से लगाकर अपने हृदय की विशालता का परिचय देते है। यद्यपि ऐसा होता बहुत कम है; पर दयाराम के चरित्र पर गाधीवाद की छाप है। ये जीवन-संघर्ष में जूझने वाले पात्र नही है। लगता है जैसे हिमालय की गुफाओं मे रहने वाले तथा घाटियों में विचरण करने वाले ऋषियों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा हो, जिन्हें वर्षा तथा जगत की धूपछाँव प्रभावित नही कर पाती। ऐसी दशा मे यदि स्वाभाविकता भी कृत्रिम लगे तो आश्चर्य क्या ? शोभाराम के कर्मों से खीझ कर दयाराम ने अपनी पत्नी से कहा था –

---

२९. अंतिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० १०८

३०. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४४

"सचमुच शोभू ने बहुत अच्छा काम किया है ! तुम्हें बड़ी अच्छी खबर सुनाने आया हूँ। सुनकर तुम्हारी छाती गिरा जायगी।"[31]

इस कथन से यह पता चलता है कि दयाराम का हृदय एक बार विचलित हुआ था अवश्य, पर सारे दुष्कर्मों का शमन करने में उनकी क्षमा सक्षम है। बिना एक भी शब्द कहे शोभाराम को अपनाने से यही पता चलता है। संक्षेप में हम दयाराम के चरित्र में निम्न विशेषताएँ पाते हैं :—

(अ) सहज प्रेम और अपनापन।

(ब) क्षमाशीलता और धैर्य।

(स) अहिंसा और सहनशीलता।

(द) संघर्ष से अविश्वास।

(य) पारिवारिक सुख में विश्वास।

अभिभावक का कार्य-भार सम्हालने वालों में दयाराम के पश्चात् अजीत आता है, जो जमुना का सहारा बनता है। यद्यपि लता अपनी रिंगणशीलता के आधार पर आगे चलेगी ही, पर यदि किसी स्वस्थ वृक्ष का सहारा मिल जाय तो विकास का पूर्ण अवसर उसे प्राप्त हो जाता है। शंका इस बात की है कि लोग अँगुली न उठाएँ। सियारामशरण जी की लेखनी इसी शंका से सहमी हुई आगे बढ़ती है। उसे यथार्थ की भूमि पर विचरण करते-करते बचना पड़ता है। आदर्श का पाथेय उसके साथ है।

वृन्दावन की अनुपस्थिति में अजीत जमुना के मार्ग में दिखायी पड़ता है और हर प्रकार से जमुना की सहायता करने के लिये प्रस्तुत रहता है। जमुना के ही मुख से अजीत का चरित्र सुना जा सकता है :—

"कुछ हो, मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। तुम्हारे ऊपर मेरा जोर क्या है जो तुम्हारे प्राण संकट में डालूँ। तुम्हारा उपकार मेरे रोम-रोम में भिदा है। जैसा तुमने मेरे लिए किया वैसा कोई सगा नातेदार नहीं करता। सामने आकर दो मीठी बातें कर लेने वाले सब हैं, गाढ़े में प्राण लगा देने वाले नहीं मिलते। दो-चार दिन के भीतर ही बहुत देख लिया है। मैं तो यहाँ पर बैठ कर

---

३१. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० १२६

रो-पीट लेती हूँ, कर-धर कुछ नहीं सकती। तुम न दुपहरी देखते हो न रात, रात-दिन एक कर रहे हो। अब वहुत हो चुका, तुम्हें और साँसत में न पड़ने दूँगी।"[३२]

अजीत के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने जमुना को अकेली पाकर स्वार्थ की सिद्धि नहीं की। वह वृन्दावन को खोजने में प्रयत्नशील रहा। जमुना के प्रति सहज आकर्षण की बात किसी से कही भी नहीं, प्रकट भी नहीं कर सका। 'उसने जमुना का उपकार किया है,' इस बात को जमुना समय-समय पर प्रकट करती रहती है। अजीत के द्वारा किये गये सारे काम जमुना को सांत्वना देते है पर अजीत अपने को वहाँ मजबूर पाता है, जहाँ उसे यह ज्ञात हो जाता है, कि जमुना की जायदाद की रजिस्ट्री मोतीलाल सेठ के नाम हो गयी है। गोद और नारी की दो घटनाओं का साम्य उनके प्रसंग में इस प्रकार है—

'गोद' में किशोरी मेले में भूल जाने के कारण लोक-प्रवाद का कारण बनती है। 'नारी' की जमुना का पति परदेश चला गया है। इससे अजीत के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ने में संसार की पैनी बुद्धि काम करती है। किशोरी के चरित्र पर विश्वास न करने वाला समाज जमुना के चरित्र पर भी सन्देह करता है। दोनों के जीवन-क्षेत्र में दो पुरुषों का प्रवेश होता है। शोभाराम के कदम अधिक दृढ़प्रतिज्ञ हैं। होने भी चाहिये। उसके साथ किशोरी की सगाई की बातचीत हो चुकी है। अजीत फूँक-फूँक कर पैर इसलिए रखता है; क्योंकि जमुना का पति अभी जीवित है। अजीत के मन में जमुना की सहायता की भावना है, पर उसके साधन सीमित हैं। इतना होते हुए भी वह भरसक प्रयत्न करता है, कि जमुना को कोई कष्ट न हो। इस चरित्र में चढ़ाव-उतार की व्यवस्था नहीं पायी जाती। एक ही ढंग से आगे बढ़ने वाले चरित्र में संघर्षों के मोड़ नहीं पाये जाते। अजीत का चरित्र कुछ ऐसा ही है।

रामचन्द्र मुखिया का चरित्र 'गोद' में तथा महाजन का चरित्र 'नारी' में बहुत कुछ एक ही प्रकार का है। रामचन्द्र शोभाराम से बड़े भाई के ऊपर मुकदमा दायर करवा देता है। महाजन जमुना की चोरी-चोरी वृन्दावन से उसकी सम्पत्ति लिखवा लेता है। ये समाज को चूसने वाली जोंकें हैं, जिनका चित्रण सियारामशरण जी के उपन्यासों को समसामयिक बना देता है। वर्तमान

---

३२. नारी: सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १२०

समाज के ये आवश्यक अंग हैं। बिना इनके समाज का रूप अधूरा है। अधूरा इसलिए कि इनके कारनामे अपना धूमिल वातावरण बनाते हैं। यहाँ कोई आदर्श नही, कोई वैचारिक परम्परा नही। रामचन्द्र ने यदि एक बार भी शोभाराम से पूछा होता कि सत्य क्या है, तो हम उन्हें धन्य मानते पर ऐसा कहाँ ? इन सारे चरित्रों पर दृष्टि डालने के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :—

(अ) अंकित चरित्र आवश्यकतानुसार रखे गये हैं। पात्रों की ऐसी सेना नहीं है, कि उनका परिचय प्राप्त करने के लिए सूची तैयार करनी पड़े तथा उनकी संख्या इतनी कम नहीं है, कि वस्तु-विधान अधूरा लगे।

(ब) पात्रों में बौद्धिकता कम और सहृदयता अधिक है। सियारामशरण जी के पात्र अधिकांशतः स्वाभाविक रूप से कार्य करते हैं।

(स) चरित्र-चित्रण में मानव-मनोविज्ञान से काम लिया गया है। लेखनी की चतुरता बालमनोविज्ञान के प्रसंग में और सुन्दर दिखायी पड़ती है। हल्ली सम्बन्धी सारी बातें मनोविज्ञान की आधारभूमि पर कही गयी हैं। मानव-मनोविज्ञान भी अनेक कोटियों में दिखायी पड़ता है— नारी, पुरुष, अमीर, गरीब, ऊँच, नीच आदि।

(द) चरित्रों में लेखक की अहिंसा-भावना जागरूक दिखायी पड़ती है। करुणा और ममता की भूमिका में ही प्रायः सारे कार्य सम्पन्न होते हैं। सियारामशरण जी के पात्रों की अहिंसा बौद्धिक नहीं किन्तु भावात्मक और श्रद्धाजन्य है।

(य) ये उपन्यास अपने विशिष्ट चरित्रों के कारण ही प्रसिद्ध हैं। शोभाराम, रामलाल और जमुना भुलाई नही जा सकती। चरित्र-चित्रण में लेखक ने विशेष कौशल का परिचय दिया है।

(र) चरित्रों के नामो के साथ ही उनकी सारी विशेषता जुड़ी हुई है। लगता है ये नाम चरित्रों के कार्य के प्रतीक हैं। यदि पार्वती में मातृत्व अधिक है तो दयाराम सचमुच दया की मूर्ति हैं। शोभाराम का अन्तर्बाह्य दोनों ही शोभायुक्त है। कार्य के लिये कहना ही क्या वह तो प्रयोगवादी हैं ही।

जमुना के नेत्रों में सावन उमड़ रहा है। रामलाल अपने स्वामी की सेवा करके अपने नाम को सार्थक करता है। रामचन्द्र मुखिया का नामकरण उनके कार्य के आधार पर नही जँचता। हो सकता है, लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न किया हो कि आजकल लोग नाम तो रामचन्द्र रख लेते हैं और काम रावण का करते हैं। इस कारण रामचन्द्र मुखिया का नाम एक प्रकार से ठीक ही है।

संवाद, वातावरण और शैली

यह पहले कहा जा चुका है कि सियारामशरण जी के उपन्यासों में नाटकीय संघर्षों की कमी है; किन्तु वे अपनी ऋजुता में ही नाटकीय हैं। संवाद नाटकीयता में सहायक होते हैं। उपन्यास के पात्रों का वार्तालाप संवाद की कोटि में पहुँच कर वस्तु-शिल्प को आगे बढ़ाता है। डा० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है—

"कथोपथन का सुचारु रूप से प्रयोग किसी उपन्यास की आकर्षक शक्ति को बहुत बढ़ा देता है।"[33]

संवाद का सम्बन्ध पात्रों से होता है। पात्र जीवन-संग्राम मे रत होकर संघर्षशील जीवन व्यतीत करते हैं। समयानुसार अनेक प्रकार के विचार उनके हृदय में उठा करते है। ये सारे भाव अथवा विचार स्वगत कथन द्वारा नहीं प्रकट किये जाते। स्वगत कथन का संयोजन दृश्य काव्यों मे अधिक उपयुक्त होता है। वैसे मनोविज्ञान के आधार पर कभी-कभी पात्र आत्म-प्रकाशन करता है। इस आत्म-प्रकाशन का रूप लेखक की लेखनी के ऊपर आधारित है। पात्रों के मन में उत्थित विचार संवाद द्वारा प्रकट होते है। ये मनोवैज्ञानिक भी हो सकते है, और अन्य भी। इस प्रसंग मे हम केवल यही कह सकते है कि सियारामशरण जी के उपन्यास उपन्यास-कला को ध्यान मे रख कर लिखे हुए नहीं ज्ञात होते, अपितु लिखने के उपरान्त उनमें कला स्वयं आ गयी है। हिन्दी साहित्य में बहुत से उदाहरण ऐसे मिलेंगे जिनमें कला के तथाकथित जन्मदाताओं की कला बला बन गयी है। सियारामशरण जी अपनी स्वाभाविकता के सन्निकट हैं, रचना-कौशल से दूर हों तो कोई बात नही।

तीनों उपन्यासों में गोद को छोड़ कर शेप दो का प्रारम्भ कथोपकथन से नही हुआ है। गोद में शोभाराम और पार्वती के परस्पर वार्तालाप से ही

---

३३. साहित्यालोचन : डा० श्यामसुन्दर दास, पृष्ठ १६७

उपन्यास का प्रारम्भ हुआ है। इस वार्तालाप में पार्वती का वात्सल्य और शोभाराम की श्रद्धा दिखायी पड़ती है। सर्वप्रथम हम उन संवादों पर विचार करेंगे जो पात्रों के चरित्र को प्रकट करते हैं। गोद, नारी और अन्तिम आकांक्षा तीनों उपन्यासों में इस प्रकार के चरित्र पाये जाते हैं। पार्वती अपने नौकर वंसा से कहती है—

"देख किसी से लड़ना-झगड़ना अच्छा नहीं होता। तू किसी से लड़ेगा तो मैं तेरा मुँह न देखूँगी।"

वंसा ने कहा—'मैं कब किसी से लड़ता हूँ? उस बार जब बुद्धा का खून निकल आया, तब से तुम्हीं बताओ तुमने कोई बात सुनी।"[३४]

पार्वती के कथन से यह पता चलता है, कि वे अपने नौकर के बारे में सतर्क हैं और नौकर भी अपनी बात का पक्का है। एक बार भूल हो गयी सो हो गयी। बार-बार भूल करना ठीक नहीं। मालकिन को कष्ट न हो इसका उसे ध्यान है। स्वामिनी को इससे अधिक और क्या चाहिए। बात समाप्त हुई। कथानक आगे बढ़ा। केवल संवादों के लिये ही संवाद-योजना नहीं की गयी। यही विशेषता है, जो लेखक को आगे बढ़ाती है। हमें क्या कहना है? के साथ यह भी सोचना समीचीन होता है कि हमें कितना और कैसे कहना है?

पं० गंगादीन गाँव के नारद हैं। वे सभी की बातें सुन लेते हैं तथा कुशल सन्देहवाहक की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान तक उसे पहुँचा देते हैं। इसमें उन्हें संकोच और हिचक नहीं। ऐसे लोगों पर गाँव के लोग विश्वास कम करते हैं, पर उनकी सुनते अवश्य हैं। गंगादीन और शोभाराम के वार्तालाप से उनकी मक्षिका-वृत्ति का पता चल जाता है। शोभाराम ने देखा, कि सामने से गंगादीन आ रहे हैं। इच्छा न रहते हुए भी उन्हें प्रणाम किया। गंगादीन बोले –

"जीते रहो भैया! तुम्हारे दादा अभी तक गाँव से नहीं लौटे?" "अभी-अभी आए हैं"-- शोभाराम ने कहा।

गंगादीन ने घर में प्रवेश करते हुए दयाराम के प्रणाम का उत्तर देकर कहा "गाँव से अभी-अभी आ रहे हो?"– मानो अपनी त्रिकालदर्शिता के प्रभाव से ही उन्होंने यह बात जानी है।

"हाँ।"

---

३४. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २५

"तुम तो गांव पर गये थे, यहां एक नया झगड़ा खड़ा हो गया है ।"

"कैसा झगड़ा ?" दयाराम ने पूछा ।

गंगादीन ने कहा—"अभी वहू जब प्रयाग गयी थी, तब कौसा भी अपनी लड़की को लेकर गयी थी । और भी वहुत लोग गये थे । एक दिन लडकी वहाँ भीड़ में कहीं संगछूट हो गयी ।"

दयाराम ने कहा —"हां मालूम है ।"

गंगादीन विस्मय के साथ कह उठे—"मालूम है ! तुम तो वाहर थे, फिर कैसे मालूम हो गया ?"

"यों ही सुन लिया ।"

"तभी तो । वड़े आदमियों के कान और आँखें भी वड़ी होती है । ये सब ओर का देख सुन न सकें तो भगवान उन्हें वड़ा आदमी ही क्यों वनावे ? किशोरी की अकेले रहने की वात को लेकर कुछ दुष्ट झगड़ा खड़ा कर देना चाहते हैं । कहते हैं अब उस लड़की का क्या ठीक ? आए बड़े ठीक वाले ! एक-एक को न ठीक कर दिया तो कहना तुम ।"[३५]

दूरवीन से छोटी वस्तु को वड़ी देखने का अभ्यास समाज के अधिकतर लोगों को होता है । गंगादीन का चरित्र कुछ इसी प्रकार का है । इसी प्रकार कौशल्या, पार्वती, सोना तथा दयाराम आदि के चरित्र का पता उनके कथनों से लगता है । चरित्रों के उद्‌घाटन के लिए जिन कथोपकथनों का उपयोग किया गया है वे एक-दूसरे के समीप नहीं है, अपितु पर्याप्त अन्तर देकर आये है । ऐसा नहीं है कि उपन्यास संवाद-प्रणाली में ही लिखा गया हो । संवादों का प्रयोग यथासम्भव कम किया गया है । 'नारी' में अजीत से सम्वन्ध रखने वाले संवाद अजीत के चरित्र पर भली-भाँति प्रकाश डालते हैं । जमुना और हल्ली की परस्पर वातचीत में हल्ली का वचपन और जमुना का वात्सल्य मुखर हो उठता है । यद्यपि जमुना और हल्ली के वीच हुई वातें लम्बी लगती है पर जमुना के जीवन में इसके अतिरिक्त था ही क्या ?

अन्तिम आकांक्षा में इस प्रकार के संवादों की योजना नही है, जो रामलाल अथवा गौण पात्रों के अतिरिक्त चरित्रों को प्रकट कर सके । कभी-कभी रामलाल भावुकतावश कुछ अच्छी वातें कह जाता है; किन्तु उसका यह

---

३५. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १७-१८

कथन प्रशंसनीय है। चरित्र का उद्घाटन करने वाले संवाद इस कृति में जो पाये जाते हैं, छोटे हैं। कथोपकथन का छोटा होना उसकी एक विशेषता है।

सियारामशरण जी के कुछ संवाद ऐसे हैं जिनमे वक्ता के अतिरिक्त अन्य पात्रों पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। साथ ही उनके चरित्र का रूप भी वहीं दृष्टिगोचर होता है। गोद में दयाराम और पार्वती के संलाप मे रामचन्द्र मुन्निया का चरित्र सामने आता है। नारी में हल्ली और जमुना की परस्पर बातचीत से महाजन के लड़के के बारे में सही जानकारी प्राप्त होती है।

कभी-कभी संवेगात्मक संकट (Emotional crisis) के समय भी संवाद अच्छे बन पड़े है। यद्यपि ऐसे स्थलों से लेखक बचता चलता है पर यह कैसे हो सकता है ? जमुना अपने को दुःख के समय रोक नहीं पाती। अपने पुत्र को जेल में पाकर मोहन महतो का उद्गार नियन्त्रण नही चाहता। अजीत का मन था, कि जमुना चौधरी के रुपयों के लिए झूठ बोल दे। वह कहता है—

"उससे साफ कह दो - हमें रुपये नही देने, जाकर नालिस करो।" जमुना ने दृढता से कहा—"नहीं मैं ऐसा नहीं कहूँगी।"

"नही मैं यह न कहूँगी"— जमुना ने फिर कहा।

"नही कहोगी, न कहो, देखो अपना काम। मुझे किसी की बात मे पड़ने की क्या पड़ी है।"— कह कर अजीत चुप हो गया। "अच्छी बात है तुम भी मुझे मँझधार मे छोड दो। घर के आदमी साथ नही देते, तुम क्या करोगे ?"[३६]

जमुना के प्राण संकट में है। यदि वह रुपयों के लिए हाँ करती है तो देगी कहाँ से, और यदि न करती है तो लोक-परलोक दोनों बिगड़ता है। उधर महाजन का डर भी तो है। उसके काटे का इलाज नही है। सम्पत्ति चली जायगी तो हल्ली का क्या होगा ? असमर्थ जमुना का वाक्य क्या पाठक भूल सकता है ? 'घर के आदमी ही साथ नही देते, तुम क्या करोगे ?'

'अन्तिम आकांक्षा' में भी ऐसे स्थल हैं जहाँ व्यक्ति विवश हो गया है। अपनी विवशता वह किससे कहे ? रामलाल ने जनेऊ वाले ब्राह्मण को मार नही डाला उसकी 'हत्या' की है। बारात वाले बिगड़ गये है। वे रामलाल के रहते अन्न नही ग्रहण करेंगे। रामलाल हत्यारा है। उसे पाप से भरी अपनी कहानी का प्रायश्चित्त करना होगा। रामलाल को इस बात का क्षोभ नही कि बारात

---

३६. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७८

वाले उसे नहीं चाहते। दुःख उसे इस बात का है कि अपने स्वामी की सेवा का अवसर उसे नहीं मिलेगा। ऐसी दशा में वह क्या करे ? किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर जाने के लिए उद्यत होता है। रामलाल के ही शब्दों में उसकी दशा इस प्रकार है :—

"उसने मेरे पास आकर कहा —'भैया मेरे लिए अपना ही जी क्यों खराब करते हो ? मैं तो चाकर हूँ, कहीं दूसरी जगह काम पर भेज देते तो यह खट-पट न होती।" श्याम काका कहते हैं, 'यहाँ बने रहो, बस बारातियों को मालूम न हो कि तुम हटाये नहीं गये। खुले में होने से ही किसी बात में दोष माना जाता है, वैसे परदे के भीतर तो न जाने क्या होता है। परन्तु मेरे लिये यह जालसाजी करने की क्या जरूरत। मैं जा रहा हूँ। हाँ, बिन्नी को यहीं बुला दो, उसके पैर छूता जाऊँ। अब घर के भीतर मेरा जाना ठीक नहीं।"

उसकी सहनशीलता देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गए। मैंने कहा— "हम नालायकों के बीच में तू न आता तो तुझे यह अपमान न सहना पड़ता।"[३७]

रामलाल के उपर्युक्त कथन में आत्मसंतोष अधिक और दुख कम है। वह कह ही क्या सकता है ? अधिकांश संवादों के ऐसे प्रसंगों में सियारामशरणजी के पात्रों का धन संतोष है। वे उस शीतल शशि के समान है जो रात भर प्रकाश बाँट कर भी शान्त रहता है। क्षीण होता हुआ भी किसी से कोई शिकायत नहीं करता। उस अग्नि-खंड की तरह नहीं जो धू-धू कर विकराल रूप धारण करने के लिए प्रतिक्षण उद्यत हो।

पूर्व घटनाओं को सूचित करने वाले संवाद सियारामशरण के उपन्यासों में कम पाये जाते है। गोद और नारी में कुछ स्थल ऐसे है जहाँ इस प्रकार के संवाद मिलते है। जैसे जमुना जब अजीत को कोई पहले की बात बताती है या हल्ली अपने लड़ाई-झगड़े का समाचार जमुना को देता है। 'गोद' में कौशल्या की लड़की किशोरी के सम्बन्ध की सारी घटनाएँ ऐसे ही कही जाती है। ऐसे स्थलों पर कहने-सुनने वाले ही है, सुनकर उसका उत्तर देने वाले नहीं।

शीघ्रता से समाचार पहुँचाने वालों में गंगादीन, रामचन्द्र, मुखिया तथा महाजन आदि है। इन लोगों के संवादों में उत्साह और जीवन नहीं है, करुणा

३७. अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७३

और ममता नहीं है। है क्या ? केवल डाह और ईर्ष्या। वस्तुतः ऐसी ही बात है। सियारामशरण जी के उपन्यासों में संवाद सहायता के रूप में नहीं लिखे गये हैं। प्रायः होता यह है, कि जब लेखक के पास अनेक पात्र हो जाते हैं तो उनसे छुटकारा पाने के लिए वह संवाद का सहारा ले लेता है। संवाद में मुख्य पात्र बचते है, इधर-उधर के साधारण पात्र लुप्त हो जाते है। यह शैली सियारामशरण जी ने ही अपनायी है। संवाद इनके उपन्यासों के आवश्यक अंग हैं। अनावश्यक रूप से पुस्तक के पृष्ठों की संख्या नहीं बढ़ाई गयी है।

प्रेम-व्यापार मे जो दृश्य उपस्थित किए जाते है उनमे भी संवाद की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रसंग के जो स्थल यहाँ हैं उनमे संयतता और गार्हस्थ्य जीवन के प्रति तैयारी पायी जाती है। गृहस्थी के संवाद दयाराम और पार्वती (गोद) के बीच मिलते है। प्रेम के संवाद का अवसर शोभाराम और किशोरी के मध्य था पर लेखक ने ऐसा नही किया। अजीत और जमुना के बीच प्रेम-संवाद नहीं वरन् समस्या-संवाद है। कही हल्ली गायब हो जाता है तो कही महाजन कष्ट देता है। वृन्दावन स्वयं चला गया है और अपने पीछे समस्याएँ छोड़ गया है। इस प्रकार के संवादो में जीवन है, क्योंकि ये जीवन के संवाद हैं। इसीलिए अपने जीवन की समस्याओं से घिरा मानव इन संवादों को पढ़ना चाहता है और ये ऐसे हैं कि पाठक के मन पर अपनी छाप छोड़ जाते है।

लेखक के वर्णन की कुशलता वर्णित विषय की गहराई में अपने पाठक को डुबा देती है। वह समझता है, कि घटनाओं की चित्रावली सामने से एक-एक करके निकल रही है। कहना न होगा कि सियारामशरण जी के वर्णनों में वे वर्णन अधिक आकर्षक बन पड़े हैं जिनमें अकिंचनता तथा निरीहता का वर्णन है अथवा किसी के दु.ख-दर्दों की कहानी कही गयी है। वीर और रौद्र रसों की निष्पत्ति के वर्णन नहीं है। शृंगार वर्णन में लेखक की दिलचस्पी नही है। यदि कही ऐसे वर्णन की आवश्यकता हुई है, तो लेखनी ने सहज शैली का सहारा लिया हे। हास्य की योजना नही के बराबर है। जमुना और अजीत का मिलन जमुना और वृन्दावन के वियोग का परिणाम है। शोभाराम और किशोरी के प्रेम मे इतनी संयतता है, कि वहाँ भी शान्त रस के दर्शन होते हैं। पार्वती और दयाराम की गृहस्थी में बोझ अधिक है। उत्तरदायित्व के सम्मुख दाम्पत्य प्रणय की ओर ध्यान भी नहीं जाता। शान्त और करुण रस के वर्णन वस्तुतः हृदय-द्रावक बन पड़े है। रामलाल की मृत्यु और जमुना का विलाप इस प्रसंग में दृष्टव्य है।

जिन-जिन परिस्थितियों में पात्रों का चरित्र अंकित किया गया है उनका भान पाठक को उसी रूप में होता है जिस रूप में कि वे हैं। डा० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है :—

"उपन्यास के 'देश और काल' से हमारा तात्पर्य उसमे वर्णित आचार-विचार, रीतिरिवाज, रहन-सहन, और परिस्थिति आदि से है। इसे हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—एक तो सामाजिक और दूसरा ऐतिहासिक या सांसारिक।"[३८]

सियारामशरण जी के तीनों उपन्यासों में गृहस्थी की कहानी है और इसी प्रसंग में समाज के आचार-विचार, रीतिरिवाज और रहन-सहन का रूप भी देखा जा सकता है। इन बातों पर 'चित्रित समाज का स्वरूप' वाले संदर्भ में विचार किया जा चुका है। यहाँ केवल इतना कहना है, कि जो रीतिरिवाज और रहन-सहन के रूप इन उपन्यासों में देखने को मिलते हैं, वे समाज के हैं और लेखक द्वारा सूक्ष्म दृष्टि से देखे गये हैं। चाहे वह समाज के द्वारा की जाने वाली कापालिक की मृत-साधना हो अथवा कोई मांगलिक कार्य। लेखक ने महाजनों की नृशंसता को जहाँ पैनी दृष्टि से देखा है, वहीं उस कर्जदार का भी मूल्यांकन किया है, जो कर्ज लेना अपना धर्म समझता है।

जिस प्रकार लेखक का व्यक्तित्व ऐसा था जिससे किसी को कष्ट क्या साधारण हवा भी न लगे उसी प्रकार उसकी शैली भी किसी के सामने अपनी गुरुता और पेचीदगी का परिचय नहीं देना चाहती। किसी बात को सीधे ढंग से कहना लेखक खूब जानता है। किसी घटना या दृश्य के वर्णन में अधिक समय खर्च करने का ढंग लेखक का नहीं है। वह मुख्य बातें कह कर आगे बढ़ना चाहता है। वर्णन-विस्तार के दो नमूने हम यहाँ देते हैं—

"भाँति-भाँति के रंगीन वस्त्रों से सुशोभित नारी वृन्द की बेंचों के नीचे कई प्रकार के चप्पल और सैंडिल बेतरतीब पड़े हैं। दक्षिणी बेंच के नीचे रबड़ का एक फटा हुआ गेंद पड़ा है और पूर्वी बेंच के उस किनारे पर एक रूमाल, जिसमें कोई नहीं जानता कि एक छोर पर एक दुअन्नी बँधी है और दूसरे छोर पर दो चुटकी तम्बाकू। पश्चिम की ओर जो बिस्तर फैला है, उस पर एक बच्चा पड़ा सो रहा है। उसके बदन पर एक सफेद

---

३८. साहित्यालोचन : डा० श्यामसुन्दर दास, पृ० १७२

वनियान है और कमर में चाँदी की करधनी। उसके गोरे-गोरे नन्हें हाथ-पैर उसके चटुल स्वास्थ्य का परिचय देते हैं। उसके वक्ष से लगी एक गुड़िया सिर के वल औंधी पड़ी है।"[३९]

× × ×

"माँ, कहाँ हो ?"

जमुना ने देखा, हल्ली आ गया है। स्याही के छिटकों से छींट वने हुए कपड़े का वस्ता वगल में दावे है। दायें हाथ में काँच की एक दवात है। मुँह पर प्रसन्नता ऐसी है, मानों अभी जेल से छूट कर आया हो। जमुना ने कोठरी के भीतर से कहा—"आ गया भैया, वड़ी देर कर दी। आ रोटी तैयार है।"[४०]

पहला उदाहरण प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यास 'धरती की साँस' से है तथा दूसरा श्री सियारामशरण जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'नारी' से। पहले उदाहरण से ऐसा लगता है कि लेखक ने एक-एक वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। पहले वर्णन में लेखक मितव्ययी नहीं है। अपने शब्द-भंडार को अनुभूति के साथ मिलाता चलता है। पर इस वर्णन का कुछ अंश ऐसा है जो कथा-सूत्र को आगे वढ़ाने में सहायता नही करता। वैसे लेखक स्वतन्त्र है पर मर्यादा के वाहर नहीं अपितु अन्दर।

इस प्रकार की शैली को सियारामशरण जी ने नहीं अपनाया है। वे काम की वातें करके आगे चल पड़ते हैं। इस चलने में उनका अपना एक ढंग है। पीछे जो उदाहरण दिया गया है वह इसी कोटि में आता है। उसी से मिलता-जुलता एक और स्थल है :—

"शोभाराम को भागे हुए कई दिन हो गये हैं। निरानन्द होकर घर में एक तरह की नीरसता आ गयी है। हलवाइयों ने खाद्य-सामग्री तैयार न करने के लिए धरती खोद कर जो वड़ी-वड़ी भट्टियाँ वनायी थी वे अपने काले मुँह में कोयले और राख भरे जैसी की-तैसी पड़ी है। अभी तक उन्हें पूरा कर किसी ने ठीक नहीं किया है। ऐसा जान पड़ता है मानो यह घर इन्हीं जैसे किसी गहरे गड्ढे में डूब गया है। कोयले-कंडे-लकड़ियाँ और अपरिष्कृत वड़े-वड़े

३९. धरती की साँस : भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० २
४०. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७, ८

वर्तन किसी बहुत बड़े आयोजन का साक्ष्य देते हुए इधर-उधर फैले पड़े हैं।"[४१]

यह बात हम पहले कह आये हैं कि सियारामशरण जी की शैली सहज और सादी शैली है। इस सादगी में भी लेखक की अपनी विशेपताएँ हैं। कहीं-कहीं आगे की घटनाओं का आभास लेखक ने अपने ढंग से दिया है।

शोभाराम के विवाह में विघ्न पड़ा। इसकी पूर्व सूचना लेखक अनोखे ढंग से देता है। दयाराम ने हरलाल माते को देने के लिए एक पत्र शोभाराम को दिया है। उस पत्र में भूल से कहीं, सगाई शब्द दो बार लिखा हुआ है। शोभाराम उसे ठीक करवाता है। दयाराम एक शब्द को कटवाते हैं। इस प्रसंग में शोभाराम के चरित्र के मनोवैज्ञानिक विश्लेपण की शैली देखिए :—

"पत्र हाथ में लेकर शोभाराम वहाँ निर्वाक् बैठा रह गया। दादा ने भूल से कागज पर दो बार सगाई शब्द लिख दिया और काटा है दुवारा का लिखा हुआ। नियम भी ऐसा ही है परन्तु यथार्थ जीवन में ऐसा हुआ क्यों नहीं ? एक तो वास्तव में जीवन में ऐसी भूल होनी ही न चाहिए थी, और हो ही गयी थी तो इस कागज पर दुवारा लिखे शब्द की तरह उन्होंने दूसरी सगाई पर ही कलम क्यों न फेरी ? अरे विधाता का यह कोप कैसा है, कि मेरे जीवन में एक के बदले दो-दो भूल हो गयीं। उसने वह कागज मोड़ कर बड़े यत्न से अपने कुरते की जेव में रख लिया।"[४२]

लेखक की शैली की दूसरी विशेपता है दृप्टान्त और व्यंग्य। दृप्टान्त ऐसा कि कही गई बात समझ में आ जाय और व्यंग्य ऐसा कि जिसमें चोट का परिणाम न झलकता हो। समाज की रूढ़ियों के प्रति व्यंग्य करने की शैली स्पप्ट एवं विशेप आकर्पक है। एक बात का ध्यान रखना होगा कि पाखंड के विरुद्ध व्यंग्य करने की शैली लेखक की है अवश्य, पर अपनी धार्मिकता के प्रति वह आस्थावान है। उस पर कहीं भी आँच नहीं आने पाती। दृप्टांतों के कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं :—

> "दयाराम कुछ किसानों से ताजे घी के प्रबन्ध की बातें कर रहे थे। उन्होंने उसकी ओर देखा तक नहीं। यह देख कर उसे संतोष हुआ कि सोना के साथ लड़ाई हो जाने का समाचार यहाँ तक नहीं पहुँचा।

---

४१. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६८

४२. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६८

अब वह भीतर घुसा। परन्तु वहाँ की अपेक्षा उसे बाहर का ही डर अधिक था। विश्वविद्यालय की ऊँची परीक्षा दे चुकने वाले विद्यार्थी के लिए प्रवेशिका के प्रश्नों में आंशिक रूप से असफल हो जाने पर भी बहुत बड़ी लज्जा की बात नहीं होती।"[४३]

"हरिराम सोना और किशोरी के उपचार से अथवा आयु शेष होने के कारण कौशल्या के प्राण तो उस बार बच गये परन्तु प्राण जैसी ही कोई दूसरी वस्तु लेकर वह बीमारी गयी।"[४४]

"सोना गंगादीन तिवारी की लड़की है। छोटी अवस्था में ही विधाता ने उसके माथे का सौभाग्य-सिंदूर स्लेट पर लिखे गये लेख की तरह लिखने के अनन्तर ही मिटा दिया था।"[४५]

"उन दोनों के खेत ही परस्पर मिले हुए न थे। मन भी एक-दूसरे के बहुत निकट थे।"[४६]

"अपवाद तो अँगीठी के उस धुएँ के समान है जो इस ओर जाकर नहीं बैठने देता और उस ओर भी।"[४७]

"शोभाराम की अवस्था यद्यपि लड़कपन को पार कर चुकी थी फिर भी हेमन्त का प्रातःकाल जिस तरह जाते-जाते भी अधिक काल तक टिका सा रहता है वैसे ही उसका बचपन उसके भीतर से अभी गया नहीं था।"[४८]

दृष्टान्त देने वाली शैली के ये उद्धरण 'गोद' के हैं। ऐसे वाक्य जिनसे चमत्कार की सृष्टि होती हो, पग-पग पर नहीं मिलते। जब जैसी आवश्यकता पड़ती है लेखक वैसी बात ढूँढ़ लेता है। शैली का बाँकपन जब चन्द्र की भाँति सहज वर्णन के नील गगन पर दिखायी पड़ता है तो चारुता बढ़ती हुई दिखायी पड़ती है। यह कोई आवश्यक नहीं कि सारे लेखकों की शैलियाँ एक प्रकार

४३. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७१
४४. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० १०२
४५. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४५
४६. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४५
४७. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० २०
४८. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १३

की हों। यहाँ तक कि एक ही रचनाकार अपनी पृथक्-पृथक् रचनाओं मे विभिन्न शैलियों का प्रयोग करता है। सियारामशरण जी के उपन्यासों मे 'गोद' तथा 'नारी' की शैली मिलती-जुलती है पर 'अंतिम आकाक्षा' मे शैली वदली है।

अनुभूति के संसार मे जितनी वस्तुएँ अथवा दृश्य देखने को मिलते है, उनके वर्णन पर शैली का प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध मे यहाँ वेसिल होगार्थ के विचार दृष्टव्य है :—

"Style is almost conditioned by the writer's approach to his material; and his mentality will communicate itself to everything; plot, incident, setting, dialogue, characterization and narration alike."[४६]

लेखक की वैचारिक पद्धति अपने ढंग से कोई वात कह लेती है, वात चाहे जो हो। सियारामशरण जी ने एक ही प्रकार की वस्तु को विविध रूपो मे प्रस्तुत किया है। अंतिम आकाक्षा के कुछ खड इस सन्दर्भ मे उद्धृत किये जाते है :—

> "धूल उड़ेगी तो मै अपने आप उसके साथ उडकर उसके साथ वाहर चला जाऊँगा।"[५०]
>
> "उसे रामलाल कह कर मुझे ऐसी प्रसन्नता हुई मानो काम के पुरस्कार मे मैंने उसे एक अक्षर और एक मात्रा की कोई दुर्लभ उपाधि ही दे डाली हो।"[५१]
>
> "प्रशसा वहुत कुछ खाई जाने वाली तमाखू के समान है जो अपना नशा पेट के भीतर पहुँचे विना ही देने लगती है।"[५२]

---

४६. टेक्नीक ऑव नावेल रायटिंग : वेसिल होगार्थ, पृष्ठ १३६
५०. अंतिम आकाक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७
५१. अंतिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० ८
५२. अंतिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० १६

"वास्तव मे यह डाँट पड़नी चाहिए थी नौकरों पर जो उस समय तमाखू जैसा बहुमूल्य पदार्थ जलाकर राख कर रहे थे।"[५३]

"उसकी स्थिति मानों कैंची के संयुक्त दो भागों के बीच में थी। ऊपर की धार से अपने को बचाता है तो नीचे की धार से नही बच पाता।"[५४]

"उसका जीवन किसी ऐसे चन्द्रमा के समान था जो नवमी की तिथि तक निरन्तर बढ़ कर भी अपनी द्वितीया का बाँकपन नही छोड़ता।"[५५]

'अंतिम आकांक्षा' के इन उदाहरणों से लेखक की शैली का पता चलता है। इस शैली का गठन निरंतर अभ्यास का परिणाम नही प्रतीत होता है। इसमें लेखक की अपनी मौलिकता और विचारों को प्रकट करने की पद्धति अपने ढग की निराली हे। यहाँ गहन आदर्शों को हठात् पाठक के ऊपर लादने की प्रवृत्त नही है। कही-कही व्यंग्य और लाक्षणिक प्रयोगों से भी काम लिया गया है। इन प्रयोगो को साधन रूप में देखा गया है। मनुष्य का सहज जीवन वस्तुतः उसके लिए वरदान है। सियारामशरण जी इसी सहज और सरल जीवन के हामी हैं। इसीलिए उनकी गति भी इसी पक्ष में रहती है। भौतिकवादी संसार मे बनावट का व्यापार करना सियारामशरण जी की लेखनी ने नहीं सीखा। सतत प्रवहमान जीवन-गति के प्रति आशाभरी आस्था बनाए रखना ही जीने की कला है और यही शैली की उत्कृष्टता का प्रमाण है।

'अंतिम आकांक्षा' की वस्तु भृत्य रामलाल के जीवन की कथा है, इसलिए कथन-शैली मे कुछ अन्तर आ सकता है। यद्यपि ऐसा हुआ नही है। 'गोद', 'अंतिम आकाक्षा' और 'नारी' तीनों की शैली एक ही प्रकार की है। कथन का ढग मिलता जुलता है :—

"उसका एक हाथ पानी के घड़े पर और दूसरा गोबर के ऊपर जहाँ का तहाँ रुक गया। किसी विशिष्ट पाहुने के आगमन में उसके शरीर का समस्त क्रिया-व्यापार जैसे क्षण भर के लिए अनध्याय मनाने बैठ गया हो।"[५६]

---

५३. अंतिम आकाक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० १६
५४. अंतिम आकाक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० २८
५५. अंतिम आकाक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३६
५६. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६

"जमुना का यह दु:ख नया न था। किसी बन्द पिटारी में रखे हुए पुराने खिलौने की तरह फिर से उसके हाथ पड़ कर वह इस समय उसके लिए नये के जैसा हो गया था।"[५७]

"पीड़ा हठीले बच्चे की तरह है। समझा-बुझा कर किसी तरह थोड़ी देर के लिए वह वश में कर ली जा सकती है; परन्तु मौत इतनी भोली नहीं। बातों में आकर कहीं बीच में वह कैसे रुकेगी ?"[५८]

"चिड़ियाँ चहकने लगी थीं परन्तु अंधकार कुछ-कुछ अब भी था। जान पड़ता था कि प्रभात के स्वागत में किसी अलौकिक धूपदानी ने यह सुगंधित धूप ही सब ओर एक-सा फैला दिया है।"[५९]

ये विविध उदाहरण इस आधार पर लिये गये है, कि इनमें शैली की विविधता पायी जाती है। वैसे किसी बात को संभावना द्वारा व्यक्त करने की कला में सियारामशरण जी की लेखनी अत्यन्त निपुण है। दृष्टांत के सहारे अपनी बात को कह कर प्रभाव डालना कुशल लेखनी का ही काम है। ये दृष्टांत कभी तो धर्म से प्राप्त हो जाते हैं और कभी दैनिक जीवन में घटित घटनाओं से। तीनों उपन्यासों की परिस्थितियाँ भिन्न होने के कारण शैली में भी अन्तर आता गया है। शृंगार की शैली और वात्सल्य वर्णन में पर्याप्त अन्तर होता है। इसी प्रकार यदि वीरता की बात कहना हो तो इसके हेतु अन्य शैली अपनानी पड़ेगी। 'अंतिम आकांक्षा' में रामलाल का गोली चलाना और अप्रतिहत ढंग से दौड़-दौड़ कर झाँकना विशेष शैली में चित्रित किया गया है। रामलाल का निशाना सही निकला यह भी संयोग की बात है। कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि लेखक कौतूहल की सृष्टि के लिए अन्य घटना खोज रहा है। ऐसे स्थलों पर यदि लेखक ने बुद्धिवादी बनने का प्रयास किया है तो उसका गांधीवादी हृदय कह उठा है —'मैं भी तुम्हारे साथ हूँ।' और फिर सियारामशरण जी आधुनिकता से प्रभावित होकर भी अपने अतीत को नहीं भूल पाते, यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। मानव जीवन और उपन्यास का सम्बन्ध होने के कारण उपन्यास की रचना में सम्पूर्ण मानव जाति का विवेचन होना

५७. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ११

५८. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृ० १५

५९. नारी ; सियारामशरण गुप्त, पृ० २५

चाहिए। इस बात का समर्थन जनवादी लेखक करते है और उसी शैली मे लिखते है।[६०] सियारामशरण जी स्वतन्त्र व्यक्तित्व के थे, श्रद्धा और विनय के कारण उनकी शैली मे भी वह चीज आयी है। उन्हे हम किसी वाद के विवाद मे पडते नही देखते; किन्तु जीवन की व्याख्या मे वे बहुतों से आगे हैं।

अपने उपन्यासो के नामकरण के सन्दर्भ में लेखक ने अपनी शैली का परिचय दिया है। गोद नाम छोटा है, आकर्षक है और पूरे उपन्यास के मुख्य भाव को अपने मे लिए है। यही बात नारी और अ तिम आकांक्षा के सम्बन्ध में भी लागू होती है। ये ऐसे नाम है जो लेखनी की सादगी प्रकट करते हैं।

भाषा का विवेचन

शैली मे इतनी रोचकता और विशिष्टता आने का मुख्य कारण भाषा है। सियारामशमण जी ने भाषा को इतनी सहज रखा है, कि पाठक को कोई कठिनाई नही होती। आजकल कुछ उपन्यास ऐसे भी लिखे गये है जिन्हे बिना कोश की सहायता के हृदयंगम करना कठिन है। केवल हिन्दी का शब्दकोष नही वरन् अंग्रेजी का भी। सियारामशरण जी के उपन्यासों की भाषा में शब्द-चयन सुन्दर है। वाक्यों की लम्बाई बहुत बड़ी नही है। वे सहज और बोधगम्य है। भाषा की इसी विशिष्टता के कारण शैली का प्रवाह कही धीमा नही पड़ा। पाठक 'आगे क्या हुआ ?' की धुन में बढता चला जाता है। लोकजीवन के उपन्यासकार होने के नाते लेखक ने ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया है। लोकभाषा मे कुछ शब्द ऐसे पाये जाते है जिनके लिए खड़ीबोली मे उपयुक्त शब्द मिलना अत्यन्त कठिन है। यदि खोज-बीन करके शब्द निकाला भी गया तो उससे प्रयोजन की सिद्धि नही होती। तीनों उपन्यासो मे प्रयुक्त लोकभाषा के कुछ शब्द इस प्रकार है : --

टिक्कड, मजूरी, पिछौरी, टरकाना, झोटा, मौजी, माते, तमाखू, खुटका, पीढा, झिमिटना, कौसा, गलियारा, गुईयाँ, धमाचौकड़ी, परदेश मातौन आदि। अपने पात्रो का नामकरण करने में भी लेखक ने यमुना को जमुना, रामलाल को रमला, कौशल्या को कौसा, शोभाराम को शोभू कर दिया है। और अन्य

---

६०. दि नावेल एण्ड दि पीपुल : राल्फ फाक्स, पृष्ठ २०

नाम भी अपने साथ भाषा का सौष्ठव रखते हैं। दयाराम, पार्वती, मोहन, हरीराम, वृन्दावन, अजीत नामों के प्रयोग सार्थक हैं। दयाराम और पार्वती आदि नामों की सार्थकता पर पीछे विचार किया जा चुका है। मोहन का हृदय अत्यन्त सरस है। हरीराम में वही गुण है, जिसे गाँव वाले चाहते हैं। इसी प्रकार सारे नामों में भाषा का सौष्ठव पाया जाता है।

जहाँ जनसाधारण में प्रचलित लोक-भाषा के शब्दों के प्रति लेखक का झुकाव है वहीं संस्कृत के शुद्ध तत्सम शब्दों के प्रति ममता भी है। ऐसे शब्दों के उदाहरण देने की आवश्यकता नही है। एक बात ध्यान देने की यह है, कि संस्कृत के ऐसे शब्दों का प्रयोग नही पाया जाता जो जनसामान्य की भाषा के शब्द न हों, या जिसे साधारण पाठक समझ न सकें। भाषा में कहीं भी शब्दों की ग्रन्थियाँ नहीं पायी जाती। प्रवहमान भाषा का प्रयोग किया गया है। इस गुण के लिए छोटे वाक्यों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। ऐसे छोटे वाक्यों का भी प्रयोग किया गया है जिनकी क्रियाएँ लोकभाषा की है, जनजीवन को चित्रित करने वाले उपन्यासकार की भाषा भी जनसामान्य भाषा है।

संवादों की भाषा में कहीं-कहीं नाटकीयता आयी है। वाक्य को विशेष प्रभावशाली बनाने के लिए क्रिया को पहले स्थान दिया गया है—

'क्या वह बूढ़ा नहीं है। पूछ देखो उनसे' या 'दौड़ देखो।' कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ केवल क्रिया कह देने से सम्पूर्ण वाक्य समझ में आ जाता है; किन्तु प्रयुक्त क्रिया के पहले का वाक्य साथ में होना चाहिए :—

"यहीं बैठो। मां नाराज न होंगी, उन्होंने तो मुझसे बैठने के लिए कहा नहीं है।।"[६१] शैली को स्वाभाविक और सरल प्रवाही बनाने के लिए निरर्थक शब्दों का प्रयोग भी है – "कुछ यों ही धूप-ऊप लग गयी होगी।"[६२] कुछ वाक्य ऐसे है जो अपने साथ वक्रोक्ति लिए है—"सीधा-सादा नहीं, उसमें बड़े गुन है।"[६३] लेखक ने पात्रानुकूल भाषा रखने का प्रयास किया है। जेलर साहब की साहबी हिन्दी का रूप ऐसा है—

---

६१. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृ० १३७
६२. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ११६
६३. अंतिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३

"ओ बुड्ढा ! इस तरह चीखा-चिल्लाया तो तुमको यहाँ से निकाल देगा।"[६४] इस निर्दयता पर लेखक से रहा नहीं जाता, कह उठता है— हाय रे बूढ़े, तेरा यहाँ रोना भी ज्यादती है।'[६५] ज्यादती उर्दू का शब्द है। ऐसे शब्दों के प्रयोग अधिकांशत: तो नहीं, पर सामान्य रूप मे अवश्य मिलते है। 'खास', हुक्म उदूली', 'नालायकी', 'खराव', 'मुलजिम', 'नियत', 'मुख्तार', 'मुवक्किल', रहम', 'दरख्वास्त', 'कार्रवाई', 'जालसाजी', 'फरीक', 'खामोशी', 'हिम्मत', 'फरमाइश' आदि शब्द आये है। ये शब्द अधिकांशत: वोलचाल की भापा में प्रयुक्त होते है और विशेपता इस वात की है कि ऐसे शब्दों का प्रयोग प्रसंगवश और आवश्यकतानुसार किया गया है।

अंग्रेजी भापा के उन शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जिन्हें अपनी सुविधा-नुसार लोग तोड़-मरोड़ लेते हैं। 'जंट', 'कलट्टर', 'वरंट', 'टम्परवारी', आदि कुछ शब्द ऐसे हैं जो सामान्य रूप से प्रयुक्त किये गये है। कभी-कभी किसी शब्द पर वल देने के लिए वाक्य में उसका स्थान वदल जाता है।

"कहता क्यों नहीं विना पूछे तू गया क्यों ?[६६]"

"पहले कोई मेरी वात नही मानता था, अव तो सुन लिया सवने"।[६७] तीनों उपन्यासों में प्रकृति-वर्णन के चित्र कही न कहीं आये है। ऐसे स्थलों की भापा अधिक आकर्पक वन पड़ी है। मानव-मन का विश्लेपण प्रकृति के माध्यम से कितना मनोहर वन पड़ा है :—

"आँगन में भीत के एक कोने को चाँदनी ने आकर लीप दिया था। उसके कारण वहाँ के अन्धकार में भी एक तरह की दर्शनीय उज्ज्वलता आ गयी थी। कोठरी के भीतर से जमुना का अस्फुट रोदन सुनाई दे रहा था और शेप सव सन्नाटा। अजीत जहाँ का तहाँ निस्तव्ध होकर खड़ा था।"[६८]

'चाँदनी ने आकर लीप दिया था' यह प्रयोग लाक्षणिक है। इस प्रकार के वाक्य अधिक प्रभावशाली होते है। यद्यपि लेखक की शैली में इस प्रकार

६४. अंतिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० १६६
६५. अंतिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० १६६
६६. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० १००
६७. गोद : सियारामशरण गुप्त, पृ० १००
६८. नारी : सियारामशरण गुप्त, पृ० १२२

के वाक्य कम आये हैं पर जितने आये हैं उनमें किसी प्रकार की कमी नही ज्ञात होती। 'उज्ज्वलता आ गयी थी', 'प्रकाश की वाणी कुछ कह गयी', 'ट्रेन आती है' आदि प्रयोग इसी प्रकार के हैं।

लेखक की भाषा की विशेषता इसलिए और बढ़ जाती है कि उसमें चित्रात्मकता का गुण पाया जाता है। ऐसे प्रसंगों में लेखक का आग्रह यह नही रहता कि वह कृत्रिम भाषा लिखे। सरल भाषा का प्रवाह तो लेखनी के साथ बना ही रहता है। एक सजीव चित्रण की भाषा कितनी सरल और प्रवाहयुक्त है:—

"थोड़ी देर में ही रामलाल दिखायी दिया एक भैंस की पीठ पर चढ़ा हुआ। एक हाथ में मोटी छड़ी जैसी कोई लकड़ी थी और दूसरे में हाल की तोड़ी हुई एक अमिया। उसे ऊपर उछालकर उसी हाथ मे बार-बार गुपक रहा था।"[६६]

प्रसंगानुसार सियारामशरण जी के उपन्यासों की भाषा परिवर्तनशील नहीं है। वह अपनी विशेषता को अपने साथ सदैव बनाए रहती है। सांकेतिक भाषा का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया गया है। जहाँ किसी कारणवश पूरे चित्र नही आ पाते वहाँ ऐसी भाषा प्रयुक्त है :—

"जहाँ पर बाबू सियारामशरण पूर्ण चित्रण नहीं करते वहाँ वे संकेत करते है—और यही सब उच्चकोटि के चित्रण की रीति है।"[७०]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गुप्तजी के उपन्यासों की भाषा पर किसी पूर्ववर्ती लेखक का प्रभाव नही दृष्टिगोचर होता। समस्त प्रयोग लेखक के अपने है इसलिए सहज, स्वाभाविक और आकर्षक है।

आकार-संगठन

सियारामशरण जी के उपन्यासों का ताना-बाना कैसा है? यह हम देख चुके। अब देखना यह है, कि इन उपन्यासों का आकार-संगठन कैसा है? आकार-संगठन में किसी लेखक के दो दृष्टिकोण होते हैं :—

१—जिन चरित्रों का आकलन वह कर रहा है वे पूरे हैं अथवा नहीं।

२—लेखक को अपने उद्देश्य में सफलता मिली है या नही।

---

६६. अंतिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त, पृ० २६
७०. हिन्दी उपन्यास : शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० २४४

कथावस्तु के संयोजन में लेखक का एक विशेष दृष्टिकोण कार्य करता है। कभी-कभी वह कथानक को बीच से उठा कर अन्त तक ले जाता है। कभी प्रारम्भ से अन्त तक पहुँचाता है। अधिकांशतः देखा यह जाता है कि उपन्यास का नायक प्रौढ़ होता है। गोदान का होरी गोदान के प्रारम्भ में प्रौढ़ अवस्था में है। इसी प्रकार गोद का शोभाराम भी वयःप्राप्त है। नारी की जमुना और वृन्दावन तथा अजीत सभी अपनी प्रौढ़ अवस्था में हैं। केवल अंतिम आकांक्षा के नायक की अवस्था कुछ कम है। किन्तु फिर भी वह गृहस्थी का काम-काज तो कर ही सकता है। इससे निष्कर्ष यह निकला कि सियारामशरण जी के उपन्यास के कथानक जीवन की आद्योपान्त कथाएँ नहीं हैं वरन् उन्हें लेखक ने अपने अनुसार इच्छित स्थान या घटना से प्रारम्भ कर दिया है।

जीवन की कथा के आधार पर उपन्यास का आकार-संगठन बनता है। जिस प्रकार अनेक सहायक नदियाँ मिल कर एक किसी नदी को महानदी बना देती है उसी प्रकार अनेक प्रकार की घटनाएँ मिल कर उपन्यास की कथा को बड़ी कर देती है। इन घटनाओं का प्रभाव मुख्य कथा के ऊपर पड़ता है और सभी बातों का अन्तिम प्रभाव उपन्यास के आकार-संगठन को प्रभावित करता है। सियारामशरण जी के उपन्यासों में घटनाओं का झमेला नहीं है। यह भी नहीं मिलेगा कि आवश्यक घटनाएँ काट-छाँट कर अधूरी कर दी गयी हों। कुल मिलाकर ये उपन्यास आकार-संगठन की दृष्टि से न तो बहुत बड़े हैं और न छोटे। यदि अपने छोटे आकार-संगठन में लेखक उद्देश्य की सिद्धि कर लेता है तो आवश्यक विस्तार से कोई लाभ नहीं है। सफलता की पहचान तो यह है कि उपन्यास अपने को कितनी बार पढ़वाता है और पाठक के हृदय पर कैसी छाप छोड़ता है ?

प्रासंगिक घटनाओं की अधिकता सियारामशरण जी के उपन्यासों में नहीं है। आकार-संगठन बनाया नहीं गया है अपितु बन गया है। अयत्नज कलात्मकता कितनी आकर्षक होती है यह उपन्यास के पाठक स्वयं जानते हैं। मुख्य बात होती है, जीवन की सच्ची समस्या, जिसके अंकुर लौकिक प्रेम की धरती पर उगे हों। श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी लिखते है :—

"उपन्यास का सबसे पहला और सबसे बड़ा गुण यही है कि उसकी कहानी

सबसे सुन्दर ढग से कलात्मक सौष्ठव के पूर्ण निर्वाह के साथ कही गयी हो तभी पाठकों में तन्मयता होती है। इसके बाद दूसरी विशेषता यह कि जिन आधारों को लेकर वह कहानी गढ़ी गयी हो वे जीवन की सच्ची समस्याओं से बद्ध हों। उसमें प्रेम की सच्ची मधुरता भी हो, वह प्रेम अलौकिक नहीं लौकिक हो।"[७१]

जीवन की सच्ची समस्याओं की रूपरेखा ही सियारामशरण जी के उपन्यास हैं। आकार-संगठन की समस्या को लेखक ने मुख्य समस्या नहीं माना है, पर इस सम्बन्ध में वह उतना उदासीन भी नहीं है। कलापक्ष पर वहीं तक ध्यान दिया गया है जहाँ तक वह उद्देश्य की पूर्ति करता है अथवा उद्देश्य-पूर्ति के मार्ग ढूँढ़ता है। लेखक ऐसा चित्रकार नहीं है जो अपने कैमरे को लक्ष्यहीन बना कर काम करे :—

"If you go out with your camera and open the shutter at random, you will not make a beautiful and interesting photograph." [७२]

'गोद' और 'अन्तिम आकांक्षा' 'नारी' की अपेक्षा लघु उपन्यास है। इनका आकार-प्रकार 'नारी' की अपेक्षा छोटा है। 'नारी' की नायिका जमुना की जितनी कथा का चित्रण किया गया है पाठक को अभिभूत करने के लिए उतनी ही पर्याप्त है।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य और सियारामशरण जी के उपन्यास

हिन्दी उपन्यास-साहित्य की धारा बहुमुखी है। इस अनेकता में शैली और वस्तु दोनों का योग है। वस्तु-विधान में बहुत कुछ साम्य होते हुए भी लेखकों की शैली में अन्तर पाया जाता है। अन्तर का कारण ग्राहिका शक्ति की विभिन्नता है, अनुभूति का अलगाव है। सामाजिक गतिविधियों के अनुसार लेखनी के मार्ग भी बदलते रहते है। उपन्यासकार को तरह-तरह की विचार-धाराएँ मिलती गयी है। वह किसी के साथ अपने विचारों का सामंजस्य करता, किसी से प्रभावित होता और किसी को छोड़ता हुआ आगे बढ़ता जाता है। उसकी कृति अधिक संवेदनशील होने के नाते लोकप्रिय रही है। मानव-जीवन के

---

७१. हिन्दी कथा साहित्य : पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पृष्ठ १८४

७२. ए ट्रीटीज ऑन दि नावेल : आर० लिडेल, पृ० ३४

समीप होने से उपन्यास के साथ मानव का अधिक गहरा लगाव है। यही कारण है कि इस गद्य-युग में उपन्यास साहित्य का सृजन अधिक मात्रा में हुआ है :—

"उपन्यासों के इतने अधिक प्रचार का कारण यह है, कि वह सर्वथा मानव जीवन से सम्बद्ध है और अभिव्यंजना का बिल्कुल निजी तथा संवेदनशील साधन है।"[७३]

अपने प्रसार और प्रचार के आधार पर उपन्यासों में समाज आया। समाज के बाद व्यक्ति आया, व्यक्ति के बाद उसके मन की विविध दशाएँ मुखरित हुई। राजनीतिक उथल-पुथल के साथ समाजवाद के स्वर सुनायी पड़े। इस दिशा में भी लेखकों के डग बढ़े। इन सभी प्रकार की घाटियों में विचरण करता हुआ उपन्यासकार अपने अतीत को नहीं विस्मृत कर सका। उसने प्राचीन कथा में अपना नया रंग भर कर ऐतिहासिक उपन्यास को जन्म दिया। लेखक उपन्यास को अपना साथी मानता है :—

"सच्ची बात कह दूँ उपन्यास तो जैसे एक साथी है व्यक्ति वह पाठक से सदा हँस-हँस के बोलता है, मूक होकर भी। उपचेतना में वह बस गया है, रम गया है। चुप रह कर भी वह रुदन करता है। हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़े रहने पर भी वह जेल की दीवाल फाँद कर भी पाठक के गले लग कर मिलता है। अपनी पीठ पर पड़े नीले और काले-काले दाग दिखा कर सिसकता और रोता है। छाती फाड़-फाड़ कर वह चिल्ला उठता है। कटु और कटुतम, वंकिम और उग्र भाव-भंगिमाओं से क्षुद्रता और पशुता पर उसने अट्टहास किये है। यहाँ तक कि वह पागल हो-हो गया है।"[७४] जिन घटनाओं को उपन्यासकार चित्रित करता है वे उससे सम्बन्धित भी हो सकती है, तथा इसके विपरीत भी। फ्रांस में एक लेखक हुआ था अलेक्जेण्डर ड्यूमा। उसके उपन्यास के पात्र उससे सुपरिचित थे। उपन्यासकारों की तुलना के सम्बन्ध में श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी जी लिखते हैं :—

"किस उपन्यास-लेखक की रचना में कला का कितना उत्कर्ष है, यह जानने के लिए हमें यह देखना होगा, कि किन पात्रों को पाठक कभी नहीं भूल पाते हैं। उपन्यास के जिन पात्रों के साथ सुख या दुख की स्मृतियाँ पाठकों के हृदय में

७३. हिन्दी उपन्यास : श्री शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० २
७४. आधुनिक हिन्दी साहित्य : सं० अज्ञेय, पृ० ४७

अनायास ही उपस्थित हो जाती है, उन्ही में उपन्यास की सार्थकता है।'[७५]

ऐसे पात्र, जिनके साथ पाठक के हृदय का तादात्म्य हो जाय किन-किन उपन्यासों मे पाये जाते हैं—इस वात पर अभी विचार किया जायेगा। यहाँ तो देखना यह है, कि सियारामशरण जी किस स्कूल के अन्तर्गत आते है। मूलतः सियारामशरण जी के उपन्यास सामाजिक हैं। ऐसे सामाजिक भी नही जहाँ व्यक्ति समाज का दास वन गया हो। वस्तुत उपन्यासकार की धारणा यह प्रतीत होती है कि व्यक्ति के सुधारने पर समाज सुधर जायेगा। श्री त्रिभुवनसिंह जी ने सभी सामाजिक उपन्यासों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है—

१. "पहला तो है प्रेमचन्द के पूर्व जिसका आरम्भ काल श्री निवासदास जी के 'परीक्षा गुरु' नामक उपन्यास से होता है और जिसके अन्दर देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम गहमरी आदि के जासूसी और तिलिस्मी उपन्यास लिखे गये।

२. दूसरा है प्रेमचन्द-युग जो उनके 'सेवासदन' नामक उपन्यास से प्रारम्भ होता है और जिसके अन्दर जयशंकर प्रसाद तथा विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक आदि की अधिकांश रचनाएँ आती हैं।

३. और तीसरे को हम प्रेमचन्दोत्तर युग के नाम से पुकार सकते हैं जिसके अन्दर जैनेन्द्र कुमार, सियारामशरण गुप्त, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीचरण वर्मा, राधिकारमण सिंह, श्रीनाथसिंह, यशपाल, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क, रांगेय राघव तथा अंचल आदि की अधिकाश रचनाएँ आती है।"[७६]

लेखक ने सियारामशरण जी को प्रेमचन्दोत्तर युग मे रखा है तथा जैनेन्द्र और भगवतीप्रसाद वाजपेयी जैसे लेखकों के समकक्ष माना है। कुछ विचारको ने 'नारी' की तुलना जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' से की है तथा सकेत किया है कि गोदान, गवन, सेवासदन, रंगभूमि, त्यागपत्र, नारी, चित्रलेखा तथा शेखर इत्यादि युग की प्रतिनिधि कृतियाँ है।[७७] यदि हम सम्पूर्ण हिन्दी उपन्यास-साहित्य से व्यक्ति-वादी, मनोविश्लेपणवादी, समाजवादी तथा ऐतिहासिक उपन्यासों को पृथक् कर

---

७५. हिन्दी कथा साहित्य : पदुमलाल पुन्नालाल वख्शी, पृ० २४६, २४७
७६. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : श्री त्रिभुवन सिंह, पृ० १०६
७७. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २०६

उपन्यास की प्रसिद्धि को अच्छाई की कसौटी मानते हैं। कोई उपन्यास वर्ष में कितनी बार पढा गया ? यही अच्छाई का पुष्ट प्रमाण है। ये बातें श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी ने प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को अपनी एक भेंट में बताई थीं। समाज परिवर्तनशील है। इसलिए जीवनदर्शन भी परिवर्तित होना चाहिए। सियारामशरण जी का जीवनदर्शन आस्था और विश्वास पर टिका है। इसके लिए उनका भक्त-हृदय उत्तरदायी है। परिवर्तन की दिशा में वाजपेयी जी को यदि राजपथ न मिले तो वे पगडण्डी से ही जाना पसन्द करेंगे। वे उपलब्धि के प्रसंग मे प्रयास को महत्त्व देते हैं। यहीं सियारामशरण जी से उनका साम्य दिखायी देता है ; क्योंकि उनकी अनवरत साधना ही उनके प्रयास का प्रमाण है। वे प्रचार से दूर रहना चाहते हैं। अपने को विज्ञापित करना उन्हें नही आता। वाजपेयी जी के पात्रों से जमुना, शोभाराम और रामलाल का कोई मेल नही। इसके लिए प्रेमचन्द जी के पास चलना पडेगा।

प्रेमचन्द जी के कुछ उपन्यास ऐसे हैं जिनमे समस्या देकर समाधान भी दिया गया है, पर कुछ मे केवल समस्याएँ ही दी गयी हैं। सेवा-सदन और प्रेमाश्रम में समस्या का समाधान मिलता है। सदन से आश्रम की ओर जाना समस्या का समाधान ही है। गोदान में समस्या है तो समाधान नही। अपने उपन्यासो मे मुंशी प्रेमचन्द जी ने समाज की झांकी प्रस्तुत की है। उनके दृष्टि-कोण से समाज के सुधर जाने पर व्यक्ति सुधर जायेगा। सियारामशरण जी व्यक्ति का सुधार पहले चाहते हैं। उनके विचार से व्यक्ति जब ढर्रे पर आ जायगा तब समाज का सुधार अपने आप हो जायेगा। इसीलिए गोद, अन्तिम आकांक्षा और नारी तीनो उपन्यासो में चरित्र को विशेष महत्त्व दिया गया है। गोदान और नारी के जीवनदर्शन पर विचार करते हुए श्री शिवनारायण श्रीवास्तव ने लिखा है—

"गोदान मे जिस जीवनदर्शन की अभिव्यक्ति है वह प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासो में नही। अन्य उपन्यासों मे ईश्वरीय न्याय की महत्ता प्रदान की गयी है, किन्तु गोदान के अनुसार संसार दुखान्त है, जिसका परिचालन ऐसी शक्तियों द्वारा होता है, जो मानवीय अभिलाषाओं एवं रागों, मनोवेगों के प्रति बिल्कुल उदासीन होती है। सियारामशरण जी की नारी का भी जीवनदर्शन कुछ इसी प्रकार का है। मनुष्य का कर्तव्य जगत का परिचालन करने वाली यांत्रिक शक्तियो के उत्पातों को सहन एवं सामना करना मात्र है। केवल इसी प्रकार

वह अपने सत्य, न्याय, दया, आदर आदि के आदर्शों की स्वीकृति दे सकता है।"[८०]

यह तो हुई जीवनदर्शन की वात। नारी और गोदान के कथाशिल्प में पर्याप्त अन्तर है। गोदान की कथा अपने अन्तस्तल में अनेक आनुषंगिक कथाओं को लिये है। नारी की कथा इकहरी है और सारी वातें नारी की मुख्य कथा से सम्बन्धित है—

"हिन्दी में वावू सियारामशरण गुप्त के उपन्यास नारी में एकार्थ वस्तु का ही विधान हैं।"[८१]

'गोदान' में कहीं-कहीं दर्शन की सुन्दर भूमिका प्रस्तुत की गयी है पर नारी में दर्शन की पृष्ठभूमि में कुछ नही कहा गया है। गोदान के कथा-शिल्प में कौशल और प्रवीणता है। नारी में उतना कौशल नही पाया जाता। शैली में प्रेमचन्द जी को कोरा शव्द-जाल पसन्द नही। सियारामशरण जी भी सीधी-सादी शैली के पक्षपाती हैं। अनुभूति पक्ष दोनों में प्रधान है। चित्रण की सामग्री दोनों ने एक ही स्थल से चुनी है। समाज की कुरीतियों या समाज की जोंकों पर व्यंग्य दोनों ने किये हैं। प्रेमचन्द जी फेमनिनिज्म स्वाह साहित्य नहीं पसन्द करते। सियारामशरण जी के उपन्यासों में भी यही वात पायी जाती है। प्रेमचन्द की भाँति सियारामशरण जी शहरी और ग्रामीण समस्या की तुलना में नहीं लगे वल्कि अपने ढंग से गाँव की ही वात का वर्णन उन्होंने किया है।

सियारामशरण जी और जैनेन्द्र जी की तकनीक में कितनी समता है और कितनी असमानता है यह भी देख लिया जाय। जैनेन्द्र जी अपने साहित्य का उद्देश्य 'वुद्धि से दुश्मनी' करना मानते है।[८२] वस्तुतः वुद्धि से दुश्मनी सोचना वुद्धिवादी होने का सवसे वड़ा प्रमाण है। जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के कथा-शिल्प को देखते हुए प्रतीत होता है, कि अपने शिल्प और शैली के प्रति लेखक जागरूक है। नगेन्द्र जी के मतानुसार :—

"जव कभी जैनेन्द्र जी सादगी में आकर टेकनीक या शिल्प में सर्वथा अवोध होने की वात करने लगते है तो हँसी आ जाती है।"[८३]

---

८०. हिन्दी उपन्यास : श्रीशिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० ३०५

८१. वाङ्मय विमर्श : विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ५८

८२. साहित्य का श्रेय और प्रेय : जैनेन्द्र, पृ० १५

८३. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १२

जैनेन्द्र के पुरुष पात्र प्रायः अपने अभावों से घिरे हैं। या तो वे अपनी सारी आकांक्षाओं को समेट कर भविष्य की ओर ताकते हैं अथवा सामाजिक जीवन से अपने को पृथक् कर लेते हैं। इन पात्रों ने आवश्यकतानुसार अंशतः गांधीदर्शन को भी अपनाया है, पर केवल बुद्धि से। नारी पात्रों में एक ही नारी के दो प्रकार के व्यक्तित्व सामने आते हैं—एक पत्नी के रूप में और दूसरी प्रेमिका रूप में।

असफल स्नेह, जीवन का व्यक्तिवादी दर्शन, मध्यवर्गीय समाज की कहानी, निराशा और विवशता का वातावरण तथा परिस्थिति से प्रभावित पात्रों का दर्शन जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में होता है। सियारामशरण जी के पात्र कभी विवश नहीं होते। गांधीवाद की छाया उनमें देखने को मिलती है। शोभाराम का भाई दयाराम (गोद में) गांधीदर्शन का प्रतीक है। 'तकनीक' के विषय में सियारामशरण जी यदि जागरूक नहीं तो अबोध भी नहीं। कुछ घटनाओं का संयोजन इस प्रकार का है जिनसे कौशल की बात स्पष्ट हो जाती है। डा० नगेन्द्र ने जैनेन्द्र जी को मेधावी, शिल्पी तथा सियारामशरण जी को स्नेहार्द्र शिल्पी कहा है।[८४] त्यागपत्र की मृणाल में इतनी शक्ति है कि वह पर-पुरुष के साथ मजबूर होकर अपना यौन-सम्बन्ध जोड़ सकती है। नारी की जमुना में इस प्रकार का आत्मबल नहीं पाया जाता। गांधीनीति के मार्ग को दोनों ने अपनाया है। दोनों का प्राप्य एक है। चलने का ढंग अलग-अलग है।

फलतः हम यह कह सकते हैं, कि सियारामशरण जी में अज्ञेय जी की मनोवैज्ञानिकता नहीं, प्रेमचन्द जी की भाँति किसी बात का निषेध और उससे विशेष लगाव नहीं, अहं भावना को यहाँ स्थान नहीं। यहाँ तो अपनी सच्चाई और ईमानदारी ही मूर्तिमान है। प्रो० देवराज उपाध्याय ने लिखा है—"यदि आप राम का नाम लेकर एक भरोसे एक बल के सहारे गणेशजी के मूपक की तरह सब देवताओं से भी लोक की घुड़दौड़ में बाजी मार लेना चाहते हैं तो मैं आपको गुप्त जी के उपन्यासों को पढ़ने के लिए आमंत्रित करता हूँ।"[८५] सियारामशरण जी ने साहित्य की इस विधा में जो कुछ दिया है वह हिन्दी के लिए अमूल्य सम्पत्ति है।

⊙

---

८४. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २१३
८५. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १०७

सियारामशरण गुप्त की कहानियाँ

कहानी के तत्त्वों के आधार पर विवेचन

गद्य-साहित्य आधुनिक युग की बहुत बड़ी देन है। नाटक, उपन्यास, कहानी आदि उसके अंग हैं। इस अनेक रूपात्मक जगत में घटित होने वाली घटनाएँ ही साहित्य में वर्णित की जाती हैं। कहानी में उन घटनाओं और अनुभूतियों का वर्णन होता है जो प्रतिदिन के जीवन में घटित होती हैं। ऐसी छोटी-छोटी घटनाएँ और प्रभाव कहानी में वर्णित होते हैं, जिनके पढ़ने में अधिक समय न लगे। कुछ विचारक तो केवल १५ मिनट का समय एक कहानी पढ़ने के लिए पर्याप्त समझते हैं।[1] वस्तुतः कहानी हमारे जीवन का एक अंग है। मुंशी प्रेमचन्द ने तो लिखा है—

"मानव जीवन की सबसे बड़ी लालसा यही है कि वह कहानी बन जाय और उसकी कीर्ति हर एक की ज़बान पर हो।"[2]

सियारामशरण जी की कहानियाँ मानव जीवन की कहानियाँ हैं। उन्होंने कुल मिलाकर ग्यारह कहानियाँ लिखी हैं। आठ ऐसी हैं, जो 'मानुषी' संग्रह में संग्रहीत हैं, शेष तीन 'प्रतीक' में प्रकाशित हो चुकी हैं।[3] इन कहानियों का उद्देश्य बहुत कुछ वही है, जो उनके खंड-काव्यों अथवा कथात्मक रचनाओं का है। 'आर्द्रा' में

---

१. कुछ विचार : मुंशी प्रेमचन्द, पृ० ३१

२. कुछ विचार : मुंशी प्रेमचन्द, पृ० ३२

३. सियारामशरण गुप्त : संपादक डा० नगेन्द्र, पृ० १०८

इस प्रकार की कुछ कहानियाँ पायी जाती हैं जो पद्य-बद्ध हैं। इस शैली में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की कृति 'कथा ओ काहिनी' है। सियारामशरण जी के निबन्ध-संग्रह 'झूठ-सच' में भी कुछेक प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें हम कहानी कह सकते हैं। सियारामशरण जी का कहानीकार हिन्दी को अधिक नहीं दे पाया, किन्तु जितनी भी कहानियाँ उपलब्ध हैं शिल्प-विधान की दृष्टि से सुन्दर बन पड़ी हैं। अब हम कहानी के तत्त्वों के आधार पर सियारामशरण जी की कहानियों पर विचार करेंगे।

सियारामशरण जी ने अपनी कहानियों के वस्तु-संयोजन में अत्यन्त सतर्कता का परिचय दिया है। घटनाओं का क्रम और विषय का निर्वाचन अत्यन्त उपयुक्त ढंग से हुआ है। सियारामशरण जी की सादगी उनके विषयोपादान में स्पष्ट दिखायी पड़ती है। 'मानुषी' में शंकर-पार्वती के परस्पर वार्तालाप से कहानी का समारम्भ होता है। पार्वती की वही जानी-पहचानी पुरानी जिज्ञासा और भगवान शंकर का समाधान अपने स्वाभाविक और लोक-विश्रुत रूप में है। जाह्नवी जीजी के लोक को देखने की जिज्ञासा से पार्वती का हृदय उत्कंठित हो उठता है। यह वह लोग हैं जिन्हें लेखक की सहानुभूति प्राप्त है। पार्वती के शब्दों में एक चित्रण प्रस्तुत है—"देखिए, काल के थोड़े से आघात से ही, आँखों में अन्धेरा भर कर यह किसी वृद्धा की तरह पृथ्वी पर बैठ जाने की सोच रही है। ऊपर की मिट्टी ने खिसक कर स्थान-स्थान पर भित्तियाँ विषम कर दी हैं मानों उनमें झुर्रियाँ पड़ गयी हों। ऊपर छप्पर में जगह-जगह झरोखे बन गये हैं। जाले बुन कर भीतर मकड़ियों ने उन पर परदे डालने चाहे हैं। ऐसी है यह झोपड़ी। और इसी को देख-देख कर आप आनन्द से पुलकित हो उठे हैं।"[४]

लोक में फैली हुई दुख की छाया से पार्वती द्रवित होती हैं। विधवा स्त्री के जीवन की मलिन और अस्त-व्यस्त झाँकियों से प्रभावित होकर उसके लिए शंकर से कुछ देने को पार्वती कहती हैं। शंकर पार्वती से कहते है कि तुम कुछ अधिक दे सकोगी तो मुझे प्रसन्नता होगी। पार्वती कुटीर की ओर जाती हैं और भगवान शंकर उनकी प्रतीक्षा करते है। यहीं कहानी का एक खंड समाप्त हो जाता है।

कथानक के दूसरे खंड में जो दृश्यावली पार्वती देखती है वह अत्यन्त मर्म-

---

४. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७-८

स्पर्शी है। जमींदार के अत्याचारों से मुलू अहीर का जीना दूभर था। गोपाल का पक्ष लेने पर श्यामा के पति मनोहरलाल को कारागार का दंड मिला। लौटने पर श्यामा ने सलाह दी, कि वह कहीं और चला जाय। मनोहरलाल बाप-दादों का घर नहीं छोड़ना चाहता था। मनोहर बीमार पड़ा। गाँव वालों का व्यवहार अत्यन्त कटु था। श्यामा वैद्य भी न बुला सकी। एक दिन मार्ग में रामगोपाल ने श्यामा से कहा —

"सुन्दरी ! तुम इतना कष्ट क्यो करती हो ? जरा हँस कर मुझे आज्ञा दो। सीधे तुम्हारे यहाँ दूध की धार पहुँच जायगी।" श्यामा अपने रोष को सँभाल न पायी। पति से भी कुछ कह न सकी। मनोहरलाल ने उसी रात को अन्तिम विदा ली। श्यामा के भैया ने उससे अपने यहाँ रहने के लिये कहा; किन्तु वह नही चाहती थी, कि अपने पति का घर छोड़े। संघर्षो की दुर्गम घाटियाँ पार कर श्यामा यहाँ तक आयी है तो क्यों पीछे मुड़े। प्रतिदान की उसे आवश्यकता नही रही। हाँ, साहस का साथ उसने नही छोड़ा। त्रिवेणी की पावन लहरों में पति की अस्थियाँ विसर्जित करते हुए जब उसने स्वामी की अँगूठी तीर्थ-पुरोहितों को दान कर दी तो उसका हृदय विह्वल हो उठा। घर लौटने पर ज्वर आ गया। एकाध रात श्यामा अचेत रही। गिरो मौसी ने आकर उससे सारा वृत्तान्त पूछा। रात को मौसी श्यामा के घर रही। उसे किसी स्थान-विशेष पर गड़ी हुई मुहरों का पता बताया। श्यामा के हृदय में मुहरों के प्रति लोभ आया और सम्हलकर बोली—'मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है।' साथ ही गिरो मौसी को अपनी सम्पत्ति भी दिखायी। मौसी प्रभावित हुई और कहा, कि 'मैं तेरे स्वामी से तुझे मिला दूँगी।' श्यामा ने कहा, कि 'इस पापपकिल धरती पर मैं स्वामी को घसीटना नही चाहती हूँ। आप मुझे क्षमा करें ?' गिरो मौसी श्यामा को अपने मार्ग से मोड़ न पायीं।

इसके पश्चात् कहानी का तृतीय अंश प्रारम्भ होता है। यह अत्यन्त छोटा है। गिरो मौसी ही पार्वती थी। उन्होंने शंकर से याचना की, कि श्यामा का स्वामी भी कैलाश बुला लिया जाय। बस यहीं कहानी का अन्त है।

प्रस्तुत कहानी के कथानक में लेखक ने कुतूहल का संयोजन सप्रयास किया है। कहानी का द्वितीय खंड कथानक-निवन्धन की दृष्टि से ठीक है। शंकर-पार्वती के वार्तालाप का पुराना कथानक नये साँचे में ढाला गया है। वस्तुतः 'सारे वपय का एक क्रम-विन्यास स्पष्ट मालूम पड़े तभी यह समझना चाहिए, कि

वस्तु का विधान पूरा हो सका है।'[५] इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर यदि गुप्त जी के कथा-निबन्धन पर विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि कहीं-कही उसमें शिथिलता भी आयी है। केवल क्रम-विन्यास ही नही, अपितु स्वाभाविकता के आधार पर भी कतिपय वस्तु-बंध शिथिल है। 'कष्ट का प्रतिदान', 'रुपये की समाधि' आदि शीर्षकों का कथानक अपने में उलझा हुआ है। इस सम्बन्ध में डा० प्रभाकर माचवे लिखते है :—

"मानुषी में 'काकी' और 'त्याग' जितने स्वाभाविक जान पड़ते हैं उतने 'कष्ट का प्रतिदान' या 'पथ में से' नहीं।"[६]

आरम्भ, चरमोत्कर्ष और अन्त, इन तीनों अवस्थाओं में कथानक को बाँटने पर सियारामशरण जी के कथानकों के विभिन्न रूप दिखायी पड़ते है। मानुषी का मुख्य कथानक कहानी के बीच का भाग है। आदि-अन्त तो उसकी भूमिकाएँ है। नायक के किशोर-जीवन से लेखक कथानक को आरम्भ करता है। वस्तुतः श्यामा कथानक में अपना विशिष्ट और प्रमुख स्थान रखती है। सारी कथा श्यामा के उज्ज्वल चरित्र के आस-पास ही रहती है। जीवन के मध्य भाग से प्रारम्भ की गयी कथा थोड़ी दूर पर समाप्त हो जाती है। एक घटना श्यामा के जीवन को तपा कर और अधिक परिशुद्ध कर देती है— वह है उसके स्वामी का महाप्रयाण।

'रुपये की समाधि' कहानी का कलेवर कुछ वड़ा है। 'पथ में से' का कथानक एक रेखाचित्र मात्र है। 'कष्ट का प्रतिदान' कहानी एक असंभावित घटना के ऊपर आधारित है। रामनारायण रेलगाड़ी के डिब्बे से एक स्त्री की सहायता करने के लिए नीचे उतरते है। उस स्त्री का लोटा प्लेटफार्म पर छूट गया था। लोटा लेकर चढ़ने के पहले गाड़ी छूट जाती है। उसी गाड़ी में रामनारायण की स्त्री और वच्चे वैठे थे। अगला स्टेशन दूर था। स्टेशन मास्टर को तार दिया गया, कि 'रामनारायण की स्त्री अमुक रेलगाड़ी से उतार ली जाय।' रात में पैदल ही रामनारायण अगले स्टेशन पहुँचे। वहाँ लोटे वाली स्त्री के साथ ही उनकी स्त्री मिल गयी। यही पूरा कथानक है। लेखक ने इस कथानक मे कई स्थलों पर कुतूहल की सृष्टि करने की योजना की है। कुछ घटनाएँ

---

५. कहानी का रचना-विधान : डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा
६. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० ११३

अस्वाभाविक भी लगती है। मनोवैज्ञानिकता की दृष्टि से भी कथानक शिथिल है।

सियारामशरण जी की कहानियों के कथानक घटना-बहुल नही है। वस्तुतः कथानक में किसी एक घटना के आधार पर एक प्रभाव की अनुगूंज होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में मुंशी प्रेमचन्द जी लिखते है :—

"आख्यायिका में इस बाहुल्य की गुंजाइश नही। बल्कि कई सुविज्ञजनों की सम्मति तो यह है कि उसमें केवल एक ही घटना या चरित्र का उल्लेख होना चाहिए।"[७]

जो लोग कहानी को केवल हलके मनोरंजन का साधन समझते है उनकी दृष्टि में सियारामशरण जी का कहानीकार कुछ असमर्थ-सा लगेगा। मनोरंजन के साथ ही कहानी मानव की पवित्र और कोमल भावनाओं का उन्मेष करने वाली भी होनी चाहिए। मानुषी, कोटर और कुटीर, काकी, त्याग आदि कहानियों के कथानक इसी प्रकार के हैं। सियारामशरण जी के कथानकों की एक विशेषता यह भी है, कि पुरानी बातों को ऐसी शैली में प्रस्तुत करना कि वे एकदम सत्य प्रतीत हों। शंकर-पार्वती से सम्बन्धित कहानी मानुषी तथा कोटर और कुटीर के कथानक इसी प्रकार के हैं। उद्देश्य और प्रभाव की एकता भी इन कथानकों में पायी जाती है। यद्यपि कथानकों की योजना कथाकार ने पहले से नहीं बनायी;[८] किन्तु उनकी अपनी एक दिशा है, एक ढंग है। निष्कर्षतः मियारामशरण जी के कथानकों के सम्बन्ध में ये विशेषताएँ सामने आयी :—

क. मानवतावाद तथा गांधीवाद का प्रभाव।

ख. उद्देश्य और प्रभाव की एकरूपता।

ग. कुछ कथानकों में परिच्छेदों का क्रम। (जैसे मानुषी और कोटर और कुटीर।)

घ. आरम्भ, चरमोत्कर्ष और अन्त का समुचित ध्यान।

च. कुछ कथानक दुहरे।

छ. संघर्ष और द्वन्द्व का अभाव।

---

७. प्रेम-प्रसून : मुंशी प्रेमचन्द, भूमिका, पृ० ४

८. सियारामशरण गुप्त : संपादक डा० नगेन्द्र, पृ० ११

सियारामशरण जी की कहानियों में पात्रों का मेला नहीं पाया जाता। सभी कहानी के पात्र अपनी विशिष्टता के कारण ही महत्त्वपूर्ण बने हुए हैं। लेखक ने पात्रों का चयन अपने स्वभाव के अनुकूल किया है। वे या तो मध्यम वर्ग के हैं अथवा एकदम निम्न वर्ग के। पक्षियों में उन्हें राजहंस नहीं मन भाया। चातक ही लेखनी का विषय बना, जो बेचारा बूँद-बूँद पानी के लिए तरसता है, फिर भी अपनी आस्था नहीं खोता।

सियारामशरण जी ने कुछ ऐसे पात्रों का आकलन अपनी कहानियों में किया है, जो देवताओं की कोटि में आते हैं। शंकर-पार्वती को लाकर लेखक ने 'मानुषी' में कुतूहल की सृष्टि अवश्य की है; पर आज का भौतिकवादी पाठक ऐसे चरित्रों को बहुत पीछे छोड़ आया है। उसे अब पुराणों पर विश्वास नहीं रहा। कवि-सत्यों की आकृति उसे खोखली और बनावटी लगती है। इसीलिए चातक चाहे लाख चिल्लाये, 'पी कहाँ', 'पी कहाँ' पुकारे, आज के पाठक का उससे कोई प्रयोजन नहीं। हो सकता है—सियारामशरण जी का चातक आज की विषम परिस्थितियों में द्वन्द्व और संघर्षों की लहरों पर डूबने-उतारने वाले मानव का प्रतीक हो। और तब तो कहना ही क्या? नये युग के पाठकों को मनचाही वस्तु मिली।

सियारामशरण जी की कहानियों के कतिपय मुख्य पात्रों के नाम इस प्रकार हैं :—

१. शंकर, पार्वती, मनोहरलाल, श्यामा, मुलू अहीर, रामगोपाल (मानुषी)।
२. रामनारायण (कष्ट का प्रतिदान)
३. रामदेव (पथ में से)
४. मोहन, ज्वालाप्रसाद सेठ (बैल की बिक्री)
५. जयदेव (त्याग)
६. चुक्खू ('प्रतीक' सं० २, १९४९ में प्रकाशित कहानी)
७. विशेश्वर श्यामू (काकी)
८. चातक और गोकुल (कोटर और कुटीर)

उपरिलिखित पात्रों में ज्वालाप्रसाद ही ऐसे हैं जिन्हें हम सेठ नहीं तो सेठ 'टाइप' अवश्य कहेंगे। यद्यपि लेखक ने सेठ ज्वालाप्रसाद ही लिखा है। 'मोहन'

और 'चुवनू' तो बहुत ही दीन-हीन है।' 'श्यामू' का बाल-स्वभाव कितना स्वाभाविक लगता है ? पाठक का हृदय थोड़ी देर के लिए श्यामू की उस पतंग के साथ गगन-विहारी बन जाता है जिस पर 'काकी' लिख कर वह स्वर्ग से अपनी काकी को धरती पर उतारने का असफल प्रयत्न करता है। वस्तुतः सियारामशरण जी के चरित्रों की एक दुनिया है, यहाँ मजबूरी है, दुःख है तथा जीवन की ऊँची-नीची तलहटियाँ हैं। जिन चरित्रों का सम्बन्ध संघर्ष और यातनाओं से जुड़ गया है वे शान्तिपूर्वक उसे झेलने की क्षमता रखते हैं। लेखक के समान ही पात्रों में भी सब कुछ सहन करने की क्षमता है। भाग्य की विषमताओं और युग के प्रहार झेलने से सियारामशरण जी की कहानियों के पात्र झिझकते नहीं। उनको अपने पर विश्वास है। वे संसार में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं चाहते, अपितु शान्तिपूर्ण विकास के पक्ष में हैं। सियारामशरण जी का व्यक्तित्व देखने में अत्यन्त सरल और भोला था। उस सरलता और भोलेपन की छाप उनके द्वारा चित्रित चरित्रों पर भी पड़ी है। श्यामा का अपना घर छोड़ कर मौसी के साथ न जाना, धुन का पक्का होने का पुष्ट प्रमाण है। किसी के महल से मुझे क्या प्रयोजन मेरी कुटिया में ही मुझे राजभवन का आनन्द मिलता है।

सियारामशरण जी के पात्रों के साथ पाठकों की सहानुभूति स्वतः प्रकट हो जाती है, जाने क्यों ? उनके साथ रहने या उनको देखने को हृदय चाहता है। यह लेखक की बहुत बड़ी सफलता है। यद्यपि सियारामशरण जी ने कहानियाँ अधिक नहीं लिखीं किन्तु उनकी जो कहानियाँ हिन्दी जगत को उपलब्ध हैं, उनके पात्र कभी भुलाये नहीं जा सकते।

'कोटर और कुटीर' कहानी में (द्वितीय भाग) गोकुल का चरित्र लेखक ने अतीव उज्ज्वल चित्रित किया है। पाया हुआ बटुआ गोकुल आगे चल कर उस व्यक्ति को सौंपता है, जिसका कि वह है। वह बटुआ मार्ग में जाते समय गिर गया था। गोकुल के समान चरित्र वाला व्यक्ति आज के चरित्र-हीन भारत में मिलना कठिन है, किन्तु समाज में एकाध व्यक्ति इस प्रकार उदाहरण-स्वरूप अवश्य पाये जाते हैं। इसलिए आज के युग में ऐसे पात्र अस्वाभाविक से लगते हैं। इस प्रकार के सर्जन को हम 'आदर्श' कह सकते हैं।

'काकी' का श्यामू कितना भोला और अबोध बालक है। पतंग पर 'काकी' लिख कर अपनी स्वर्गीय काकी को नभ से उतारना चाहता है। यह श्यामू के

छुटपन की स्वाभाविकता है जो उसे सबका प्रिय कर देती है। अन्ततः गिया-रामशरण जी के कहानी के चरित्रों के सम्बन्ध में ये बातें मुख्य रूप में कही जा सकती है —

क. पात्र सजीव और स्वाभाविक है।

ख. पात्रों की सृष्टि सवेदन के अनुकूल है।

ग. प्रायः सभी पात्र जाने-पहचाने संसार के हैं।

घ. उनमें अन्तर्द्वन्द्व नही पाया जाता है।

च. अहिंसा, सहनशीलता, प्रेम आदि उनके गुण है।

प्रायः सभी कहानियों के पात्रों का परिचय कथोपकथन, घटना, वर्णन तथा संकेतों के आधार पर प्राप्त होता है।

कथोपकथन कथा को आगे बढ़ाते हैं। पाठकों के मन में कहानी को आद्योपान्त पढ़ने की सुरुचि उत्पन्न करते हैं। बातचीत में किसको आनन्द नही आता ? हाँ, भाषा, भाव और देशकाल के आधार पर संवाद भी उपयुक्त और सुनने में आकर्षक होने चाहिए। किसी भी पात्र के चरित्र का उद्घाटन कथोपकथन के द्वारा किया जा सकता है। सियारामशरण जी की कुछ कहानियों में वातावरण के अनुकूल कथोपकथन का विधान किया गया है। व्यापक रूप से देखने पर पता चलता है कि आत्मचरितात्मक तथा डायरी शैली को छोड़ कर शेष सभी विधाओं में किसी न किसी रूप में कथोपकथन का सहारा लेना होता है। कथोपकथन की उग्रता और शालीनता के आधार पर वातावरण को समझने में हमें आसानी होती है। कहानी में कथोपकथन की उपयोगिता बताते हुए डा० जगन्नाथप्रसाद जी शर्मा लिखते है :—

"कथा-साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास में इसका स्वच्छंद, अनियंत्रित और अपरिचित विहार मिलता है, परन्तु कहानी में इसका लघुप्रसारी वैदग्ध्यपूर्ण, आकर्षक और चमत्कारी प्रयोग ही इप्ट होता है।"[९]

'मानुषी' कहानी के कथोपकथन शंकर और पार्वती के मध्य है। कथोपकथन अथवा संवाद का यह रूप आकर्षक तो है, किन्तु कुछ लम्बा-सा हो गया है।

---

९. कहानी का रचना-विधान : डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ० १२२

पार्वती के एक बात पूछने पर शंकर पर्याप्त समय लेकर समझाते रहते हैं। कहानी के लघु आकार में इन व्याख्यात्मक बातों का अवकाश कहाँ! इसलिये ये संवाद केवल कथा को आगे बढ़ाने वाले ही हैं। 'कष्ट का प्रतिदान' कहानी के संवाद भी संख्या में थोड़े हैं। लेखक स्वयं कहानी के साथ चलता है। जमादार और रामनारायण की बातचीत का एक स्वाभाविक चित्रण देखिए :—

'धीमे स्वर में जितना भी जोर भरना संभव है, उतना भर कर जमादार ने कहा—'बाबू सो रहे हैं। देखो उधर मत जाओ, नहीं तो अच्छा न होगा। रात को कोई काम नहीं होता।'

इस समय किसी से लड़ाई मोल लेने योग्य रामनारायण के मन की अवस्था न थी। नरमी से उन्होंने कहा—शाम की पैसेन्जर गाड़ी से बस-स्टेशन पर कोई स्त्री तो नहीं उतरी ?

'नहीं उतरी।'

'नहीं उतरी।'

'हाँ नहीं उतरी, नहीं उतरी। ज्यादा और शोर न करो! छोटे बाबू जाग जायेंगे।'[१०]

संवादों में बीच-बीच में व्यंग्य का पुट, उपमा और रूपकों की योजना मिलती रहती है। यही कारण है कि पाठकों का मन ऊबता नहीं। व्यंग्य की भाषा में रुपये की समाधि कहानी का एक संवाद है :—

'किसी तरह हिम्मत करके जगो से पूछा—तुमने रुपया निकाला था ?

सवेरे से अब तक उसने मेरी किसी बात का उत्तर नहीं दिया था। इस बार वह फूटे काँसे की तरह झनझना उठी।

बोली – 'कहाँ का रूपया, कैसा रूपया ?'

'कल मुझे मजूरी मिली थी।'

'तो मुझसे क्या कहते हो ? उस हरजाई से जाकर पूछो जहाँ रात बिलमे थे।'

---

१०. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४६

मैंने एक दम इन्कार कर दिया सझा से घर से वाहर पैर नही दिया रात कहाँ विलमी ?

आग छुआ देने से वारूद जिस तरह भभक उठती है उसी तरह वह आपे से वाहर हो गयी। वोली—लो, मैंने चोरी की है तुम दोनों से मिल कर जो वने कर लो मेरा।" ११

इस सवाद से किसी विशेष सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं होता है। केवल वातावरण की रूपरेखा ही स्पष्ट होती है। भावात्मक संवाद की झलक हमें 'कोटर और कुटीर' कहानी मे मिलती है। दोपहर की चिलचिलाती धूप मे सूर्य की अग्निशलाकाएँ पृथ्वी के शरीर को दग्ध कर रही थी। इसी प्रकार के वातावरण का प्रसंग है :—

"इसी समय अपने छोटे से कोटर के भीतर वैठे चातक-पुत्र ने कहा—पिता ! चातक ने अपनी चोंच कुमार की पीठ पर फेरते हुए प्यार से कहा—'क्या है वेटा ?'

'है और क्या ? प्यास के मारे चोंच तक प्राण आ गये है।'

'वेटा ! अधीर न हो। समय सदा एक सा नही रहता।'

'यही तो मैं कहता हूँ—समय सदा एक सा नही रहता।'

पुरानी वातें पुराने समय के लिये थी। आप अव भी उन्हें इस तरह छाती से चिपकाये हुए हैं, जिस तरह वानरी मरे बच्चे को चिपकाये रहती है। घनश्याम की वाट आप जोहते रहिए। अव मुझसे यह नही सहा सकता।"१२

प्रस्तुत अवतरण से लगता है कि वातावरण वड़ा गम्भीर रहा होगा जव इस प्रकार की वातचीत हो रही होगी। निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि सियारामशरण जी की कहानियों के संवाद भावात्मक, वातावरण-प्रधान, गतिशील और आकर्षक है। एकाध स्थल पर मनोविज्ञान की भूमिका मे संवाद अच्छे वन गये है। 'काकी' के छोटे संवाद वालमनोविज्ञान का अच्छा परिचय देते है। अलंकार-प्रधान भाषा वाले संवादो के प्रयोग सियारामशरण जी की कहानियों मे प्रायः नही हुए है। यहाँ दार्शनिक विवेचना भी नही मिलती।

---

११. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६३
१२. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ९९-१००

लेखक के व्यक्तित्व की सादगी उसके संवादों में भी झलकती है।

'मानुषी' में संग्रहीत कहानियाँ संवत् १९८५ वि० से लेकर संवत् १९८७ वि० के बीच की लिखी हुई हे। 'प्रतीक' में प्रकाशित कहानियाँ बाद की हैं। इन कहानियों का वातावरण सामाजिक है। समाज में फैली हुई अनीति, शोषण, भ्रष्टाचार, भुखमरी, विलासिता आदि का पता इन कहानियो से लगता है। कुछेक कहानियाँ ऐसे वातावरण की ओर संकेत करती है जहाँ न ईर्ष्या है, न द्वेष है। हर व्यक्ति एक-दूसरे की भलाई चाहता है। आशा और विश्वास का वातावरण 'कोटर और कुटीर' कहानी में दिखायी पड़ता है। अपने समाज की आज यही दशा है। पुत्र प्राचीन और जर्जर रूढ़ियो को तोड़ कर स्वच्छन्द वायु-मंडल में विहार करना चाहता है। पिता बड़े धर्मसकंट मे हे। क्या करे? जीवन भर घनश्याम के प्रति आस्था बनी रही। अब चलते समय अपना परलोक क्यों बिगाड़े। कष्ट सहकर भी वह चातक पिता प्रतीक्षा करता है स्वाती के श्यामघन की जो उसे जीवन दान देता है। वातावरण के अन्तर्गत परिस्थितियों की योजना में सियारामशरण जी की लेखनी बड़ी निपुण दिखायी पड़ती है। स्वर्ग पहुँची हुई अपनी काकी को श्यामू पतंग मे 'काकी' लिख कर स्वर्ग से धरती पर उतारने का प्रयास करता है। उसके पिता इस बात पर दंड देते है कि यह काम पैसे चुरा कर किया गया है। अन्त मे पतंग पर 'काकी' लिखा देखकर वे पश्चात्ताप के सागर में निमग्न हो जाते है। 'कष्ट का प्रति-दान' कहानी की परिस्थितियाँ कुछ अस्वाभाविक सी लगती है; किन्तु 'मानुषी', 'पथ में से', 'चुक्खू', 'त्याग' आदि में पर्याप्त स्वाभाविकता पायी जाती है।

प्राचीनता की दृष्टि से कहानी की शैलियों में ऐतिहासिक शैली सबसे पुरानी है। सियारामशरणजी ने कोई ऐतिहासिक इतिवृत्त लेकर कहानियाँ नहीं लिखी। 'कोटर और कुटीर' कहानी की शैली पंचतंत्र की शैली के मेल में है, किन्तु उसे हमें प्रतीकात्मक कहना चाहिए। नवीन युग के धर्मसकंट में पड़े पिता की बात लेखक ने अपने ढंग से सामने रखी है। सियारामशरण जी की कई कहानियाँ चरित्त शैली में आती है। 'रुपये की समाधि', 'पथ में से', 'त्याग' आदि कहानियाँ इसी प्रकार की है। लेखक एक पात्र की ओर से अपनी बात कहता चलता है। ऐसी स्थिति में पाठक लेखक के अधिक समीप हो जाता है। लगता है कि उसे लेखक की आपबीती बाते ज्ञात हो रही है। उत्सुकता से पाठक की गति स्वत.प्रेरित हो कर कहानी के अन्त की ओर दौड़ती है। इस

संबंध में डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा लिखते हैं :—

"मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं के उद्घाटन-प्रकाशन के लिए यह प्रणाली अत्यन्त उपयुक्त होती है, साथ ही प्रथम पुरुष का प्रयोग करने से प्रतिपाद्य का प्रभाव बलवत्तर और अधिक संवेदनशील हो जाता है। इसमें पात्र के साथ अध्येता या पाठक के अन्तःकरण का सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इसलिए आत्मीयता का आभोग अधिक स्वस्थ हो जाता है।"[13]

चरित-शैली में लिखी हुई कहानियों की विशेषता यह है, कि सियारामशरण जी ने सर्वत्र स्निग्धता और सादगी का ध्यान रखा है। स्निग्धता शैली का आवश्यक गुण है। इसके हेतु घटना का सूक्ष्म वर्णन होना भी आकर्षण का एक कारण है। यद्यपि कहानी के छोटे क्षेत्र में यह सब सम्भव नहीं होता; किन्तु जो वर्णन किया जाय या जो बात कही जाय, उसे पूरी होना चाहिए। ऐसा न हो कि पाठक को अधिकांशतः अनुमान के आधार पर आगे बढ़ना पड़े। 'पथ में से' कहानी में चरित-शैली में ही सियारामशरण जी वेश्या की गली का वर्णन करते हैं :—

"अब हम लोग उस गली में आ पहुँचे जहाँ हमें जाना था—जहाँ नित्य-प्रति यौवन की श्री का विसर्जन होता रहता है, नीचे के खंड की दुकानें प्रातःकालीन नक्षत्रों जैसी हो रही थीं। परन्तु ऊपर की दुकानों में अभी जागृति का श्रीगणेश हुआ था। अच्छा श्रीगणेश हुआ था—एक जगह से नुपूरों की झंकार आ रही थी, तो दूसरी जगह से मादक संगीत-लहरी। एक ओर से सुन्दरी का मधुर हास्यालाप सुन पड़ता था, तो दूसरी ओर से किसी मद्यप का असम्बद्ध कंठ-स्वर! मैंने समझा इस पाप-वीथिका में अकेला मैं ही नहीं हूँ। मेरा साथ देने के लिए यहाँ एक से एक बढ़ कर मिल सकते हैं।"[14]

मनोविज्ञान को लेकर इधर कहानी के क्षेत्र में नये चरण आगे बढ़े हैं। सियारामशरण जी ने इस शैली का अनुगमन प्रायः नहीं किया है। कुछेक कहानियों में मनोवैज्ञानिकता की झलक अवश्य दिखाई पड़ती है। पुरानी बात को नये ढंग से कहने की शैली लेखक की अपनी है। चरित-शैली में कहीं-कहीं

---

१३. कहानी का रचना-विधान : डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ० १५५

१४. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७४

मनोवैज्ञानिकता का अच्छा चित्रण हुआ है। सबसे बड़ी विशेषता और गुण तो यह है कि इस शैली के अन्तर्गत लिखी कहानियों में पात्रों की संख्या अत्यंत सीमित है। डा० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है :—

"यह शैली उस कहानी मे उपयुक्त हो सकती है, जिसमे दो या तीन पात्र-पात्रियाँ हो, अधिक नही।"[१५]

सियारामशरण जी की शैली के अन्य रूप सामाजिक और भावात्मक भी है। मानवीय हृदय का रहस्य खोलने के लिए लेखक इधर भी आया है। किन मनोभावों से प्रेरणा प्राप्त करके पात्र आगे बढा है सियारामशरण जी ने इस परिस्थिति का उपयुक्त वर्णन किया है। मुंशी प्रेमचद जी ने लिखा है :—

"जो लेखक मानवी हृदय के रहस्यों को खोलने मे सफल होता हे, उसी की रचना सफल समझी जाती है। हम केवल इतने से ही संतुष्ट नही होते कि अमुक व्यक्ति ने अमुक काम किया। हम देखना चाहते है कि किन मनोभावों से प्रेरित होकर उसने यह काम किया।"[१६]

मानव-भावनाओं के विश्लेषण मे सियारामशरण जी अधिक सफल हुए है। काकी का 'श्यामू' पाठक को सदा के लिए याद हो जाता है। इसी शैली के अन्तर्गत रामदेव (पथ में से) चुक्खू, शिबू माते (बैल की बिक्री) जयदेव (त्याग) आदि अपनी अमिट छाप छोड़ते है। शैली की दृष्टि से विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि कविता की भाँति कहानी की भी गुप्त जी की अपनी निजी शैली है, जिस पर किसी पूर्ववर्ती लेखक का प्रभाव नही दृष्टिगोचर होता। यह भी नही कि एक ही शैली में सभी कहानियाँ हों। शैली की पूर्व योजना सोची हुई नही जान पड़ती; क्योकि उसका रूप स्वाभाविक है।

जिन घटनाओं, पात्रों और उनके मनोभावों का चित्रण सियारामशरण जी ने किया है उनको देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि समाज का जो विविध रूप लेखक की अनुभूति पर उतरा उसे उसने अंकित किया। कुछ तो आपबीती और कुछ अपने माध्यम से समाजबीती बातें कही गयी है। ऋण के बोझ से

---

१५. हिन्दी कहानियाँ : डा० श्रीकृष्णलाल, भूमिका, पृ० ५५

१६. कुछ विचार : मुंशी प्रेमचन्द, पृ० ३७

लदा हुआ किसान, भूला हुआ पथिक, पराये धन को ललचाये नयनों से देखने वाला लोभी व्यक्ति, अबोध बचपन, गरीब की कुटिया, वेश्या की गली, समाज की रूढ़ियाँ, निर्धन की आहें, आर्तो के करुण स्वर, दाम्पत्य जीवन तथा वात्सल्य के चित्रण की जो झाँकियाँ सियारामशरण जी की कहानियों में मिलती हैं उनको देखकर यह कहना चाहिए कि 'मनुष्य' ही उनकी कहानियों का लक्ष्य है।

कहानियों का मनोवैज्ञानिक आधार और वर्गीकरण

मनोविज्ञान ने कथा-साहित्य को एक नवीन दिशा दी है। समाज की कहानियों और उपन्यासों में वाह्य जगत की नाना रूपमयी चित्रावली मिलती है। मनोविज्ञान के अध्ययन से मानव के अन्तर्मन का पता चलता है। "जिस तरह वाह्य जगत में हम इतने मानव व्यापार, इतनी जटिलताएँ और समस्याएँ देख रहे है, इस विज्ञान ने इसी तरह सिद्ध कर दिखाया है कि मनुष्य का एक अन्तर्जगत भी है और यह अन्तर्जगत वाह्यजगत की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली और जटिल है।"[१७]

मानव चरित्रों के मूल्यांकन में मनोविज्ञान ने पूर्ण सहयोग दिया है। मनुष्य किन परिस्थितियो और मनोदशाओं मे पड़ कर जीवन से संघर्ष करता है— यह मनोविज्ञान द्वारा हम जान लेते है। प्रसाद और प्रेमचन्द जी ने मनोविज्ञान की आधार-भूमि पर अनेक सफल कहानियाँ लिखी है। किसी पात्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण विषय-वस्तु में स्वाभाविकता लाता है। कतिपय स्थलों पर लेखक ने मनोवैज्ञानिकता का सहारा लेने का प्रयत्न किया है पर प्रयास साधारण रह गये है। 'काकी', कहानी के श्यामू का चित्रण उतना अच्छा न हो पाता, यदि वालमनोविज्ञान की दिशा की ओर लेखक ध्यान न देता। श्यामू के छुटपन का भोलापन, निरीहता और वालसुलभ जिज्ञासा का सुन्दर रूप वर्णित है।

मानुषी कहानी में पार्वती की स्त्रीजनोचित जिज्ञासा मनोवैज्ञानिकता लिये हुए है, किन्तु साधारण कोटि की। इस सम्बन्ध में डा० ब्रह्मदत्त शर्मा लिखते है :—

---

१७. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास : डा० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० २३९

"मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी गयी उनकी कहानियों में पात्रों का वैज्ञानिक विश्लेषण साधारण कोटि का मिलता है।"[१८]

शर्माजी की यह बात प्रत्येक कहानी पर नही लागू होती। वैसे तो मनोवैज्ञानिकता पर सियारामशरण जी ने विशेष वल नही दिया, किन्तु जहाँ कहीं आवश्यकता पड़ी है, वहाँ मानव-मन का सुन्दर विश्लेषण किया गया है। मानुषी की पार्वती और श्यामा, बैल की बिक्री मे मोहन और शिबू, त्याग का जयदेव तथा कोटर और कुटीर के गोकुल सम्वन्धी वर्णनों मे मनोवैज्ञानिकता की छाप स्पष्ट दिखायी पड़ती है। सियारामशरण जी ने अपनी कहानियों में घटना और चरित्र पर विशेष वल दिया है। काकी के श्यामू के अन्तर्मन का विश्लेषण कितना स्वाभाविक है :—

"यद्यपि बुद्धिमान गुरुजनों ने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी काकी उसके मामा के यहाँ गयी है, परन्तु असत्य के आवरण मे सत्य वहुत समय तक छिपा न रह सका।..............काकी के लिए कई दिन तक लगातार रोते-रोते उसका रुदन तो क्रमशः शान्त हो गया, परन्तु शोक शान्त न हो सका। वर्षा के अनन्तर एक ही दो दिन में पृथ्वी के ऊपर का पानी अगोचर हो जाता है, परन्तु भीतर ही भीतर उसकी आर्द्रता जैसे वहुत दिन तक वनी रहती है वैसे ही उसके अन्तस्तल में वह शोक जा कर बस गया था। वह प्रायः अकेला बैठा-बैठा शून्य मन से आकाश की ओर ताका करता। एक दिन उसने ऊपर पतंग उड़ती देखी। न जाने क्या सोच कर उसका हृदय एक दम खिल उठा। विश्वेश्वर के पास जाकर बोला—काका, मुझे एक पतंग मँगा दो। अभी मँगा दो।"[१९]

पतंग न पाने पर पैसे चुराना और पतंग खरीदना तथा उस पर 'काकी' लिख कर उड़ाना, जिससे काकी स्वर्ग से भूतल पर आ जाय वालमनोविज्ञान की दृष्टि से उच्चकोटि का प्रयास है। स्वाभाविकता कहानी में कही भी साथ नही छोड़ती। मनोवैज्ञानिकता की दृष्टि से एक प्रसंग और देखिए :—

"बार-वार उसे वैल की सूरत याद आती। उसके ध्यान में आता मानो विदा होते समय वैल उदास हो गया था। उसकी आँखों में आँसू छलक आये

---

१८. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन : डा० ब्रह्मदत्त शर्मा, पृ० ३०१-२
१९. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ११३

थे। बैल का विचार दूर करता तो बाप का सूखा चेहरा सामने आ जाता। बैल और बाप मानों एक ही चित्र के दो रूप थे।"[२०]

एक बात इसी सन्दर्भ में और कहनी है कि सियारामशरण जी के मनोविज्ञान सम्बन्धी स्थल भारतीय चिन्ता-धारा के पक्ष में हैं। फ्रॉयड को उन्होंने पढ़ा अवश्य था, किन्तु कहीं भी प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। कहानियों के रचनाकाल के पर्याप्त समय पश्चात् फ्रॉयड का अध्ययन सियारामशरण जी ने किया था। यह ज्ञान लेखनी पर नहीं उतरा। फ्रॉयड के मत के सम्बन्ध में कहीं उन्होंने विस्तार से विचार भी नहीं किया। पश्चिमी विचारधारा का प्रभाव ग्रहण करना आज के भारतीय साहित्यकार के लिए आसान और मौलिक लगता है, किन्तु स्वतन्त्र चिन्तन की दृष्टि से किसी का प्रभाव कोई अनिवार्य आवश्यकता नहीं है।

विभिन्न दृष्टियों से विचार करने पर यह प्रतीत होता है, कि गुप्त जी ने कई प्रकार की कहानियाँ लिखीं हैं। कुछ कहानियाँ घटनाप्रधान है, कुछ में चरित्र की प्रधानता है। कुछ का आधार मनोविज्ञान है। कहानियों का वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

१ – चरित्रप्रधान कहानियाँ : 'मानुषी', 'चुवखू', 'बैल की बिक्री', 'कोटर और कुटीर'

२ – घटनाप्रधान कहानियाँ : 'कष्ट का प्रतिदान', 'रुपये की समाधि'

३—प्रभावप्रधान कहानियाँ : 'पथ में से', 'त्याग', 'काकी'

४-- विविध : 'रामलीला', 'प्रेत का पलायन'

कहानियों की भाषा

सियारामशरण जी की कहानियों की भाषा सरल, बोधगम्य और प्रवाह लिये हुए है। कठिन शब्दों का अनावश्यक घटाटोप उन्हे नही भाता। यह उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। उपन्यास के प्रसंग में भाषा पर विस्तार से विचार किया

---

२०. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ८४

जा चुका है। कहानियों की भाषा उपन्यास की भाषा से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। वही छोटे-छोटे वाक्य और दृष्टान्त-योजना, सामयिक शब्दों का प्रयोग तथा मुहावरों का उपयुक्त विधान सियारामशरण जी की भाषा में मिलता है। दृष्टान्तों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है :—

१—"उनकी मूर्खता का काला कलक इंजन के धुएँ के रूप मे वही के आकाश में अभी फैल ही रहा था, फिर भी उन्हे जान पड़ा कि उन्होने विलम्ब कर दिया है।"[२१] [कष्ट का प्रतिदान]

२—"आपने तो इस लोक के नरेन्द्रो को भी मात कर दिया जिनके सामने ही प्रजा त्राहि-त्राहि करती रहती है, परन्तु उनके कानों का मधु सगीत किंचिन्मात्र भी कुंठित नही होता।"[२२] [मानुषी]

३—"जिस गीली लकड़ी के एक सिरे पर आग होती है और दूसरे सिरे से पानी रिसता है, उसी जैसी उसकी अवस्था थी।"[२३] [मानुषी]

४ "वर्षा के अनन्तर एक ही दो दिन मे पृथ्वी के ऊपर का पानी अगोचर हो जाता है, परन्तु भीतर ही भीतर जैसे उसकी आर्द्रता बहुत दिन तक बनी रहती है, वैसे ही उसके अन्तस्तल मे वह शोक जाकर बस गया था।"[२४]

[काकी]

५—"खद्दर मेरे लिए वह चटपटा भोजन हो गया था जो अपनी तीक्ष्णता के कारण आँखों मे आँसू लाता है, फिर भी जीभ से नही छोड़ा जाता।"[२५]

[पथ में से]

ऐसे प्रयोगों से भाषा मे एक विशेष प्रकार की गति आयी है। भाषा की इस शैली पर अलंकरण की छाया नही पड़ी। लगता है लेखक को भाषा का

---

२१. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४२
२२. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ८
२३. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० १६
२४. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ११३
२५. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७२

स्वाभाविक रूप ही रुचिकर है। कुछ प्रयोग स्वाभाविक रूप से अत्यन्त मनोहर और स्निग्ध बन पड़े हैं।

१ —"उसके जूड़े की वकुल माला का यह सौरभ यहाँ रात के अन्धकार में महक उठा है।"

"राका का आगमन दिन में असामयिक है, रात्रि में ही उसका माधुर्य निखरता है।" [प्रेत का पलायन]

२—"जहाँ चंचला लक्ष्मी अचला होकर आलोक किये बैठी थी।" [मानुषी]

भाषा में शब्दों की सानुप्रासिकता का योग भी उसे आकर्षक बनाने में सहायक हुआ है। जटा-जूट, जाह्नवी जीजी, 'नहीं नाथ', 'दुर्दान्त दस्यु' आदि शब्द-प्रयोगों में अनुप्रास की चारुता है। सियारामशरण जी के वाक्यों की बनावट सीधी-सादी होती है। क्रियाओं का स्थान-परिवर्तन प्राय: देखने को नही मिलता। बीच-बीच में व्यंग्य का पुट भी मिल जाता है। इससे पाठक ऊबता नहीं—आगे बड़े चाव से बढ़ता चलता है। व्यंग्य सम्बन्धी कुछेक उदाहरण दृष्टव्य है :—

१—"न्याय-देवता की क्षुधा मिटाने के लिए अतएव जितने असत्य की आवश्यकता थी उसकी पूर्ति करने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई।"[२६]

२– म्युनिसिपैलिटी की दरिद्र लालटेनें अपने ऊपर अन्धकार का ग्लोब चढ़ा कर टिमटिमा रही थीं।"[२७] [पथ में से]

इन व्यंग्यों से भाषा मे चुटीलापन आया है। सरकारी कर्मचारी अथवा जमींदार दोनों जनता के शोषक है। स्वतंत्रता के पहले ही नहीं, बाद में भी सियारामशरण जी के व्यग्य अधिकतर इन्हीं के प्रति है। उपमा के लिए सियारामशरण जी अपने ढंग की शब्दावली सरलता से खोज लेते है। 'मानुषी' कहानी में 'प्रस्तर प्रसूते', 'भवति', 'महीयसी' तथा 'नास्तिकाचार' आदि कुछ कठिन शब्दों

---

२६. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० १५
२७. मानुषी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७३

का प्रयोग पाया जाता है, जिसकी ओर श्री विष्णु प्रभाकर जी ने संकेत किया है—

"प्रारम्भिक कहानियों में दग्धीभूत, गरीयसी और महीयसी ऐसे शब्दों के प्रयोग के कारण कुछ दुरूहता आयी है, परन्तु इधर वे गायब हो चुके हैं।"[२८]

कहना न होगा कि 'मानुषी' को छोड़ कर अन्य कहानियों में शब्द-विधान का यह रूप नहीं पाया जाता है। लेखक ने आवश्यकतानुसार ग्राम्य शब्दों का भी प्रयोग किया है। ऐसे शब्द भाषा में प्रवाह और स्वाभाविकता लाते हैं। 'तमाखू', 'मजूरी', 'पिछौरी', 'झब्बू' आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। मुहावरों का प्रयोग भी कम हुआ है। सारांश रूप में गुप्त जी कहानी की भाषा के गुण इस प्रकार हैं—

(अ) भाषा सरल प्रवाही, सहज एवं स्वाभाविक है।

(ब) शब्द-प्रयोग उपयुक्त है।

(स) कहीं-कहीं दृष्टान्तों, उपमाओं और रूपकों के प्रयोग किये गये है।

(द) सर्वत्र माधुर्य गुण पाया जाता है।

(य) भाषा पर बनावटीपन का अनावश्यक भार नहीं है।

हिन्दी कहानियों में स्थान

सियारामशरण जी मूलतः कवि है, किन्तु उनका गद्यकार भी अत्यन्त सजग है। उनकी कहानियों की विशेषता यह है, कि पात्र पाठक के हृदय को इतना प्रभावित करते हैं कि वह उन्हें कभी भूल नहीं पाता। कहानी-कला के अत्याधुनिक मानदंडों पर चाहे गुप्त जी की कहानियाँ खरी न उतरें, किन्तु उनको पढ़ने के पश्चात् पाठक को कुछ मिलता है। केवल मनोरंजन नहीं, अपितु प्रेरणा, जागरण, नवीनता, करुणा, दया, आदि के संदेश भी। डा० प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि "प्रेमचन्द की कुछ कहानियाँ पढ़ते समय हमें बरबस तालस्ताय का स्मरण हो आता है। जैनेन्द्र की 'साधु का हठ', जाकिरहुसैन की 'अब्बू खाँ की

---

२८. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० ११३

बकरी' और सियारामशरण जी की 'बैल की बिक्री' जैसी कहानियां पढ कर वही तालस्ताय के निर्मल अन्तःकरण वाले चरित्रों, पापी के हृदय परिवर्तन और अहिंसक मनोसंघर्ष वाली घटनाओं और सबसे ऊपर एक अडिग, अटूट आस्तिक-पन की याद पुनः हो आती है।"[२९] इन सारी बातों के पीछे लेखक का आस्थावादी और आस्तिक दृष्टिकोण कार्य करता है।

सियारामशरण जी कहानी के विकासकाल के लेखक है। इस काल में कहानी की 'तकनीक' में परिवर्तन हुआ है। प्रेमचन्द, प्रसाद, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सुदर्शन, कौशिक जी, रायकृष्ण दास, चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्र, यशपाल तथा अज्ञेय आदि कहानीकारों के अपने अलग-अलग मार्ग हैं। प्रेमचन्द जी की कहानियों में जिस व्यापक समाज का चित्रण हुआ है वह सियारामशरण जी की कहानियों में नही मिलेगा। कारण यह है, कि कुछ ही कहानियां उन्होंने लिखी हैं। फ्रॉयड की विचारधारा से प्रभावित होना सियारामशरण जी के लिए कठिन था। यदि प्रेमचन्द जी की कहानियों में व्यापकता और आदर्श मिलेगा, प्रसाद रचित कहानियों मे प्रेम की पुष्ट नीव मिलेगी, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, यशपाल और अज्ञेय आदि में प्रेम के विभिन्न रूप और अन्य समस्याएँ देखने को मिलेंगी तो सियारामशरण जी में गरीबी, आस्तिकता, निरीहता और विश्वसनीयता के प्रति संवेदना मिलेगी। विज्ञान की इस अन्धी दौड़ में यदि कोई सवार पुरानी सवारी पर चढ़ कर आ जाय तो दर्शकों को अनोखा अवश्य लगेगा, किन्तु बाजी उसी के हाथ रहेगी, क्योंकि अनुभव आस्तिकता और जिन्दादिली उसके पास पहले की है तथा चेतना विज्ञान से मिल गयी। यहां पाठक को नयी कहानी के नये स्वर तो नही प्राप्त होते, किन्तु नपे-तुले शब्दों में सवेदनशीलता का गुण समेटे एक कोने में छिपी हुई खुल कर बैठी कहानी के दर्शन अवश्य होते है।

सियारामशरण जी की कहानियों में व्यंग्य, आस्तिकता, भाषा तथा संवेदन-शीलता की जो विशेषताएँ पायी जाती है वे अपने में आकर्षण लिये हैं। यहाँ मनोविज्ञान की उलझनें नही है, यथार्थ का नग्न चित्रण नहीं है, परम्पराओं और अनावश्यक रूढ़ियों के प्रति व्यामोह नहीं है। यहाँ तो अपनी तूलिका के सीधेसादे रेखाचित्र है जिनमें मांसलता भले ही न हो, किन्तु आत्मपौरुष अवश्य है।

२९, सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १२०

हिन्दी कहानी-साहित्य के विकास मे गुप्त जी का योगदान सराहनीय है। श्वास रोग से सघर्ष करते हुए तथा कविता मे अधिक रुझान रहते हुए कहानी-साहित्य को जो कुछ भी मिल गया वही बहुत है। हितसाधिका भणिति के प्रसंग में सियारामशरण जी की कहानियों मे आदर्शवाद के तत्व खोजे जा सकते है। वैसे तो उनमें आदर्श और यथार्थ का समन्वित रूप ही मिलता है। जैसे ही कहानी-लेखन-शैली का मार्ग प्रशस्त हुआ सियारामशरण जी ने कहानी लिखना बन्द कर दिया। क्या ही अच्छा होता यदि उनकी लेखनी से कहानी-साहित्य की और सेवा हुई होती !

⊙

नाटक

कथावस्तु का संगठन

सियारामशरण जी ने 'पुण्य-पर्व' नामक नाटक और 'उन्मुक्त' नाम का गीति-नाट्य लिखा है। पुण्य-पर्व की कथावस्तु ऐतिहासिक है, किन्तु आवश्यकतानुसार नाटककार ने कथावस्तु-संयोजन में कल्पना से भी काम लिया है। पीछे हम कह आये हैं. कि साहित्य में सियारामशरण जी ने अनेक प्रयोग किये हैं। नाटकों की रचना इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। 'उन्मुक्त' की कथावस्तु के विधान में नाटककार ने उन्मुक्त कल्पना का आधार लिया है। यद्यपि मूलतः सियारामशरण जी कवि हैं, किन्तु इस दिशा का उनका योगदान भी कम नहीं है।

पुण्य-पर्व में गांधीवादी विचार-धारा को अभिव्यक्ति मिली है। इस कृति की विषय-वस्तु का संक्षिप्त परिचय पीछे इसी प्रवन्ध में दिया जा चुका है। यहाँ इस बात पर विचार करना है कि इस प्रकार की विषय-वस्तु के चुनाव में कवि का क्या प्रयोजन रहा है ? वस्तुतः सियारामशरण जी का लेखक अहिंसा द्वारा हिंसा पर, सत्य द्वारा असत्य पर तथा क्षमा द्वारा क्रोध पर विजय पाना चाहता है। यद्यपि आज के भौतिकवादी युग में ये प्रयोग अनोखे से प्रतीत होते हैं, किन्तु गान्धी-दर्शन इन प्रयोगों की सिद्धि और प्रसिद्धि का प्रवल प्रमाण

है। ऐतिहासिक कथानक में कल्पना का पुट देकर लेखक ने अपनी विचारधारा का प्रतिपादन किया है। 'पुण्य-पर्व' में वर्णित कथा भगवान गौतमबुद्ध के जन्म से पूर्व की है।[1] इस नाटक का प्रकाशन संवत् १९८९ है जो ईसवी सन् १९३२ होगा। यह समय केवल भारत के लिए ही नहीं, अपितु सारे विश्व के लिए विशेष महत्व का है। समसामयिक राजनैतिक गतिविधियों का प्रभाव भी इस नाटक की कथावस्तु पर पड़ा है।

ऐतिहासिक कथावस्तु के चयन में लेखक ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। हमें नाटक के उद्देश्य की झलक वहाँ मिलती है जहाँ सुतसोम ब्रह्मदत्त से कहता है :—

"सुनो ब्रह्मदत्त, वलि का यह अभिप्राय नहीं कि हम अपनी या किसी दूसरे की हत्या कर डालें। हमारे भीतर जो अहं भाव है, भगवान के चरणों में उसी की वलि देना ही सबसे बड़ी वलि है।"[2]

इस उद्देश्य ने नाटक के कथानक को मोड़ा है। जिस कथावस्तु के आधार पर पुण्य-पर्व की रचना हुई है अत्यन्त छोटी है। अभिनय की दृष्टि से प्रयोग सुन्दर बन पड़ा है। इस नाटक में कुल तीन अंक है। पहले अंक में दृश्यों की संख्या तीन, दूसरे में दो, तथा तीसरे में तीन है। कथा का प्रारम्भ सुभद्र और किंकर के वार्तालाप से होता है। किंकर ब्रह्मदत्त (वाराणसी का निर्वासित राजा) का अनुचर है। नन्द नामक एक गाथाकार ब्राह्मण के पुत्र का नाम सुभद्र है। बातचीत होते-होते किंकर सुभद्र को कंधे पर बैठा कर चल पड़ता है। इसी घटना के साथ पहले अंक का पहला दृश्य समाप्त होता है।

दूसरे दृश्य के प्रारम्भ में सुतसोम (इन्द्रप्रस्थ के राजा) की रानी विशाखा एक गीत गुनगुना रही है।[3] पार्श्व के लता-कुंज से अचानक सुतसोम निकल पड़ते हैं। रानी चौंक कर हर्षित होती हैं। दोनों में परस्पर प्रीति-संलाप होता है। विशाखा को सुतसोम का चुपके से आना अच्छा नहीं लगता। विनोद में उसने

---

१. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३
२. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० १३३
३. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० १४

राजा से यह बात कह भी दी। अन्त मे राजा ने अपनी रानी को यह कह कर सांत्वना दी, कि वे विनोद में ऐसा कर गये है। विशाखा सुतसोम से पूछती है—'क्या आपके कोई शत्रु भी है ?' वे उत्तर देते है :—

"सुनो, इस संसार में सबसे बड़ा शत्रु स्वय 'मैं' हूँ। यह 'मैं' परमार्थ का सबसे अधिक बाधक है।"[४] वार्तालाप के इसी प्रसंग में सुतसोम हस्तिनापुर जाने की बात करते है। रानी भी उनके साथ जाना चाहती हैं। इसी यात्रा के प्रसंग मे सोमवती अमावस्या के अवसर पर मंगल पुष्करिणी मे पर्व-स्नान करने का भी उनका विचार है। राजा अपने प्रतिद्वन्द्वी (वाराणसी का निर्वासित राजा ब्रह्मदत्त) की बात रानी से बताता हैं। रानी का हृदय आशंका और भय से भर जाता है। सुतसोम रानी से बताता है, कि तक्षशिला में पढ़ते समय ब्रह्मदत्त मेरे साथ था। आज वह मेरा वैरी बन गया है। इन्ही बातों के साथ दूसरा दृश्य भी समाप्त हो जाता है।

तीसरे दृश्य का प्रारम्भ वन में रसक और किंकर के वार्तालाप से होता है। ये दोनों ब्रह्मदत्त के अनुचर है। इनके स्वभाव में क्रूरता कूट-कूट कर भरी है। परस्पर का वार्तालाप भी कुटिलता से पूर्ण है। उधर ब्रह्मदत्त की इच्छा है, कि वट देवता को एक सौ एक मनुष्यों की बलि देकर कार्य सिद्ध किया जाय। किंकर हस्तिनापुर की वन्दीशाला से भागा हुआ चोर है।[५] इस अपराध में उसके लिए प्राण-दंड की घोषणा की गयी है। वार्तालाप के सन्दर्भ में रसक कही-कहीं व्यंग्य भी करता है किन्तु किंकर के ऊपर कोई प्रभाव नही पड़ता। इसी बीच ब्रह्मदत्त का पदार्पण होता है और वह सुतसोम को वन्दी बनाकर बलि चढ़ाने का घृणित प्रस्ताव करता है। इस कार्य को पूरा करने के लिये ब्रह्मदत्त और किंकर दोनों तत्पर हो जाते हैं। यहीं तीसरे दृश्य की समाप्ति के पश्चात् पहला अंक भी समाप्त हो जाता है।

दूसरे अंक का प्रथम दृश्य सुतसोम और यशोधन (सुतसोम का सहचर सचिव) के वार्तालाप से होता है। जनता में इस बात का भय फैल गया है, कि ग्राम से प्रतिदिन कोई न कोई व्यक्ति गायब हो जाता है। लोगों को विश्वास हो चला है, कि कोई नरखादक इन मनुष्यों को भक्षण करने के लिए ले जाता

---

४. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० २१
५. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३५

है। सुतसोम तथा यशोधन के वार्तालाप के समय ही कुछ व्यक्ति नरखादक की बात करते हुए प्रवेश करते हैं। सुतसोम को भी 'नरखादक' के आने का समाचार मिलता है। रसक और किंकर वेश बदल कर हस्तिनापुर के अन्दर प्रवेश करते हैं। आज उन्हें किसी न किसी प्रकार सुतसोम को बन्दी बनाना है। ब्रह्मदत्त अपने अनुचरों को अपना योजना-सूत्र बताता है। यहीं पहला दृश्य समाप्त होता है। दूसरा दृश्य मंगल पुष्करिणी के तट पर खड़े दो प्रहरियों की बातचीत से प्रारम्भ होता है। नगर में घूमते हुए रसक को यशोधन जान लेता है। रसक बहाने बनाता है। उल्टी-सीधी बातें करने में यशोधन रसक को फटकारता भी है। नन्द नाम के गाथाकार ब्राह्मण से सुतसोम का वार्तालाप प्रारम्भ है। किंकर अपने लुट जाने का बहाना करके सुतसोम से सहायता की याचना करता है। सुतसोम वन की ओर जाते हैं। यहीं दूसरे दृश्य के साथ दूसरा अंक भी समाप्त होता है।

तीसरे अंक का प्रारम्भ जंगल के उस दृश्य से होता है जहाँ बलि का उपक्रम रच कर ब्रह्मदत्त बैठा हुआ है। वहीं अचेत सुतसोम को भी बिठाया गया है। किंकर सूचना देता है, कि बलि के मानव एक सौ एक से अधिक हो गये हैं, जिनमें सुतसोम भी आ गये हैं। ब्रह्मदत्त सुतसोम से व्यंग्यपूर्वक 'पृष्ठाचार्य' सम्बोधन के साथ नमस्कार करता है। तीसरे अंक के इस पहले दृश्य में ब्रह्मदत्त और सुतसोम का वार्तालाप चलता है। अन्त में सुतसोम को राजमहल लौटने की अनुमति इस शर्त पर मिल जाती है, कि वे बलि के समय पुनः लौट आयेंगे।

दूसरे दृश्य का प्रारम्भ मृगचिरा के विश्रान्त भवन में विशाखा और पूर्णा की बातचीच से होता है। आने वाले संकट के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें होती हैं। अचानक राजेश्वर सुतसोम का प्रवेश होता है। अनेक मोदभरी बातों के साथ पर्व-स्नान का प्रस्ताव होता है और सभी चल पड़ते हैं। इस प्रकार तीसरे अंक का दूसरा दृश्य समाप्त होता है। इस दृश्य की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना यह है, कि ब्रह्मदत्त सुतसोम को छोड़ देता है। सुतसोम ने पुनः आने का वचन भी दिया है।

तीसरे दृश्य का प्रारम्भ सुतसोम के आगमन से होता है। किसी को विश्वास नहीं था, कि सुतसोम लौट आएँगे। उन्हें आते देख कर किंकर को सन्देह होता है, कि कहीं वे सैनिक न लाये हों। वह देखने जाता है। सुतसोम के

आने पर ब्रह्मदत्त से कुछ बातचीत होती है। वह हिंसा के पक्ष की बाते करता है। सुतसोम उसे उत्तर देते हुए कहते है :—

'यदि छात्र-धर्म का मूल हिंसा ही है तो धिक्कार है उसे ! चला जाय वह रसातल को, हमे उससे प्रयोजन नही। क्षात्र-धर्म की इस भाँति प्रशसा करके तुम उसे हिंस्र पशु की ही सज्ञा दे रहे हो, इससे उसका गौरव बढ़ नही सकता।"[६] इस बात से ब्रह्मदत्त प्रभावित होता है। उसका मन हिंसा और क्रूरता से विमुख होता है। अन्त मे सुतसोम कहता है :—

जीर्ण राज-वैभव हो जाता
　　तन भी हो जाता है वृद्ध;
सुजनों का सद्धर्म धरा पर
　　रहता है चिरकाल समृद्ध।[७]

ऊपर की पंक्तियों की मूल गाथा इस प्रकार है :—

जीरन्ति वे राज रथा सुचित्ता अथं सरीरंऽपि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति सन्तो हवे सब्भि पवेदयति॥[८]

परिणामत: ब्रह्मदत्त के जीवन मे एक नया मोड़ आता है। वह अहिंसा-पथगामी बनता है। किंकर भी अपनी त्रुटियों की क्षमा याचना सुतसोम से करता है। परिजन और पुरजन सुतसोम को पुन: पाकर हर्षित होते है। यही पुण्य-पर्व का कथानक है। इसमें मूल कथानक की ही प्रधानता है। प्रासगिक घटनाएँ नही पाई जाती। पुण्य-पर्व की सारी घटनाएँ नायक सुतसोम से सम्बन्धित है, इसलिए वे आधिकारिक श्रेणी के ही अन्तर्गत आती है। वस्तुत: 'समस्त इतिवृत्त का प्रधान नायक अधिकारी कहलाता है और उसी के सम्बन्ध से यह आख्यानक आधिकारिक कहलाता है।'[९] पुण्य-पर्व के नाटककार ने रगमच का ध्यान रखते हुए कथावस्तु को संक्षिप्त और आधिकारिक ही रहने दिया है। उपन्यास में प्रासगिक कथाओ का अधिक अवकाश रहता है, किन्तु

---

६. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० १२६
७. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३४
८. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० १३५
९. हिन्दी-नाट्य-साहित्य : बाबू ब्रजरत्नदास, पृ० २३

नाटकों में रंगमंच और समय का ध्यान रखना पड़ता है। एक बार अरस्तू ने कहा था :—

"Construct a tragedy upon an epic plan."[10]

हिन्दी नाट्यसाहित्य में 'इपिक प्लान' पर नाटक की रचनाएँ प्राय: नही हुई है। अंग्रेजी साहित्य के सभी नाटकों को भी इस दृष्टि से नही देखा जा सकता। सियारामशरण जी की नाट्य-रचना इस दृष्टि से नही हुई है। छोटी-छोटी घटनाओं के परस्पर सम्बन्ध का विवेचन करते हुए हडसन ने लिखा है :—

"Analysis will show that unlike the novelist, who generally tells his tale in a comprehensive narrative incorporating all the necessary details as they arise, the dramatist commonly preserves for full treatment a number of important scenes, providing with in these scenes the links of the story which are required to bind them together."[11]

पुण्य-पर्व की सारी घटनाएँ एक-दूसरे से सम्बन्धित है। यद्यपि कथावस्तु किसी सीमा तक ऐतिहासिक है, किन्तु उसे हम एकान्तत: प्रख्यात कथावस्तु नही कह सकते। कुछ काल्पनिक प्रसगों का समावेश (रसक, किंकर, और सुतसोम सम्बन्धी) होने के कारण पुण्य-पर्व की कथावस्तु मिश्रित है।

आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम आदि कथावस्तु की अवस्थाओं की दृष्टि से पुण्य-पर्व की कथावस्तु पर विचार करने से पता चलता है कि प्रथम अक के पहले दृश्य मे किंकर और सुभद्र का वार्तालाप ही आरम्भ है। यही से फल-प्राप्ति की उत्कंठा दर्शक के मन में उत्पन्न होती है। नरखादक का नाम सुनते ही मन हठात् परिणाम की ओर चला जाता है। दर्शक की उत्कंठा नरखादक का अन्त देखना चाहती है। इस परिणाम को पाने के लिए सुतसोम को विशेप परिश्रम करना पड़ता है। जो घटनाएँ परिणाम पाने में सहायता करती है उन्हें हम 'यत्न' कहेगे। सुतसोम के वन्दी होकर छूटने तक की घटनाएँ यत्न के अन्तर्गत आती है। जब सुतसोम को ब्रह्मदत्त छोड़ देता है, तब दर्शक को

---

१०. एन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आव लिट्रेचर : हडसन, पृ० १८४

११. एन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आव लिट्रेचर : हडसन, पृ० १८५

विश्वास हो जाता है कि कैसे भी हो ब्रह्मदत्त का अन्त अथवा परिवर्तन समीप है। पुण्य-पर्व के दर्शकों को यह भी विश्वास है कि सुतसोम अच्छे चरित्र वाला नायक है, इसलिये लौटकर अवश्य जायेगा। यह अवस्था प्राप्त्याशा की है। सुतसोम के लौटने और ब्रह्मदत्त से वार्तालाप करने से दर्शक को फलप्राप्ति का निश्चय हो जाता है। इस अवस्था को नाट्यशास्त्र मे नियताप्ति कहा जाता है। ब्रह्मदत्त का हृदय-परिवर्तन फलागम है।

पुण्य-पर्व की कथावस्तु के पश्चात् 'उन्मुक्त' गीतिनाट्य की कथावस्तु पर विचार करना होगा। 'उन्मुक्त' की कथावस्तु भी आधिकारिक कोटि में आती है। पूरी कृति अवतरण, अलिंद, रणक्षेत्र, सुश्रूपालय, शिविर, ध्वंस, एकान्त, शयन-कक्ष, वन्दी, विज्ञप्ति, पराभव, तथा उन्मुक्त आदि शीर्षको से युक्त है। यद्यपि कृतियो के सामान्य परिचय वाले प्रसग में कथावस्तु का सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा चुका है। किन्तु सुविधा के लिए कथावस्तु के सम्वन्ध मे कुछ बाते यहाँ कह देना अप्रासगिक न होगा। उन्मुक्त की सारी घटनाएँ प्रतीक रूप में रखी गयी हे। जब कवि से युद्ध की विभीपिका नही देखी गयी तब उसने उन्मुक्त की रचना की। लौह द्वीप का स्वामी अपनी शक्ति और पराक्रम के वल पर अखिल विश्व को रक्त से रजित करना चाहता है। उसकी यह इच्छा मानवता के प्रतिकूल हे। ताम्र द्वीप और रौप्य द्वीप का तो सत्यानाश हो चुका अब कुसुम द्वीप पर धावा बोला गया है। कुसुम द्वीप का सेनानी पुप्पदंत अपने पौरुप का अच्छा परिचय देकर शत्रुओ का सामना करता है। उसे अपने पर विश्वास है :—

> लिये एक ही लक्ष्य, एक जयकेतु उड़ाये,
> द्वार तोड़ इस मरणपुरी में हम घुस आये।
> सहम गये अरि आज हमारी उत्कट गति से,
> नत होंगे कल पूर्ण पराजय की अवनति से।[१२]

आवश्यकता समझ कर भस्मक किरण का प्रयोग किया जाता है। संयोग-वश कुसुमद्वीप भी ध्वस्त हो जाता है। पुप्पदन्त, गुणधर और मृदुला तीनों कुसुमद्वीप के अग्रणी व्यक्तियों में से है। गुणधर सदैव अहिंसा का उपासक है। पहले तो देह की रक्षा के लिए हिंसा के पक्ष मे एक वार गुणधर आता है;

---

१२. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४२

किन्तु भीपण रक्तपात देखकर उसका हृदय विचलित हो उठता है। पुष्पदन्त उसे मृत्युदंड की घोपणा करता है, किन्तु अन्त में तीनों परस्पर मिल जाते है और सर्वोदय में ही विजय-कामना करते है। बस यही इतनी उन्मुक्त की कथा-वस्तु है जिसका लक्ष्य सर्वोदय है। एक ही कथा परिणाम की ओर अनवरत बढ़ती जाती है। इसे हम कल्पित या उत्पाद्य कथावस्तु कहेंगे, क्योंकि यह कवि-कल्पित है। उन्मुक्त की कथावस्तु में बाहरी क्रियाशीलता कम और मानसिक संघर्ष अधिक दिखाया गया है। वस्तुत. गीतिनाट्य की प्रक्रिया भी यही है—

"गीतिनाट्य में बाहरी क्रियाशीलता और सघर्ष के स्थान पर मानसिक भावों का एक-दूसरे के साथ संघर्ष दिखाया जाता है।"[13] गीतिनाट्य के कथानक की दूसरी विशेपता है उसका गेय होना। उन्मुक्त की पूरी कथावस्तु गेय है। मुख्य कथा का प्रवाह इतना वेगवान है कि उनमें अन्य प्रासंगिक उपकथाओं के संयोजन का अवकाश ही नही मिलता। इस प्रकार की कथावस्तु के विधान से रचनाकार का उद्देश्य स्पप्ट सामने आ जाता है। उसे जगत का नर-संहार प्रिय नहीं है। वह अहिंसा की धरती पर आनन्द के मंगल बीज बोना चाहता है, किन्तु उसे अपने शौर्य पर भी विश्वास है :—

> **रक्तदान से अटल हमारा शौर्य अशंकित**
> **इसी भूमि के एक-एक कण पर है अंकित।**[14]

निष्कर्प रूप में हम यह कह सकते हैं, कि सियारामशरण जी के नाटक पुण्य-पर्व तथा गीतिनाट्य उन्मुक्त का कथाशिल्प नाट्यकला की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि का है। दोनों का चयन गांधीवाद की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त है। रचनाकार की सबसे बड़ी विशेपता यही होती है कि वह अपना इप्ट सिद्ध करने के लिए उपयुक्त कथावस्तु का चयन कर ले। इस दृष्टि से सियाराम-शरणजी अपने इस नवीन मार्ग पर सफलतापूर्वक चले है।

---

१३. हिन्दी नाटक—उदभव और विकास : डा० दशरथ ओझा, पृ० २९५
१४. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० १६४

चरित्रों की रूपरेखा तथा आकलन

अभिनय की दृष्टि से नाटक मे अधिक पात्रो का संयोजन नही होना चाहिए। नाट्यविधान मे बहुत अधिक पात्रो को लेकर चयन में एक बड़ी कठिनाई यह हो जाती है, कि उनका सफलतापूर्वक आद्यन्त निर्वाह करना कठिन हो जाता है। पुण्य-पर्व के चरित्रों में प्रथम स्थान हस्तिनापुर के राजा सुतसोम का है। सुतसोम ही पुण्य-पर्व के नायक है। उनमें नम्रता, मधुरता, त्याग, दक्षता, प्रियभाषिता, शुचिता, स्थिरता, बुद्धिमत्ता, स्मृति सम्पन्नता, उत्साह, कलाप्रियता, शास्त्र-ज्ञान, आत्मसम्मान, शौर्य, दृढता, तेजस्विता तथा धार्मिकता आदि गुण विद्यमान है। नायक की नम्रता ऐसी नही होनी चाहिए कि उसके व्यक्तित्व का औरो के ऊपर प्रभाव न पड़े। डा० श्यामसुन्दर दास ने इस सम्बन्ध मे लिखा है :—

"नायक नम्र हो किन्तु उसकी नम्रता ऐसी न हो कि दूसरे उसको पददलित करते रहे। भारतीय नाट्यशास्त्र के नायक की नम्रता दौर्बल्य का नही वरन् उच्च संस्कृति और शील का लक्षण है।"[१५]

सुतसोम का चरित्र धीरोदात्त नायक के रूप में चित्रित किया गया है। नाटककार का मुख्य ध्येय इस चरित्र से जाना जा सकता है। वस्तुत: अहिंसा हिंसा सापेक्ष है, इसलिए पुण्य-पर्व नाटक मे सुतसोम जैसे अहिंसावादी पात्र के चरित्र को उत्कृष्ट बनाने लिए ब्रह्मदत्त जैसे हिंसावादी पात्र का आकलन किया गया है। हिंसा पर अहिंसा की विजय दिखाकर सुतसोम के चरित्र को आगे बढ़ाया गया है। नाटक मे सुतसोम का आगमन इन्द्रप्रस्थ के राजकीय अन्त.पुर के उद्यान में उनकी रानी विशाखा के गीत गुनगुनाते समय होता है। वह न्याय के पक्ष की अनेक बाते करते हैं तथा अहं को मानव का घोर शत्रु मानते है। यह उनकी मान्यता मात्र नही है, अपितु उनके जीवन से अह भावना का तिरोभाव हो गया है। सुतसोम एक कुशल न्यायाधीश, प्रजापालक, उदार, कर्तव्यपरायण तथा सजग पात्र के रूप मे हमारे सम्मुख आते है। उनके सत्य और दृढता का पता हमे तब चलता है जब वे ब्रह्मदत्त से लौटने का वचन देकर उचित समय पर लौट जाते है। सुतसोम के त्याग की यही भावना ब्रह्मदत्त के हृदय में हलचल पैदा कर देती है। वस्तुतः प्रभावशाली चरित्र वह होता है

---

१५. रूपक-रहस्य : डा० श्यामसुन्दरदास, पृ० ८२

जिसके प्रभाव की छाप अन्य चरित्रों पर भी पड़े। सुतसोम अपने वचन के पक्के है। इसी विशेषता से ब्रह्मदत्त अभिभूत होकर अपने हिंसात्मक व्यापारों को त्याग कर अहिंसावादी बनता है। उसके निम्नलिखित कथन में सुतसोम के चरित्र की सुन्दर व्याख्या बन पड़ी है :—

"देव मेरे जीवन की अमावस्या में आज सचमुच ही सोमवती के पुण्य-पर्व का उदय हुआ है। आज मैं कृतार्थ हूँ। तर्क और बातें तो मैंने पहले भी बहुत सुनी थीं, परन्तु आज आपने अपने शुद्धाचरण के अलौकिक प्रभाव से मेरी आँखें खोल दी हैं, और वाराणसी क्या विश्व के साम्राज्य से भी बड़ी वस्तु मुझे प्रदान की है। अब आप आज्ञा दीजिए मैं क्या करूँ ?"[१६]

सुतसोम के बाद मुख्य पुरुष पात्रों में ब्रह्मदत्त का नाम आता है। उसके चरित्र का आकलन हिंसक रूप में किया गया है। वाराणसी से निर्वासित होने के पश्चात् वह नरबलि की योजना बना कर मनुष्यता को चुनौती देता है और कालान्तर में अपना मार्ग बदल लेता है। इस चरित्र को सियारामशरण जी ने परिवर्तनशील चित्रित किया है। ऐसे पात्रों के आकलन से दर्शकों के सामने विभिन्न प्रकार के दृश्यों की योजना होती रहती है। ऐसी दशा में उन्हें ऊब नहीं होती। दर्शक बड़े चाव से आगे की दृश्यावलियाँ देखने के लिये उत्सुक रहते है। ब्रह्मदत्त के चरित्र को देखकर दर्शक सुतसोम के चरित्र की ओर अधिक आकर्षित होते हैं।

स्त्री पात्रों में पुण्य-पर्व नाटक के अन्तर्गत विशाखा का स्थान प्रमुख है। पूर्णा और उत्पला दोनों विशाखा की दासियाँ है। नाटक में इन दोनों चरित्रों का विकास अधिक नहीं हुआ है। विशाखा सुतसोम की धर्मपत्नी है। अपने प्रियतम के प्रति उसके मन में अपार श्रद्धा थी। नाटक के रंगमंच पर विशाखा का पदार्पण एक गीत गुनगुनाते हुए होता है :—

> अरे ओ, मेरे मन के शूल,
> मुझे तू सोने मत देना,
> अलसता के झोंकों में झूल,
> अचेतन होने मत देना।[१७]

---

१६. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० १३६

१७. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० १४

प्रस्तुत अवतरण से यह प्रतीत होता है, कि विशाखा के हृदय पर किसी अज्ञात लोक की उदासी छायी हुई है। सुतसोम अपने राज्य-कार्य में अधिक व्यस्त रहने के कारण विशाखा से मिल नहीं पाते। खिन्नमना विशाखा के चरित्र की सबसे प्रमुख विशेषता उसमें अपने स्वामी के प्रति अगाध प्रेम-भावना है। उसका हृदय पति की ओर से आश्वस्त है। जब कभी विशाखा के मन में अहम् भावना के विचार उठते हैं तो वह सुतसोम की उन्नति के मार्ग में अपने को सबसे बड़ी बाधा मानती है। स्वयं कष्ट झेल कर भी औरों को सुख देने में उसे सुख मिलता है। अन्याय और अनाचार के प्रति विशाखा के हृदय में अग्नि की ज्वाला जल रही है। वह ऐसी समस्त शक्तियों का दमन चाहती है जो मानवता को अत्याचारों की चक्की में पीसे डाल रही हैं। 'ब्रह्मदत्त को उचित दंड मिलना चाहिए' ...यह बात बड़ी गम्भीरता के साथ विशाखा अपने स्वामी से कहती है। अबला होने के नाते उसमें लड़ने की शक्ति तो नहीं है, किन्तु भावना का उन्मेष अपनी चरम सीमा पर है। नरखादक की क्रूरता से त्रस्त मनुष्यों की रक्षा की बात वह अपने स्वामी से कहती है :—

"आह बेचारे ! किसी तरह उन्हें बचाइए। आर्यपुत्र ! उस नराधम ने ही उन्हें बन्दी कर रखा होगा।"[१८]

पूरे नाटक में विशाखा का चित्रण अधिक नहीं हुआ है। वास्तव मे सियारामशरण जी का उद्देश्य कुछ और था। वे उसी की ओर बढ़ते गये। अनागत भविष्य के किसी अज्ञात घटना-चक्र की आशंका से एक बार विशाखा का हृदय काँप उठता है। यह नारी-सुलभ दुर्बलता है। इसी संकट-काल में सहसा सुतसोम का आगमन विशाखा को आनंद से पुलकित कर देता है। वह भगवान बुद्ध की अमूल्य गाथाओं को सुनना चाहती है। इससे प्रतीत होता है कि धार्मिक प्रवृत्ति विशाखा के चरित्र की विशेषता है। नाटक के अन्त में विशाखा नहीं दिखायी पड़ती।

सुतसोम, विशाखा और ब्रह्मदत्त के अतिरिक्त सारे पात्र अत्यन्त गौण हैं। उनके चरित्रों का आकलन नाटककार ने पात्रानुकूल किया है। यदि दास-दासियों का चित्रण है तो उनमें स्वामिभक्ति की भावना भरी गयी है और यदि गुप्त मंत्रणा वाले जीव हैं तो उनमें उसी कोटि की चतुरता चित्रित की गयी है।

---

१८. पुण्य पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० २८

ऊपर जिन चरित्रों की चर्चा की गयी है, ये पुण्य-पर्व नाटक के हैं। अब उन्मुक्त (गीतिनाट्य) के चरित्रों पर विचार किया जाय। पुष्पदन्त, मृदुला और गुणधर नाम के तीन प्रमुख पात्र उन्मुक्त में पाये जाते हैं। पुष्पदन्त और गुणधर के वार्तालाप से उन्मुक्त का प्रारम्भ होता है। घटित घटनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पुष्पदन्त को समसामयिक सामाजिक गतिविधियों की पूरी जानकारी रहती है। यह सजग चरित्र की एक विशेषता है। देश और जाति की आन की रक्षा में पुष्पदन्त प्राणपण से सचेष्ट है। उसका विश्वास जीवन की गतिशीलता में है। इस गतिशीलता में जनशक्ति का संचय होना चाहिए यह पुष्पदन्त के चरित्र की माँग है। जनशक्ति के संचय में वह बुद्धि के बल पर कार्य करता है।[19] उसे इस चली आती हुई परम्परा में परिवर्तन इष्ट है। इस चरित्र को देख कर कभी-कभी सियारामशरण जी की लेखनी की गति का मोड़ देखते बनता है। एक ओर पुष्पदन्त अपने स्नेह से मृदुला को आनन्दित करता है और दूसरी ओर उसके हृदय में स्वदेश-प्रेम की गगा उमड़ रही है।[20] पुष्पदन्त अपने शत्रुओं का सामना करने के लिए सदैव तत्पर दिखाई पड़ता है। इस बात से यह स्पष्ट है कि अपने देश पर शत्रुओं की छाया भी नहीं पड़ने देना चाहता :—

सैनिक हैं हम दया रहित निष्ठुर व्रतधारी,
वैरी के ही लिए नहीं हैं अत्याचारी,
निज के प्रति भी रख न सकेंगे हम कुछ ममता।
सब बातों में शत्रुजनों की पूरी समता (करनी होगी)[21]

पुष्पदन्त के चरित्र की विशेपता उस समय झलकती है जब वह मृदुला से स्नेहाशीष की अभिलाषा प्रकट करता है। विजय-पथ पर अबाध गति से बढ़ता हुआ पुष्पदन्त हिंसात्मक प्रवृत्तियों का दमन करना चाहता है। लौह-द्वीप के नृशंस अधिपति के क्रूर व्यवहारों से कुसुम द्वीप वासियों के मन में पीड़ा और दाह है। इसे दूर करने के लिए पुष्पदन्त अपना जीवन उत्सर्ग कर सकता है। यह उसके चरित्र की सबसे प्रमुख उपलब्धि है। वह मानवता के प्रति अपना एक उत्तरदायित्व समझता है : —

---

१९. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० २६
२०. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४१
२१. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४३

वह सैनिक दुर्वृत्त धरा को कर आतंकित
फैलाये है हाथ कहीं कर दे न कलंकित
मातृ-रूपिणी बहन-रूपिणी मानवता को।
शान्तिमयी कल्याणमयी उस स्नेहरता को।[२२]

अनेक प्रकार के कष्टों को झेलने की शक्ति पुष्पदन्त में विद्यमान है। उसका हृदय युद्ध के असंभावित परिणामों में विचलित होता है। पुष्पदन्त के चरित्र के सम्बन्ध में यह भी स्पष्ट है कि वह आत्मरक्षा के लिए हिंसात्मक प्रयोगों से हिचकता नहीं है। इसी कारण उसने भस्मक किरण का अवैध उपयोग किया था। इस घोर हिंसावादी कार्य से गुणधर को विरक्ति हो जाती है। पुष्पदन्त गुणधर को मृत्यु-दंड देता है। नाटककार ने पुष्पदन्त के चरित्र को यहाँ एक मोड़ दिया है। उसे अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ती है। नाटककार का उद्देश्य था—'हिंसा को अहिंसा के सामने झुकाना।' इसी उद्देश्य के आधार पर पुष्पदन्त के चरित्र में एक विशेषता और जुड़ गयी है।

पुष्पदन्त के समान ही गुणधर में भी एक प्रकार की सतर्कता पायी जाती है। उसे परिणाम का पता है। वह जानता है कि जब ताम्र, रौप्य तथा स्वर्ण द्वीप आदि ध्वस्त हो चुके है तो कुसुम द्वीप वासियों की क्या दशा होगी। वह हिंसा और क्रूरता के विरुद्ध लड़ने के लिये नये वज्र की खोज करता है :—

"ऐसे कुछ होगा नहीं, व्यर्थ यह सब है।
और कुछ ऊँचे उठो, युद्ध यह नर का
नर से नहीं है, वह सामने दनुज है।
जल थल और व्योमचारियों में जितनी
हिंसा और क्रूरता के साथ है अधमता
वह सब आकर इकट्ठी हुई उसमें।
मायावी महान वह, नित्य नये शस्त्रों से
साधा है महाविनाश मानव का उसने,
उसके समक्ष तुच्छ कल्पना का दानव है।
गढ़ना पड़ेगा नया वज्र एक हमको
उसके निमित्त।"[२३]

---

२२. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० ५२
२३. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० २७

गुणधर को अपने शस्त्र से ही भय है। उसके चरित्र की इस विशेषता में नाटक-कार का व्यक्तित्व बोल रहा है। यद्यपि गुणधर के हृदय में आगे बढ़ने का उत्साह तथा विजयश्री लाभ करने की उमंग है, किन्तु उसे शस्त्रों पर विश्वास नहीं है; क्योंकि वे मानवता को विनाश के गर्त में ले जाने वाले हैं। मृदुला के प्रति जो प्रेम-भावना गुणधर ने दिखायी है उससे उसके प्रेमी हृदय का पता चलता है। मृदुला के प्रेम में गुणधर विभोर है। यह पूरे मानव समाज के लिए मंगल कामना करता है। विजय-विश्वास का बल लेकर आगे बढ़ता हुआ गुणधर कुसुम देवियों के अंकों में सुपोषित भविष्य पर भी विश्वास करता है। युद्ध-क्षेत्र में एक आहत सैनिक को पानी पिला कर उसकी पिपासा शान्त करता है, किन्तु अवसर पाकर वह सैनिक उस पर प्रहार कर बैठता है। ऐसी परिस्थिति में गुण-धर के हृदय में अविश्वास के अंकुर जमते है, किन्तु गांधीवाद से प्रभावित होने के कारण जग-कल्याण की भावना तिरोहित नहीं हो पाती है। गुणधर सदैव हिंसा का विरोधी रहा है। वह नर के भीतर दैत्य की छाया देखकर शंकित होता है। अपने हाथों से भस्मकास्त्र प्रयोग करके जन-जीवन को नष्ट करने के पक्ष में भी वह नहीं है। पुत्र के निधन का प्रभाव गुणधर के हृदय पर इतना तीव्र होकर पड़ा, कि उसने अपनी विचारधारा ही बदल दी। यह देखकर पुष्पदन्त ने कहा था—'तुमसे श्रेष्ठ तो मृदुला है।' यह देखकर पुष्पदन्त ने गुणधर को मृत्युदंड दिया था और प्रहरियों से बन्दी बनाने को कहा था। गुणधर अपनी ओजपूर्ण वाणी में कहता है :—

बन्दी नहीं आज मैं विमुक्त मृत्युञ्जय हूँ।[२४]

अन्त में मुक्ति स्वातन्त्र्य पर अपने विचार व्यक्त करते हुए गुणधर पुष्पदन्त को बधाई भी देता है। अहिंसा, दया, करुणा, ममता, आदि मानवीय गुणों से युक्त होने के कारण उसका चरित्र उन्मुक्त में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

मृदुला के चरित्र का आकलन नाटककार ने सच्ची सेविका के रूप में किया है।[२५] आहत सैनिकों के प्रति उसके हृदय में करुणा है तथा गुणधर के लिए मंगल-कामना। दानवता से युक्त मानव की लीला का वर्णन जिस पत्र में है उसे मृदुला पुष्पदन्त को देती हुई कहती है—

---

२४. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० १३२
२५. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० २६

"लो पढ़ लो, मैं इसे नहीं पूरा पढ़ पाई,
लो पढ़ लो, यह क्रूर पुरुष कैसा अन्यायी—
लो पढ़ लो, यह महायशोगाथा मानव की,
मानव की या मूर्तिमंत निर्दय दानव की,
पढ़ते-पढ़ते सिहर उठी, चीखी चिल्लाई;
जाने कितनी दया-घृणा जी में उठ आई।"[२६]

मृदुला के हृदय में अपने स्वामी के प्रति अनुराग है। वह सदैव स्वामी की सेवा के लिए तत्पर रहती है। जग के भीषण हाहाकार में मृदुला का स्थिर हृदय विचलित नहीं होता। अनेक विषम परिस्थितियों में भी वह दिग्भ्रान्त नहीं होती।[२७] जो सत्य लोक से गायब हो गया है उसे मृदुला स्वप्न में देखना चाहती है।[२८] उसे अपने अविचल होने का विश्वास है। यही जीवन की सबसे बड़ी दृढ़ता है जो उसके चरित्र में दर्शकों को मिलती है।

पुष्पदन्त, गुणधर और मृदुला यही तीन पात्र उन्मुक्त में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। इनका आकलन सियारामशरण जी ने अपने उद्देश्य को लक्ष्य करके किया है। इन चरित्रों के माध्यम से लेखक ने वर्तमान जन-जीवन की उचित और सही व्याख्या प्रस्तुत की है। यही कारण है, कि वे मानव-हृदय को सीधे स्पर्श करते है। नाटककार को कथा-वस्तु में एक प्रकार का संघर्ष चित्रित करना होता है। यह संघर्ष अच्छे और बुरे का होता है। नायक का चरित्र अधिकतर अच्छे कार्य का पक्ष लेता है। सियारामशरण जी के नाटकों की योजना कुछ इसी प्रकार की है। पात्रों में सदैव गंभीरता बनी रहती है। लेखक ने कहीं भी हास्य रस का संयोजन नही किया है। इस सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे।

अभिनेयता

सियारामशरण जी ने अपने नाटकों में अभिनय का पूरा ध्यान रखा है। नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यही है, कि उसका सफलतापूर्वक अभिनय किया

---

२६. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४६
२७. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० ११७
२८. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० १३७

जा सके। अभिनय की दृष्टि से रंगमंच की सरलता, पात्र, उनकी वेशभूषा, रस, संवाद और भाषा आदि के प्रति नाटककार को सतर्क रहना पड़ता है। जिन नाटकों का अभिनय करने में कठिनाई उठानी पड़ती है वे केवल पाठकों के काम के है। दर्शक उनसे आनन्द नही प्राप्त कर सकता। पुण्यपर्व नाटक में सियारामशरण जी ने अभिनेयता के प्रति ध्यान दिया है। पुण्यपर्व का रंगमंच बहुत कुछ सरल है। पहले अंक में प्रभात काल में आचार्य कुल और यमुनातट के बीच निर्जन में बालक ब्रह्मचारी सुभद्र और किंकर के वार्तालाप की व्यवस्था की गयी है।[२९] इसी अंक के दूसरे दृश्य मे इन्द्रप्रस्थ के राजकीय अन्तःपुर का उद्यान-भाग दिखाया जायगा। समय कृष्ण पक्ष की सुनसान रात का होगा। इसी भूमिका में ताराओं के क्षीण प्रकाश में विशाखा (सुतसोम की धर्मपत्नी) एक चत्वर पर बैठ कर गीत गुनगुनाती है।[३०] पार्श्व में एक लताकुंज की व्यवस्था करनी होगी। इन दृश्यावलियों के साथ ही वन, सुनसान रात, राजमार्ग, पथिक चत्वर, प्रातःकाल मगल पुष्करिणी का तट आदि की भी व्यवस्था है। तीसरे अंक में वह विशालकाय बरगद दिखाया जायगा जिसके नीचे बैठ कर ब्रह्मदत्त अनेक हत्याएँ किया करता है। मृगचिरा का विश्रांत भवन, जिसमें चौकी पर व्यग्रभाव से विशाखा बैठी है– यह तीसरे अंक मे दिखाया जायगा। नाटककार ने सम्पूर्ण नाटक में कहीं भी रक्तपात की दृश्यावली नही उपस्थित की है। यह शैली भारतीय नाट्य-पद्धति के मेल में है।

'उन्मुक्त' में हिंसात्मक वर्णन पाया जाता है। ध्वंस की एक दृश्यावली इस प्रकार है : –

"मृदुलालय का अग्रभाग आग्नेय वृष्टि से बुरी तरह आक्रान्त हो गया है। दीवारों पृथ्वी पर गिर कर, पछाड़ खा कर, सबकी सब ईंट और चूने के ढूहों में प्रधान पथ तक फैली हैं, विपर्यस्त विध्वस्त। सामने से ऊपर का एक कक्ष अर्द्धांश भग्न इस भाँति दीख पड़ता है, जैसे काल व्याघ्र ने उसका उतना मांस नखों से नोच लिया हो। कर्मकार जन तत्परता के साथ सफाई करने में संलग्न हैं।"[३१] उन्मुक्त की कुछ दृश्यावलियाँ ऐसी है जिन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत नहीं किया

---

२९. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० ५

३०. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त, पृ० १४

३१. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ० १०३

जा सकता । भाषा की दृष्टि से कथन अच्छे बन पड़े हैं । ओजपूर्ण शब्दों में भावाभिव्यक्ति आकर्षक हुई है । 'उन्मुक्त' में पात्रों की संख्या सीमित है । यह बात अभिनय की दृष्टि से उपयुक्त है । वेषभूषा की दृष्टि से भी सरलता है । उन्मुक्त के पात्रों के कथन पर्याप्त लम्बे हैं । कुछ स्थलों के वर्णन बड़े भयावह लगते हैं । रस-परिवर्तन की दृष्टि से पुण्य-पर्व के अभिनय में अधिक आकर्षण है । वस्तु-विधान में सियारामशरण जी ने दोनों नाटकों में सतर्कता से काम लिया है । इसी कारण अभिनय का आकर्षण बढ़ा है । वस्तु-विधान के सम्बन्ध में डा० एस० पी० खत्री ने लिखा है :—

"इन तीनों खंडों (आरम्भ, मध्य, अन्त) में पूर्ण अनुकूलता तथा अविरोध होना चाहिए। तीनों को एक-दूसरे की पूर्ति करनी चाहिए । यदि नाटक की वस्तु के आरम्भ और अन्त में अथवा के मध्य और अन्त अथवा आरम्भ और मध्य मे सम्पूर्ण समपूरकता नही तो कलाकार दोषी है और नाटक निम्न कोटि का है।"[३२]

आरम्भ, मध्य और अन्त की समपूरकता सियारामशरण जी के दोनों नाटकों में पायी जाती है। अभिनय की दृष्टि से स्वगतकथनों का प्रयोग आधुनिक नाटकों में अनुपयुक्त माना जाता है । सियारामशरण जी ने स्वगत-कथनों का प्रयोग नही किया है। इस प्रसंग में श्री रामचरण महेन्द्र ने लिखा है :—

"यह कैसे सम्भव है कि दूर बैठी हुई जनता पात्र के मन की बातें सुन ले तथा रंगमंच पर उसके सामने खड़ा हुआ पात्र उसे न सुन सके ? अतः या तो वे 'स्वगत' की स्थिति ही नही आने देते अथवा पात्रों से परस्पर बातचीत में ही उन भावनाओं अथवा संघर्षों को प्रकट करते है ।"[३३]

सियारामशरण जी ने अपने नाटकों में हास्यरस का संयोजन नही किया है। लगता है उन्होंने विदूषक की आवश्यकता नही समझी। वैसे अभिनय में विदूषक का स्थान विशेष होता है । एक ही रस के दृश्यों को देखने से दर्शक का मन ऊब सकता है । विदूषक रस-परिवर्तन करने मे सहायक होता है । इस दृष्टि से सियारामशरण जी के नाटको के अभिनय में एक कमी है। 'उन्मुक्त' में

---

३२. नाटक की परख : डॉ० एस० पी० खत्री, पृ० ७१

३३. हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार : डॉ० रामचरण महेन्द्र, पृ० २३, २४

तो हास्य रस की अवतारणा का अवकाश ही नहीं है, किन्तु 'पुण्य-पर्व' में यह बात नहीं है। यहाँ तो विदूषक की योजना हो सकती थी। नाटक के प्रारम्भ में सुभद्र और किंकर के वार्तालाप में हास्य आया है, किन्तु यह योजना और आगे न चल सकी।

नाटकों के अभिनय में गीत और नृत्य चारुता लाते है। नृत्य की व्यवस्था सियारामशरण जी ने नहीं की। गीत एकाध अवश्य आये है। गीतिनाट्य में अलग से गीत होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। पुण्य-पर्व में केवल एक गीत का संयोजन है। वह भी विशाखा एक स्फटिक चत्वर पर बैठी गुनगुना रही है।

गीतों के संयोजन से अभिनय में जो चारुता आती है सियारामशरण जी के नाटक में वह नहीं आ पायी है। कुछ गीत और होते तो रोचकता बढ़ गयी होती।

अभिनय में संवादों का विशेष महत्व होता है। पुण्य-पर्व के संवाद 'उन्मुक्त' की अपेक्षा अधिक आकर्षक है। इन संवादों में छोटे में बड़ी बात कही गयी है। सियारामशरण जी के वाक्य बहुधा व्यंजनाप्रधान होते है। ऐसे वाक्यों का प्रभाव सामाजिकों पर अधिक पड़ता है। यहाँ विशाखा और सुतसोम का एक वार्तालाप प्रस्तुत किया जाता है :—

"एक स्फटिक चत्वर पर ताराओं के क्षीण प्रकाश में अकेली बैठी हुई विशाखा गीत गुनगुना रही है। पार्श्वलता के कुंज से अचानक सुतसोम निकल पड़ते है। रानी चौंक कर हर्ष से उद्दीप्त हो उठती है, साथ ही लज्जित होकर अपनी प्रसन्नता छिपाने का प्रयत्न करती है।

सुतसोम—कहो देवि, सुध-भूल के पहले ही मैं कैसे आ पहुँचा ?

विशाखा—चुप रहती है :

सुतसोम—क्या देवी सचमुच ही सुध-भूल हो गयी ?

विशाखा—संभल कर : आर्य पुत्र की जय हो। यदि प्रतिदिन इसी तरह राजेश्वर सुध भुला दिया करें तो क्या राज्य की कुछ हानि हो जाय ?

सुतसोम—राजेश्वरी की सुध भुलाने के लिए सामर्थ्य भी तो सामान्य नहीं चाहिए।

विशाखा — इस समय तो आर्य पुत्र ने उसे राजेश्वरी के पद से नीचे गिरा
कर प्रजा की श्रेणी में ही बिठा दिया है।

सुतसोम — बात कुछ समझ में न आई।

विशाखा — ऐसी बात भी क्या टीका की जाय।

सुतसोम — फिर भी सुनूं तो, मेरे विरुद्ध तुम्हारा अभियोग क्या है ?

विशाखा — हँस कर : आपके विरुद्ध अभियोग और आप ही उनका विचार
करेंगे ?

सुतसोम — यह सन्देह का अंकुर कैसा है ? क्या देवि, कहीं मैंने न्याय-
विचार में कोई त्रुटि कर दी ?"[३४]

इसी प्रकार के कुछ स्थल और भी हैं। वार्तालाप के अन्तर्गत ही कहीं-कहीं एकाध वाक्य हास्य रस के भी प्रसंग में है। अभिनेयता के सारे लक्षणों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि सियारामशरण जी के नाटक रंगमंच, पात्र, कथोपकथन, वेशभूषा, समय तथा भाषा आदि की दृष्टि से अभिनेय है।

सामयिक नाटकों के मध्य स्थान

सियारामशरण जी का 'पुण्य-पर्व' सन् १९३२ में प्रकाशित हुआ था तथा 'उन्मुक्त' १९४० में। समसामयिक नाटककारों में श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र गोविन्दवल्लभ पंत, सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, हरि-कृष्ण प्रेमी आदि का नाम आता है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी नाटकों को जो दिशा दी थी प्रसाद जी के समय तक उसमें पर्याप्त निखार आया। भाषा, टेकनीक और विषयचयन की दृष्टि से प्रसाद जी के नाटक हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। अपने नाटकों में वीर और शृंगार के युगपत् प्रवाह की जो व्यवस्था प्रसाद जी ने की है, वह अत्यन्त संयत और आकर्षक है। यद्यपि भाषा और अभिनय की दृष्टि से नाटक दुरूह हो गये है; किन्तु हिन्दी नाट्य साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। अपने चन्द्रगुप्त नाटक में प्रसाद जी ने जागरण का जो संदेश संकेत रूप में दिया था वह आधुनिक नाटककारों में उभर कर आया। सिया-

---

३४. पुण्य-पर्व : सियारामशरण गुप्त पृ० १५, १६, १७

रामशरण जी की दिशा गाधीवादी है इसलिए इसी कोटि की कृतियों के साथ ही 'पुण्य-पर्व' और 'उन्मुक्त' पर विचार करना उपयुक्त होगा। श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने सामाजिक तथा सास्कृतिक नाटक लिखे है। 'सन्यासी','राक्षस का मन्दिर', 'मुक्ति का रहस्य' आदि नाटकों मे बुद्धिवाद का स्पष्ट प्रभाव है। कभी-कभी तो नाटककार वैयक्तिक समस्याओं को सुलझाने मे इतना तल्लीन हो जाता है, कि उसे सामाजिकता का ध्यान भी नही रहता। अभिव्यक्ति सीधी-सादी है। सिन्दूर की होली में नारीत्व का जो विवेचन हुआ है उसमे परम्परा का प्रभाव है। सांस्कृतिक नाटकों मे सेठ गोविन्ददास का 'प्रकाश', 'सेवा-पथ', 'कुलीनता', 'विकास', 'बड़ा पापी कौन', 'हिंसा और अहिंसा', 'त्याग और 'ग्रहण', 'राम से गांधी' आदि नाटक ऐसे है जो सियारामशरण जी के दर्शन के मेल मे है। इन नाटकों में अपना समाज स्पष्ट दिखायी पड़ता है। ये एक न एक समस्या को सामने रख कर लिखे गये है। इसी श्रेणी मे उदयशंकर जी का 'नया समाज', 'अन्तहीन अन्त', 'मुक्ति-पथ' आदि रामवृक्ष जी का 'तथागत' और 'विजेता' तथा हरिकृष्ण प्रेमी के 'आहुति', 'शपथ', 'विषपान', 'मित्र' आदि नाटकों के नाम आते है। इन सभी कृतियों में हर लेखक अपनी-अपनी शैली के प्रति सजग है। रगमच और अभिनय की सुविधा को ध्यान में रख कर जो नाटक लिखे जाते है वे तो जनता तक पहुँच पाते हैं अन्यथा नाटक देखे नही जाते वरन् पढ़े जाते हैं। सियारामशरण जी में भी यह सजगता देखने को मिलती है। किन्तु वे अपने साहित्य का प्रचार कम चाहते थे। नाटककार के रूप में सियारामशरण जी उतने नही जाने जाते जितने कवि के रूप में। फिर भी अपने समय के नाटककारों में उनका एक निश्चित स्थान है। गीतिनाट्य और नाटक की जो शैली सियारामशरण जी ने अपनाई थी उस शैली के दर्शन उसी रूप में अन्यत्र नही होते। सास्कृतिक चेतना का जो निर्वाह सियारामशरण जी ने जो अपने नाटकों में किया है उसी का रूप हमें सेठ गोविन्ददास के 'हर्ष', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के 'रेवा' तथा 'उग्र' के 'महात्मा ईसा' में मिलता है। इस सम्बन्ध में नगेन्द्र जी ने लिखा है —

"इस दृष्टि से हमें सबसे पहले वे नाटक मिलते है जिनमें सांस्कृतिक चेतना सर्वत्र मिलती है। प्रसाद के उपरान्त यह प्रेरणा हमें चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के 'अशोक' और उससे भी अधिक उनके 'रेवा' नाटक में मिलती है। उग्र का 'ईसा', सेठ गोविन्ददास का 'हर्ष', सियारामशरण जी का 'पुण्य-पर्व' सभी में मूल चेतना

का साम्य है। इनका आधार समृद्ध आर्य-भारत का जीवन है।"[३५] डा० दशरथ ओझा ने भी सियारामशरण जी का स्थान सांस्कृतिक चेतनाप्रधान नाटककारों में निश्चित करके लिखा है :—

"इस काल में 'प्रेमी' के अतिरिक्त सांस्कृतिक चेतनाप्रधान नाटकों के मुख्य रचयिता है - चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, उग्र, सेठ गोविन्ददास, सियारामशरण गुप्त।"[३६] अन्त में हम यह कह सकते है कि सांस्कृतिक चेतना का जो सूत्रपात प्रसाद जी ने किया था, अपने अन्य समसामयिक नाटककारो की भाँति सियारामशरण जी भी उसकी एक कड़ी है। जाने क्यों आगे चलकर वह साहित्य की इस वीथी से विमुख ही रहे।

३५. आधुनिक हिन्दी नाटक : डॉ० नगेन्द्र, पृ० १८
३६. हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास : डा० दशरथ ओझा, पृ० ३०५

निबन्ध

सियारामशरण गुप्त से पूर्व हिन्दी निबन्धों का संक्षिप्त परिचय

वर्तमान साहित्यिक विधाओं में निबन्ध का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गद्य के प्रचार और प्रसार में निबन्धों का पर्याप्त सहयोग रहा है। हिन्दी साहित्य मे निबन्धों का आविर्भाव भारतेन्दु-युग से आरम्भ होता है। भारतेन्दु-युग के पहले हिन्दी मे निबन्ध से मिलती-जुलती जो गद्य-रचनाएँ पायी जाती है, उनका एक सुसंगठित, पूर्ण निबधित और परिमार्जित रूप नही पाया जाता है। श्री रामप्रसाद निरंजनी के भाषायोग वाशिष्ठ ग्रंथ के आधार पर आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—'इनके ग्रंथ को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है, कि मुंशी सदासुखलाल और लल्लूलाल से ६२ वर्ष पहले खड़ीबोली का गद्य अच्छे परिमार्जित रूप मे पुस्तके आदि लिखने में व्यवहृत होता था।'[1] मुंशी सदासुखलाल, 'नियाज', सैयद इंशाअल्ला खाँ, लल्लूलाल तथा सदल मिश्र ने गद्य-साहित्य की जो रचनाएँ प्रस्तुत की है, वे निबन्ध-कोटि मे न आकर कहानी जैसी लगती है।

हिन्दी निबन्धों के विकास मे पत्र-पत्रिकाओ का अच्छा योगदान रहा है। छापेखाने की सुविधा ने पत्रो को आगे बढ़ाया। इन्ही पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४१०

से हिन्दी का गद्य साहित्य उन्नति की ओर अग्रसर हुआ। संवत् १८८३ में प० जुगुल किशोर सपादित कानपुर से प्रकाशित 'उदंत मार्त्तण्ड' संवाद पत्र को आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी का प्रथम संवाद-पत्र माना है।[२] राजा शिवप्रसाद जी द्वारा प्रकाशित 'बनारस अखबार' (सं० १९०२), बाबू तारा-मोहन तथा उनके सहयोगियों द्वारा काशी से प्रकाशित 'सुधाकर', सं० १९०७ तथा स० १९०९ में सदासुखलाल द्वारा आगरे से प्रकाशित 'बुद्धिप्रकाश' आदि पत्रों में सामयिक टिप्पणियों के साथ विविध विषयों पर विचार किया जाता था। निबन्धो का प्रारम्भिक रूप इन पत्रों से कुछ-कुछ आभासित होता है।

हिन्दी गद्य शैली के विकास में सामयिक पत्र-पत्रिकाओं ने जो सहयोग दिया उसके आधार पर दिन-प्रतिदिन लेखन-कौशल में निखार आता गया। विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे हिन्दी का अपमान भी किया गया।[३] विरोध और अपमान में पैरिस के प्रसिद्ध विद्वान और उर्दू के अध्यापक गार्साद तासी का नाम प्रमुख है। विरोध की इस भूमिका मे गद्य-साहित्य का उत्तरोत्तर विकास होता गया। गद्य-लेखन-शैली के दो प्रमुख रूप सामने आये। एक में तो उर्दू के शब्दों का बाहुल्य था और दूसरा रूप संस्कृतगर्भित था। उर्दू वाली शैली के अग्रणी थे राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और संस्कृतनिष्ठ शैली को राजा लक्ष्मणसिंह जी ने अपनाया था। शैली के विकास की दृष्टि से कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये जाते है :—

१—"धन्य कहिए राजा दधीचि को कि नारायण की आज्ञा अपने सीस पर चढ़ायी, अपने हाड़ ऐसे कामी, कुटिल अहंकारी को दिये कि उसने उन हाड़ों का वज्र बनाय और वृत्रासुर से ज्ञानी से युद्ध किया और उसे मारा। जो महाराज की आज्ञा और दधीचि के हाड़ का वज्र न होता तो ग्यारह जनम ताईं वृत्रासुर से युद्ध में सरबर और प्रबल न होता और जय न पावता।"[४]

—सुरासुर-निर्णय : मुंशी सदासुखलाल

---

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४२७

३. आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि सर सैयद अहमद खां जैसे लोग हिन्दी को गँवारू बोली कहते थे—पृ० ४३३

४. हिन्दी भाषा-सार : सं० लाला भगवानदीन एवं रामदास गौड़, पृ० ५

२—"राजा इन्दर ने कह दिया वह अपछरायें चुलबुली जो अपनी जोबन के मद में उड़ चली हैं उनसे कह दो सोलह सिंगार बाल-बाल गजमोती पिरोवों। अपने अचरज और अचम्भे के उड़नखटोलों की क्यारियाँ और फुलवारियाँ सी सैंकड़ों कोसों तक हो जायें और ऊपर ही ऊपर मिरदंग, बीन, जल-तरंग, मुहचंग, तबले, करताल, और सैंकड़ों इस ढब के अनोखे बाजे बजते आयें।"[५] — रानी केतकी की कहानी : सैयद इंशाअल्लाह खाँ

३—"इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले कि हे राजा! श्री कृष्णचन्द्र आनन्द कन्द तो मणि समेत जाम्बवन्ती को ले गुफा से चले और यादव गुफा के मुँह पर प्रसेन और श्रीकृष्ण के साथी खड़े थे अब तिनकी कथा सुनिये।"[६] – स्यमन्तक मणि की कथा : पं० लल्लूलाल

४--"जो नर किसी को खाने-पीने में बाधा करते हैं सो सब भी विसी नरक में रहते हैं कि जिसका दारुण दुख सहा नहीं जाता है और जो नारी स्वामी निन्दती वो नित्य कलह करती है सो वहाँ डाली जाती है कि जहाँ बड़े-बड़े सीमर के अंगारे जैसे लहर रहे हैं। पति के मरे पर औरों से मिलती हैं, यम के दूत सब विस की जीभ को काट लेते वो अष्टधातु की प्रतिमा को पकड़ाते हैं।"[७] – नासिकेतोपाख्यान : सदल मिश्र

प्रस्तुत उद्धरणों की भाषा में हिन्दी गद्य का प्रारम्भिक रूप पाया जाता है। भाषा व्याकरण-सम्मत नहीं है। वाक्य-गठन ढीला है। शैली कुछ अस्तव्यस्त है, किन्तु लेखक जिस बात को कहना चाहता है, उसे स्पष्ट कर देता है। इन लेखों में उर्दू के शब्दों का प्रयोग अधिक नहीं पाया जाता। संयोजकों की ओर भी ध्यान नहीं दिया गया। वाक्यों की लम्बाई बढ़ती चली गयी है। लेखक ने इसकी कोई चिन्ता नहीं की। कहीं-कहीं ग्राम्य-प्रयोग भी मिलते है।

इसके पश्चात् हिन्दी गद्य-साहित्य में एक नया मोड़ आता है। राजा शिव-प्रसाद, दयानन्द सरस्वती, राजा लक्ष्मणसिंह, बाबू तोताराम बी० ए०, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, तथा लाला श्रीनिवासदास आदि लेखकों ने गद्य-साहित्य को आगे बढ़ाया। टेकनीक और विषय-चयन की दृष्टि से पहले खेवे के लेखकों से ये

---

५. हिन्दी-भाषा-सार : संपादक, लाला भगवानदीन, : रामदास गौड़, पृ० १८

६. हिन्दी-भाषा-सार : संपादक, लाला भगवानदीन : रामदास गौड़, पृ० २८

७. हिन्दी-भाषा-सार : संपादक, लाला भगवानदीन : रामदास गौड़, पृ० ३७

लोग आगे रहे। वस्तुतः यह जागरण-युग था। इस युग में एक वर्ग तो राज-नीति की धरती से इन्कलाब के नारे लगाता था और दूसरा वर्ग अपनी चतुर लेखनी से परतन्त्र वातावरण में स्वतन्त्रता की बात लिखता था। इन लेखकों की शैली के कतिपय नमूने इस प्रकार हैं—

१—"जब यह सवाल पैदा हो सकता है तो हम लोगों को क्या करना चाहिए, किस तरह फिरना चाहिए जिससे हमको सीधी राह मिले ? हम लोगों की जबान का व्याकरण : चाहे आप उसको उर्दू कहें चाहे हिन्दी किसी कदर क़ाइम हो गया है। जो बाकी है, जिस कदर क़ाइम हो जाय बिहतर। इस जबान का दरवाजा हमेशा खुला रहा है और अब भी खुला रहेगा।"[८] —भाषा का इतिहास : राजा शिवप्रसाद

२—"उसी दिन एक मृगछौना जिसको मैंने पुत्र की भांति पाला था आ गया। आपने बड़े प्यार से कहा कि आ बच्चे पहले तू ही पानी पीले। उसने तुम्हें विदेशी जान तुम्हारे हाथ से जल न पिया, मेरे हाथ से पी लिया। तब तुमने हँसकर कहा कि सब कोई अपने संघाती को पत्याता है, तुम दोनों एक ही वन के वासी हो और एक से मनोहर हो।"[९]

—शकुन्तला नाटक : राजा लक्ष्मणसिंह

३—"रहे पंडित शील दावानल—नीति दर्पण। इनके गुण अपार है। समय थोड़ा है इस हेतु थोड़ा सा आप लोगों से आगे का वर्णन किया जाता है। ये महाशय बाल ब्रह्मचारी हैं अपनी आयु भर नीतिशास्त्र पढ़ते-पढ़ाते रहे हैं। इनसे नीति तो बहुत से महात्माओं ने पढ़ी थी परन्तु वेणु, वाणासुर, रावण, दुर्योधन, शिशुपाल, कंस आदि इनके मुख्य शिष्य थे और अब भी कोई कठिन काम आकर पड़ता है तो अंग्रेजी न्यायकर्ता भी इनकी अनु-मति लेकर आगे बढ़ते हैं।"[१०]

— एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न : भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

ऊपर के तीनों उद्धरणों के मार्ग अलग-अलग हैं। शिवप्रसाद जी उर्दू के शब्दों का प्रयोग करते हैं। श्री लक्ष्मणसिंह की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। वे उर्दू

---

८. हिन्दी-भाषा-सार : सं० लाला भगवानदीन : रामदास गौड़, पृ० ५९

९. हिन्दी-भाषा-सार : सं० लाला भगवानदीन : रामदास गौड़, पृ० ७७

१०. हिन्दी-भाषा-सार : सं० लाला भगवानदीन : रामदास गौड़, पृ० ९७

और हिन्दी को पृथक्-पृथक् भाषाएँ मानते हैं। उनकी मान्यता यह भी है कि जिस प्रकार अरबी और फारसी के शब्दों से उर्दू का काम चलता है उसी प्रकार हिन्दी में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग होना चाहिए। यही वह युग था, जब हिन्दी की ओर बाहर के विद्वान भी आकर्षित हुए। इस सम्बन्ध में लंदन की एलेन एण्ड कम्पनी के मैनेजर फ्रेडरिक पिन्काट का नाम लिया जा सकता है।[११] इन्हें उर्दू-हिन्दी का अच्छा अभ्यास था। हिन्दी-गद्य के विकास में इनके लेख महत्वपूर्ण हैं। ७ फरवरी सन् १८९६ को पिन्काट साहब का देहान्त लखनऊ में हुआ।[१२]

आर्य समाज जैसी संस्थाओं ने भी गद्य-प्रचार में पर्याप्त सहयोग दिया। यद्यपि दयानन्द जी के लेखों की भाषा और शैली परिमार्जित नहीं, किन्तु युगानुरूप और आकर्षक होने के कारण लोगों ने उनकी भाषा और विचारों का स्वागत किया। सन् १९१९ में प्रकाशित 'प्रजा हितैषी', 'लोक मित्र' तथा 'अवध अखबार' आदि पत्रिकाओं ने हिन्दी-गद्य को प्रोत्साहित किया, साथ ही नवीनता और नयी दृष्टि भी देते रहे। कहना न होगा कि निबन्धों का कोई प्रशस्त मार्ग इस काल में निश्चित नहीं हो पाया। हाँ, भारतेन्दु के निबन्ध 'टेकनीक' की दृष्टि से साहित्यिक और व्यवहारोपयोगी है। शैली में विनोद और चुटीलापन है। डा० प्रभाकर माचवे इस प्रसंग में लिखते हैं :—

"भारतेन्दु-युग में निबन्ध-रचना जैसे निखरी और जिस ऊँचाई पर पहुंची, उसके बाद वैसा बौर इस पेड़ को नहीं आया। अब तो उम्मीद कीजिए कि "ऐहैं बहुरि वसन्त ऋतु इन बागन उन फूल।"[१३]

हिन्दी में स्वस्थ निबन्ध-रचना तब से प्रारम्भ हुई जब से गद्य-साहित्य में पं० प्रतापनारायण मिश्र और श्री बालकृष्ण भट्ट के निबन्ध प्रकाश में आये। भारतेन्दु युगीन लेखकों में इन दो लेखकों के अतिरिक्त श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास, ठा० जगमोहन सिंह, पं० रामशंकर व्यास, श्री बालमुकुन्द गुप्त, श्री राधाचरण गोस्वामी, श्री काशीनाथ खत्री तथा

---

११. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४४१
१२. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४४२
१३. हिन्दी निबन्ध : डा० प्रभाकर माचवे, पृ० ३५-३६

श्री मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या आदि के नाम भी लिये जा सकते हैं।[१४] इन लेखकों की वर्ण्यवस्तु पर विचार करते हुए गद्य-सुधा-तरंगिणी के बारे में श्री रामदास जी गौड़ लिखते हैं :—

"इनके प्रवाह के लिये स्वच्छन्द मैदान नहीं मिला है। अभी कितने ही खेत सींचने के लिये पड़े मुरझा रहे हैं, कितनों ही में अभी बीज नहीं पड़े और बहुतेरों में तो हल भी नहीं चला है। अनेक चट्टानों से मार्ग में रुकावट है, रोड़े प्रभाव के वेग से घिस कर अभी चिकने नहीं हुए हैं। समय पाकर धीरे-धीरे रोड़े घिस जायेंगे, चट्टानें रेत होकर बह जायेंगी और खेतों में डहडही हरियाली शोभा बढ़ाने लगेगी।"[१५]

इन लेखकों ने गद्य-शैली के अनेक नवीन और मौलिक रूप दिये। भारतेन्दु ने स्वयं साहित्य का वह वातायन खोला जिससे संसार की बहुविध चित्रावली दिखायी पड़े और लेखनी उन चित्रों को सर्वजन सुलभ बनाए। गद्य-साहित्य के प्रचार के लिए प्रत्येक प्रमुख लेखक ने पत्र-पत्रिकाओं का संपादन अवश्य किया था। 'ब्राह्मण' और 'हिन्दी प्रदीप' पं० प्रतापनारायण मिश्र और श्री बालकृष्ण भट्ट द्वारा संपादित किये जाते थे। उनके माध्यम से इन्हें अपनी बात कहने का पूर्ण अवसर मिलता था। प्रतापनारायण जी के लेख विशेषकर हास्य-विनोद से भरे रहते थे। 'धोखा', 'बुढापा', 'मनोयोग', 'दाँत', 'खुशामद', 'आप', 'बात', 'भौं', 'नारी', जैसे विषयों पर आपने बड़ी रोचकता और सजीवता से अपनी लेखनी उठायी। इनकी शैली में ग्राम्य प्रयोग होते रहे हैं। व्याकरण की दृष्टि से भाषा भी कहीं-कहीं कुछ ढीली-ढाली लगती है। इसकी उन्हें चिन्ता न थी। वस्तुतः मिश्र जी में आत्मव्यंजना अधिक थी। पं० बालकृष्ण भट्ट की लेखनी में एक प्रकार की सजगता मिलती है। 'चन्द्रोदय', 'एक अनोखा स्वप्न', 'आँसू', 'लक्ष्मी', 'कालचक्र का चक्कर' जसे विषयों पर भट्ट जी ने सफलतापूर्वक विचार किया। भट्ट जी के निबन्ध विचारात्मक, भावात्मक, कथात्मक तथा वर्णनात्मक कोटियों में रखे जा सकते हैं[१६] और निष्कर्ष रूप में

---

१४. 'हरिश्चन्द्र-काल के सब लेखकों में अपनी भाषा की पूरी परख थी।'
—हिन्दी साहित्य का इतिहास : आ० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४५२

१५. हिन्दी-भाषा-सार : संपादक, लाला भगवानदीन, रामदास गौड

१६. हिन्दी का गद्य साहित्य : प्रो० रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ ६०

यह कहा जा सकता है कि आत्माभिव्यक्ति, समाज-सुधार, राजनीतिक जागृति, साहित्य का प्रचार और प्रसार, शैली की विविधता, वर्ण्य-विषय की अनेकता तथा व्यापक उदारभावना की दृष्टि से भारतेन्दु-काल के निबन्ध-साहित्य की यात्रा रोचक और सफल है।

भारतेन्दु काल के पश्चात् हिन्दी का निबन्ध-साहित्य अपनी नवीन सजधज के साथ पाठको के सम्मुख आता है। आचार्य प० महावीरप्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व मे अनेक लेखक आगे बढ़ते है, और निबन्ध-साहित्य का भण्डार भरा जाने लगता है। इस युग मे कुछ तो भारतेन्दु-युग की परम्परा का पालन करते हुए और कुछ पश्चिमी प्रभाव लेकर कई लेखक निबन्ध लिखते रहे। जो गद्य प्रारम्भ मे लेख था अब सचमुच वह अपने निबन्ध नाम को सार्थक करने लगा। द्विवेदी जी के आलोचक ने अनेक लेखको की रचनाओ की काटछाँट की। निबन्ध-साहित्य मे द्विवेदी जी ने जितना कार्य स्वय निबन्ध लिखकर नही किया उससे कहीं अधिक कार्य अन्यान्य लेखको के निबन्ध जाँच कर किया। खेद है कि यह परम्परा अब लुप्त-सी जान पड़ रही है, नही तो बहुतेरे लेखको को कलम पकड़ना आ जाता और अधकचरी तथा अशुद्ध सामग्री से साहित्य का उद्धार समयानुसार होता रहता। द्विवेदी-युग के निबन्धो के सम्बन्ध में श्री विजय-शंकर मल्ल कहते हे :—

"निबन्ध प्राय. गम्भीर विषयो पर लिखा जाने लगा। रूप-रग भी उसका गम्भीर हो गया। भारतेन्दु-युग का मा उसका सार्वजनिक रूप नही रहा। वह अधिकतर शिष्ट समाज की वस्तु होता गया।" [१७] डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय निबन्ध की एक विशेष तकनीक को अधिक महत्व देते हुए लिखते हे :—

"द्विवेदी-युग निबन्ध-रचना के परिमार्जन और विकास का युग है। स्वयं द्विवेदी जी ने विभिन्न गद्य-शैलियो को जन्म दिया, लेकिन एकाध रचना को छोडकर शेष गद्य-रचनाएँ निबन्ध की कोटि मे नही आती है।" [१८] वस्तुतः द्विवेदी जी ने लिखा कम किन्तु हिन्दी लेखको को जितना प्रोत्साहन द्विवेदी जी ने दिया उतना अन्य किसी साहित्यकार ने नही। भारतेन्दु-युग मे जिन शैलियों का जन्म हुआ था, द्विवेदी-युग मे उनका पूर्ण विकास हुआ। 'काशी नागरी

---

१७. हिन्दी गद्य की प्रवृत्तिया : विजयशंकर मल्ल, पृ० ८४

१८. हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियां : भूमिका, पृ० १६

प्रचारिणी पत्रिका', 'सरस्वती', 'प्रभा', 'इन्दु' तथा 'माधुरी' आदि के माध्यम से विभिन्न शैलियों के रूप सामने आये। वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक तथा आलोचनात्मक निबन्धों में क्रमशः प्रगति होती गयी। प्रो० रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है– "द्विवेदी-युग में इन शैलियों (वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक, विचारात्मक) के अन्तर्गत अनेक सूक्ष्म रूपों का विकास देखा गया। साथ ही भारतेन्दु की आत्मव्यंजक शैली का क्रमशः ह्रास दृष्टिगत हुआ।"[१९]

किसी भी गम्भीर विषय को पाठकों के लिए रोचक बनाकर बोधगम्य बनाना द्विवेदी जी भलीभाँति जानते थे। डा० रामरतन भटनागर के अनुसार— "जहाँ तक संभव होता, गम्भीर निबन्धों में भी द्विवेदी जी परिचित और घरेलू वातावरण लाने का प्रयत्न करते। जो कहना होता उसे बड़ी सतर्कता से, कई बार घुमा-फिरा कर सामने रखते।"[२०] वस्तुतः भाषा के सम्बन्ध में द्विवेदी जी सतर्कता से काम लेते थे। जो शब्द जहाँ उपयुक्त है उसका प्रयोग अन्यत्र न होकर वहीं होना चाहिए। उनकी शैली और वाक्य-गठन भाषा के अनुरूप होता था। डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने लिखा है—"उनका शब्द-संग्रह भावानुकूल और व्यवस्थित होता था। प्रत्येक शब्द शुद्ध रूप में लिखा जाता था और ठीक उसी अर्थ में जो अर्थ अपेक्षित होता है।"[२१]

द्विवेदी-युग में जहाँ एक ओर भाषा की काट-छाँट करके लेखकों का पथ-प्रदर्शन किया गया वहीं दूसरी ओर अनेक प्रकार के विषय भी सुझाए गये। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, अध्यापक पूर्णसिंह, पद्मसिंह शर्मा, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दरदास आदि लेखकों ने निबन्ध-साहित्य में नये विषयों की खोज करके नयी शैलियों को जन्म दिया। यह छायावाद का उत्थान काल था। कतिपय छायावादी कवियों द्वारा लिखी गई काव्य-भूमिकाएँ भी शैली की दृष्टि से मार्मिक बन पड़ी। 'पल्लव', 'परिमल' और 'यामा' की भूमिकाओं का युगीन महत्व है। प्रसाद जी ने काव्यकला और नाटक आदि पर अपने कुछ निबन्ध लिखे। इन समस्त लेखकों में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का स्थान निबन्ध-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ है। विचारात्मक, गवेषणात्मक, आलोचनात्मक

---

१९. हिन्दी का गद्य-साहित्य : रामचन्द्र तिवारी, पृ० ६५

२०. हिन्दी गद्य : रामरतन भटनागर, पृ० १५७

२१. हिन्दी गद्य-शैली का विकास : डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ० ६३

आदि शैलियों में शुक्ल जी के निबन्ध हिन्दी जगत् के सामने आये। इनके निबन्धों में हृदयपक्ष और बुद्धिपक्ष का समन्वय रहा। शुक्ल जी अपनी निबन्ध-पुस्तक के लिए लिखते हैं :—

"इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा मे पड़ने वाले कुछ प्रदेश हैं। यात्रा के लिए निकलती रहती है बुद्धि पर हृदय को भी साथ लेकर। अपना रास्ता निकालती हुई बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक और भावाकर्षक स्थलों पर पहुँची है, वहाँ हृदय थोड़ा-बहुत रमता, अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ कहता गया है।"[२२] वैसे शुक्ल जी के निबन्धों मे बुद्धि का वैभव अधिक है। ऐसी उनकी मान्यता भी है। श्री शिवनाथ जी लिखते हैं :—

"आचार्य शुक्ल निबन्धों में बुद्धि या विचार की ही प्रधानता मानते हैं। उनके अनुसार इनकी योजना ही उनकी विशेषता है।"[२३]

हिन्दी गद्य-साहित्य मे निबन्धों पर विचार करते समय युगीन समस्याओं की दृष्टि से निबन्ध-रचना का मूल्यांकन करना चाहिए। भारतेन्दु-काल की स्थिति कुछ और थी। द्विवेदी-काल की समस्याओं का रूप भारतेन्दु-काल से बहुत कुछ बदल चुका था। आज की गतिविधियाँ द्विवेदी काल की गतिविधियों से मेल नहीं खाती। निबन्ध-रचना पर युग की समस्याओं का प्रभाव पड़ता रहा है। शुक्ल जी के समय तक निबन्धों की दिशा निश्चित हो चुकी थी। लैम्ब, बेकन, एडिसन, हैज़लिट आदि पढे जा चुके थे। पश्चिम की तकनीक की स्याही का प्रयोग भी कुछ लेखनियों ने किया था।

द्विवेदी-युग के पश्चात् निबंध-साहित्य का वर्तमान युग आता है। डा० गुलाबराय ने इस युग का अग्रणी आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल को माना है तथा उसे शुक्ल-युग के नाम से सम्बोधित किया है।[२४] उनका काल-विभाजन इस प्रकार है :—

१—आरम्भ-काल : भारतेन्दु-युग – सन् १८७३ ई० से १९०० ई०

२—विकास-काल : द्विवेदी-युग—सन् १९०० से १९२४ तक

---

२२. चिन्तामणि भाग-१ : आचार्य शुक्ल—निवेदन

२३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : शिवनाथ एम० ए०, पृ० १३३

२४. हिन्दी गद्य का विकास और प्रमुख शैलीकार : गुलाबराय, पृ० ५१

३—वर्तमान-काल : शुक्ल-युग—सन् १९२५ से आगे।[२५]

आचार्य प० महावीरप्रसाद द्विवेदी का निधन सन् १९३८ मे हुआ था तथा आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल सन् १९४० में स्वर्गलोक सिधारे। श्री गुलावराय जी के अनुसार द्विवेदी-युग उनकी मृत्यु के १३ वर्ष पहले समाप्त हो जाता है, तथा शुक्ल जी अपने युग में १५ वर्ष का समय व्यतीत करते हैं। शुक्ल जी की प्रसिद्ध निवंध-पुस्तक 'चिन्तामणि' भाग-१ की भूमिका 'निवेदन' रूप में सन् १९३९ में लिखी गयी थी। 'चिन्तामणि' भाग-१ का प्रथम संस्करण या तो सन् १९३९ में अथवा कुछेक वर्षो के अन्तर से प्रकाशित हुआ होगा। इस प्रकार गुलावराय जी का काल-विभाजन कुछ असंगत सा लगता है। शुक्ल जी की कुछ रचनाएँ तो द्विवेदी-युग की रचनाओं जैसी है। सन् १९३५ से शुक्ल-युग का प्रारम्भ मानना अधिक समीचीन होगा ।

वर्तमान युग के निवंधकारों में सर्वश्री आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल, श्री जयशंकर प्रसाद, निराला, श्री रायकृष्णदास, शिवपूजन सहाय, राहुल सांकृत्यायन, वियोगी हरि, पदुमलाल पुन्नालाल वख्शी, श्रीराम शर्मा, डा० रघुवीर, जैनेन्द्र कुमार, सियारामशरण गुप्त, हजारीप्रसाद द्विवेदी, वासुदेव शरण अग्रवाल, भगवतशरण उपाध्याय, महादेवी वर्मा, शान्तिप्रिय द्विवेदी, पं० हरिशंकर शर्मा, डा० नगेन्द्र, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, इलाचन्द्र जोशी, डा० रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, प्रभाकर माचवे, दिनकर तथा डा० रांगेय राघव आदि के नाम प्रमुख है। इनमें से बहुत से लेखक ऐसे हैं जिन्होंने द्विवेदी-युग से ही लिखना प्रारम्भ किया था। यद्यपि इन लेखकों ने जीवन के अनेक क्षेत्रों के विपयो पर निवंध लिखे है ; किन्तु आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने मनोवैज्ञानिक और विचारप्रधान निवंधों की जिस शैली का शुभारंभ किया था, वह आगे न वढ़ सकी। यद्यपि शैलियाँ अनेक खोजी गयी है ; किन्तु सुगठित और अपने मे पूर्ण निवंधित रचनाएँ शुक्ल जी के वाद कम दिखायी पडी।

इसका तात्पर्य यह नही कि आज का निवंध लेखक चुप है। आत्मव्यंजना की दृष्टि से हजारीप्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्र कुमार तथा सियारामशरण गुप्त के निवंध महत्वपूर्ण है। वैसे इस युग में आलोचनात्मक निवंधों की अधिकता रही

---

२५. हिन्दी गद्य का विकास और प्रमुख शैलीकार : गुलावराय, पृ० ३५

है। इन निबंधों में कुछ लेखक तो तटस्थ होकर आलोच्य वस्तु के साथ उचित
निर्णय कर पाये है; किन्तु कुछ मे उनका एकांगीपन स्पष्ट झलकता है।
विचारात्मक, गवेषणात्मक, भावात्मक, तथा वर्णनात्मक शैलियाँ अपने अल्पा-
धिक रूप में पुष्पित होती रही है। अभी तो बहुत आगे तक चलना है।
वर्तमान निबन्धकारों से हिन्दी की बड़ी-बडी आशाएँ अभी पूरी होनी शेष है।

सियारामशरण गुप्त के निबन्धों का मूल्यांकन

कोई भी साहित्यकार या तो चिरन्तन बातों का उल्लेख अपने साहित्य में
करता है अथवा युगीन परिस्थितियों और क्रिया-व्यापारों का सहारा लेता है।
सियारामशरणजी के काव्य मे चिरन्तन विषय-वस्तु के साथ-साथ युगीन
क्रिया-व्यापारों का चित्रण हुआ है। उपन्यास तथा कहानी आदि में लेखक का
अपना यु ा ही दृष्टि आता है। इस धारणा के आधार पर उनके निबंध युग से
अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं। जहाँ कही चिरन्तन विषय-वस्तु की ओर
लेखनी गयी है, उसमें युग की स्याही अवश्य लगी है। सियारामशरण जी का
साहित्यकार ऐसा तीर्थयात्री है जिसे फल-लाभ का कोई लोभ नही है। यात्रा
करने वाले सभी यात्रियों को यात्रा-फल नहीं मिल पाता है। इसी कारण
लेखक को सन्तोष है :—

'परन्तु जितने तीर्थयात्री होते है, सभी के सभी तीर्थ का फल-लाभ करते हों
ऐसा नही होता। इसलिए मै भी फल पाऊँगा ही, इसकी आशा मुझे नही
है। मेरे लिये तो जैसे 'मा फलेपु कदाचन' वाली आज्ञा लगी हुई है।'[२६]

सियारामशरण जी का सम्पूर्ण साहित्य देखने से पता चलता है, कि उन्होंने
गद्य की अपेक्षा पद्य रचना में अपने रचना-कौशल का अच्छा परिचय दिया
है। वैसे गद्य की रचना में पद्य की अपेक्षा कठिनाई होती है। आचार्य रामचन्द्र
शुक्ल ने इस बात की ओर संकेत किया है :—

"यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है, भाषा की
पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव होता है।"[२७]

सियारामशरण जी तो पद्य में नारी तथा गद्य मे पुरुष की प्रकृति मानते

---

२६. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० २
२७. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५०५

हैं पद्य को साहित्य की वाणी तथा गद्य को कर्तव्य मानते हुए वे लिखते हैं :—

"इस युग में हमारे चारों ओर लोहे की जो गड़गड़ाहट हो रही है उसके बीच में गद्य का पौरुष ही खड़ा रह सकता है।"[२८]

यदि कविता में छन्द, लय, तुक, कल्पना तथा अनुभूति आदि का सहारा लेना होता है तो गद्य में व्याकरण की प्रधानता रहती है। व्याकरण की नियमबद्धता और विचारों की विविधता से निबंधों का आदर्श ऊँचा बन जाता है। गद्य लेखन की कठिनाई के प्रसंग में जैनेन्द्र जी ने कहा है :—

"गद्य कुछ मैं भी लिखता हूँ। वह लिखने में आसानी नहीं होती। मन की भावनाओं और मस्तक के विचारों को पकड़ने में बड़ी कठिनाई होती है। बड़ी कठिनाई, बड़ी कठिनाई! उस काम में जैसे अपना लहू ही खिंच जाता है।"[२९]

सियारामशरण जी ने कविता लिखी, उपन्यास लिखे तथा कहानियों की रचना की। साथ ही वे गीतिनाट्य की रचना की ओर भी उन्मुख हुए। कवि की बहुमुखी प्रतिभा ने निबंधों की रचना में भी अपनी प्रवृत्ति का परिचय दिया। 'झूठ-सच' लेखक का एक मात्र निबंध-संग्रह है। इसमें मौलिक और नवीन विषयों पर सियारामशरण जी ने अपने विचार सहज शैली में प्रस्तुत किये है। इन निबंधों में लेखक की निजी बातों के प्रकाशन का उद्देश्य छिपा है। इसलिए उसने भूमिका में लिखा है :—

"यह संग्रह पाठक के लिए नहीं बन्धुजनों के लिए प्रस्तुत किया गया है। अपरिचितों में भी वे बड़ी संख्या में मिल सकते है। बंधु के लिए, सुहृद् के लिए, आत्मीय के लिए, परिचय की शर्त नहीं होती। इसी से इन रचनाओं में जहाँ-तहाँ निजी बातें भी मिलेंगी।"[३०]

निजी बातें तब और अधिक महत्वपूर्ण बन जाती हैं जब वे सार्वजनीन

---

२८. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १८
२९. सोच-विचार : जैनेन्द्र, पृष्ठ १८
३०. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ३

लगने लगती है। सियारामशरण जी की निजी बातें कुछ ऐसी ही है। वस्तुतः निजी बातों का प्रकाशन ही लेखक का प्रमुख उद्देश्य रहा है। 'झूठ-सच' के प्रायः कई शीर्षक केवल निजी बातों के प्रकाशन है। निष्कर्षतः यह बात कही जा सकती है, कि आत्मप्रकाशन ही 'झूठ-सच' के निबंधों का उद्देश्य है। इस आत्मप्रकाशन के कारण ही सियारामशरण जी के निबन्धों में लेखक के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखायी पड़ती है। पाश्चात्य विद्वान तो व्यक्तित्व की छाप को निबन्ध की सबसे बड़ी विशेषता मानते है।[31] आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने व्यक्तित्व की छाप की अतिशयता का विरोध किया है:—

"व्यक्तिगत विशेषता का यह मतलब नही कि उसके प्रदर्शन के लिए विचारों की शृंखला रखी ही न जाय या जान-बूझकर जगह-जगह से तोड़ दी जाय, भावों की विचित्रता दिखाने के लिए ऐसी अर्थ-योजना की जाय जो उनकी अनुभूति के प्रकृत या लोकमान्य स्वरूप से कोई सम्बन्ध ही न रखे अथवा भाषा में सरकस वालों कीसी कसरतें या हठयोगियों के से आसन कराये जायें जिनका लक्ष्य तमाशा दिखाने के सिवा और कुछ न हो।"[32]

सियारामशरण जी के निबंध इन त्रुटियों से बचे है। उनमें विचारों की शृंखला कहीं भी भग्न होती नही दिखायी पड़ती। अपने विचारों का प्रतिपादन इतने सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि पाठक को किसी प्रकार की असुविधा नही होती। सामान्य रूप से बुद्धिपक्ष और हृदयपक्ष का समन्वय होने के कारण इनके निबंधों की विशेषता और बढ़ गयी है। इस दृष्टि से सियारामशरण जी के निबंधों में विषय-प्रतिपादन का जो रूप मिलता है, उसमें कही भी दुराग्रह और हठ नही पाया जाता। उनकी लेखनी किसी बात को गुप्त नही रख पाती। अपनी रचना के संबंध में वे लिखते है:—

"मैंने राजमहल देखे है, राजा देखे है, और रानियाँ भी देखी है। उनकी

---

३१. In the first place we have to consider the writer's personality and standpoint, his attitude immediately towards his subject and incidentally towards life at large."

ऐन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑव लिट्रेचर: हडसन, पृष्ठ ३३

३२, हिन्दी साहित्य का इतिहास: आ० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ५०५

विशालता ने मुझे चमत्कृत भी किया है; उनके दान से मैं सुखी और सम्पन्न बना हूँ। उनके प्रति असीम विस्मय और श्रद्धा का भाव मुझमें है। जीवन में निरन्तर मुझे उनका अनुग्रह मिलेगा, निरन्तर मैं उनकी मधुर छाया चाहूँगा। पर यह सब होने पर भी किस तरह मैं अपनी कुटीर वासिनी को भुला दूँ? जैसी भी है वह मेरी रचना है। और इसीलिये मैं उसे प्यार करता हूँ, प्रेम करता हूँ?"[३३]

अपनी बात को कहने में लेखक किसी प्रकार का संकोच नहीं प्रकट करता। इसी कारण पाठक और लेखक के मध्य एक प्रकार की आत्मीयता-सी प्रकट होने लगती है। आत्माभिव्यक्ति की स्वच्छन्द प्रणाली ही सियारामशरण जी के निबंधों को अधिक सप्राण बनाती है। रचना का यह कौशल हिन्दी निबन्ध-साहित्य में अद्वितीय है। श्री शिवनाथ जी सियारामशरण जी के निबंधों पर विचार करते हुए लिखते हैं :—

'वैसे साहित्यकार स्वचरित साहित्य में किसी-न-किसी रूप में अभिव्यक्त होता है। साहित्य साहित्यकार की छाया है ही। मगर साहित्य के सभी रूपों वा अंगों में वह अपने को खुल कर अभिव्यक्त नही कर पाता······साहित्य के एक अंग निबंध में इस प्रकार की पूरी स्वतंत्रता, सुविधा तथा पूरा निःसकोच रहता है। इसी कारण साहित्यकार अपनी वैयक्तिकता तथा चिन्तना प्रस्तुत करने के लिए निबंध को साधन के रूप में ग्रहण करता है। श्री सियारामशरण ने भी ऐसा ही किया है।"[३४]

इतना सब होते हुए भी यदि सियारामशरण जी के साहित्य-सृजन से किसी को सन्तोष न मिला तो इससे उन्हें कोई दुःख नही; क्योंकि अपनी रचनाओं से उन्हें पर्याप्त मात्रा में आत्म-तोष मिला है। वस्तुतः सन्तोष और निरभिलाषा ही उनका धन है। यदि किसी ने लेखक के प्रति किसी प्रकार का अनुग्रह किया तो उसके ऋण से वह सदैव ऋणी बना रहना चाहता है :—

"वर्तमान लेखक ने अपना रास्ता खोज लिया है। जब वह दूसरों को संतोष देने में असमर्थ है, तब आज वह अपने आपको सन्तुष्ट करना चाहेगा। कितने ही बंधुओं के अनुग्रह का ऋण उस पर है। उसे चुकाने के लिए आज

---

३३. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १६१

३४. सियारामशरण गुप्त : संपादक, डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १४२

वह नहीं बैठेगा। ऋणी होने का ही आनन्द मनायेगा।"[३५]

झूठ-सच के प्रायः सभी निबन्धों में शालीनता, विनम्रता और एक प्रकार का ताजापन मिलता है। विचारों के पुनरावर्तन भी नहीं दिखाई देते हैं। सादगी तो इन निबन्धों का प्राण है। लेखक से जो कुछ बन पड़ा है वह बड़ों की अनुकम्पा और गुरुजनों के आशीर्वाद का फल है। उन्हीं की कृपा से लेखक को ये उपलब्धियाँ मिल सकी हैं :—

"मैं नहीं जानता कि मेरे किन-किन गुरुजनों की वाणी मेरे एक-एक वाक्य में प्रतिध्वनित हो रही है। मुझे पता नहीं मेरी एक-एक पद-भूमि मेरे किन-किन गुरुजनों के पसीने से सिंच कर इतनी सरस है।"[३६]

अपने निबन्धों में सियारामशरण जी ने स्वतंत्र और स्वच्छन्द विचार-प्रकाशन का सहारा लिया है। इससे कहीं भी कोई जटिलता नहीं दिखायी पड़ती। जैसे लेखक का जीवन-दर्शन सीधा-सादा है उसी प्रकार उसके निबंधों में भी सर्वत्र एक प्रकार की ऋजुता दृष्टिगोचर होती है। अनेक प्रकार के आघात और कठिनाइयाँ सियारामशरण जी के साहित्य को विचलित नहीं कर पातीं। उनकी स्वयं की मान्यता है : —

"साहित्य का स्वभाव वृक्ष के जैसा ही है। बाहर की कड़ी धूप और भयंकर वर्षा से बचने के लिए उसे अपने ऊपर किसी छत्र का संरक्षण नहीं चाहिए। उसके भीतर जो सतेज प्राण है, वह इस तरह की बाधाओं से ही अपनी खुराक जुटा लेता है।"[३७]

यद्यपि सियारामशरण जी को साहित्य का पथ सुझाने वाली अनेक प्रतिभाएँ थीं; किन्तु जो मार्ग उन्होंने स्वयं खोजा वह अपने में सर्वथा मौलिक, नवीन और सर्वजन सुलभ है। अपने निबन्धों के चुनाव में ऐसा प्रतीत होता है, कि लेखक का कोई आग्रह नहीं रहा है। जो विषय स्वच्छन्दतापूर्वक पकड़ में आया उस पर चिन्तन किया और उसे निबन्ध का रूप दे दिया। किसी सामान्य विषय को अपनी चिन्तन-शक्ति से गम्भीर बना देना सरल कार्य नहीं।

---

३५. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २४
३६. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २६
३७. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ७२

आज का वातावरण तो गम्भीर विषयो को साधारण बनाने का है। फिर सियारामशरण जी ने यह उलटा काम क्यो किया? वास्तव मे उन्हे यही मार्ग प्रिय है। उनके पाठको को न प्रिय हो तो उनसे कोई मतलब नही। 'वहस की वात', 'एक शीर्षक', 'अपूर्ण', 'एक दिन', 'छुट्टी', 'छत पर', 'धन्यवाद', 'उसकी वोली', आदि शीर्षक साधारण है; किन्तु अपनी आकर्षक शैली मे लेखक ने छोटे विषयो पर भी वडी वाते कही हैं। 'धन्यवाद' शब्द पर व्यग्य करते हुए सियारामशरण जी कहते हैं —

"इसे सँभाल कर रखूँगा। आधुनिक सभ्यता की यह एक बहुत वडी देन है। अच्छे मे और बुरे मे, खोटे मे और खरे मे कही भी यह वेखटके चलाया जा सकता है।"[३८]

'छुट्टी' के प्रसग मे लेखक ने एक ऐसे छात्र की कहानी प्रस्तुत की है, जिसने ज्वर आने के कारण अपने अध्यापक से छुट्टी माँगी है। अध्यापक ने छुट्टी दे दी है। छात्र वेचारा ज्वर का कष्ट भोग कर इस संसार से चला गया है। अध्यापक ने अपने रजिस्टर से उस वालक का नाम काट दिया है। लेखक के शब्दो मे :—

"घर-घर मे सध्या के दीप जाग उठे। सब कुछ हुआ, वही एक वच्चा लौटकर नही आया। घर पर उसकी पोथियो का वस्ता बँधा पडा है। मदरसे मे किसी ने उसकी सुध नही ली। अध्यापक उसे भूल गया है। भूली नही है वच्चे की वेचारी माता। उसके हृदय-पट मे अब भी वह अकित रहेगा। वहाँ स्थान है। वहाँ से छुट्टी उसे नही मिल सकती।"[३९]

'एक शीर्षक' मे लेखक ने किसी कवि मित्र की कविता के शीर्षक 'उपेक्षिता सुनन्दा' पर विचार किया है और यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि कवि को केवल कवि होना चाहिए, टीकाकार या व्याख्याकार नही।

कुछ गम्भीर विषयो पर भी लेखक ने विचार किया है—जैसे 'अन्य भाषा का मोह', 'शुष्को वृक्ष', 'साहित्य मे विलष्टता', 'घोडाशाही','कवि-चर्चा' आदि। आगे चल कर वर्गीकरण वाले प्रसग मे इन निवन्धो का विवेचन करना अधिक

---

३८. झूठ सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १६९
३९. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ११५

उपयुक्त होगा। यहाँ मूल्यांकन के प्रसंग में इतना और कहना है कि झूठ-सच के निबंधों की अपनी एक दिशा है। ऐसे निबंध डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'अशोक के फूल' में तथा जैनेन्द्र जी के 'सोच-विचार' और 'मन्थन' संग्रह में पाये जाते हैं। किन्तु शैली की विशेषताएँ सियारामशरण जी के लिए विशिष्ट स्थान निर्धारित कर देती हैं।

निबन्धों का वर्गीकरण

सियारामशरण जी ने विविध विषयों पर निबंध लिखे हैं। कहीं तो उनकी लेखनी 'बाल्य-स्मृति' में तन्मय हो जाती है और कहीं कवियों की बाढ़ देखकर उनकी गणना करने लगती है। कहीं तो अन्य भाषा को चाहने वालों को उसने फटकारा है और कहीं उसने सस्ते मिलने वाले 'धन्यवाद' पर व्यंग्य किया है। कहने का तात्पर्य यह कि मोटे रूप से लेखक ने तीन क्षेत्रों की बातों का आकलन किया है :—

१—व्यक्तिगत जीवन सम्बन्धी

२—समाज से सम्बन्धित

३—साहित्यिक विषयों के सम्बन्ध में

श्री शिवनाथ जी ने इस प्रसंग में लिखा है :—

"श्री सियारामशरण गुप्त ने अपने निबंध में जो चिन्तनाएँ व्यक्त की हैं उन्हें स्थूलत: तीन कोटियों में रख सकते हैं– जीवन, समाज और साहित्य की कोटियों में।"[४०]

कुछ निबन्ध ऐसे भी हैं जो इन तीनों कोटियों से भिन्न हैं। उन्हें गल्प या कहानी कहा जा सकता है। 'झूठ-सच', 'मुंशीजी', 'वर की बात' आदि शीर्षक इसी श्रेणी में आते हैं। यद्यपि लेखक का व्यक्तिगत जीवन और समाज इन शीर्षकों में भी पाया जाता है; किन्तु इन निबंधों की धारा एक विशेष है। व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित निबंधों में 'एक दिन', 'बाल्य-स्मृति', 'निज कवित्त', 'धन्यवाद', आदि हैं। 'मनुष्य की आयु दो सौ वर्ष', 'साहित्य और राजनीतिक', 'छुट्टी', 'घोड़ाशाही', 'वर की बात', 'उनकी बोली', तथा 'नया

४०. सियारामशरण गुप्त : सं० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १४२-४३

संस्कार' आदि निबन्ध समाज से सीधा सम्बन्ध रखते हैं। 'अन्य भाषा का मोह', 'शुष्को वृक्ष:', 'साहित्य में क्लिष्टता', 'आशु रचना', 'कवि-चर्चा' 'कवि की वेश-भूषा', आदि निबंध साहित्यिक कोटि में आते हैं। 'हिमालय की झलक' में यात्रा का संस्मरण है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सियारामशरण जी के निबंधों के विषयों मे विभिन्नता है। निबन्ध कला के आधार पर सियारामशरण जी के निबन्धो का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :—

१—वर्णनात्मक : हिमालय की झलक, घूँघट मे, छत पर।

२—कथात्मक : झूठ-सच, छुट्टी, एक शीर्षक, धन्यवाद।

३—भावात्मक : कवि-चर्चा, अबोध, घर की बात।

४—विचारात्मक : मनुष्य की आयु दो सौ वर्ष, अन्य भाषा का मोह, साहित्य और राजनीति, शुष्को वृक्ष:, साहित्य मे क्लिष्टता, कवि की वेश-भूषा, घोड़ाशाही।

५—संस्मरणात्मक : मुंशीजी, बाल्य-स्मृति।

६—आत्मव्यंजक : आशु रचना, निज कवित्त, ऋणी, आदि।

इन निबन्धों के अतिरिक्त सियारामशरण जी ने कुछेक लेख लिखकर अपनी एकाध रचनाओं के सम्बन्ध में अपने विचार भी प्रकट किये हैं। 'मेरी रचना : नारी' नाम से एक लेख सियारामशरण जी ने लिखा था, जो 'आजकल' मे प्रकाशित हुआ था।[४१] लेखक ने अपनी कृति 'नारी' के सम्बन्ध मे उसकी रचना के ठीक बीस वर्ष बाद विचार किया है। सहज शैली मे लेख मे यह बताया गया है कि कथा का प्रारम्भ बीच से होता है। पात्र पहले से परिचित जान पड़ते हैं। सियारामशरण जी ने रचयिता की अपेक्षा किसी कृति पर पाठक का अधिकार अधिक माना है। इसीलिए प्रस्तुत लेख लिखने के पहले लेखक ने अपना 'नारी' उपन्यास एक बार फिर पढ़ लिया था। इस लेख में जो विचार लेखक ने प्रकट किये हैं उनसे 'नारी' उपन्यास की रचना-प्रक्रिया के प्रसंग में बहुत-सी बातों का पता चलता है।

'आजकल' में सियारामशरण जी का एक लेख और प्रकाशित हुआ था।[४२]

---

४१. आजकल : दिसम्बर १९५७
४२. आजकल : दिसम्बर १९६१

इन लेख का शीर्षक था—'बापू से लेन-देन'। वर्गीकरण के अन्तर्गत इसे संस्मरणात्मक कहा जा सकता है। एक बार सियारामशरण जी श्री महादेव देसाई के निमन्त्रण पर बापू (गान्धीजी) से मिलने वर्धा गये थे। संवत् १९९१ के चैत्र की अमावस्या की तिथि थी। श्री महादेव देसाई ने सियारामशरण जी से एक बात बतायी कि "आज के दिन बापू अपना हस्ताक्षर पाँच रुपये लेकर देते है। सियारामशरण जी हस्ताक्षर लेना चाहते थे। परिहास में बापू ने अपने को बनिया कहा था। सियारामशरण का उत्तर था—"और बात यह है कि सचमुच का बनिया मैं भी हूं।" इसी कारण सियारामशरण जी बिना कुछ दिये हस्ताक्षर चाहते थे। यही पूरे लेख का साराश है। इन लेखों का उल्लेख यहाँ इसलिये कर दिया गया है क्योंकि निबन्धकार सियारामशरण जी ने अपने निबन्ध-संग्रह मे इन्हे स्थान नहीं दिया है।

वर्णनात्मक निबन्धों में 'हिमालय की झलक' का कलेवर सबसे बड़ा है। लेखक ने एक बार हिमालय की यात्रा की थी। वहाँ की देखी-सुनी बातों का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन प्रस्तुत निबन्ध में किया गया है। यात्रा के प्रसंग में रेलगाड़ी, कुली, अन्य यात्री, भीड़, फिर हिमालय की घाटियाँ, ऊँची-नीची पर्वत-मालाएँ, हरी-भरी तलहटियाँ, वन्य निर्झर, पर्वत की गोद में कल कल करके नीचे उतरती हुई सरिता का सूक्ष्म वर्णन लेखक का रचना-कौशल प्रकट करता है। इतना ही नहीं आकाश के बादल, चन्द्रमा और तारे, प्रातः और संध्या, बालुका से सुसज्जित प्रान्तर और उसमे धूप से चमचमाती हुई एक पतली रजत-जल-धारा आदि का वर्णन भी लेखक ने तन्मय होकर किया है।

इसी कोटि का एक अन्य निबन्ध 'घूँघट मे' है। एक बार आठ-दस महिलाएँ कहीं जा रही थी। उनके रंग-बिरंगे वस्त्रों में घेरदार घाँघरे, उन पर कढ़े हुए बूटे तथा जरी का काम, ओढ़ने की चादरें और हवा में उनका मचलना, महिलाओं के पैरों में चाँदी के कड़े, छड़े तथा कलाइयों की चूड़ियों का वर्णन लेखक ने मनोरंजक रूप में प्रस्तुत किया है। वर्णन-प्रणाली सर्वथा नवीन और आकर्षक है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

"देखे थे—लहराते हुए घाँघरे; हिलते-डुलते रंगीन अंचल; लाल, पीले, नीले, हरे, सफेद रंग, छमकती हुई कितनी ही चूड़ियाँ; पीठ की ओर ओढ़नी के भीतर जूड़ों का अस्पष्ट आकार; कंठ में किसी आभूषण का झलकता हुआ एक कोना; आधी भुज लताओं तक चोली की आस्तीन की गोटें जो कि ओढ़नी

के झीनेपन में ऊपर की ओर उभर पड़ी थी। बस इतना ही सब तो।"[४३]

इस निबन्ध का कलेवर बहुत छोटा है; किन्तु लेखक ने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। पथ पर चलने वाली उन आठ-दस महिलाओं ने घूँघट काढ़ लिया है। लेखक के विचार से हम सब घूँघट में रहते हैं। चाहते हैं कि अन्दर की बात कोई जान न ले।

'छत पर' निबन्ध में लेखक ने एक नव दम्पति का वर्णन किया है। अपनी छत पर लेटे-लेटे वह किसी के यहाँ विवाह की सारी लीला देखता है। वहाँ की आतिशबाजी, स्त्रियों का संगीत, आकाश की नक्षत्र-मण्डली की सलोनी झाँकी तथा शहनाई की मधुर स्वर-लहरी का मूल्यांकन किया गया है। बीच-बीच में लेखक अपनी दार्शनिक भावनाएँ भी व्यक्त करता चलता है। वर-वधू को चिरंजीवी होने की कामना के साथ निबन्ध समाप्त हो जाता है।

कथात्मक निबन्धों का मुख्य आधार कोई-न-कोई कहानी है। 'झूठ-सच', 'छुट्टी', 'एक शीर्षक' तथा 'धन्यवाद' आदि निबन्धों में कोई-न-कोई घटना या कहानी अवश्य है। 'झूठ-सच' में एक राज एक मजदूरनी को चाहता है। लोग दोनों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ और शंकाएँ प्रकट करते हैं। ये शंकाएँ अपनी सीमा पार कर जाती है। अन्त में लेखक ने चमत्कार उत्पन्न करते हुए लिखा है, कि वह मजदूरनी राज की बहन थी। 'छुट्टी' शीर्षक में एक विद्यार्थी अपनी पाठशाला के प्रधानाध्यापक से बीमारी की छुट्टी माँगता है। उसे छुट्टी मिल जाती है। विद्यार्थी का देहान्त हो जाता है। पाठशाला के रजिस्टर में प्रधानाध्यापक ने उस विद्यार्थी का नाम काट दिया है। वहाँ से उसे लम्बी छुट्टी मिल गयी है। लेखक के अनुसार माता के हृदय में बच्चे का नाम सदैव अंकित रहेगा। वहाँ से उसे छुट्टी नहीं मिल सकती। 'एक शीर्षक' और 'धन्यवाद' नामक निबन्ध भी कथात्मक श्रेणी में आते हैं। लेखक के एक कवि-मित्र ने 'उपेक्षिता सुनन्दा' नाम की कविता लिखी है। प्रस्तुत शीर्षक कुछ अटपटा-सा है। सियारामशरण जी नामकरण की आलोचना करते हुए लिखते है :—

"अपनी कविता का नामकरण करते समय मेरे मित्र-कवि यह भूल गये है, कि वह कवि हैं, व्याख्याता या टीकाकार नहीं। व्याख्या या टीका बहुत अच्छी

---

४३. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १४४

चीज है। उसके बिना मुझ जैसों का काम ही रुक जाता है, फिर भी यह देखना कोई पसन्द न करेगा कि कालिदास कालिदास न होकर मल्लिनाथ होते।"[४४]

कविता के शीर्षक पर विचार करते-करते लेखक ने पद्य और गद्य पर भी विचार किया है। छोटी-छोटी भावपूर्ण कविताओं का हमारे जीवन मे क्या महत्व है? लेखक ने एकाध अनुच्छेदो मे इसे भी सोचा है। इस निबन्ध मे कथा का कोई सुगठित और आकर्षक रूप नही पाया जाता। कही-कही तो ऐसा प्रतीत होता है, कि लेखक केवल लिखने के लिये लिख रहा है। निबन्ध के बीच में स्थान-स्थान पर की गयी व्यंग्योक्तियाँ पाठक को ऊबने नहीं देती।

इसी प्रकार 'धन्यवाद' शीर्षक भी साधारण है। किसी पत्र के सपादक ने सियारामशरण जी की रचना वापस कर दी है। साथ मे 'धन्यवाद' भी भेजा है। लेखक के विचार से यह आधुनिक सभ्यता की नयी देन है।

सियारामशरण जी का यह निबन्ध अत्यन्त छोटा है। विषय-वस्तु परिचित और साधारण है; किन्तु उसे लेखक ने गम्भीर बनाने का प्रयास किया है। इस निबन्ध में विवरण का कोई ऐसा सयोजन नही पाया जाता जिस पर गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया जा सके। भावात्मक निबंधो मे 'कवि-चर्चा', 'अबोध', 'वर की बात', आदि मुख्य है। इन निबन्धों मे लेखक की भाव-प्रवणता और सहृदयता के दर्शन होते है। स्वाभाविक गति से लेखक अपने विचार प्रकट करता चलता है। विचारों के सहज होने के कारण पाठक को कही भी रुकना नही पड़ता। 'कवि-चर्चा' सियारामशरण जी का रोचक निबन्ध है। एक बार गाँव मे कवियों की गणना की गयी। फलस्वरूप पूरी जनसंख्या मे प्रति सैकड़ा एक-बटा दो कवि थे। यही से निबन्ध प्रारम्भ होता है। अनेक प्राकृतिक प्रसंगों का वर्णन करते हुए लेखक ने कविता की उपयोगिता पर विचार किया है। लोक-मंगल को प्रधानता देते हुए सियारामशरण जी ने 'जीह' की 'देहरी' पर रामनाम का मणि-दी परखने की सलाह दी है। इससे आभ्यंतर और बाह्य दोनों प्रकाशित होते है। तुलसी की जीवन-साधना कुछ इसी प्रकार की थी। इस सुभाव का कारण यह है कि —"आशा जीवन है और निराशा मृत्यु। इस आशावादिता में वे मित्र भी हमारे सहयोगी हुए बिना न रहेगे, जो इस छोटे गाँव मे हम

---

४४. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ २१

छोटे-मोटे कवियों की इतनी संख्या देख कर खीज उठे है।"[४५]

लेखक के विचार से जिस प्रकार बड़े तीर्थों का दर्शन सर्वजन-सुलभ नही होता, उसी प्रकार बड़े कवियों की रचना भी सामान्य जन-सम्पर्क से दूर रहती है। छोटे कवियों की पहुँच घर-घर है। वे बेरोकटोक कहीं भी जा सकते हैं। उनकी कविता मिट्टी की गगरी के जल के समान होती है, जो अत्यन्त शीतल, स्वादिष्ट और मांगलिक है।

'वर की बात' और 'अबोध' अपेक्षाकृत छोटे निबन्ध है। विवाह के समय वर की ढाई दिन की बादशाहत होती है। इस क्षणभंगुर जीवन में ढाई दिन की बादशाहत का बड़ा महत्त्व है। लेखक ने कुतुब मीनार की ऊँचाई का उदाहरण दिया है। इस ऊँचाई को अपनी ऊँचाई नहीं कहा जा सकता है। समय की निस्सारता का पता वर को भी है :—

"वह जानता है, यहाँ जो इतने दीप आलोकित हो रहे है, उनमें अक्षय घृत नही भरा है; उसे पता है, यहाँ जो यह संगीत का प्रवाह है, वह आगे के किसी घाट पर पहुँच जायगा; उसे विश्वास है, यहाँ जो इतने स्वजन-बंधु एकत्र हैं, यही बैठे-बैठे उनके पैर दुखने लगेगे। इस सबसे उसे निराशा नही होती।"[४६]

अन्त में यह कह कर लेखक ने निबन्ध में बाँकपन लाने का प्रयास किया है कि प्राय. सारे वर ढाई दिन की बादशाहत को क्षणभंगुर समझते है; किन्तु एक वर लेखक को ऐसा मिला है जो चाहता है ये ढाई दिन सदैव इसी प्रकार बने रहें। कितनी विषम बात है! इसी प्रकार 'अबोध' निबन्ध में लेखक ने स्वावलंबन सम्बन्धी बड़े पते की बात कही हे :—

"बोलना वही है जो अपने आप बोला जा सके, चलना वही है जो अपने आप चला जा सके; और इसी तरह लिखना वही है, जो अपने आप लिखा जा सके। जब तक अपने आप पर अवलम्बित नही होते, तब तक हम अबोध और दयनीय रहते है। इस अवस्था से पार होने पर ही हमारे साहित्य में बल का,

४५. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ट १५३
४६. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १६५

ओज का और तारुण्य का उदय होगा।" [47]

'झूठ-सच' संग्रह में विचारात्मक निबन्ध कई एक है; जिनमें 'मनुष्य की आयु दो सौ वर्ष', 'अन्य भाषा का मोह', 'साहित्य और राजनीतिक", 'शुष्को वृक्षः', 'साहित्य में क्लिष्टता', 'कवि की वेश-भूषा', तथा 'घोड़ाशाही', आदि निबन्ध आते है। इन निबन्धो मे लेखक ने तर्क-शैली का सहारा लिया है। विचार करने की परिपाटी लेखक की अपनी है, जो सर्वथा मौलिक है। 'मनुष्य की आयु दो सौ वर्ष' का प्रारम्भ समाचारपत्र मे छपे एक साधारण समाचार से होता है। किसी विदेशी डाक्टर ने बन्दर के शरीर की ग्रन्थियाँ अपने शरीर मे लगा कर दो सौ वर्ष जीने की कल्पना की है। लेखक इस विचार से सहमत नही है। विज्ञान ने मानव को निर्माण हेतु औजार ही नही दिये अपितु विनाश के लिए हथियार भी बनाये है। लेखक की दृष्टि विज्ञान के लाभ पर अवश्य है, किन्तु लाखो की सख्या मे क्षुधातुर व्यक्तियो के दयनीय मुखमंडल भी वह नही भूल पाता। वह अधिक दिनों तक धरती का भार बनकर जीने के पक्ष मे नही है, बल्कि कम समय मे अधिक पुरुषार्थ दिखाने के पक्ष मे है। जब मानव की ग्रथियाँ बड़े से बड़ा काम कर सकती है तो वह बन्दरों से सहायता क्यों ले :—

"शंकराचार्य जो ज्ञान-रत्न लेकर आये थे, उसे देने के लिए उन्हे किसी बहुत बड़े जीवन की आवश्यकता न थी। उनके लिए उतना ही बहुत था। स्त्रियो के विषय मे भी यही बात है। लक्ष्मीबाई के दीर्घ जीवन की कामना मै नही करना चाहता। किसी तरह उन्हे दीर्घायु मिल भी जाती, तो सम्भव है वे अपने जीवन-काल मे भी जीवित न रह सकती। × × × × परन्तु जब अपने जीवन का मोह है ही नही, तो वे उसकी भिक्षा के लिए बन्दर के आगे हाथ क्यों पसारने चलेगे ?" [48]

'अन्य भाषा का मोह' निबन्ध में हिन्दी प्रदेश मे निवास करने वाले अंग्रेजी-परस्त लोगों की अच्छी खबर ली गई है। यह निबन्ध सन् १९३४ मे लिखा गया था। उस समय हिन्दी की होड़ मे उर्दू और हिन्दुस्तानी आदि तो देशी भाषाएँ थी ही साथ ही अंग्रेजी के बादलो से हिन्दी का व्योम घिरा हुआ था।

---

४७. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० १७४
४८ झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३५

लेखक ने इस बात पर अधिक बल दिया है कि यदि अंग्रेज हमारी भूमि पर शासन कर लेते तो भी कोई बात नहीं; किन्तु उनका शासन हमारे मन पर है। उन्होंने हमारी भाषा पर धावा बोला है। यह हमारी पराजय की पराकाष्ठा है। लार्ड.मेकाले तो भारत में एक ऐसी जाति उत्पन्न करना चाहता था जो कि 'रंग-रूप मे तो भारतीय हो, किन्तु वेश-भूषा, वातचीत चिन्तन तथा विचारों मे अंग्रेज हो।'[४९] उसकी नीति सफल हुई। वाबू बनने की धुन में अनेक नौसिखियों और बुजुर्गों ने अंग्रेजी सीखी तथा तर्क देना आरम्भ किया कि अंग्रेजी ज्ञान का वातायन (Air-window) है। सियारामशरण जी के अनुसार अंग्रेजी ने हमारा हृदय जीत कर हमे पराभूत कर दिया। इस विचारात्मक निबन्ध में लेखक जो कुछ कहना चाहता है, उसे स्पष्टतः कहता चलता है। अपने विचारों को लेखक इतने सरल ढंग से समझाता चलता है कि पाठक को कहीं भी रुकना नहीं पड़ता। यह सियारामशरण जी के निबन्धों की सबसे बड़ी विशेषता है।

'साहित्य और राजनीतिक' निबन्ध मे लेखक ने बताया है कि साहित्य के कर्म का फल कल मिलेगा; किन्तु राजनीति का फल आज ही मिल जाता है :—

"साहित्यकार सोचता है, राजनीतिक क्षणजीवी है, आज है कल नहीं। मैं क्यों उसके पीछे अपने भविष्य का मुख भंग करूँ। मेरा प्रयत्न आज के लिए नही है। मेरे कण्ठ में चिरकाल की वेदना का अमृत लहरा रहा है।"[५०] राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए लड़ना जानता है। ऐसी दशा में साहित्यकार का पुनीत कर्तव्य है कि वह राजनीतिक की सहायता करे।

'शुष्को वृक्षः' में लेखक ने परुष वाणी और मृदु वाणी की तुलना की है। प्रारम्भ में वाण के पुत्रों द्वारा सूखे पेड़ के लिए कहे गए वाक्यों ('नीरस तरुरिह विलसति पुरतः' तथा 'शुष्को वृक्षःतिष्ठत्यग्रे') के आधार पर निबन्ध का गठन किया गया है। मुमूर्षु पिता ने सूखे पेड़ की ओर संकेत करके अपने दोनों पुत्रों से पूछा था 'वह क्या है ?' ज्येष्ठ पुत्र ने कहा था—'शुष्को वृक्षःतिष्ठत्यग्रे' कनिष्ठ ने कहा 'नीरस तरुरिह विलसति पुरतः।' कनिष्ठ की मृदु भाषा से प्रभावित होकर वाण ने कहा था –'वेटा ! तुम्हीं कादम्बरी पूरी कर सकोगे।'

---

४९. भारतीय शिक्षा का इतिहास : प्यारेलाल रावत, पृ० १७२

५०. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७६

सियारामशरण जी ने अपने निबन्ध में ज्येष्ठ पुत्र का पक्ष लेते हुए लिखा है –

"मैं तो इस सूखे वृक्ष के नीचे खड़ा होकर उस अनादृत और लांछित चितेरे कवि के चरणों में अपना नम्र प्रणाम ही निवेदित कर रहा हूँ। उसकी किसी दूसरी अंकनचातुरी का फल हमारे साहित्य को प्राप्त नही, यह हमारा दुर्भाग्य है। अपनी इस छोटी आकस्मिक कृति में ही सूखे वृक्ष को उसने जो चिरजीवन और सजीवता दे रखी है, उसके लिए हम उसके चिरऋणी रहेंगे।" [५१]

अन्य विचारात्मक निबन्धो मे 'घोडाशाही' अत्यन्त चुटीली और व्यंग्य-विनोदपूर्ण शैली मे लिखा गया है। आज 'घोडाशाही' का रूप 'हार्स पावर' मे बदल गया है। कल का वाहन आज का सवार है। इस स्थिति से लेखक क्षुब्ध है। 'कवि की वेश-भूषा' को भावात्मक श्रेणी में भी रखा जा सकता है। इस निबन्ध में कवि का विनोद मुखर है। विचार की दृष्टि मे निबन्ध की आधार-भूत चिन्तना मौलिक और नवीन है।

कुछ लोगों को साहित्य में क्लिष्टता प्रिय नही है। इसी विचारधारा से प्रेरित होकर 'साहित्य में क्लिष्टता' निबन्ध लिखा गया है। सियारामशरण जी के मत में क्लिष्टता से भयभीत होना उचित नही प्रतीत होता :—

"संसार में ऐसे भी कुछ लोग है, जो पथ की क्लिष्टता देख कर डर जाते है। ऐसे जन बच्चों की जाति के है। ये चाहते हैं, कि कोई गोद में लेकर सुलाता हुआ ही उन्हे ठीक स्थान पर पहुँचा दे।" [५२]

विचारात्मक निबन्धों के प्रसंग में एक बात और कहनी है कि जिन निबन्धों का नाम यहाँ लिया गया है उनमे हो सकता है कि अन्य वर्ग के निबन्धों के कुछेक लक्षण भी मिल जायँ; किन्तु अधिकांशतः ये निबन्ध विचारात्मक कहे जायेंगे।

संस्मरणात्मक निबन्धों में 'बाल्य-स्मृति' और 'मुंशीजी' का नाम लिया जायगा। लेखक ने जीवन की अनेक घटनाओं को सँजोने का प्रयास किया है। ये निबन्ध रोचक बन पडे है। इन निबन्धों में सियारामशरण जी ने उन

---

५१. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० १०८, १०९
५२. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ११७

घटनाओं का विशेष रूप से उल्लेख किया है जो उनके साहित्य-सृजन में सहायक हुई हैं। जीवन के अनेक प्रसंगों का पता इन घटनाओं से लगता है। कुछ बातें कवि सियारामशरण की बाल-सुलभ भावुकता और चपलता का परिचय देती है। प्रारम्भ से ही इन्हें काव्य-सृजन में रुचि थी। लक्ष्मी की उपासना के माध्यम से कवि को सरस्वती के दर्शन होते हैं :—

"कुछ दोहे-चौपाइयाँ कंठस्थ थी, चलते जाते उन्हें गुनगुनाया। उनकी कविता हृदय के किसी अज्ञात प्रान्त में मेरे बिना जाने झंकृत हो उठी। उस समय मुझे पता नहीं चला कि लक्ष्मी की ओर जाते-जाते अचानक सरस्वती की ओर उन्मुख हो गया हूँ।'[५३]

सियारामशरण जी ने इस कोटि के निबन्ध अधिक नहीं लिखे है किन्तु भाव-प्रकाशन की दृष्टि से ये निबन्ध महत्त्वपूर्ण है।

जिन निबन्धों में लेखक ने आत्मव्यंजना का अधिक सहारा लिया है, उन्हे हम आत्मव्यंजक निबन्धो के वर्ग मे रख सकते है। ये आत्मव्यंजक निबन्ध बहुत कुछ संस्मरणात्मक निबन्धो से मिलते-जुलते है; किन्तु लेखक ने इन निबन्धों में अपने विचार अधिक स्पष्ट रूप में रखे है। वैसे तो सियारामशरणजी के निबन्ध-कार मे स्पष्टता सर्वत्र पायी जाती है; किन्तु आत्मव्यंजक निबन्धो में लेखक अपने मत का मंडन अनेक तर्कों द्वारा करता चलता है।

आत्मव्यंजक निबन्धों में 'ऋणी', 'आशुरचना', 'निज कवित्त', 'अपूर्ण', 'एक दिन', नया संस्कार' आदि के नाम आते है। इनमें कुछ तो बड़े है और कुछ छोटे। 'ऋणी' के सम्बन्ध में सियारामशरण जी की आत्मव्यंजना अनोखी है। वे ऋण को गौरव मानते है :—

" 'ऋण में आनन्द', 'ऋण मे गौरव! हाँ, ऋण मे वह है। कुछ ही पहले मेरे लिए भी यह बात आश्चर्य की होती। परन्तु गूढ तत्व इसी तरह एकाएक प्रकट होते है। वे सूर्य की भाँति पचांग के किसी नियत समय पर नही आते। उनकी प्रकृति किसी स्वतंत्र स्वामी की भाँति अचानक प्रकट होने की है। और इसी से अचानक ही ऋण की महत्ता मुझे भी मालूम हो गई है।"[५४]

---

५३. झूठे-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६२
५४. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० २४

सियारामशरण जी ने 'आशुरचना' पर भी कुछ विचार करते हुए लिखा है :—

"किन्तु मेरे मित्र ने मेरे प्रति न्याय नहीं किया। वे मुझे 'बादरायण' बना देना चाहते थे। चाहते थे, मेरी लेखनी में गणेशजी आकर बैठ जाते और उसमें से एक नया 'महाभारत' निकल पड़ता।"[५५]

वर्गीकरण के अनुसार सियारामशरण जी के निबन्धों के लिए ऐसी कोई दुर्लंघ्य विभाजन-रेखा नहीं खींची जा सकती जिसके आधार पर एक निबन्ध अन्य की टेकनीक से एक दम भिन्न हो। शैली का उत्कर्ष और एकरूपता प्रायः सभी निबन्धों में एकसी है।

भाषा-शैली का विश्लेषण

सियारामशरण जी के निबन्धों की भाषा उनके उपन्यास और कहानियों की भाषा से मिलती-जुलती है। सहज और बोधगम्य होने के कारण पाठकों को सियारामशरण जी की भाषा पढ़ने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं होता। 'झूठ-सच' संग्रह के सभी निबन्धों की भाषा में समरूपता पायी जाती है। इसी समरूपता के आधार पर लेखक की शैली की एक दिशा निश्चित हो गयी है। वस्तुतः सियारामशरण जी की अपनी एक निश्चित और आकर्षक शैली है जो अपने में पूर्ण है। वे किसी बात को घुमा-फिराकर कहना अच्छा नहीं समझते। कभी-कभी विषय-वस्तु जटिल और गंभीर होने से भाषा कठिन हो जाती है; किन्तु सियारामशरण जी गम्भीर बात को भी सरल रीति से कहने के पक्षपाती हैं।

लेखक के वाक्यों का गठन देखकर उसके रचना-कौशल का पता चलता है। सियारामशरण जी के वाक्य न तो बहुत छोटे होते हैं और न बहुत लम्बे। किसी भी विषय को स्पष्ट करने के लिए जिस प्रकार के वाक्यों की आवश्यकता होती है सियारामशरण जी के प्रयोग वैसे ही होते हैं। छोटे वाक्यों का एक प्रयोग देखिए :—

"फिर अँधेरा फैल गया। जैसे कोई बात ही न हुई हो। हुई हो बस इतनी कि प्रकाश की यह छोटी खुराक पाकर अन्धकार और पुष्ट हो चुका है।

---

५५. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० १२५

चिनगारियाँ एक क्षण भी टिकी न रह सकी। उठी और विलीन हुई। थोड़ी सी आनन्द-क्रीड़ा का अवकाश भी उन्हें नही मिला।"[५६]

अधिक लम्बे वाक्यों में कभी-कभी लेखक का तात्पर्य अस्पष्ट हो जाता है। सियारामशरण जी की भाषा इस दोष से मुक्त है। उनके लम्बे वाक्यों की योजना भी स्पष्ट और सहज बोधगम्य रहती है। 'शुष्को वृक्षः' निबन्ध से लम्बे वाक्यों का एक गद्यांश इस प्रकार है –

"न जानें कब से कितने सुन्दर सायंकाल इस कथा के संयोग से श्रोताजनों के बीच में और भी मधुर हुए हैं। इसके सहारे न जानें कब से कितने आनन्द की वर्षा बाण के कनिष्ठ-तनय पर हुई है और न जाने कितनी वितृष्णा उनके ज्येष्ठ-तनय को सहनी पडी है, इसका कुछ हिसाब नही। सुनने वालों ने इस कथा से केवल मनोरंजन ही नही किया; किन्तु उनके ज्ञान की वृद्धि भी इससे हुई है। एक ही बात एक तरह से कही जाने पर अत्यन्त कर्कश जान पडती है और दूसरी तरह वही अत्यन्त मधुर, अत्यन्त ललित हो उठती है।"[५७]

ऐसे वाक्य व्याकरण की दृष्टि से भी उत्कृष्ट बन पड़े है। सियारामशरण जी की भाषा मे व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियाँ नही पायी जाती। इनके सभी निबन्धों की भाषा व्याकरण-सम्मत है। कही-कही भाषा मे बोलचाल का ढंग भी प्रयोग किया गया है। इससे प्रतीत होता है जैसे दो व्यक्ति परस्पर वार्तालाप कर रहे है। 'आशुरचना' के प्रसंग मे सियारामशरण जी लिखते है—

"अपने मित्र को मैंने अपनी एक बहुत बढिया रचना पढने को दी। नाम नही बताऊँगा।"[५८]

इस प्रकार के वाक्यों से कुतूहल की भी सृष्टि हुई है। पाठक के मन में एक प्रकार की जिज्ञासा सी उठती है, कि उस रचना का नाम क्या था? सियारामशरण जी ने 'अनेक' शब्द के लिये 'अनेकों' का प्रयोग किया है। 'अनेक' शब्द बहुवचन है। इससे भी काम चल सकता था। कुछेक स्थलों पर लिंग सम्बन्धी एकाध त्रुटियाँ भी हो गई हैं।

---

५६. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० १३८

५७. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० १०३

५८. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० १२३

यद्यपि सियारामशरण जी के निबन्धों की भाषा शुद्ध और साहित्यिक है; किन्तु अन्य भाषाओं के शब्दों का सर्वथा वहिष्कार लेखक ने नहीं किया है। 'वहस', 'मदरसा', 'रजिस्टर', 'गुंजाइश', 'लिवास', 'मोटर-स्टैण्ड', 'इंग्लिश', आदि शब्दों के प्रयोग कहीं-कहीं मिल जाते है। ये शब्द हिन्दी में इतने घुल-मिल गये हैं, कि इनको पृथक् करना अत्यन्त कठिन है। कहीं-कहीं संस्कृत के ऐसे शब्दों के प्रयोग मिलते हैं, जो सामान्य प्रचलन में नही है। भाषा की दुरूहता से सियारामशरण जी का निबन्धकार विचलित नहीं होता। जिस प्रकार वच्चा किशोरावस्था को पार कर तरुणाई को प्राप्त होता है, उसी प्रकार भाषा का भी रूप-परिवर्तन होता है। लेखक ने लिखा है :—

"इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा में से साहित्य का उद्भव उसी प्रकार हुआ है, जिस प्रकार वचपन में से यौवन का। यौवन भी कम खिलाड़ी नहीं है। अन्तर इतना कि वचपन के खिलौने उसे रुचते नहीं हैं। हाथ झुनझुने की छोटी झंकार ही उसे संतुष्ट नहीं कर पाती। वह कुछ अधिक चाहता है। इसीलिए वह अपने स्वर को घुमा-फिराकर, चौड़े से सकड़े में आकर और सकड़े से चौड़े में जाकर, पहले तो अपने आप कठिनता उत्पन्न करता है और फिर उसी कठिनता में संगीत का नया ही रस लेता है।"[५९]

इस कथन के आधार पर लेखक की भाषा के वचपन ने भी अपने नये-नये मार्ग खोज निकाले हैं। कहीं-कहीं शब्दों का क्रम इतना उपयुक्त वन पड़ा है, कि भाषा में संगीतात्मकता आयी है। शब्द-प्रयोग का यही कौशल भाषा में कहीं-कहीं चित्रात्मकता लाने में भी सहायक सिद्ध हुआ है। वाण भट्ट के ज्येष्ठ पुत्र को 'शुष्को वृक्षःस्तिष्ठत्यग्रे' जैसे वाक्य की रचना के प्रसंग में साहित्य जगत् में वहुत कुछ कहा गया। इसी संदर्भ में सियारामशरण जी के विचार देखिए —

"भाषा इसकी ऊवड़-खावड़ है। वह उचित नहीं है। अर्थ न समझने वाले को भी वह शुष्कता का वोध करा देगी। उसके कारण वर्णित चित्र ऐसा हो गया है कि नीचे लिखा हुआ परिचयात्मक गद्य पढ़ना आवश्यक नहीं रहता। चित्र का आशय अपने आप सुस्पष्ट हो जाता है।"[६०]

---

५९. झूट-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० १२१, १२२
६०. झूठ सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० १०८

सियारामशरण जी की साहित्यिक भाषा प्रवाहयुक्त है। पाठक की गति कहीं भी बाधित नहीं होती। लोकोक्तियों और मुहावरों के उचित प्रयोग तथा उपयुक्त शब्दावली से यह सम्भव हो सका है। यहाँ शब्दाडम्बर से भाषा बोझिल नहीं लगती अपितु भावानुकूलता से उसका आकर्षण बढ़ता गया है। सर्वत्र लेखक के व्यक्तित्व की छाप दृष्टिगोचर होती है।

सियारामशरण जी के निबन्धों की भाषा में पांडित्य-प्रदर्शन के लोभ से पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग नहीं किया गया है। अनुच्छेदों और विराम-चिह्नों के उचित प्रयोग से युक्त भाषा से यह पता चलता है, कि लेखक संयत भाषा-लेखन में सजग रहा है। इन सभी गुणों को देख कर यह कहा जा सकता है, कि सियारामशरण जी के निबन्धों की भाषा पर किसी पूर्ववर्ती लेखक का प्रभाव नहीं है। साहित्यिक, प्रवाहयुक्त, सहज और बोधगम्य भाषा होने के कारण लेखक की शैली पर भी उसका प्रभाव पड़ा है।

सियारामशरणजी की लेखन शैली की विशेषता है उसका भावप्रधान होना। इसी तकनीक के अन्तर्गत शैली की सरलता, बोधगम्यता, वचनवक्रता, व्यंग्य-युक्तता, आदि गुण आते हैं। सरलता और बोधगम्यता लेखक के सारे निबन्धों में मिलती है। वचनवक्रता और व्यंग्य से शैली रोचक बन गयी है। सियाराम-शरण जी के व्यंग्य की चोटों का दर्द अपने तीखेपन में भी एक मिठास लिये रहता है।

वचनवक्रता और व्यंग्य के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं :—

१—"पक्के व्यवसायी की भाँति तेरह के उधार का लोभ छोड़ कर उसने नौ का ही यह नगद सौदा तत्काल पक्का कर लिया है।"[६१]

२—"अपने बहनोई के लिए यदि वह 'ब्रदर-इन-लॉ' कहे तो किसी तरह मैं उसे क्षमा भी कर सकता हूँ। परन्तु नहीं, उसने पहले अपने माँ-बाप पर ही हाथ साफ किया है।"[६२]

३—"असल बनने के लिए अभी तो हमारे नकल करने का क्रम चल रहा है। इस नकल-नवीसी में जो जितना आगे बढ़ जाय, हममें वह

६१. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४७
६२. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४४

उतना ही वड़ा है।"[६३]

४—"फिर भी, मित्र लोग एकप रिणाम पर पहुँच गये। आवादी का प्रति सैकड़ा एक वटा दो कवि था। स्त्रियों के अन्तःपुर तक हमारी पहुँच न थी, इसलिए उन्हें छोड़ देना पड़ा।"[६४]

५—"घोड़े में पशुता की जितनी कमी थी, उसे उसके सवार ने पूरा किया, सवार में पशुता की जितनी कमी थी, उसे उमके घोड़े ने पूरा किया।"[६५]

सियारामशरण जी के निवन्धों में इस प्रकार के प्रयोग प्रायः मिलते है। इन प्रयोगों से शैली चुटीली और आकर्षक वनी है। इस उक्तिप्रधान शैली के कारण ही सियारामशरण जी के निवन्धों का मार्ग उनका अपना है। विशेपता इस वात की है, कि ऐसे स्थलों पर लेखक सरलता से कठिनता की ओर नहीं वढ़ा है। व्यंग्य का ऐसा वोलवाला भी नहीं है कि विचार-प्रतिपादन में कोई न्यूनता आ जाय। अपनी शैली की हर दिशा में सियारामशरण जी प्रतिपाद्य विपय के वाहर नही जा पाते—यह भी एक विशेपता की वात है। अपने निवन्धों में कहीं-कही सियारामशरण जी ने उपमा, दृष्टान्त तथा रूपक आदि का सहारा लिया है। इससे विपय-वस्तु अधिक वोधगम्य वन गयी है साथ ही शैली में एक प्रकार का सौन्दर्य भी निखरा है। इम तकनीक के कुछ वाक्य इस प्रकार है :—

१—"रूखी रोटी की तरह अकेले-अकेले ही यह कसरत हमारे मानसिक आहार में अनाहार से अधिक नहीं।"[६६]

२—"भापा और साहित्य का अन्तर वही है जो पथ और दर्वार का है।"[६७]

---

६३. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४१
६४. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० १४६
६५. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० १३०
६६. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ११
६७. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ११८

३ "माता का हृदय अध्यापक के रजिस्टर की भाँति छोटा नहीं है।"[६८]

४ 'किसी ने दिन में ही सूर्य की यह मशाल जला रखी है।"[६९]

मुहावरों के प्रयोग उपयुक्तता के आधार पर मिलते है। सियारामशरण जी के निबन्धों में मुहावरों की इतनी अधिकता नहीं है कि उनकी शैली को मुहावरेदार कहा जाय। जहाँ कहीं स्वाभाविक रूप से मुहावरे आते गये हैं, लेखक उनका प्रयोग करता गया है। इससे भाषा की सौन्दर्य-वृद्धि हुई है। निबन्धों की विषय-वस्तु देखते हुए लेखक के मौलिक चिन्तन का पता चलता है। अपने निबन्धों में सियारामशरण जी नित्य नयी उद्‌भावनाएँ देते चलते हैं। इससे प्रतीत होता है कि लेखक का झुकाव विचारप्रधान शैली की ओर है। 'झूठ-सच' संग्रह में इस शैली में लिखे गये निबन्धों की संख्या सबसे अधिक है। ऐसे निबन्धों में लेखक नये विचार देता चलता है। लिखित विचारों का सारांश सियारामशरण जी नहीं देते। इसका तात्पर्य यह नहीं कि निबन्धों का अन्त अचानक हुआ है। वे अपने में पूरे प्रतीत होते हैं। आत्मप्रधान शैली को सियारामशरण जी की प्रमुख शली कहा जा सकता है। इस शैली की छाप प्रायः उनके सभी निबन्धों पर है। इस शैली के अन्तर्गत स्वभावतः बिना किसी पूर्व योजना के लेखक अपने विचार प्रकट करता गया है। निबन्धों की यह शैली अंग्रेजी के 'पर्सनल एसेज' की शैली के मेल में है। हिन्दी में इस शैली के निबन्ध-लेखक गिने-चुने है। सियारामशरण जी अपनी आत्मप्रधान शैली के आधार पर ही हिन्दी निबन्ध-साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। लेखक की भावुकता, आत्मीयता तथा व्यंग्य-विनोद सदैव उसकी लेखनी के साथ रहते है। डा० गुलाबराय जी इस प्रसंग में लिखते हैं :—

"गुप्त जी के प्रायः सभी निबन्धों की शैली भावात्मक प्रसाद-शैली है जिस पर व्यक्तित्व और आत्मीयता की गहरी छाप है। अपनी बात को कहने का ढंग गुप्त जी का ऐसा है कि लेखक और पाठक के बीच किसी प्रकार की दूरी नहीं रह जाती। वे अपने हृदय को पाठक के सामने खोल कर रख देते हैं। किसी प्रकार का व्यवधान अथवा आवरण उन्हें अप्रिय है। अपनत्व के साथ

---

६८. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० ११४
६९. झूठ-सच : सियारामशरण गुप्त, पृ० १०

बात कहते हुए बीच-बीच में व्यंग्य के शीतल छींटों की बौछार भी करते जाते हैं।"[७०]

सियारामशरण जी के कवि-हृदय की भावुकता का प्रभाव उनके गद्य पर भी पड़ा है। यही कारण है कि उनकी शैली में प्रसाद गुण की व्याप्ति है। अन्त में हम यह कह सकते हैं, कि सियारामशरण जी की आत्मव्यंजक शैली में वे सभी गुण पाये जाते हैं जो किसी निबन्ध को रोचक और आकर्षक बनाने में सहायता पहुँचाते हैं। हमें आशा है कि सियारामशरण जी ने जिस शैली का सूत्रपात हिन्दी निबन्ध-साहित्य में किया है वह आगे चल कर विकसित और पल्लवित होती हुई फूले फलेगी।

हिन्दी निबन्धों में स्थान

हिन्दी निबन्ध-साहित्य में सियारामशरण जी के निबन्धों का क्या स्थान है—इस बात पर विचार करने के लिए इस शैली के अन्य लेखकों के निबन्धों पर संक्षेप में विचार करना होगा। इस प्रसंग में डा० प्रभाकर माचवे ने लिखा है :—

"गम्भीर विचारक कवि के रूप में सियारामशरण जी जहाँ कहीं-कहीं रूखे और दुर्ज्ञेय से हो जाते है, निबन्धों में ऐसा कहीं भी नही मिलता। उनका निष्कपट व्यक्तित्व, सरल भाषा में जैसे पाठकों से वार्तालाप करता जाता है। वार्तालाप में ही संस्मृतियाँ गुँथी हुई होती है और उन्हीं में से तत्वचिन्तन का नवनीत सहज भाव से ऊपर तैरता हुआ आता है। हिन्दी की दो-तीन श्रेष्ठ निबन्ध-पुस्तकों में 'झूठ-सच', 'अशोक के फूल', 'सोच विचार हैं।"[७१]

सियारामशरण जी की शैली ही उन्हें अन्य निबन्धकारों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। आधुनिक काल के प्रायः सभी कवियों ने निबन्ध पर अपनी लेखनी उठाई है; किन्तु उन्हें केवल उनकी कविता का प्रवेशक कहा जा सकता है। सियारामशरण जी के भी कुछेक निबन्ध ऐसे हैं जिनसे उनकी काव्य-कला का पता चलता है ; किन्तु उनमें तकनीक समझने की वकालत नहीं की गयी है।

---

७०. हिन्दी गद्य का विकास और प्रमुख शैलीकार : डा० गुलाबराय, पृ० १६८

७१. हिन्दी निबन्ध : प्रभाकर माचवे, पृ० ७५

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखित 'अशोक के फूल' निबन्ध-पुस्तक तथा जैनेन्द्र जी की 'सोच विचार' पुस्तक में जो निबन्ध, संग्रहीत है वे बहुत कुछ सियारामशरण जी के निबन्धों के ढंग के है। कुछ विशेषताएँ सियारामशरण जी के निबन्धों में ऐसी पायी जाती है जो उन्हें अपनी शैली का सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार बना देती हैं। 'सोच-विचार' और अशोक के फूल' के निबन्धों में आत्मप्रधान शैली अवश्य पायी जाती है; किन्तु सरल भावुकता, प्रसादगुण सम्पन्नता, व्यक्तित्व की छाप, विषय-प्रतिपादन का कौशल, व्यंग्य और विनोद, विचारों की बोधगम्यता आदि विशेषताएँ एक साथ आकर सियारामशरण जी के निबन्धों को सबसे आगे ले जाती हैं। 'अशोक के फूल' मे कुछ निबन्धों की शैली तो मिलती है; किन्तु कुछ की शैलियाँ पृथक्-पृथक् है। 'भारतीय फलित ज्योतिष', 'पुरानी पोथियाँ', 'संस्कृत का साहित्य' आदि शीर्षकों की शैली अन्य निबन्धों के मेल मे कम है। वैसे लेखक ने स्वाभाविक रूप से जिन निबन्धों मे आत्मप्रधान शैली रखी है उनका मेल सियारामशरण जी की शैली से मिल जाता है। इस कोटि के निबन्धों मे 'एक कुत्ता और एक मैना', 'नया वर्ष आ गया', 'आपने मेरी रचना पढी', 'अशोक के फूल', 'वसन्त आ गया है' आदि आते हैं। इस शैली मे छोटे-छोटे वाक्यों में सहज भाषा के विचार अत्यन्त स्वाभाविक लगते हैं। एक उदाहरण देखिए :—

"पढ़ता-लिखता हूँ। यही पेशा है। सो दुनिया के बारे में पोथियों के सहारे ही थोड़ा-बहुत जानता हूँ। पढा हूँ, हिन्दुस्तान के जवानों मे कोई उमंग नहीं है, इत्यादि-इत्यादि। इधर देखता हूँ कि पेड़-पौधे और भी बुरे है। सारी दुनिया में हल्ला हो गया है कि वसन्त आ गया। पर इन कमबख्तों को कोई खबर ही नही। कभी-कभी सोचता हूँ, कि इनके पास तक सन्देश पहुँचाने का क्या कोई साधन नही हो सकता ? महुआ बदनाम है कि उसे सबके बाद वसन्त का अनुभव होता है; पर जामुन कौन अच्छा है ! वह तो और बाद में फूलता है।"[७२]

इस शैली में जैनेन्द्र जी के कुछ निबन्ध लिखे गये है जो 'सोच-विचार' और 'मन्थन' संग्रहों मे संग्रहीत है। शैली का मार्ग बहुत-कुछ एक होने पर भी जैनेन्द्र जी कहीं-कही दुरूह हो जाते है तथा साधारण पाठक से दूर चले जाते हैं। सियारामशरण जी में दुरूहता की झलक कही भी नही मिलती। 'सोच-

७२. अशोक के फूल' : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १७

विचार' संग्रह के 'अपरिग्रही वैश्य—गांधीजी', 'पदार्थ और परमात्मा', 'अणु-शक्ति' आदि निबन्ध तथा 'मंथन' संग्रह का 'गांधी-नीति' निबन्ध दुरूह हो गया है। इस दुरूहता का एक कारण लेखक की अपनी शैली है। वैसे भाषा, विषय-वस्तु और शैली के आधार पर जैनेन्द्र जी के निबन्धों मे एक ऐसी विशेषता पायी जाती है जो हिन्दी के अनेक निबन्ध लेखको मे नही पायी जाती। 'ब्लैक आउट' पर कितनी सहज शैली में जैनेन्द्र जी लिखते है —

"अब वे घरों में बन्द नही हे तो दुबके और सहमे घूम रहे हे। क्योकि 'ब्लैक आउट' है। क्योकि दिन बड़े है और आसमान से गोले बरस सकते है। क्योकि कोई है जो खूँख्वार है और सब का दुश्मन है और कभी भी आसमान पर छा आ सकता है। इससे ये नगर के वासियो, अन्धेरे मे रहना सीखो। मत पता लगने दो कि नीचे जान हे। अन्धेरी रात मे सन्नाटा भरे मुर्दे की तरह रह सकोगे तो खैरियत है, नही तो तुम्हारा भगवान मालिक है।" [७३]

विषयान्तर होने के भय से यहाँ हम हिन्दी निबन्धो की भाषा की अशुद्धियो के सम्बन्ध में कुछ नही कहना चाहते, किन्तु आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने इन्दौर वाले भाषण मे जिस कमी की ओर संकेत किया था,[७४] उस प्रसंग मे बहुत से लेखक आज भी नही चेते। खेद है कि निबन्धो की जिस शैली का शुभारम्भ आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, श्री माधवप्रसाद मिश्र, तथा श्री पूर्णसिंह आदि ने किया था, वह आगे न पल्लवित हो सकी। श्री गुलाबराय, श्री पदुम-लाल पुन्नालाल बख्शी, डा० रघुवीरसिंह, श्री वियोगी हरि, आदि लेखकों ने जिस प्रकार स्वतन्त्र चेता के रूप मे निबन्ध लिखे उसी प्रकार सियारामशरण जी ने भी निबन्ध-साहित्य मे अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। उनकी शैली पर सर्वत्र उनके व्यक्तित्व की छाप है। वस्तुत: लेखक की शैली से उसका व्यक्तित्व अलग भी नही हो सकता।[७५] सियारामशरण जी के निबन्ध आचार्य शुक्ल की उस आशा की पूर्ति प्रतीत होते है जो उन्होने निबन्धो के सम्बन्ध मे इन्दौर वाले भाषण में व्यक्त की थी :—

---

७३. सोच-विचार : जैनेन्द्र, पृ० १४२

७४. चिन्तामणि-भाग २ : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २३६

७५. 'Style is the intimate and inseparable fact of the personality of the writer.'

The New Dictionary of Thoughts, page 642

सामयिक विचारधाराओं का प्रभाव

किसी भी साहित्यकार पर युगीन विचारधाराओं का प्रभाव जाने-अनजाने पड़ता है। सियारामशरण जी एकान्त साधक होते हुए भी युगद्रष्टा थे। इसीलिए उनके साहित्य में युग की तस्वीर दिखायी पड़ती है। युग को प्रभावित करने वाली विचारधाराओं का प्रभाव उनकी रचनाओं में मिलता है। समाज की रीति-नीतियों से लेकर तात्कालिक आन्दोलन तक का प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ता है। इससे यह पता चलता है कि कवि की चेतना युगवोधिनी है जिसमें नवोन्मेष की रूपरेखा दिखायी पड़ती है। सियारामशरण जी के समय में गांधीवाद को जो प्रतिष्ठा मिली उससे कवि अभिभूत हो उठा। परिणामस्वरूप वह गांधी-दर्शन का व्याख्याता वन गया।

गांधीवाद

यहाँ हमें इस वात पर विचार करना है कि सियारामशरण जी अपनी कृतियों में गांधीवाद से किस सीमा तक प्रभावित है। वस्तुत: गांधीवाद का मूल आधार सत्य और अहिंसा है। सत्य की व्याख्या गांधीजी के शब्दों में इस प्रकार है :—

"सत्य शब्द सत् से बना है। सत् का अर्थ है अस्ति; सत्य—अर्थात् अस्तित्व। सत्य के बिना दूसरी किसी चीज की हस्ती ही नहीं है। परमेश्वर का सच्चा नाम ही 'सत्' अर्थात् 'सत्य' है इसलिए परमेश्वर सत्य है। यह कहने की अपेक्षा 'सत्य' ही परमेश्वर है कहना अधिक योग्य है।"[1]

गांधीजी ने 'सत्य' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है। वे विचार, वाणी और आचार में सत्य का होना सत्य मानते हैं। संसार का सारा ज्ञान सत्य में समाया हुआ है। सत्य की खोज में मनुष्य को कष्ट उठाना पड़ता है, तपश्चर्या करनी होती है। सत्य की आराधना को भक्ति की संज्ञा दी जाती है। भक्ति के मार्ग में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ हैं। गांधीजी लिखते हैं:—

"सत्य की आराधना भक्ति है, और भक्ति सिर हथेली पर लेकर चलने का सौदा है; अथवा वह हरि का मार्ग है जिसमें कायरता की गुंजाइश नहीं है, जिसमें हार नाम की कोई चीज है ही नहीं। वह तो मर कर जीने का मन्त्र है।"[2]

गान्धीजी यह भी मानते हैं कि सत्य का सम्पूर्ण दर्शन इस शरीर से सम्भव नहीं है, क्योंकि यह क्षणिक है और सत्य शाश्वत धर्म है। सत्य के पालन के लिये मानव को अहिंसा की साधना करनी होती है। गान्धीजी के विचार से "अहिंसा आचरण का स्थूल नियम मात्र नहीं है, बल्कि मन की वृत्ति है। जिस वृत्ति में कहीं दोष की गन्ध तक न हो वह अहिंसा है।"[3] अहिंसा की व्यापकता बहुत कुछ सत्य के ही समान है। ईश्वर का प्रेम-स्वरूप होना और अहिंसा दोनों मिलते-जुलते हैं। अहिंसा में प्रेम का शुद्ध और व्यापक रूप पाया जाता है। दूसरों को पीड़ा न पहुँचाना ही अहिंसा नहीं है। यह तो उसका बाहरी रूप है। गान्धीजी के अनुसार "अहिंसा का भाव दिखाई देने वाले परिणाम में नहीं है बल्कि अन्तःकरण की राग-द्वेष रहित स्थिति में है।"[4]

सत्य और अहिंसा के प्रयोगों से गान्धीजी जीव मात्र में ऐक्य साधन की भूमिका बनाते रहे। यह भूमिका हमें सियारामशरण जी में भी दिखायी पड़ती है। गान्धी-दर्शन से सियारामशरण जी प्रभावित हैं—यह बात हम उनके जीवन-प्रसंग में कह चुके हैं। गान्धीजी का व्यक्तित्व हम लोगों के बीच में ऐसा है

---

१. गान्धी साहित्य-५ : धर्मनीति, पृ० ८६

२. गान्धी साहित्य-५ : धर्मनीति, पृ० ६१

३. गान्धी विचार-दोहन : किशोरलाल मशरूवाला, पृ० १६

४. गान्धी-विचार-दोहन : किशोरलाल मशरूवाला, पृ० १७

जिससे हमें कर्म के प्रेरक तत्व मिलते है। वे एक युग के प्रतिनिधि है। उनका प्रभाव किसी विशेष कवि पर नहीं अपितु युग पर पड़ा है। सत्य और अहिंसा की विचारधारा की जो छाप गान्धी-युग पर पड़ी है उसमें गान्धीजी की सक्रियता का पूर्ण हाथ है। उनके कर्मों में निष्काम भावना का समावेश है, इसलिए यह गीता की निष्काम कर्म-भावना के मेल में है। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है—"ऐसा प्रतीत होता है कि गान्धीजी को अहिंसा का अभावात्मक स्वरूप आरम्भ में जैन साधुओं के सत्संग से प्राप्त हुआ था, इसके बाद हिन्दू दर्शन तथा धर्म-ग्रंथों के अध्ययन से उसका तात्विक रूप पुष्ट हुआ और भावात्मक तथा अभावात्मक दोनों तत्वों के समुचित समन्वय से उनकी रूपरेखा पूर्ण हो गयी फिर भगवान बुद्ध और ईसा के उपदेशों को हृदयंगम करने से उनके सक्रिय रूपों को और उत्तेजना मिली और अन्त में गीता के दर्शन द्वारा उनमें निष्काम भावना का समावेश हुआ। इस प्रकार अहिंसा में उपर्युक्त सभी तत्वों का समन्वय होकर उसका एक विशिष्ट रूप बन गया जो गान्धीजी की अपनी देन है और जो जाने-अनजाने भारत की आधुनिक विचारधारा को प्रभावित करती रही है।"[५] गान्धी-दर्शन से केवल राजनैतिक जन-जीवन ही नहीं प्रभावित हुआ वरन् साहित्यिक क्षेत्र में भी उसका व्यापक प्रभाव पड़ा। वैसे तो गान्धीवादी अभिव्यक्ति के कुछ संकेत कामायनी में भी मिलते है,[६] किन्तु बाद के कवियों की अधिकांश रचनाओं में गान्धीवाद से प्रभावित अभिव्यक्ति मिलती है। दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी तथा सियारामशरण आदि कवियों ने तो गान्धीजी से सम्बन्धित काव्यों की रचना की।[७] पंत और बच्चन आदि ने गान्धीजी से सम्बन्धित कुछ फुटकर रचनाएँ लिखी है।[८] यहाँ एक बात और स्पष्ट कर देनी है कि इन समस्त कवियों में सियारामशरण जी ही ऐसे कवि है जिन्होंने गान्धी-दर्शन को अपनाने में बाहर-भीतर का साम्य रखा है। गान्धीवादी विचारधारा का जितना प्रभाव सियारामशरण जी की लेखनी पर है, उनके व्यक्तित्व पर

५. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तिया : डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४२

६. कामायनी : प्रसाद, पृ० १५३, ईर्ष्या सर्ग

७. सोहनलाल जी कृति 'जय गान्धी' तथा दिनकर और सियारामशरण जी की कृतियां 'बापू' नाम से प्रकाशित हैं।

८. पंत जी की प्रसिद्ध रचना 'बापू के प्रति' उनकी कृति 'रश्मि बंध' तथा बच्चन की गान्धी जी सम्बन्धित कुछ रचनाएँ 'खादी के फूल' में पत जी की कविताओं के साथ संगहीत हैं।

उससे किसी रूप में कम नहीं है। डॉ० नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध में लिखा है :—

"हिन्दी में गान्धीजी के तत्वचिन्तन की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति केवल एक ही कवि में मिलती है—और वास्तव में वही एक ऐसा कवि है जो अपनी सात्विक साधना के बल पर उसे अपनी चेतना का अंग बना सका है। ये कवि हैं सियारामशरण गुप्त। उनके काव्य का आज हिन्दी में एक पृथक् स्थान है। भारतीय चिन्ताधारा की एक विशेष महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के वे अकेले कवि है।"[६] निश्चय ही गान्धीवादी विचार-धारा के कवियों में सियारामशरण जी का अपना पृथक् स्थान है। सियारामशरण जी अपनी प्रथम कृति मौर्य-विजय में गान्धीदर्शन से प्रभावित नहीं प्रतीत होते; किन्तु उसके बाद की कृतियों में वे मानवतावाद के अधिक समीप दिखायी देते है जो गान्धीवाद का एक अंग है। 'अनाथ', 'आत्मोत्सर्ग', 'दैनिकी', 'बापू', 'जयहिन्द' आदि कृतियाँ इसी कोटि में आती है। कुछ फुटकर रचनाएँ भी इसी श्रेणी में आती है जो 'आर्द्रा' और 'मृण्मयी' आदि कृतियों में संगृहीत है। नीति, धर्म, सत्य, अहिंसा, अस्पृश्यता निवारण, श्रम, नम्रता, स्वदेशी व्रत, विश्व-बन्धुत्व, पवित्रता और स्वच्छता, ईश्वर पर विश्वास, आशावादिता तथा लोभ, मोह, क्रोधादि पर विजय की भावना सियाराम-शरण जी के काव्यों में मिलती है। समाज की वे रूढ़ियाँ जो प्रगतिशील चरणों के मार्ग में गतिरोध उत्पन्न करती है, सियारामशरण जी को नहीं भातीं। नीति के प्रसंग में उन्होंने अपने 'नकुल' काव्य में वह स्थापना प्रस्तुत की है जो गांधी जी की पढ़ी हुई रस्किन की पुस्तक 'अन टु दि लास्ट' की विचारधारा के मेल में है। जिसके कुल और गोत्र का पता नहीं है ऐसे 'नकुल' को प्राथमिकता देना गान्धीवादी अभिव्यक्ति है। सियारामशरण जी गान्धीजी के व्यक्तित्व से कितने प्रभावित है—इस बात को एक प्रसंग में देखिए :—

छिन्न भिन्न करके तमिस्र जाल
तुम जिस ओर गये,
निकल पड़े हैं वहीं मार्ग नये
दुर्गम दुरूह में से शंका-समाधान-सम।
उच्चतर उच्चतम
देख तुम्हें दृष्टियाँ थकित है,
विश्व जन सहसा चकित है।
धीर धनी लक्ष-लक्ष

६. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां : डा० नगेन्द्र, पृ० ३६

लक्ष्य रूप करके तुम्हें समक्ष
फेंक कर हेम-हार
सिर से उतार पद-मान-भार,
भूले हुए क्लेश को,
हो रहे प्रभावित तुम्हारे तीर्थ देश को।[१०]

गान्धीजी के त्याग, साधना, जीवन के क्रियात्मक प्रयोग तथा समष्टि के प्रति सहानुभूति से सियारामशरण जी प्रभावित रहे हैं। इतना अवश्य है कि गांधीजी के सत्य और अहिंसा को आगे चल कर समाज अपना नहीं सका; किन्तु उसका युगीन प्रभाव इतना पड़ा कि जाने-अनजाने सभी को उससे प्रभावित होना पड़ा। सियारामशरण जी की 'आर्द्रा' रचना की 'एक फूल की चाह', 'वंचित' तथा 'खादी की चादर' आदि कविताओं पर गान्धीवादी विचारों की छाप है। 'अमृत पुत्र' की रचना का उद्देश्य बहुत कुछ गान्धीवादी विचारधारा का विवेचन रहा है। यीशु द्वारा सामरी जैसी नीच और अधम के हाथ का पानी पीना हमें बरबश भारतवर्ष की उन भंगी बस्तियों की याद दिला देता है जहाँ गान्धीजी प्रायः टिकते थे। अस्पृश्य भावना के प्रसंग में लुई फिशर ने लिखा है :—

गान्धीजी ने जोर दिया कि अस्पृश्यता प्रारम्भिक हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। वस्तुतः अस्पृश्यता के विरुद्ध उनका संघर्ष हिन्दू धर्म के नाम पर ही हुआ। उन्होंने लिखा है —"मैं फिर से जन्म लेना नहीं चाहता, लेकिन यदि लेना ही पड़े तो मैं अस्पृश्य के रूप में पैदा होना चाहूँगा, जिससे मैं उनकी वेदनाओं, कष्टों और उनके साथ किये जाने वाले व्यवहारों में साझीदार हो सकूँ।"[११]
सियारामशरण जी ने 'एक फूल की चाह' में लिखा है :—

पापी ने मन्दिर में घुस कर
किया अनर्थ बड़ा भारी।
कलुषित कर दी है मन्दिर की
चिरकालिक शुचिता सारी।[१२]

१०. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृ० २६-२७
११. गांधी की कहानी : लुई फिशर, पृ० ५८
१२. आर्द्रा : सियारामशरण गुप्त, पृ० ५६-६०

सियारामशरण जी के उपन्यासों और नाटकों के प्रमुख पात्रों के चरित्रों पर गान्धी-दर्शन की स्पष्ट छाप है। 'गोद' का दयाराम, 'अन्तिम आकांक्षा' का रामलाल अपनी सेवाभावना, दया तथा शुचिता के आधार पर ही गान्धीवाद के मार्ग पर चलते दिखायी पड़ते हैं। इन चरित्रों में स्वाभाविक रूप से पूर्ण स्निग्धता पायी जाती है जिसकी छाया में आत्मिक सुख मिलता है। इस प्रकार के चित्रण में सियारामशरण जी अत्यन्त निपुण हैं। गान्धीवादी विचारधारा के प्रसंग में जहाँ कहीं सियारामशरण जी बौद्धिकता के समीप पहुँचे हैं, वहाँ हृदय आत्म-विभोर हो गया है। प्रतीत होता है जैसे कोई कह रहा हो - 'गान्धी के देश के कवि बौद्धिकता की सीमा के पास पहुँचने में हृदय को कहीं भूल तो नहीं गये।' यहाँ तो सचमुच हृदय की संवेदनशीलता के सम्मुख बुद्धि का पराक्रम नतमस्तक है। गान्धीजी कवियों और साहित्यिक व्यक्तियों को एक विशेष दृष्टि से देखते थे। इस सम्बन्ध में एडवर्ड टामसन ने लिखा है :—

"काल्पनिक और साहित्यिक व्यक्तियों को वह जरा शुष्क और सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। कोई सम्मति अगर उनको नापसन्द हो तो वह मुस्कराते हुए इन शब्दों के साथ उसे निबटा देंगे— 'अच्छा आप जानते हैं कि आप कवि हैं।"[१३]

गांधीजी अपने जीवन में इतने क्रियाशील रहे कि उनके नियम देशवासियों के आदर्श बन गये। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र पर अपने विचार प्रकट किये हैं। देश की बहुविध समस्याओं को अपनी समस्या मान कर गान्धीजी जीवन-भर उनका निदान खोजते रहे। उनका दृष्टिकोण सदैव आशावादी बना रहा। यही आशावादिता सियारामशरण जी मे भी दिखायी देती है। जीवन में उन्हें अनेक समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा; किन्तु वे अपने पथ से डिगे नहीं। सदाचारी जीवन, परिश्रम पर विश्वास, अहिंसा की ओर अभिरुचि, देश के प्रति आस्था आदि ऐसी बातें हैं जो सियारामशरण जी को गान्धीजी के और समीप कर देती है। गांधीजी के अभिनन्दन में उन्होंने लिखा था—

गगन की इस उच्चता में रज्जु बन्धन खर्व,
शस्त्र के भुजबल भुजंगम का गलित है गर्व।

---

१३. गान्धी अभिनन्दन ग्रन्थ : सं० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, पृ० १७७

झुक रहा है दूर तक जिसके लिये भवितव्य,
नमित है हम निकट में श्रद्धा लिये निज नव्य।
भुवन हो प्रिय-प्रेम दीक्षित,
शुचि अहिंसा में परीक्षित
आज नव निर्वैर-पथ हो विश्व को गन्तव्य,
आज का आनन्द हो चिरकाल का कर्त्तव्य।[१४]

सियारामशरण जी की साधना उच्चता की भावभूमि पर कठिनाइयों से जूझने वाले मानव की साधना है। इस साधना का पथ 'अहिंसा' है। साधक का पाथेय 'सत्य' है। जन-जीवन में मैत्री भावना का उन्मेष होना एक स्वस्थ परम्परा है। इस दृष्टि से भी सियारामशरण जी गान्धीजी के समीप होते हुए भी अन्य युगीन कवियों से दूर है।

तात्कालिक आन्दोलन

सियारामशरण जी का रचना-काल सं० १९७१ वि० से सं० २०२० वि० के मध्य का है। यह समय क्रमशः ईसवी सन् १९१४ और १९६३ है। १५ अगस्त सन् १९४७ के पहले का राजनीतिक जन-जीवन अत्यन्त उथल-पुथल का रहा है। कही तो आज़ादी की लड़ाई में जन-जागृति के नवीन और जोश-भरे स्वर सुनाई पड़ते थे और कही साम्प्रदायिकता की चक्की मे पिसती हुई जनता की करुण पुकार सुनायी पड़ती थी। गांधीजी की अहिंसात्मक क्रान्ति केवल सिद्धान्त के रूप में दिखायी देती थी। राम-रहीम और केशव-करीम की एकता पर निछावर होने वाले हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के गले लगने के स्थान पर एक-दूसरे का गला साफ कर रहे थे। स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी और गान्धी जी जैसे नेता इन पृथक् विचारधाराओं के संगम का भरसक प्रयत्न कर रहे थे।

इसके पहले उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपने देश मे जन-जागरण की जो ज्योति फैली उसमें पश्चिम की विचारधाराओं का भी मेल था। श्री इन्द्र वाचस्पति ने लिखा है :—

---

१४. गान्धी अभिनन्दन ग्रन्थ : सं० श्री सोहनलाल द्विवेदी, पृ० १६

"इंगलैण्ड में उन दिनों लिबरल (उदार) और स्वच्छन्द विचारकों का बल बढ़ रहा था। हर्बर्ट स्पेंसर, जेम्स तथा स्टुअर्ट मिल जैसे ओजस्वी विचारक और लेखक रूढ़ियों को तोड़ कर स्वाधीनता की भावना को जगा रहे थे। उनके लेखों का भारत के शिक्षित व्यक्तियों पर भरपूर प्रभाव पड़ रहा था।"[१५]

भारतीय स्वतन्त्रता को प्राप्त करने में लोगों ने अनेक ढर्रे ढूँढ़ निकाले थे, यद्यपि गन्तव्य सभी लोगों का एक ही था। कोई नरम दल की बात करता था किसी को गरम दल अच्छा लगता था। किसी को कांग्रेस प्रिय थी, कोई मुस्लिम लीग को अच्छा समझता था। सन् १९१६ के दिसम्बर में लखनऊ कांग्रेस के अधिवेशन में नरम और गरम दल वालों का अच्छा संगम हुआ। ध्यान रहे कि इसके पहले वंग-विच्छेद का कांड हो चुका था। योरप के प्रथम महायुद्ध ने सारे विश्व को प्रभावित किया था। साथ ही दक्षिणी अफ्रीका में नागरिक अधिकारों के संघर्ष भी हो चुके थे।

महात्मा गान्धी ने अवसर देख कर अहिंसक राज्यक्रान्ति की घोषणा की। पंजाब में दमन का दृश्य देखकर भारत माता का हृदय कांप उठा था। असहयोग के आन्दोलन में भारतीयों ने सहयोग दिया। गान्धीजी का परिश्रम किसी सीमा तक पूरा हो गया। किन्तु साम्प्रदायिक झगड़ों से उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा। भोपाल, मुल्तान, नागपुर, लखनऊ, शाहजहाँपुर, इलाहाबाद, जबलपुर तथा दिल्ली जैसे नगरों में मारकाट हुई। इन दंगों से ऊब कर गांधीजी ने कहा था :—

"यदि हम एक-दूसरे का सिर तोड़ देने पर उतारू हैं तो हमें ऐसा मर्दानगी के साथ करना चाहिए, हमें झूठ-मूठ के आँसू न बहाने चाहिए। और यदि हम एक-दूसरे के साथ दया नहीं करना चाहते तो हमें किसी दूसरे से सहानुभूति की याचना नहीं करनी चाहिए।"[१६]

इन घटनाओं के पश्चात् देश में शान्ति नहीं थी। भारतीय नवजवान में उमंग का जो सागर लहरा रहा था उसमें केवल ज्वार दृष्टि आता था, भाटे का नाम-निशान नहीं था। काकोरी काण्ड, रामप्रसाद बिस्मिल की फाँसी तथा असफाकउल्ला का त्याग भी स्वतन्त्रता-आन्दोलन का इतिहास नहीं भूल पाता।

---

१५. भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास : इन्द्र वाचस्पति, पृ० ३२
१६. संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभि सीतारमैया, पृ० १५६

सरदार भगतसिंह के आतंक से अंग्रेजी सरकार परेशान थी।

८ अप्रैल सन् १९२९ को सरदार भगतसिंह तथा श्री बटुकेश्वरदत्त के सहयोग से नयी दिल्ली के कौंसिल हाल में बम फेंका गया जिससे अंग्रेजी शासन भयभीत हो उठा। श्री मोतीलाल नेहरू ने सरकार की दमन-नीति की भर्त्सना की। इधर सबसे महत्त्वपूर्ण घटना यही घटी कि श्री यतीन्द्रनाथ दास ने ६२ दिन का अनशन करके लाहौर के बोर्स्टल जेल में अपने प्राण त्याग दिये। इस घटना का प्रभाव भी सरकार के ऊपर पड़ा।[१७] गान्धी-अरविन समझौता, गोल-मेज कांफ्रेन्स का नाटक, साइमन कमीशन, सरकारी दमन-नीति आदि घटनाओं के साथ देश में क्रान्ति का एक नया दौर चला। यरवदा में गान्धीजी ने आम-रण अनशन प्रारम्भ किया। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने उन्हें अत्यन्त प्रेरणादायक और सहानुभूतिपूर्ण तार भेजा था। इन्हीं दिनों सुभाष बाबू की लोकप्रियता बढ़ रही थी। वे कांग्रेस के अध्यक्ष भी चुने जा चुके थे। सन् १९३८ और १९३९ में साम्प्रदायिक दंगे अधिक जोर पकड़ने लगे। इस समय मुस्लिम लीग का जन्म हो चुका था। उसने अपनी स्वार्थपूर्ण माँगों को बार-बार दुहराना प्रारम्भ किया था। साथ ही देशी रियासतों में भी जागरण की लहर दौड़ी थी। इधर त्रिपुरा कांग्रेस के चुनाव में अबुलकलाम आजाद के नाम वापस लेने तथा पट्टाभि सीतारमैया की हार और सुभाष की जीत ने यह संकेत दे दिया कि देश चाहता क्या है?

द्वितीय महायुद्ध का जो धुआँ विश्व में फैला उससे भारत भी प्रभावित हुआ। अंग्रेजों का साथ देने से देश की परिस्थितियों ने एक नवीन मोड़ लिया। सन् १९४० में सुभाष बाबू नजरबन्द किये गये। सन् १९४१ में वे रहस्यमय ढंग से देश से बाहर चले गये। भारत की राजनीति में एक नया मोड़ आया। सर मु० इकबाल की दिमागी दुनिया में—पाकिस्तान का बच्चा पैदा हुआ। फलतः हिन्दू और मुसलमानों की वह एकता जिसकी दरारों को गान्धीजी लीपते-पोतते रहते थे, सदा के लिए छिन्न-भिन्न हो गयी। अब हिन्दुओं और मुसलमानों को दो मार्ग साफ दृष्टि आने लगे। मि० जिन्ना की राष्ट्रीय भावना

---

१७. भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास : इन्द्र वाचस्पति, पृ० २६९

ने साम्प्रदायिकता का रूप ले लिया। १७ दिसम्बर सन् १६४१ का जापानी पराक्रम अंग्रेजों को आतंकित कर गया। इधर देश ने फिर अंगड़ाई ली। सन् १६४७ में राज्य-क्रान्ति का जो रूप यहाँ दिखायी पड़ा वह अत्यन्त भयानक और उत्तेजनापूर्ण था। इसके पहले 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास हो चुका था। सन् १६४२ में बम्बई और अन्य बड़े नगरों में विद्रोह का उग्र रूप दिखायी पड़ा था।

सन् १६४३ में सुभाष बाबू ने आई० एन० ए० को पुन संगठित किया। इसके साथ ही देश की राजनीतिक स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए। 'दिल्ली चलो' के नारे ने भी जोश में काफी सहायता की। सन् १६४३ में ही बंगाल में अकाल पड़ा। इसमें अंग्रेजों ने अपनी क्रूरता का परिचय जी खोल कर दिया। इधर अंग्रेजों के दिमाग में कुछ परिवर्तन हुआ। विभाजन की दुर्घटना को अपने हृदय में लिए गांधी और जिन्ना ने लार्ड माउन्टबेटन के हाथों स्वराज्य प्राप्त किया। देश-विभाजन से दुखी होकर गान्धीजी ने इस परिणाम को अपने सत्याग्रह का लज्जा जनक परिणाम कहा है।[१८]

यह तो हुई राजनीतिक हलचल की बात। अब उन साहित्यिक गतिविधियों पर संक्षेप में विचार करना समीचीन होगा जिनके द्वारा स्वाधीनता-संग्राम और तत्कालीन आन्दोलनों को बल मिलता रहा है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने जागरण का जो सन्देश दिया था उसका प्रभाव आगे आने वाले साहित्यिकों पर विशेष रूप से पड़ा। यह वह युग था जब पुरानी रूढ़ियाँ टूट रही थीं और नयी चेतना के सूर्य का दिव्य-दर्शन भारतीय जनता को प्राप्त हो चुका था। इस प्रसंग में डा० विश्वनाथ गौड़ ने लिखा है—

"रूढ़ियों और निर्जीव परम्पराओं का परित्याग, शिक्षा के प्रसार से दृष्टि की व्यापकता, जनवाद के नवीन आदर्शों का अनुसरण, श्रद्धा और विश्वास के स्थान पर प्रतिपत्ति की बौद्धिकता आदि गुण समाज में धीरे-धीरे उदित हो रहे थे।"[१९] देश के साहित्यिक आन्दोलन और जागरण को प्रेरणा देने वालों में बंगाल के लेखकों और कवियों का योगदान स्तुत्य है। इधर दयानन्द जी के आर्यसमाज ने भी इस दिशा में पर्याप्त काम किया। हिन्दी में भारतेन्दु-काल में

---

१८. भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास : इन्द्र वाचस्पति, पृ० ४०१
१९. आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद : डा० विश्वनाथ गौड, पृ० ६०

जिस जागरण की रश्मि फूटी थी उससे सियारामशरण जी के समय के कवि प्रेरणा पाते रहे हैं। प्रसाद, पंत, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा, नवीन, सोहनलाल द्विवेदी आदि कवियों के स्वरो में नयी चेतना की झलक मिलती है। हिन्दी लेखकों में पं० प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट के समय के लेखक देशभक्ति के प्रति सजग थे। मुंशी प्रेमचन्द तक आते-आते यह सजगता अन्यान्य लेखकों में भी दिखायी पडी। देश की अन्य भाषाओ के साहित्यकार भी स्वस्थ रचनाएँ प्रस्तुत कर रहे थे। इसी बीच सियारामशरण जी ने भी लिखा था :—

> अगनित धाराओं का संगम, मिलन तीर्थ संदेश,
> एक हमारा ऊँचा झंडा, एक हमारा देश ॥[२०]

सियारामशरण जी की जिन कृतियो को तात्कालिक आन्दोलनों से प्रेरणा मिली है वे इस प्रकार है—'नोआखाली मे', 'दैनिकी', 'आत्मोत्सर्ग' और 'जयहिन्द'। पीछे कृतियों के परिचय वाले परिच्छेद में इन रचनाओ का परिचय दिया जा चुका है। यहाँ केवल इतना कहना है कि देश की परिस्थितियो को देख कर कवि की लेखनी नूतन गान की वेदना से विचलित हो उठी थी और कवि गा उठा था :

> हाय ! अरे रे क्षुद मना कवि !
> यह कैसा कुत्सित कुविचार,
> मरी नहीं अधमों से भी जो
> उसके ऊपर हिंस्र प्रहार ![२१]

बिहार में साम्प्रदायिकता की जो ज्वाला भडकी थी उसका प्रभाव बहुतों पर पड़ा था। तमाम निरापराध बच्चे-बूढे-नौजवान तथा स्त्रियाँ मौत के घाट उतार दी गयी थी सियारामशरण जी ने इस पीड़ा से व्याकुल होकर लिखा था :—

> वंग भूमि में दूर उधर वह उठा स्वबंधु विरोध,
> इधर बिहार-भूमि में भी कुछ भभक उठा प्रतिशोध।

---

२०. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृ० ५२

२१. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृ० १८

बोधि तीर्थ तू क्रोहानल में यह ईंधन मत डाल;
बुरा असल ही हो तो अच्छा होगा क्या नवकाल।[२२]

'दैनिकी' की कुछ रचनाओं में सियारामशरण जी तात्कालिक आन्दोलनों से प्रभावित जान पड़ते हैं। 'विकलांग' तथा 'जागरण-प्रसंग' आदि रचनाएँ इसी कोटि में आती है। 'आत्मोत्सर्ग' अमर हुतात्मा स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान पर लिखी गयी पुस्तक है। इस कृति में भी सियारामशरण जी ने हिन्दू-मुस्लिम दंगे का (कानपुर में) हृदय-द्रावक वर्णन किया है—

मिला जहाँ कर दी हिन्दू ने
मुसलमान के ऊपर चोट,
मारा त्यों ही मुसलमान ने
हिन्दू को भी लूट-खसोट।
पागल से अन्धे से हो हो,
अपनी अपनी जय जय कर;
हिन्दू मसजिद पर चढ़ दौड़े,
मुसलमान देवालय पर।[२३]

इन दंगों के कारण भारत और पाकिस्तान को स्वतन्त्रता बड़ी महँगी पड़ी। आन्दोलनों के फलस्वरूप भारत को आजादी मिली। स्वतन्त्र भारत का कवि आनन्द-विभोर होकर गा उठा :—

गंगा-यमुना के प्रवाह हे
अमल अनिंद्य हमारे हिंद
जय जय भारतवर्ष हमारे
जय जय हिंद हमारे हिंद ![२४]

---

२२. नोआखाली में : सियारामशरण गुप्त, पृ० २७
२३. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृ० २५
२४. जयहिन्द : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३

यद्यपि सियारामशरण जी एकान्त साधक कवि रहे है; किन्तु देश के आन्दोलनों ने उन्हें पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित किया। इस विचारधारा की उनकी कृतियाँ अलग है। उनकी मानवता और अहिंसा की भावना को जब-जब ठेस लगी है तब-तब वे कुछ न कुछ कहते रहे है। स्वतन्त्रता के आन्दोलनों से केवल वे प्रभावित ही नही हुए अपितु कुछ रचनात्मक कार्यों की ओर भी उनके चरण बढ़े थे। इस बात का उल्लेख जीवन-प्रसग मे किया जा चुका है।

मानवतावाद

मानवतावाद गाधीवाद का एक अंग है। दूसरे के दु.ख मे उसे सहायता करना, भूखे को अन्न देना, प्यासे को पानी पिलाना, अछूत को छूत बनाना, दलितों को ऊपर उठाना, शोषितों को शोषण से मुक्त कराना, मुख्य रूप से मानवतावाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ है। सियारामशरण जी का कवि इस भौतिकवादी युग में मानवतावाद के अधिक समीप है। विज्ञान की अन्धी दौड मे सभी को अपनी अपनी पडी है। दूसरों की कठिनाइयाँ हल करने का समय किसके पास है? गांधीजी ने मानव-जीवन की कठिनाइयों का समाधान खोजने का प्रयास किया था। यही उनका मानवतावादी दृष्टिकोण है। इस दिशा मे वे सारे भारत को अहिंसावादी बनाना चाहते थे :—

"मेरी राष्ट्रीयता मे प्राणी-मात्र का समावेश होता है। ससार की समस्त जातियों का समावेश होता है। और यदि मैं भारतवर्ष को अहिंसा का कायल कर सकूँ तो भारत सारे जगत् को भी कुछ चमत्कार दिखा सकेगा।"[२५] राष्ट्रीयता के साथ-साथ सियारामशरण जी मे जन-कल्याण की जो भावना आयी उस पर गाधीजी की छाप है। इनकी प्रारम्भिक कृतियो मे भी मानवतावाद उभर कर आया है। 'अनाथ' सियारामशरण जी की प्रथम मानवतावादी रचना है। इस कृति की रचना के समय कुछ परिपाटी ही ऐसी चल पड़ी थी कि निरीह और संत्रस्त मानवता को लेखनी का विषय बनाना कविगण अधिक अच्छा समझते थे। श्री रामनरेश त्रिपाठी रचित 'पथिक' और 'मिलन' के नायक 'अनाथ' के मोहन जैसे है। अन्तर केवल इतना है कि पथिक जागरण का सन्देश बाँटता है; किन्तु सियारामशरण जी का 'मोहन' अपनी छाती पर वज्र रख कर सब कुछ

---

२५. धर्म-नीति-५ : गाधी जी, पृ० २०२

सहता जाता है। लगता है सियारामशरण जी का आदर्शवाद उसके साथ है। मोहन के प्रति किए गए अत्याचारों को देख कर सियारामशरण जी लिखते हैं—

> पशु-तुल्य हम लाखों मनुज हा ! जी रहे क्यों लोक में,
> जीते हुए भी मर रहे पड़ कर विषम दुख शोक में।
> हा दैव, क्यों निस्सार यों जीवन हमारा है किया ?
> दुख भोगने के ही लिए क्या जन्म है हमने लिया।[26]

जमींदारों के अत्याचारों से सहमी हुई निरीह जनता का साथी कवि पुलिस के क्रूर और नृशंस व्यवहारों से भी परिचित है। प्रतीत होता है सियारामशरण जी का कवि हर सताए हुए व्यक्ति के गले मिलकर अपने सौहार्द्र की शीतल छाया से उसका संकट-मोचन करना चाहता है। वे एक ऐसे संसार के शिल्पी हैं जहाँ मनुजता की समतल धरती पर प्रेम के पौधे रोपे गये हैं।

अपने मानवतावादी दृष्टिकोण में सियारामशरण जी किसी भी प्रगतिशील विचारधारा के कवि से पीछे नहीं हैं। अन्तर केवल इतना है कि समृद्ध विचारधाराओं वाले देश का कवि मार्क्स और लेनिन की ओर नहीं ताकता। सियारामशरण जी की प्रगतिशीलता में कुछ उधार लिया हुआ या माँगा हुआ नहीं है। आजकल सोचने की एक यह भी परिपाटी चल पड़ी है कि वहाँ ऐसा हो रहा है इसलिए हमें भी वैसा ही करना चाहिए। सियारामशरण जी को भारतीय संस्कृति के प्रति असीम श्रद्धा है; क्योंकि उसकी आधारशिला सर्वोदय पर आधारित है।

'दैनिकी', 'दूर्वादल', 'नकुल', 'अमृतपुत्र' आदि रचनाओं में सियारामशरण जी का मानवतावादी दृष्टिकोण दिखायी पड़ता है। 'मजूर', 'बिरजू', 'नर किंवा पशु', 'मनुज' आदि रचनाएँ 'दैनिकी' में संगृहीत हैं, जो कवि की संवेदनशीलता का परिचय देती हैं। ज्वाला-गिरि के बीज क्रूर शोषण में जमे हैं :

> ज्वाला गिरि के बीज क्रूर शोषण से जमकर,
> फूट पड़े हैं ठौर ठौर आग्नेय विकटतर।
> काँप उठी है धरा उन्हीं के विस्फोटन में,
> फैल गयी प्रलयाग्नि-शिखा यह निखिल भुवन में।[27]

---

२६. अनाथ : सियारामशरण गुप्त, पृ० २८
२७. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६०

यह मानवतावादी विचारधारा शोषण के विरोध में है। सियारामशरण जी के ही समान युगीन कवियों के भी मानवतावादी स्वर सुनायी पड़ते हैं। निराला, पंत, भगवतीचरण वर्मा, दिनकर आदि में मानव के प्रति प्रायः एक ही प्रकार की सहानुभूति पायी जाती है। सियारामशरण जी की सहानुभूति में विनम्रता, और सौहार्द की भावना अधिक है। उनकी मानवतावादी रचनाओं का युगीन और पृथक् महत्त्व है। वे केवल कलम से ही मानव के समीप नहीं है वरन् उनका हृदय भी सदैव मनुष्यों के साथ रहता है। अपने पाठकों का हृदय जीत लेना ही कवि की सफलता है। किन्तु अपनी प्रसिद्धि और उपलब्धि की ओर से सियारामशरण को विशेष चिन्ता नहीं है। वे आशावादी होना नहीं भूलते :—

इतना यह चारों ओर संकुचितपन है,
कितना यह चारों ओर परापहरण है!
सम्पूर्ण अरक्षित आज यहाँ जीवन है,
किस नये प्रेम से वैर-विरोध-वरण है!

इस वसुधा को मैं प्यार करूँगा तब भी,
इस पर जो यह उन्मुक्त असीम गगन है।[२८]

यहाँ हृदय स्पर्श करने वाले कुछ चित्र प्रस्तुत किए जाते है जिनमें सियाराम-शरण जी का मानवतावाद स्पष्ट दिखायी पड़ता है।

दैनिकी कृति का एक चित्र है एक वधू अभी-अभी कुएँ से पानी की खेप लिए जा रही थी। रोग की दुर्दम शक्ति ने उसे परास्त कर दिया। दूसरी खेप को जाने के पहले वह अन्य लोक चली गयी। सियारामशरण जी कहते है :—

कब से उस तारुण्य-लता के हृदय-मध्य-रुज-विषधर,
गरल ग्रंथि निज नित्य बढ़ा कर ताक रहा था अवसर।[२९]

इसी प्रकार एक भूखी पत्नी का पति प्रातःकाल काम खोजने निकला था। जब संध्या समय वह घर वापस लौटा तो उसकी रुग्णा पत्नी स्वर्गलोक सिधार चुकी थी। वह व्यक्ति रोया चिल्लाया नहीं। कवि कहता है :—

---

२८. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ५१
२९. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ५३

रोया नहीं, नही यह विलपा, आँखें नो थीं रुखी,
अच्छा हुआ वची वह मरकर अब न रहेगी भूखी।[३०]

एक अन्य प्रसंग में एक मजूर कुआँ खोद रहा है। अभी थोड़ी देर में उसके परिश्रम के फलस्वरूप सरस जलधारा फूटेगी। सारा प्यासा लोक आनन्दित हो उठेगा। खनक कुआँ खोदते-खोदते थक गया है। प्रतीत होता है कि वह हिम्मत हार रहा है। कवि उसे उद्‌वोधन देता है :—

कंकड़-पत्थर का कठिन साथ,
माटी ही यह लग रही हाथ;
कुछ इधर-उधर से अकस्मात् —
जल की सेंटों के भी फुहार,
हे खनक किए जा कूप-खनन
तू यहाँ वीच में ही न हार।[३१]

'दूर्वादल' मे वाढ़ का एक सन्दर्भ है। अपनी कुटिया मे वेचारे दीन-हीन मानव शका और शोच से रहित होकर सो रहे है। इतने में वाढ़ आ जाती है। सभी के प्राण संकट में पड जाते है। इस दृश्यावली का वर्णन सियाराम-शरण जी ने वड़े ही मार्मिक ढग से किया है :—

सोते थे कुटी के वीच दीन वे
शंका-सोच-हीन वे,
ऐसे में कराल यह तेरी वाढ़ आ गयी
चारों ओर आर्त्त ध्वनि छा गयी
किसको बचावे कौन
चढ़ सके भाग वे चढ़े जो किसी वृक्ष पर
प्राणों पर खेल कर
औ जो प्राण-हीन से
सहसा विपत्ति के प्रवाह में विलीन-से।[३२]

---

३०. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ५८
३१. दैनिकी : सियारामशरण गुप्त, पृ० ३७
३२. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृ० ७२

इसी प्रकार मानव के प्रति कवि की सहृदयता और सहानुभूति प्रकट करने वाली कुछ रचनाएँ 'आर्द्रा' और 'मृण्मयी' में भी संग्रहीत हैं। वस्तुतः सिया-रामशरण जी की कविता में मानव सम्बन्धी जो चित्रांकन पाया जाता है वह अधिकतर दीन-हीन, निस्सहाय और समाज द्वारा सताये हुए व्यक्तियों का है। कवि के हृदय में सभी के लिये स्थान है, फिर सियारामशरण जी तो अखिल विश्व के सुखी होने की कामना करते हैं। उनका मानवतावादी दृष्टिकोण उनकी कविता को लोक के अधिक समीप कर देता है। अपनी एकान्त साधना में भी वे लोक का चित्रण करने में सजग रहे हैं। उन्हें मानव का वह रूप प्यारा है जो कड़ी धूप में परिश्रम करता है, अपनी झोपड़ी को नीची करके दूसरों को सहारा देता है, अपनी दीन-दशा से जीवन का भार ढो रहा है तथा भविष्य के प्रति आस्थावान है। कवि की सारी सवेदना और सहानुभूति उनके साथ है जो इस धरती के प्राणी हैं। 'आर्द्रा' के 'हूक', 'प्रयाणोन्मुखी', 'डाकू', 'एक फूल की चाह' तथा 'डाक्टर' आदि रचनाएँ मानव समस्याओं के ऊपर लिखी गयी है। रचनाओं के आधार पर सियारामशरण जी को मानवता का उपासक कहा जा सकता है और यही मानव-उपासना गांधीवाद का भी मूल मन्त्र है।

वैष्णवता

अपनी 'बापू' कृति में गान्धीजी के सम्बन्ध में सियारामशरण जी ने लिखा है—'लाया है पराई पीर नरसी के घर से'।[33] पराई पीर का जानना ही वैष्णवता का सिद्धान्त है। दूसरे के दुःख से दुखी होना संत स्वभाव की पहचान है। गान्धीजी में यह भावना अपनी सीमा पर थी। पीछे 'गान्धीवाद' वाले प्रसंग में हम कह आये है कि सियारामशरण जी ने गान्धीजी के आदर्शों को मनसा, वाचा, कर्मणा अपनाया था। फलस्वरूप गान्धीजी की वैष्णवता की भी छाप सियारामशरण जी के व्यक्तित्व पर पड़ी।

इसके अतिरिक्त सियारामशरण जी का पारिवारिक वातावरण भी वैष्णवता से प्रभावित था। स्वयं उनके अग्रज श्री मैथिलीशरण जी ने वैष्णवता से प्रभा-वित होकर रामचरित और कृष्णचरित वाले काव्यों की ही नहीं अपितु बुद्ध-चरित से भी सम्बंधित रचना की है। सियारामशरण जी ने रामचरित को आधार बना कर कोई काव्य नहीं लिखा किन्तु उनकी अन्तिम कृति 'गोपिका' कृष्ण के

---

३३. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६६

चरित्र से सम्बन्धित है। उसमें इन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। कृष्ण का जो चरित्र 'गोपिका' काव्य में चित्रित किया गया है वह सर्वथा नये ढंग का है। गोपिका के अतिरिक्त कुछ ऐसे फुटकर छन्दों का सृजन सियारामशरण जी ने किया है जिनसे उनकी धार्मिक भावना और वैष्णवता के प्रति आस्था का पता चलता है।

'हमारी प्रार्थना' नाम से सियारामशरण जी की जो अनुवाद-पुस्तक है उसमें कवि ने आशा प्रकट की है :—

"यह हमारी वाणी को ही पवित्र न करेगी, इससे हमारी दृष्टि को भी नया दर्शन प्राप्त होगा।"[३४]

सियारामशरण जी की आस्था 'राम नाम' के प्रति भी थी। यह राम-नाम गान्धी और विनोवा दोनों को प्रिय था। गोस्वामी तुलसीदास पर अपनी रचना प्रस्तुत करते हुए सियारामशरण जी कहते हैं :—

अंतर्बाह्य प्रकाशक तुमने,
　　दिव्य-दीप दिखलाया।
तुमने हमें मुक्त होने का,
　　राम-मंत्र सिखलाया।[३५]

जिस भक्तिभावना से प्रेरित होकर सियारामशरण जी ने अपने आराध्य के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किये है, वह चिरगाँव की चिर पूँजी है। धार्मिक भावना से विनयावनत होकर एक वार कवि ने अत्यन्त कातर-पुकार मे अपने आराध्य को पुकार कर कहा था—हे नाथ हम तो तुम्हारी ही शरण हे। चाहो तो नाव डुवा दो अथवा घाट पर लगा दो। एक भयानक कानन की कल्पना करते हुए आगे सियारामशरण जी लिखते हैं—हमारे सगी-साथी दूर-दूर चले गये है। पथ पर काटे विखरे हुए है। चरणों से रक्त की धारा वह रही है। प्रतीत हो रहा है कि काल रात्रि आ गयी हे। हिंस्रजन्तुओं से वातावरण अत्यन्त भयावह हो चला है। यहाँ अरण्य वीच किसको पुकारे? अव तो हे नाथ तुम चाहे जो करो,

३४. हमारी प्रार्थना : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४
३५. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृ० ४०

हम तो तुम्हारी ही शरण आ गये है।[३६] इतना ही नही कवि अपने आराध्य से करुणा की जलधारा बरसाकर सन्ताप मिटाने की बात करता है। इसी वारि-धारा से उसका तृष्णानल बुझ जायगा। आतप मे उसे सन्तोष इसलिए प्राप्त है कि उसे घनश्याम पावस में नव जीवन देगा।

सियारामशरण जी वैष्णवता से प्रभावित होते हुए भी और धर्मो के प्रति आस्था और विश्वास रखते है। वे एक मानव धर्म की परिकल्पना करते हे जहाँ विश्व के समस्त धर्म एक हो जाते हे। बुद्ध के वचनों का हिन्दी मे अनुवाद प्रस्तुत करना तथा ईसा मसीह के ऊपर 'अमृतपुत्र' नामक काव्य लिखना यह बताता है कि सियारामशरण जी के हृदय मे अन्य धार्मिक विचारों के प्रति भी आस्था थी। धर्म की परिभाषा बताते हुए सियारामशरण जी ने लिखा है :—

धर्म समझना है मनुजों का,
तो अपने कवि से सुन जा,
'धर्म-धर्म' रटते है जो वे,
धर्म बहाना है उनका।[३७]

जहाँ सियारामशरण जी ने गान्धीजी के चरित्र की विशेषताओं का उल्लेख किया है वहाँ वे विभिन्न महापुरुषों से उनके गुणों के आने की बात कहते हैं। गान्धी जी को सत्य हरिश्चन्द्र की अटलता, प्रह्लाद की अनन्य भक्ति, पाञ्चजन्य के स्वर से कर्मयोग की भावना, भीष्म से अनूठा ब्रह्मचर्य, बुद्ध से परमार्थ भावना, ईसा से नरानुराग, महावीर से हिंसा का त्याग, मुहम्मद से दृढ़ता, नरसी से पराई पीर अनुभव करने की भावना, तथा टालसटाय से प्रेम-भावना मिली है।[३८] इस प्रकार बापू का व्यक्तित्व एक संगम है और उसी का अनुसरण सियारामशरण जी ने किया है।

'गोपिका' मे अंकित कृष्ण के चरित्र को सियारामशरण जी ने मोड़ा है। ग्रंथ के अन्त मे कृष्णजी कहते है :—"मुझे [अखिल को स्वस्थ रखना है। तुम्हे संचय के साथ त्याग का भी उपार्जन करना चाहिए। तुम अपने प्रतिपक्षियों से

३६. दूर्वादल : सियारामशरण गुप्त, पृ० १२
३७. नोआखाली मे : सियारामशरण गुप्त, पृ० १५
३८. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृ० ६६

विजय-लाभ करो।"[३९] अन्त मे कवि ने शिव और पार्वती की पूजा का विधान करवाया है।

इस प्रकार हम देखते है कि राम, कृष्ण, शिव, विष्णु आदि के प्रति आस्था रखते हुए भी सियारामशरण जी अन्य धर्म के महापुरुषों को भी मान्यता देते है। उनके जीवन के अन्तिम समय की 'जय गोपाल' नाम की एक कविता है। इस कविता मे कवि की वैष्णवता देखने योग्य है। सारांश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—'गोपाल तुम्हारी जय हो। आज कैसे इस चित्त मे तुम छा गये। तुम्हें हम अपने पास कैसे रख पायेगे। रुद्ध कक्ष के गवाक्ष से वह हवा भी नहीं आ पाती जो तुम्हारी स्मृति-शिखा को आन्दोलित कर सके। हृदय की किस शेष-शैया पर तुम शयन कर रहे थे कह नही सकता। इसी भुवन में अभी यह सुधि कही जग रही है, कि तुम हमारे सखा थे। साथ ही यमुना के पुलिनों पर तुमने विचरण भी किया है। तुम्हारी वंशी की ध्वनि-तरंग यमुना के श्याम नीर में समा गई है। तुम्हारे पीत-पट के समान मेरा चित्त फहर रहा है। अचानक यह पता चलता है, कि न तो तुम वह गोपाल हो और न मैं वह 'मैं' हूँ। इस समर-प्रवृत्त वातावरण में एक वार फिर वही कह दे कि 'तू मेरी शरण आ। मैं तुझे सभी पापों से मुक्त कर दूँगा।'[४०] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सियारामशरण जी की वैष्णव-भावना में सभी प्राणियों का मंगल निहित है। उन्हे 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' अत्यन्त प्रिय है। मानव अपने सारे भेदभावों को मिटा कर,समता की समतल धरती पर एक-दूसरे के गले मिलें—सियारामशरण जी यही चाहते है। उनकी व्यक्तिगत साधना मे भी समाज का हित है, मंगल है। उनके व्यक्तित्व का यही गुण उनको युगीन कवियों में विशिष्ट स्थान देता है। इस भौतिकवादी युग में विज्ञान के थपेड़ों से सहमी हुई आस्था को सियारामशरण जी जैसे कवि ही आश्रय दे सके हैं। इसे चाहे वैष्णवता का उत्कर्ष कहिए अथवा भक्ति-भावना का दृढ़ आधार। नये युग मे पुरानी दृढ मान्यताओं का सहारा लेकर रहना विशेष महत्वपूर्ण होता है। यही विशिष्टता सियारामशरण जी के कवि को अमर बना देती है।

⊙

३९. गोपिका : सियारामशरण गुप्त, पृ० २३१

४०. गान्धी-मार्ग : जुलाई १९६२।

निष्कर्ष

सियारामशरण जी के साहित्य के विभिन्न अंगों का विवेचन हो चुका। अब यहाँ संक्षेप में यह देखना है कि हिन्दी साहित्य में सियारामशरण जी की देन का क्या स्थान है ? रचनात्मक साहित्य के सृजन में प्राय: प्रतिभा और प्रयास दोनों का साथ रहता है। सियारामशरण जी के कवि में ये दोनों विशेषताएँ थीं। उन्होंने छायावाद का कल्पनालोक देखा था साथ ही प्रगतिवाद की जन-जागृति से भी परिचय प्राप्त किया था। इधर हिन्दी कविता के प्रयोगवादी युग में भी ये रचना करते रहे; किन्तु इस काव्य-धारा ने उन्हें आकर्षित नहीं किया। यद्यपि वे सदैव नवीनता और मौलिकता के हामी रहे; किन्तु उनके विचार से सुरसरि के समान जनहित करने वाली भणिति ही उत्तम है।

यदि हम छायावादी कवियों के मध्य सियारामशरण जी को देखते हैं तो ये अपनी कुशल लेखनी के बल पर अपना मार्ग अलग बनाते दिखायी पड़ते हैं। प्रसाद जी का काव्य शृंगार-भावना के आस-पास रहता है। महादेवी जी अपनी विरह-वेदना से ही अपने गीतों की सज्जा करती हैं। पंत जी की कोमल कल्पना की छाप उनकी समस्त कविताओं पर दिखायी पड़ती है। सियारामशरण जी में ये बातें नहीं पायी जातीं। वे तो जन-जीवन के बहुविध चित्रों के कुशल चितेरे

हैं। यदि मनुष्य को साहित्य का लक्ष्य माना जाय तो सियारामशरण जी अपने कार्य में अधिक सफल हैं। उनका किसी विशेष काव्य-शैली के प्रति लगाव नहीं पाया जाता। कवि अपने साहित्य-पथ पर संवेदनशील और मार्मिक चित्रों को समेटता गया है। उसे पाथेय के रूप में गांधीजी का सत्य और अहिंसा का सिद्धान्त मिल गया था। विशेषता तो इस बात की है कि सियारामशरण जी रुग्ण रह कर भी स्वस्थ साहित्य का सृजन करते रहे।

उनके काव्यों में प्राय: सभी स्थलों पर उनकी व्यापक लोकदृष्टि दिखायी पड़ती है। कहीं तो सियारामशरण जी चिरंतन बातों के वर्णन में आनन्द लेते हैं और कहीं पूँजीवादी सभ्यता पर करारी चोटें करते हुए दृष्टिगोचर होते है। यदि एक ओर उनकी लेखनी ने महाभारत के नकुल जैसे पात्र को अपने काव्य का विषय बनाया है तो दूसरी ओर सामरी जैसी स्त्री के प्रसंग में पतित-पावन ईसा के मानवतावादी सन्देशों का भी मूल्यांकन किया है।

चिरंतन विषयों के अतिरिक्त युगीन मानव-मूल्यों के अंकन में भी सियारामशरण जी ने सतर्कता से काम लिया है। राजनीतिक दाँव-पेंच के फलस्वरूप साम्प्रदायिकता की भट्टी में जलने वाले समाज की झाँकी देखना हो तो कवि की 'नोआखाली में' और 'आत्मोत्सर्ग' कृतियों का अध्ययन करना चाहिए। जीवन की अनेक वीथियों में भ्रमण करते हुए जब कवि का मन गोपाल की वंशी सुनने को आकुल हुआ था तो उसने 'गोपिका' की रचना की थी। उसमें भी कवि ने वंशी-वादन की ऐसी योजना की है जिसमें सारे संसार का कल्याण निहित हो। 'गोपिका' में सियारामशरण जी की काव्य-दृष्टि अत्यन्त उत्कर्ष पर रही है।

अपनी लघुता में गांधी की गुरुता भर जाने से कवि अपने को धन्य मानता है। साधना की यह पद्धति भी कितनी अनोखी है कि कोई निष्काम भाव से साधना करता चले और परिणाम की ओर कभी भूल कर भी न निहारे। वैसे संसार में इसके विपरीत भावना पायी जाती है जिसे हम वणिग्वृत्ति कह सकते हैं। सियारामशरण जी की लेखनी की सादगी उनके जीवन पर उतरी थी या जीवन की सादगी की छाप उनकी लेखनी पर पड़ी थी — कहना कठिन है; किन्तु इतना तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है, कि सियारामशरण जी के व्यक्तित्व में अन्तर्बाह्य का साम्य अवश्य पाया जाता है जो वर्तमान युग की रीति से एकान्त: पृथक् है।

सामान्य व्यक्ति के लिए मानव-मूल्यों की पहचान सरल नही होती। युग द्रष्टा होने के नाते साहित्यकार उसे आसानी मे समझता है, बूझता है। पराधीनता के अन्धकार ने गुलाम जाति को अपना, अपने व्यक्तित्व का मूल्य समझने के लिए भूमिका तैयार की थी। चिन्तन की जो चिनगारी सुलगी उसने ज्वाला का रूप धारण किया। हिन्दी के बहुतेरे लेखक इस ज्वाला को प्रज्वलित करने में लगे रहे। सियारामशरणजी ने चिनगारी तो सुलगायी किन्तु परिणाम की इस अबोधता के साथ कि ज्वाला नही जलेगी।

कुछ समीक्षक उन पर चार्ज लगाते है कि उन्होने साहित्य के मन्दिर में स्थान पाने के लिए चन्दा लिया था, कुछ अरविन्द से, कुछ गांधी-गुरुदेव से। ऐसे लोगों की परखनली के निशान कहाँ तक सही है, कहा नही जा सकता। इतना सब कुछ यदि हम मान भी ले तो भी निष्कर्ष उलटा निकलता है। सियारामशरण जी का साहित्य अरविन्द, गाधी या गुरुदेव का प्रोपेगन्डा नही है और न उसमें कही राजनीति, धर्म या सम्प्रदाय की गंध है। वह विशुद्ध साहित्य है जिसका महत्त्व समय परखेगा।

हाँ इतना स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अनुज होने के कारण सियारामशरण जी के जीवन में संकोचवृत्ति की प्रमुखता स्पष्ट थी। उनसे यदि इस बात की शिकायत की जाय तो इसे वे अपना स्वभाव कहेंगे। वस्तुतः यह सकोच स्वभावज था। उठने में, बैठने मे, बात करने मे सर्वत्र वही संकोच दिखायी पड़ता है। इसे शील कहना बिल्कुल समीचीन नही होगा। सियारामशरणजी के संकोच का इतना दायरा बढा कि वह उनके साहित्य का स्पर्श करने लगा। 'पाथेय' में इसका रूप देखा जा सकता है। वहाँ अवसर था कि कवि अपनी बात खुलकर कहता, किन्तु सकोचवश जितनी आशा थी उतना काम नही हो सका।

'उन्मुक्त' में सियारामशरण जी अपना संकोच छोड़ते है। बहुजन हिताय का लक्ष्य लेकर लिखी गई यह रचना कवि की सूझ-बूझ का परिचय देती है। विनाश के बादलों की छाया हमे नही चाहिए। इसीलिए कवि ने सर्वमंगल की प्रेरणा से अपने विचार व्यक्त किये है। कल्पना-प्रसूत चित्रण के मूल मे यथार्थ काम करता रहा है। 'यथार्थवाद' एक सदिग्ध संज्ञा है। यहाँ उसकी व्याख्या अभिप्रेत नही किन्तु इतना स्पष्ट कह देना है कि सियारामशरण जी का कवि कल्पना का रेशमी जाल बुनना नही जानता वह युग के यथार्थ के चित्र उरेहता है। ये चित्र अखिल मानवजाति से कुछ कहते है।

देश, दासता, स्वतन्त्रता, कवि का व्यक्तित्व, रोग, अनवरत सृजन-कामना —ये प्रसंग सियारामशरण जी के अनुप्राणित होने की गाथा कहते हैं। उनकी कविता का प्रत्येक 'आखर' निश्छलता की कहानी कहता है। उनके गद्य की प्रत्येक पंक्ति सहज रूप में पायी जाती है। उसमें बनावटीपन की टीमटाम नहीं है। सियारामशरण जी आन्तरिक पौरुष पर विश्वास करते हैं, वाह्य तडकभड़क पर नही।

इस वैज्ञानिक दौड-धूप में कविता का व्यक्तित्व कोमल होने के का‌.ण. डिग सकता है इसीलिए सियारामशरण जी ने 'अपरिमेय पौरुष' वाले गद्य की रचना भी की है। यद्यपि उनके गद्य में कुछ काव्यात्मक विशेषताएँ भी आ गयी है; किन्तु उनकी रचनाओं का रूप अत्यन्त मौलिक, स्वस्थ, स्वाभाविक और सरल है। ऐसा प्रतीत होता है कि सियारामशरण जी सरलत और ऋजुता के कवि है। वे जीवन के द्वन्द्व का मूल्यांकन करने नही बैठे बल्कि अपनी सहज शैली में अनुभूतियों को बटोरते रहे।

दिन-प्रतिदिन की छोटी घटनाओं से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में आने वाली बातों तक का चित्रण उनके काव्य मे मिलता है। गद्य-साहित्य में जो कार्य सियारामशरण जी ने किया है उसका व्यावहारिक और मौलिक रूप हिन्दी जनता के सामने है। उपन्यासों और कहानियों मे मानव की कमजोरियों, उसके विश्वासों और जीवन के साधारण संघर्षो का जो चित्रण सियारामशरणजी ने किया है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन समस्त रचनाओं में कवि की आस्था भारतीय संस्कृति के प्रति दृढ़ बनी रहती है। कवि का विश्वास संस्कृतियों के परस्परावलम्ब की ओर भी है; किन्तु वह केवल विचारों तक ही सीमित है। उसे सियारामशरण जी अपने जीवन में उतारने में हिचकते है। उन्हे अन्य संस्कृतियों की वे बातें प्रिय है जिनसे मानव-जीवन को प्रेरणा मिलती है, जिनमे दीन-दुखियों के प्रति सहानुभूति को विशेष महत्त्व दिया गया है। 'अमृतपुत्रा' की रचना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। 'नोआखाली मे' पुस्तक की 'रमजानी' रचना से यह प्रतीत होता है कि सियारामशरण जी हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षपाती थे। उन्हे सभी प्राणियों मे एक ही तत्व के दर्शन होते है। जब एक ही सूत्र में सारे प्राणी अनुस्यूत है तो उनमें परस्पर सौहार्द की भावना क्यों नही उत्पन्न होती है ?

निष्कर्ष

इन सारी बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि सियारामशरण जी की लेखनी संसार का योग-क्षेम चाहती है। यह भावना सर्वोदय के अनुकूल है ।

सियारामशरणजी समाज में ऐसा इन्कलाब नहीं चाहते जो मानव की सहज प्रेम-भावना को पददलित करके अपना झंडा फहरावे। उनका विश्वास अहिंसात्मक क्रान्ति में है। वे शंकर के प्रलय-नृत्य की कामना नहीं करते अपितु जीवन को साधना-पथ पर ले जाना चाहते है। उनका विश्वास उपलब्धि में नहीं वल्कि कर्म में है।

साहित्य-पथ पर चलते हुए सियारामशरण जी के शरीर को रोग से जूझना पड़ा है। किन्तु आस्था और विश्वासों वाला कवि अपनी रुग्णावस्था में भी भारती की सेवा करता रहा। हिन्दी के लिए यही क्या कम है। अपने अनुवादों के द्वारा सियारामशरण जी ने बुद्ध-वचनों को तथा भगवान कृष्ण की गीता को हिन्दी भापी जनता के लिए सुलभ वनाया है। गीता उनके पद्यानुवाद द्वारा संसार के लिए सचमुच गीता वन गयी। साधन और संवल रहते हुए भी हारे-थके मानव में स्फूर्ति और चेतना भरने वाली गीता 'सियारामशरण' जी को अत्यन्त प्रिय थी। यह द्वापर और त्रेता का मिलन है। यह मेल बाँसुरी और धनुप का नहीं अपितु पाँन्चजन्य के वीर घोप और धनुप की टंकार का है। वाणी के मन्दिर में ऐसे पुजारियों का आगमन कभी-कभी होता है। सियाराम शरण जी की साहित्य-सेवा से केवल हिन्दी ही अनुप्राणित नहीं होती वरन् हिन्दी जनता को भी उस पर गर्व है। उनकी साधना का जो फल हिन्दी को मिला है वह अमूल्य है।

परिशिष्ट

(कुछ पत्र)

: १ :

डा० प्रभाकर माचवे के पत्र की प्रतिलिपि

१२० रवीन्द्र नगर,
नई दिल्ली-११.

प्रिय महोदय,

११.४ का पत्र मिला। × × × शेरिफ साहब की अधिक जानकारी चिरगांव से ही मिल सकेगी। मेरे पास तो उन्होंने पांडुलिपि अंग्रेजी अनुवाद की भेजी थी। तब तक छपी भी नहीं थी। अमरीका में कोई उसके प्रकाशन में रुचि नहीं रखता था। हाँ 'अमृतपुत्र' हिन्दी का पाठ मैंने जरूर किया जो टेप रेकार्ड बास्टन में सुरक्षित है। अमृतपुत्र की प्रतियाँ कई युनिवर्सिटियों के हिन्दी विभागों को दीं। मेरे जानने में 'महात्मा ईसा' : उग्र जो ईसाइयों की दृष्टि से ठीक किताब नहीं आरंभिक अंश उसका, को छोड़ यह दूसरी हिन्दी पुस्तक है ईसाई विषयों पर।

सप्रेम,
प्रभाकर माचवे

: २ :

पं० कृष्णशंकर शुक्ल को श्री सियारामशरण गुप्त का पत्र

चिरगाँव : झाँसी
२८-१०-६२.

श्रद्धेय शुक्ल जी, प्रणाम।

अपने रोग से जूझते हुए रात कठिनाई से बिता सका था, किन्तु आज प्रातःकाल आपका पत्र पाकर सारी पीड़ा कुछ समय के लिए विदा जैसी ही ले गई। ऐसे पत्र भाग्य से ही कभी मिलते है। अनुगृहीत हूँ।

भाई ललित जी का कार्य उचित रूप से चलना ही चाहिए उन्हे आपका अनुग्रह जो प्राप्त है। वे जब यहाँ पधारे घर की ही भाँति पधारें।

मेरी जन्म-तिथि भाद्र पूर्णिमा सं० १९५२ वि० है। अग्रेजी दिनाक चार सितम्बर १८९५ ई० है। कृपा बनाए रखे।

विनीत,
सियारामशरण गुप्त

: ३ :

श्री सियारामशरण गुप्त द्वारा लेखक के नाम भेजा गया पत्र

श्रीराम

चिरगाँव : झाँसी
८-३-६२

प्रिय भाई,

आपका ६-३-६२ का कृपापत्र मिला। अनुग्रह के लिए कृतज्ञ हूँ। आपका उद्योग सफल हो यह हमारी हार्दिक कामना है। × × अपनी रचनाओं की सूची प्रकाशन-क्रम के अनुसार इस पत्र के साथ भेज रहा हूँ। आशा है इससे आपको प्रारम्भिक कार्य में, जैसा आपने लिखा है, सुविधा रहेगी। विशेष विनय।

आपका,
सियारामशरण गुप्त

संलग्न पुस्तक-सूची

१ मौर्य-विजय : संवत् वि० १९७१
२—अनाथ „ १९७४
३—आर्द्रा „ १९८४
४— विषाद „ १९८६
५—दूर्वादल „ १९८६
६—आत्मोत्सर्ग „ १९८८
७—गोद „ १९८६
८— पुण्य-पर्व „ १९८६
९—मानुषी „ १९९०
१०—पाथेय „ १९९१
११ - अंतिम आकांक्षा „ १९९१
१२ — मृण्मयी „ १९९३
१३—नारी „ १९९४
१४—बापू : सत्तरहवीं गांधीजयन्ती १९९५
१५ — झूठ-सच संवत् वि० १९९६
१६ उन्मुक्त „ १९९७
१७—दैनिकी „ १९९९
१८—नोआखाली में „ २००३
१९ — नकुल „ २००४
२०—जयहिन्द : १५ अगस्त १९४७ . २००४
२१— गीता संवाद संवत् वि० २००५

२२—हमारी प्रार्थना संवत् वि० २००६
२३—बुद्ध-वचन „ २०१३
२४— अमृत-पुत्र „ २०१६

प्रतिलिपि चारुशीलाशरण द्वारा।

विशेष :—इस सूची मे कवि की अतिम काव्य-कृति 'गोपिका' का नाम नही है; क्योकि तब वह अप्रकाशित थी।

श्री सियारामशरण जी लिखित लेखक के नाम एक अन्य पत्र

श्रीराम

चिरगाँव झाँसी
८-९-६२

भाई ललित जी,

भाई चारुशीलागरण को लिखे गये पत्र का उत्तर मै ही लिख रहा हूँ। वे इन दिनो कुछ व्यस्त है। सभवत: इसी से आपके पहले पत्र का उत्तर भी नही दे सके। उन्होने मुझसे कोई बात जाननी चाही होगी और मैने आगे के लिए बात टाली होगी। इसी कारण पहले भी वे उत्तर न लिख पाये होगे। दोष उनकी अपेक्षा मेरा अधिक रहा होगा।

आपकी बातो के उत्तर निम्नलिखित है :—

१—डा० रामकुमार वर्मा ने जहाँ तक मुझे याद हे, मेरी रचना के बारे में कुछ नही कहा। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्य-शाखा के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए मेरी गाधीवादी विचारधारा के सबंध मे अपने उद्गार प्रकट किये थे। नकुल के विज्ञापन मे प्रकाशक ने उनकी उसी धारणा का उल्लेख किया होगा।

२—मेरे पास सम्मेलन-पत्रिका की फाइल नही हे। पर दैनिकी के प्रकाशन के अनन्तर एक साल के भीतर ही वह मिल जानी चाहिए।

३—उन्मुक्त की आलोचना काका साहेब कालेलकर ने वर्धा से प्रकाशित होने वाली 'सब की बोली' मे एक लेख के रूप मे ही की थी। समय आदि का ब्योरा मैं नही दे सकता।

४—अंतिम आकांक्षा के सम्बन्ध मे पूज्य डा० भगवानदास ने मुझे पत्र मे स्वयं लिखा था। उनके हाथों मुझे 'नारी' पर नागरी प्रचारिणी सभा काशी के पुरस्कार एवं पदक मिले थे। उसके बाद भी उनको मैंने उपन्यास चिरगाँव से भेजे थे। उनका पत्र मेरे यहां कहीं होगा तो पर उसका उद्धार किसी पुरानी नगरी के खुदाई जैसा कठिन काम है। श्री कुन्तल कुमारी जी ने भी मुझे नारी के सम्बन्ध मे पत्र लिखा था। अब वे गत हो चुकी है। श्री जैनेन्द्र के द्वारा दिल्ली में उनसे मिलने का अवसर मुझे मिला था।

आपका,
सियारामशरण गुप्त

श्री सियारामशरण जी द्वारा भेजा गया लेखक के नाम एक और पत्र

('नारी' उपन्यास के सम्बन्ध में)

श्रीराम

चिरगाँव : झाँसी
२१-१-६३.

प्रिय भाई,

१६ जनवरी का पत्र यथासमय मिला था। आपका कार्य चल रहा है, जानकर सन्तोष हुआ। मैंने अहमदाबाद रेडियो के लिए एक लेख 'मेरी रचना : नारी' नाम से लिखा था जो बाद मे 'आजकल' दिल्ली के किसी अंक मे छपा था। सम्भव है उसमे आपके काम की कोई वस्तु मिल जाय।

आपका,
सियारामशरण गुप्त

परिशीलित ग्रंथावली

English

Books	Author
1. The treatise on the Novel	R. Liddel
2. Art and Literature	Mao-Tse-Tung
3. Bacon's Essays	Ed. F.G. Selby
4. English Critical Essays	Edmunds D. Jones
5. Gandhi and Marx	K. G. Mashruwala
6. Introduction to the History of English Literature	W. H. Hudson
7. Introduction to the Study of English Literature	W. H Hudson
8. Judgment in Literature	Worsfold
9. Marxism and Poetry	George Thomson
10. Making of Literature	Scott James
11. Modern Prose Style	Dobree
12. Poetics-On Style	Aristotle-Demetrius
13. Principles of Criticism	Worsfold
14. Principles of Literary Criticism	I. A. Richards
15. The Cross-Bearer	Trans. A. G. Shirreff
16. The Structure of the Novel	Edwin Muir
17. The Craft of Fiction	P. Lubbock
18. The Technique of Novel writing	B. Hogarth
19. The New Dictionary of Thoughts	Edwards
20. Universal Religion	R. N. Surya Narayan

संस्कृत

२१. उत्तर रामचरित — भवभूति
२२. काव्य प्रकाश — आ० मम्मट : व्याख्याकार डा० सत्यव्रत सिंह
२३. काव्य प्रकाश — आ० मम्मट : झलकीकर टीका
२४. महाभारत : वनपर्व — व्यास
२५. ध्वन्यालोक — आ० आनन्दवर्धन
२६. रघुवंश — कालिदास
२७. रामायण — वाल्मीकि
२८. साहित्य दर्पण — आ० विश्वनाथ
२९. श्रीमद्भगवद्गीता — व्यास
३०. कादम्बरी — बाणभट्ट

बँगला

३१. कथा ओ काहिनी — रवीन्द्रनाथ टैगोर
३२. गीताजलि — रवीन्द्रनाथ टैगोर
३३. सचयिता — रवीन्द्रनाथ टैगोर
३४. रवीन्द्र रचनावली — रवीन्द्रनाथ टैगोर

सियारामशरण जी के ग्रन्थ

काव्य

३५. अनाथ — सियारामशरण गुप्त
३६. अमृत-पुत्र — सियारामशरण गुप्त
३७. आर्द्रा — सियारामशरण गुप्त
३८. आत्मोत्सर्ग — सियारामशरण गुप्त
३९. गोपिका — सियारामशरण गुप्त
४०. जयहिन्द — सियारामशरण गुप्त
४१. दूर्वादल — सियारामशरण गुप्त
४२. दैनिकी — सियारामशरण गुप्त

४३. पाथेय	सियारामशरण गुप्त
४४. बापू	सियारामशरण गुप्त
४५. मृण्मयी	सियारामशरण गुप्त
४६. मौर्य-विजय	सियारामशरण गुप्त
४७. नकुल	सियारामशरण गुप्त
४८. नोआखाली में	सियारामशरण गुप्त
४९. विषाद	सियारामशरण गुप्त

उपन्यास

५०. अन्तिम आकांक्षा	सियारामशरण गुप्त
५१. गोद	सियारामशरण गुप्त
५२. नारी	सियारामशरण गुप्त

कहानी

५३. मानुषी	सियारामशरण गुप्त

नाटक

५४. उन्मुक्त : गीतिनाट्य	सियारामशरण गुप्त
५५. पुण्य-पर्व	सियारामशरण गुप्त

निबन्ध

५६. झूठ-सच	सियारामशरण गुप्त

अनुवाद

५७. गीता-संवाद	सियारामशरण गुप्त
५८. बुद्ध-वचन	सियारामशरण गुप्त
५९. हमारी-प्रार्थना	सियारामशरण गुप्त

अन्य मौलिक कृतियाँ

६०. अनामिका	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
६१. अणिमा	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

६२. अपरा	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
६३. अशोक के फूल	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
६४. अशोक	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
६५. अन्तहीन अन्त	उदयशंकर भट्ट
६६. आहुति	हरिकृष्ण प्रेमी
६७. आधुनिक कवि	महादेवी वर्मा
६८. आधुनिक कवि	सुमित्रानन्दन पंत
६९. उच्छ्वास	मैथिलीशरण गुप्त
७०. कुलीनता	सेठ गोविन्ददास
७१. कविश्री	सियारामशरण गुप्त
७२ कविश्री	महादेवी वर्मा
७३. गाधी की कहानी	लुई फिशर
७४. गाधी अभिनन्दन ग्रंथ	सोहनलाल द्विवेदी
७५. गुनाहो का देवता	डा० धर्मवीर भारती
७६. ग्रथि	सुमित्रानन्दन पन्त
७७. चन्द्रगुप्त	जयशकर प्रसाद
७८. चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा
७९. चिन्तामणि-भाग १	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
८०. जौहर	श्यामनारायण पाण्डेय
८१. धरती की साँस	भगवतीप्रसाद वाजपेयी
८२. परिमल	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
८३. पथ के साथी	श्रीमती महादेवी वर्मा
८४. पल्लव	सुमित्रानन्दन पन्त
८५. पद्माकर ग्रन्थावली	स० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
८६. पथिक	प० रामनरेश त्रिपाठी
८७. बड़ा पापी कौन ?	सेठ गोविन्ददास
८८. बापू की छाया मे	बलवन्त सिह
८९. भारतीय विद्यार्थियो को सदेश	गांधीजी
९०. महात्मा ईसा	पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

१२०. सिद्धराज	मैथिलीशरण गुप्त
१२१. सोचविचार	जैनेन्द्र
१२२. साकेत	मैथिलीशरण गुप्त
१२३. स्वर्ण-विहान	हरिकृष्ण प्रेमी
१२४. सेवा-पथ	सेठ गोविन्ददास
१२५. हिन्दी कहानियाँ	डा० श्रीकृष्णलाल
१२६. हिन्दी भाषासार	सं० लाला भगवानदीन, रामदास गौड़
१२७. हिंसा और अहिंसा	सेठ गोविन्ददास

आलोचना एवं विविध

१२८. अध्ययन और आस्वाद	श्री गुलाबराय
१२९. आधुनिक हिन्दी साहित्य में छन्द-योजना	डा० पुत्तूलाल शुक्ल
१३०. आज का भारतीय साहित्य	साहित्य अकादमी, दिल्ली
१३१. आधुनिक काव्य-धारा	डा० केसरीनारायण शुक्ल
१३२. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	आ० पं० कृष्णशंकर शुक्ल
१३३. आधुनिक साहित्य	नन्ददुलारे वाजपेयी
१३४. आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त	डा० सुरेशचन्द्र गुप्त
१३५. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	डा० श्रीकृष्णलाल
१३६. आधुनिक हिन्दी साहित्य	श्री अज्ञेय
१३७. आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद	डा० विश्वनाथ गौड़
१३८. आधुनिक कविता का मूल्यांकन	डा० इन्द्रनाथ मदान
१३९. आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ	श्री मोहनवल्लभ पन्त

१४०. आधुनिक कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ	डा० नगेन्द्र
१४१. आधुनिक हिन्दी नाटक	डा० नगेन्द्र
१४२. आदर्श की पगडंडियाँ	शंकरलाल पारीक
१४३. आ० रामचन्द्र शुक्ल	शिवनाथ एम० ए०
१४४. उपन्यास और लोकजीवन	राल्फ फाक्स
१४५. उपन्यास कला	विनोदशंकर व्यास
१४६. केशव की काव्य-कला	पं० कृष्णशंकर शुक्ल
१४७. कामायनी	जयशंकर प्रसाद
१४८. काव्य में अप्रस्तुत योजना	रामदहिन मिश्र
१४९. काव्य-दर्पण	रामदहिन मिश्र
१५०. काव्यालोक : प्र० उद्योत	रामदहिन मिश्र
१५१. काव्य के रूप	डा० गुलाबराय
१५२. काव्यालोक : द्वि. उद्योत	पं० रामदहिन मिश्र
१५३. काव्य में अभिव्यंजनावाद	लक्ष्मीनारायण सुधांशु
१५४. काव्य-चिन्तन	डा० नगेन्द्र
१५५. कामायनी में शब्द-शक्ति चमत्कार	डा० विमलकुमार जैन
१५६. काव्य की भूमिका	दिनकर
१५७. काव्य-कला तथा अन्य निबन्ध	प्रसाद
१५८. कुछ विचार	मुंशी प्रेमचन्द
१५९. खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना	डा० आशा गुप्ता
१६०. गीता प्रवचन	विनोबा भावे
१६१. गान्धी अभिनन्दन ग्रन्थ	डा० राधाकृष्णन
१६२. चिन्तामणि-भाग २	आ० रामचन्द्र शुक्ल
१६३. चाबुक	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
१६४. छायावाद	डा० नामवर सिंह
१६५. छायावाद के गौरव चिह्न	प्रो० क्षेम

१६६. छन्द: प्रभाकर	जगन्नाथ प्रसाद भानु
१६७. छायावाद-युग	शम्भुनाथ सिंह
१६८. छायावाद	डा० रामरतन भटनागर
१६९. नाटक की परख	एस० पी० खत्री
१७०. निबन्ध-कला	राजेन्द्रसिंह गौड़
१७१. पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण	दिनकर
१७२. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ	डा० रामविलास शर्मा
१७३. बीसवी शताब्दी	नन्ददुलारे वाजपेयी
१७४. भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का इतिहास	इन्द्र वाचस्पति
१७५ भारतीय शिक्षा का इतिहास	प्यारेलाल रावत
१७६. मिट्टी की ओर	दिनकर
१७७. रवीन्द्र कविता-कानन	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
१७८. रूपक-रहस्य	डा० श्यामसुन्दर दास
१७९. रोमासवादी साहित्य शास्त्र	रवीन्द्रसहाय वर्मा
१८०. विचार और कवितर्क	हजारीप्रसाद द्विवेदी
१८१. वृत्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी
१८२. साकेत	मैथिलीशरण गुप्त
१८३. साकल्य	शान्तिप्रिय द्विवेदी
१८४. साहित्य विवेचन	सुमन और मलिक
१८५. साहित्यालोचन	डा० श्यामसुन्दर दास
१८६. सियारामशरण गुप्त	स० डा० नगेन्द्र
१८७. सिद्धान्त और अध्ययन	डा० गुलाबराय
१८८. सक्षिप्त काग्रेस का इतिहास	पट्टाभि सीतारमैया
१८९. सुमित्रानन्दन पन्त	डा० नगेन्द्र
१९०. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास	पं० रामबहोरी शुक्ल, डा० भागीरथ मिश्र
१९१. हिन्दी साहित्य का इतिहास	आ० पं० रामचन्द्र शुक्ल
१९२. हिन्दी साहित्य और साहित्यकार	सुधाकर पाण्डेय

१९३. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	त्रिभुवनसिंह
१९४. हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ	प्र० आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
१९५. हिन्दी निबन्ध	डा० प्रभाकर माचवे
१९६. हिन्दी उपन्यास	डा० सुषमा धवन
१९७. हिन्दी साहित्य	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१९८. हिन्दी उपन्यास में वर्ग-भावना	डा० प्रतापनारायण टंडन
१९९. हिन्दी कथा-साहित्य	पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
२००. हिन्दी उपन्यास साहित्य	बाबू ब्रजरत्नदास
२०१. हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास	डा० प्रतापनारायण टंडन
२०२. हिन्दी उपन्यास	शिवनारायण श्रीवास्तव
२०३. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन	डा० ब्रह्मदत्त शर्मा
२०४. हिन्दुस्तान की कहानी	जवाहरलाल नेहरू
२०५. हिन्दी गद्य-काव्य	डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश
२०६. हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास	डा० लक्ष्मीनारायण लाल
२०७. हिन्दी गद्य	डा० रामरतन भटनागर
२०८. हिन्दी गद्य का निर्माण	चन्द्रबली पाण्डेय
२०९. हिन्दी का गद्य साहित्य	प्रो० रामचन्द्र तिवारी
२१०. हिन्दी साहित्य की भूमिका	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
२११. हिन्दी गद्य का विकास और प्रमुख शैलीकार	बाबू गुलाबराय
२१२. हिन्दी प्रयोग	बाबू रामचन्द्र वर्मा

२१३. हिन्दी के गद्यकार और उनकी शैलियाँ — रामगोपालसिंह चौहान
२१४. हिन्दी गद्य शैली का विकास — डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा
२१५. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष — शिवदानसिंह चौहान
२१६. हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार — रामचरण महेन्द्र

पत्र और पत्रिकाएँ

१. अवन्तिका : पटना
जनवरी सन् १९५८

२. आजकल : दिल्ली
दिसम्बर सन् १९५७
मई सन् १९६१
दिसम्बर सन् १९६१
मार्च सन् १९६३

३. गाधी-मार्ग : दिल्ली
जुलाई सन् १९६३

४. धर्मयुग : सप्ताहिक, बम्बई
६ सितम्बर सन् १९६१
१४ अप्रैल सन् १९६३
२१ अप्रैल सन् १९६३

५. नवजीवन : लखनऊ
३० सितम्बर सन् १९६३

६. प्रभा : कानपुर
जनवरी १९२० से जून १९२० तक
सितम्बर सन् १९२०
अप्रैल सन् १९२१
मई सन् १९२१
जून सन् १९२१

मई सन् १६२२
नवम्बर सन् १६२३
नवम्बर सन् १६२४
दिसम्बर सन् १६२४

७. प्रताप : कानपुर
सियारामशरण गुप्त विशेषांक १६५२ ई०

८. माधुरी : लखनऊ
जुलाई से दिसम्बर १६२३ ई०
जनवरी———१६२४ ई०

६. योजना : दिल्ली
अप्रैल १६६३ ई०

१०. रसवन्ती : लखनऊ
जुलाई १६६३ ई०

११. विशाल-भारत : कलकत्ता
नवम्बर १६४१ ई०

१२. शारदा : जबलपुर
जुलाई १६२० ई०
अगस्त १६२० ई०
नवम्बर १६२० ई०
दिसम्बर १६२० ई०
अप्रैल १६२० ई०

१३. सैनिक : आगरा
सन् १६३८ के कुल अंक

१४. सुधा लखनऊ
अप्रैल १६३५ ई०

१५. साहित्य-सदेश : आगरा
अप्रैल १६६३ . निबंध विशेषांक

१६. सरस्वती : प्रयाग
जून १६२१ ई०
अप्रैल १६६३ ई०
मई १६६३ ई०

१७. हंस : प्रयाग
नवम्बर १६४१ ई०

१८. हिन्दुस्तान : साप्ताहिक, दिल्ली
६ मार्च ६६३ ई०
१४ अप्रैल १६६३ ई०
२१ अप्रैल १६६३ ई०
१२ मई १६६३ ई०
६ जून १६६३ ई०
३० जून १६६३ ई०

१६. त्रिपथगा : लखनऊ
मई १६६३ ई०
श्रद्धांजलि अंक १६६३ ई० भाग-१
श्रद्धाजलि अंक १६६३ ई० भाग-२

⊙⊙

सन्दर्भ-सूची

[विशेष : पा० पाद टिप्पणी तथा अंक पृष्ठ संख्या के लिये हैं]

काव्य